

चतुर्भाषी

(अथवा पद्मप्राभृतक, धूर्तचिटसम्वाद,
उभयाभिसारिका, पादताडितक
इन चार एकनट नाटकों का संग्रह)

[गुप्तकालीन मृंगारहाट]

अनुवादक-सम्पादक

श्री मोतीचन्द्र

डाइरेक्टर, प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय प्राइवेट लि०, बम्बई

प्रसादक

नाथूराम प्रेसी, मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
हंराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई-४

•

प्रथम संस्करण
दिगम्बर, १९५९

•

मुद्रक
बाबूसाहब जैन वास्तुशिल्प,
शम्भुसि मुद्रणालय,
दुर्गाचन्द्र रोड, बागमती

•

प्राक्थन

लगभग चारह वर्ष पूर्व नई दिल्ली के संग्रहालय में बैठे हुए मुझे श्री एफ० डब्ल्यू० टामस द्वारा लिखित 'चार सम्स्कृत नाटक' (फोर संस्कृत प्लेज़) शीर्षक लेख पढ़नेका अवसर मिला। यह लेख जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी लण्डन के १९२४ के अतिरिक्त शताब्दी अंक में (पृ० १२३-१३६) प्रकाशित हुआ था। इसका आधार श्री रामकृष्ण कवि द्वारा सम्पादित चतुर्भांगी सञ्जक चार प्राचीन भाणोंका संग्रह था जो १९२२ में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रहमें शूद्रककृत पद्मप्राभृतक, ईश्वरदत्तकृत धूर्त-प्रियसवाद, वररचिकृत उभयामिसारिका, और श्यामिलकृत वादताडितक नामक चार भाग थे। त्रिचूर के श्री नारायण नम्बूद्रीपादको एक मात्र हस्तलिखित प्रतिके आधारपर यह सस्करण तैयार किया गया था। उस लेखमें श्री टामस ने लिखा था—

‘यद्यपि इन भाणों का विषय सामान्यतः नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं है और कहीं कहीं अश्लील भी है, फिर भी मेरे विचार से यह माना जा सकेगा कि इनमें वास्तविक साहित्यिक गुण हैं। उनमें सहज परिहास है और ठेठ भारतीय ढंग का हल्का ध्वन्य भी है जिनकी तुलना घेन जानसन या मोलिप्रे से करने में भी डर नहीं। उनकी भाषा तो संस्कृत भाषा का निचोड़ हुआ अद्भुत है।” इनमें बढ़िया स्वाभाविक और सरल बोल चाल की संस्कृत का नमूना है जिसमें सामूली बातों और अश्लील गप्पाष्टक का स्वयंपूर्ण घर्णन है। ॥

मुझे बढ़िया भाषा के प्रति सदा ही गहरा आकर्षण रहा है, अतः टामस के इस उद्देश्य ने मुझे इस ग्रन्थ के लिये व्याकुल बना दिया। कुछ समय बाद अपने मित्र श्री शिवरामगुन (इण्डियन म्यूजियम फलकते के तत्कालीन अध्यक्ष) से उस दुष्प्राप्य पुस्तक की एक प्रति मुझे प्राप्त हो गई। तभी कार्यवश मुझे यहई जाना पड़ा और वहाँ अपने मित्र श्री मोतीचन्द्रजी से मैंने इस घटना का उल्लेख किया। ये इससे इतने प्रभावित हुए कि जब दूसरी बार मैं घूम्नई गया तो उन्होंने चतुर्भांगी का अपना किया हुआ हिन्दी अनुवाद मेरे सामने रखते हुए मुझे आश्चर्य में डाल दिया। उस समय तक मैंने स्वयं यह ग्रन्थ पढ़ा न था, पर अब मोती चन्द्र जी के अनुरोध से यह आवश्यक हो गया कि उस अनुवाद को मूल ग्रन्थ से मिला कर ठीक कर लिया जाय। इसी यात्रा में पहली बार यह कार्य

“It will, I think, be admitted that these compositions, in spite of the unedifying character of their general subject and even in spite of occasional vulgarities, have a real literary quality. They display a natural humour and a polite, intensely Indian, irony which need not fear comparison with that of a Ben Jonson or a Moliere. The language is the veritable umbra of Sanskrit speech.” (Centenary Supplement of J R A S., 1924, p. 135).

निपटाय गया। पर चतुर्भाणी ऐसा ग्रन्थ नहीं था जो इतनी सरलता से अपने अर्थ प्रकट कर देता। उसके वाक्य सरल होते हुए भी उनको व्यञ्जना गूढ़ है। अतएव हम दोनों ने उसकी चार आवृत्तिकरके दुरुह अर्थ तक पहुँचने का प्रयत्न किया और कुछ सफलता भी मिली। इसमें पर्याप्त समय लग गया। अन्तिम आवृत्ति के चार जय ग्रन्थ छपने के लिये दिया जाने लगा तब भी मेरे मन को पूरा सन्तोष नहीं था और अर्थों की तह में प्रविष्ट होने के लिये एक और प्रयत्न मुझे आवश्यक प्रतीत हुआ। इस बार के प्रयत्न से कुछ बर्बा हुई गुंथियाँ सुलझी, जैसे मेखला के लिये 'कार्करययोग्यारणिः' विशेषण का अर्थ (धूर्तवितसंवाद १६-आ) और दो प्राकृत अंशों के अर्थ (पादतादितक, श्लो० ६२, और ६७। ७-११)। किन्तु ज्ञात होता है कि इन भागों की व्यञ्जनापूर्ण संस्कृत भाषा ने अब भी अपने चोपे अर्थों का कुछ अंश छिपा रखा है। गुप्त युग की विदग्ध धूर्त गोष्ठियों में बोल-चाल की सुटीली संस्कृत का नमूना इन भागों में है। जब मैं वितशब्दावली के लिये (परिशिष्ट ३) शब्द सूची बनाने लगा तो मेरा ध्यान फिर कई शब्दों पर गया जिनका पूरा अर्थ पहले समझ में नहीं आया था, जैसे तथागत (पा ६५-इ और ६५-२), नृग (पा ६५-इ) पुरुष प्रकृति (पा-३), राधिका (पा ६५-४), निस्संग (पा ६५-आ), भागवत (पा ६४।२), कृष्णामक (पा ६४।२), इत्यादि। इन नयी व्यञ्जनाओं को यथासम्भव वित शब्दावली के अन्तर्गत सन्निविष्ट कर दिया गया है जो परिशिष्ट सं० ४ की सामान्य सूची के बाद बनाई गई, यद्यपि उससे पहले मुद्रित हुई है। पाठकों से अनुरोध है कि इस सूची को विशेष ध्यान से देखकर जो अर्थ मूल पुस्तक के अनुवाद में रह गए हों उन्हें कृपया सुधार लें। यह भी प्रार्थना है कि जो और नए अर्थ उनके ध्यान में आएँ उनकी सूचना मुझे दें जिससे इस विशिष्ट ग्रन्थ के सभी स्थल यथासम्भव स्पष्ट बन सकें। उदाहरण के लिये धूर्तवितसंवाद ६-३, ४ में नगरघटक शब्द का अर्थ और वाक्य की व्यञ्जना अभी तक स्पष्ट नहीं हुई। कोशों में भी यह शब्द नहीं मिला। चतुर्भाणी में अनेक ऐसे शब्द हैं जो उस समय की बोलचाल की भाषा से लिए गए होंगे और वर्तमान साहित्यिक कोशों में नहीं हैं। अब इनका समावेश भविष्य के बृहत्संस्कृत कोश में हो जाना चाहिए। आशा है वितशब्दावली (परिशिष्ट ३) और सामान्यशब्द सूची (परिशिष्ट ४) इस विषय में सहायक होंगी। चतुर्भाणी की भाषा में ओज भरी हुई अनेक लोकोक्तियाँ भी हैं जिन्हें परिशिष्ट २ में अलग मुद्रित कर दिया गया है। संस्कृत साहित्य का लोकोक्ति कोश अभी तक नहीं बना। आशा है कोई विश्व भाषाप्रेमी इस कार्य को कभी पूरा करेंगे।

चतुर्भाणी के हिन्दी अनुवाद की भाषा आरम्भ से ही मोतीचन्द्रजी ने विशेष प्रकार की शैली की चुनी थी। यह बोलचाल की चटपटी हिन्दी है। इसके कितने ही शब्द काशी के वेश में प्रचलित हैं। श्री मोतीचन्द्रजी को बनारसी बोली का जो सहज परिचय है उसके आधार पर वे शब्द यहाँ प्रयुक्त किए जा सके हैं। नौचो, गिरदभमा, मरदभडकनो, (स० पुरुषद्वेषिणी) आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। बनारस गुप्तयुग में संस्कृति का विशिष्ट केन्द्र था। यहाँ की बोलचाल में अनेक शब्द पुरानी परम्परा के बचे रह गए हैं। उन्हें छान कर समृद्धित कर लेने का कार्य समय रहते पूरा कर लेना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक नई पीढ़ी में बोली की शब्दावली जीजती जा रही है।

श्री रामकृष्ण कवि ने जो संस्करण मूलमात्र छापा था, वह भय संप्रदाय दुष्प्राप्य है। अतएव आरम्भ में ही मेरी इच्छा थी कि इस विशिष्ट ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद और टिप्पणी आदि के साथ सुलभ बनाया जाय। यद्यपि इन चारों भागों का त्रिपय गुप्तकालीन वेश याष्ट्रारहाट का भौत्ता देया वर्णन है जिसका नैतिक धरातल विषयानुवृत्त हो भवत है, पर वेश सस्कृति का जो सर्वांगपूर्ण चित्र इनमें प्रस्तुत किया गया है और भाषा का जैसा अद्भुत नमूना इनमें है, उनकी दृष्टि से ये सस्कृत साहित्य के लिये अनमोल उपलब्धियाँ हैं। गुप्त युग की स्वर्ण सस्कृति का एक अर्थात् उज्ज्वल पक्ष कला साहित्य-धर्म के रूप में था। पर उस समय भी हाटवाम के मानव इस लोक में थे जिनके जीवन की निर्याताओं ने मृष्टकटिक और दशकुमारचरित जैसे ग्रन्थों को ऊपर उठाया। चतुर्भांगी को उसी त्रिद संस्कृति के मन्थन की दृष्टि से कहना चाहिए। कालिदास और बाण ने वारविलासिनी जीवन का उद्दाम वर्णन किया है। वे महाकाल शिव के मन्दिर में मेघला की भुक्तार के साथ सान्ध्य नृत्य करती और राजभासाओं के विशेष उल्हसों में नृपुणों की उमक के साथ भाग लेती थीं। उनके हाट में शक हूण अपरान्त मालव आदि देशों के रईसजादे और उच्च सरकारों के कर्मचारी चकर लगाते थे। 'गौधरय' जीवन का वह एक विशेष पक्ष था जिसके सम्बन्ध की प्रभूत सामग्री सस्कृत साहित्य से एकत्र की जा सकती है। उसका कुट्ट नमूना श्री मोतीचन्द्र जी ने अपनी भूमिका में दिया है।

चतुर्भांगी के पद्मप्राभृतक और पादतादितक दो भागों की पृष्ठभूमि उज्जयिनी एव धूर्त-विटसाद तथा उभयाभिमारिका इन दो की पाटलिपुत्र है। इनके वर्णनों में वस्त्र, वेष, शिष्य स्थापत्य, चित्र, पानपान, नृत्य, संगीत, कला, शिष्टाचार आदि के सम्बन्ध की बहुमूल्य रोचक सामग्री पाई जाती है। हिन्दी अनुवाद के नीचे विस्तृत शब्द टिप्पणियाँ दी गई हैं। उनमें इन सभी शब्दों और संस्थाओं पर गुप्तकालीन सांस्कृतिक सामग्रियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर प्रकाश डाला गया है। हमने अपने 'हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन' और 'कादम्बरी-एक सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक ग्रन्थों में इसी शैली का अनुसरण किया है। उनमें भी उत्तर गुप्तकालीन सस्कृति का ही वर्णन है। चतुर्भांगी पचम शती की रचना है, अर्थात् बाण से लगभग दो सौ वर्ष पहले की ठीक गुप्त युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इन भागों में है। उदाहरण के लिये, वेश में गणिकाओं के महाप्रासादों का वर्णन 'स्थापत्य' की दृष्टि से बहुत ही भव्य है (पादतादितक ३३।८-१८) जिसमें लगभग पचास पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसे ही वेश के मनोविनोद (पाद० ३६-३६) और शृङ्गार चैष्टाओं (पाद० १००।१-२०) के उज्ज्वल चित्र उस युग की सटीक शब्दावली में उतारे गए हैं। इनमें किसी बाण जैसे चित्रगाही साहित्यिक की लेखना का चमत्कार छिपा हुआ है।

श्री रामकृष्ण कवि का संस्करण केवल एक प्रति पर आश्रित था, जैसा आरम्भ में कहा गया है। पर १९२२ के बाद खोज करने पर इन भागों की और भी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं। मेरे मित्र श्री डा. श्री० राधवन्, सस्कृत विभागाध्यक्ष, मदरास विश्वविद्यालय ने अपने पत्र दिनांक २४ मई १९५१ में उन सबकी एक सूची भेजी है जो अन्त में परिशिष्ट रूप में मुद्रित की जा रहा है। इसी बीच अक्सटर्डम (हालैंड) के श्री जे० आर० ए० लोमान का ध्यान चतुर्भांगी की ओर गया। उन्होंने भारतवर्ष आकर इसकी मूल प्रतियों की परीक्षा

की और पद्मप्राभृतक नामक प्रथम भाग के मूल संशोधित पाठ का एक संस्करण भी १९५६ में प्रकाशित किया। उसमें पादटिप्पणी में पाठान्तर और अन्त में अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। उन दोनों से हमने इस संस्करण में लाभ उठाया है, पर यह कहना पड़ेगा कि यद्यपि श्री लोमान ने मोतीचन्द्रजी के सम्पर्क में आकर कई अर्थों की खोज की, पर फिर भी उनके अनुवाद में कई स्थल अशुद्ध रह गए हैं। हमारी भी इच्छा थी कि चतुर्भांगी के शेष तीन भागों का संशोधित संस्करण तैयार किया जाय, पर खेद है कई कारणों से ऐसा न हो सका। श्री रामस ने अपने लेख में स्वीकार किया था कि श्री रामकृष्ण कवि द्वारा मुद्रित पाठ प्रायः करके इन ग्रन्थों को शुद्ध रूप में ही प्रस्तुत करता है। हमारी भी आशंका से यही धारणा रही है कि चतुर्भांगी के शुद्ध अर्थों की समस्या पाठ संशोधन पर उतनी निर्भर नहीं करती जितनी शब्दों और वाक्यों की यथार्थ व्याख्या की समस्या लेने में है। फिर भी वैज्ञानिक रीति से पाठ संशोधन के महत्त्व को हम पूरी तरह स्वीकार करते हुए आशा करते हैं कि भविष्य के किसी संस्करण में यह कर्मा पूरी की जा सकेगी। इस संस्करण में इतना अवरय हुआ है कि जहाँ पाठविषयक सन्देह उत्पन्न हुआ वहाँ हमने श्री राघवन् जी से पत्र द्वारा मद्रास विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित प्रतियों से मूल पाठ जानने का प्रयत्न किया। ऐसे स्थलों का उल्लेख टिप्पणियों में चथास्थान कर दिया गया है। अर्थ टप्प्या दो-एक स्थानों पर मुद्रित पाठ में संशोधन भी हमें करना पड़ा, पर सर्वत्र उनका उल्लेख कर दिया गया है जिससे पाठकों को स्वयं भी विचार करने का अवसर मिल सके। पाद० १३४-ई० में रामकृष्ण कवि कृत पाठ 'गणैपु' था। डा० राघवन् के अनुसार हस्तलिखित प्रति का पाठ भी यही है। फिर भी हम उसे स्वीकार न कर सके और उस प्रसंग में काशि, कोसल, निपाद नगर के साथ भणैपु पाठ ही हमें युक्त जान पड़ा। भणै जनपद इसी भौगोलिक क्षेत्र में पड़ता था।

अन्त में हम श्री राघवन् जी के प्रति उनकी बहुमूल्य सहायता के लिये आभार प्रकाशित करते हैं। हम श्री लोमान जी के भी अनुगृहीत हैं जिन्होंने पद्मप्राभृतक के अपने लिये तैयार किए हुए संशोधित पाठ की एक टंकित प्रति और पुनः पुस्तक की मुद्रित प्रति श्री मोतीचन्द्र द्वारा हमें सुलभ की। वे धनी व्यापारी हैं और संस्कृत विद्या में उनकी सहज रुचि है जो इस सुन्दर रूप में प्रकट हुई।

श्री डा० अनन्तसदाशिव अहिर ने प्राचीन पाटलिपुत्र के कुम्हारार स्थान की खुदाई में प्राप्त एक मृण्मूर्ति का फोटो चित्र भेजकर हमें अनुगृहीत किया। मोतीचन्द्र जी ने उसकी उद्घाटनकच आकृति के कारण उसकी पहचान विट से की है जो ठीक जान पड़ती है। क्षेमेन्द्र ने विट की साजसज्जा के इस लक्षण का स्पष्ट उल्लेख किया है—

उद्घाटनकचः किञ्चिच्चक्रमश्रुवेष्टने ।

दिने देवगृहार्थीशवदन वीक्षते विटः ॥ (क्षेमेन्द्रकृत देशोपदेश, ५।१६)

अर्थात् जिसकी ठोड़ी, भूँछ और सिर के बाल उठे हुए हों जो दिन में मन्दिरों के राजकीय अधिकारी का मुँह जोड़ता रहे, वह विट है। इसी बीच श्री पं० प्रजमोहन व्यास, प्रयाग की काशीराजी से गुप्तकाल का मिट्टी का एक सौँचा प्राप्त हुआ। उसकी जड़ ठार

बनाई गई तो यह भी उद्विग्नकच लक्षण वाली चित्र की मूर्ति हो निकली। यह सौचा इस समय भारत कलाभवन, काशी विश्वविद्यालय में सुरक्षित है। पाटलिपुत्र के चित्र की मूर्ति भी गुप्तसुर की ही है और लगभग उसी समय की है जब पाँचवीं शती में उभयाभितारिका भाग की रचना हुई होगी जिसमें 'भगवान् अप्रतिहत शासन कुसुमपुर पुरन्दर' के भवन में पुरन्दर विजय नामक संगीतक के अभिनीत होने का उल्लेख है। निश्चय ही यह उल्लेख महेन्द्रादित्य कुमारगुप्त के लिये है जिनका एक चिरुद 'अप्रतिघ' भी था। इस मूर्ति का रेखाचित्र जो यहाँ मुद्रित किया गया है, हमारे मित्र प्रसिद्ध चित्राचार्य श्री जगन्नाथ जी अहिवासी ने बनाया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

हमें श्री नाथूरामजी प्रेमी, अध्यक्ष, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, यम्यई, को धन्यवाद देते हुए प्रसन्नता है जिन्होंने इस प्राचीन ग्रन्थ को मूल पाठ, अनुवाद, टिप्पणी और शब्द सूचियों के साथ प्रकाशित करना स्वीकार किया।

अन्त में हम सम्मति मुद्रणालय, ज्ञानपीठ, वाराणसी के भी उपकृत हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ का सुरक्षित मुद्रण सम्पन्न किया है।

काशी विश्वविद्यालय
१८—१०—५६
कार्तिक कृष्ण २, संवत् २०१६

}

—वासुदेवशरण अग्रवाल

परिशिष्ट-६

सहायक ग्रन्थ और लेख-सूची

फीथ, ए० जी०, दी सस्कृत ड्रामा, (आक्म पोर्ट १९२४), पृ० २६३-६४

टामस, एफ० डब्लू०, फोर सस्कृत प्लेज, जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, सेप्तीनरी सिलीमेन्ट, अक्टूबर १९२४, पृ० १२३-३६

टामस, एफ० डब्लू०, दी पादताडितकम् आफ श्यामिलक, जे० आर० ए० एस०, १९२४, पृ० २६४ आदि

डे, एस० जे०, ए नोट ऑन दी सस्कृत मोनोलॉग जे (भाण्ड), निद स्पेशल रेप्रेम टु दी चतुर्भांगी, जे० आर० ए० एस०, १९२६, पृ० ६३६०; हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० २४१ आदि ।

दशरथ शर्मा, दी डेट आफ श्यामिलकस पादताडितकः अगउट ५०० ए० डी० [श्यामिलक कृत पादताडितक का समय—जगमग ५०० ई०], जर्नल आफ दी गगानाथ भ्द रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग १४, अंक १-४, नरम्बर १९५६-अगस्त १९५७, पृ० १७-२२ धनञ्जय कृत दशरुतक, भाग ३।४९-५१

बरा, टी० (T Burrow), दी डेट आफ श्यामिलकस पादताडितक (श्यामिलक

कृत पादताडितक का समय), जे० आर० ए० एस०, १९४६, भाग १-२, पृ० ४६-५३

भरत मुनिहृत नाट्यशास्त्र, भाग २०। १००-११

माकड, डोल्डराय, दइप्स ऑफ सस्कृत ड्रामा, भाण्ड पृ० ७०-७२,

रामकृष्ण कवि एव एम० के० रामनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित, चतुर्भांगी; प्रकाशक डी० बी० शर्मा एंड कम्पण, बाकरगञ्ज, पटना; १९२२ । इस संस्करण में चारों भागों के प्रयाक अलग अलग हैं—(१) शूद्रक विरचित पद्मप्राभृतम् पृ० १-२८; (२) ईश्वरदत्त प्रणीतः धूर्तनिन्दसवादः पृ० १-३१; (३) वररुचिहृता उभयामितारिका पृ० १-१५; (४) श्यामिलकविरचितम् पादताडितकम्, पृ० १-४८ ।

लोमान, जे० आर० ए० (Johannes Reinoud Abraham Loman), दी पद्म-प्राभृतकम्, शूद्रककृत प्राचीन भाण्ड, सशोधित मूल्याड, अंग्रेजी अनुवाद, टिप्पणी, भूमिका सहित. अगस्तम, १९५६

सेन, सुकुमार, दी उभयामितारिका आफ वररुचि, कल्कत्ता रिव्यू, १९२६, पृ० १२७

शुद्धिपत्र

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६-७	सन्तप्यन्ते	सन्तप्यते	११०-१	कुलवध्वा	कुलवध्वां
६-१२	बाहूलता कोमलौ	बाहू लताकोमलौ	१११-६	प्रागल्भ्यं	प्रागल्भ्य
१३-८	(४)	(८)	११५-१	तात्त्वन्तामारुतेन	तात्त्वन्तमारुतेन
२१-२	प्रच्छन्न	प्रच्छन्न	१२१-२२	पट्पदार्थ	पट्पदार्थ न
२६-२	शाक्यभिक्षुकी	शाक्यभिक्षुकी		माननेवालों	माननेवालों
२९-५	नायतिकम्	नायतिकम्	१३८-१०	नखलोम	नखलोम
३१-८	सङ्कुचित	सङ्कुचित	१५३-२२	तालीबआकर	हाथ पर हाथ
३२-२	शाक्यभिक्षुः	शाक्यभिक्षुः			पटक कर
३२-३	असद्भिक्षुभिः	असद्भिक्षुभिः	१५४-७	शब्दकामः	शब्दकामः
४५-१	शाक्यभिक्षु	शाक्यभिक्षु	१५५-८	वाक्कुलेण	वाक्कुलेण
४०-७	वेशवास	वेशवास	१५८-४	नच्छत्वा	तच्छत्वा
४१-१	गयात्तिलकआढो	गयात्तिलक	१६२-७	कवळादपि	कवळादपि
	पहार०	आढोपहार०	१६४-८	वूरादेवमाम्	वूरादेव माम्
४२-७	अभिमापिष्ये	अभिमापिष्ये	१६४-१४	उत्तकी हुई	घृणित हुई
४४-२५	कौशिक	कौशिक	१६८-१	बिन्दु	(४) किन्तु
५७-७	पाटलीपुत्र	पाटलिपुत्र	१६६-१४	लिप्सति	नहि लिप्सति
५७-१०	सत्वरं	सत्वरं	१६६-२	भवगतः	भवगतः
५६-११	क्रिष्टाकञ्जलक	क्रिष्टाकञ्जलक	२०४-६	प्रियद्ववीधिका	प्रियद्ववीधिका
६६-२	प्रवृत्तत	प्रवृत्तत	२०७-१५	किमेतन्ना-	किमेतन्ना-
६८-८	वेशवाटे	वेशवाटे	२१४-७	पुस्तकाल	पुस्तकाल
७०-४	विद्याविहीना	विद्याविनीता	२२६-५	मयाऽपिमयूर-	मयाऽपि मयूर-
७६-७	पङ्क्तयो निभूत	पङ्क्तयोऽनिभूत		सेनाभाः	सेनाभाः
७८-२	घनाभरण	घननाभरण	२३१-८	पतित	पतति
७६-६	अभिनिवेशः	अभिनिवेशः	२४४-५	चन्दनाद्रैर्	चन्दनाद्रैर्
८५-२२	प्रिया के द्वारा	प्रिय के द्वारा	२४५-२	वृकोद	वृकोदर
९२-७	वप्यकुमुभा	वप्यकुमुभा	२४५-४	प्रत्यक्षित	प्राप्यक्षित
१०४-१	निर्घृणशरीरस्य	निर्घृण शरीरस्य	१४५-६	भवतः	भवन्तः
१०८-१३	यस्यामनिभूतम्	यस्यानिभूतम्	२४७-१४	भूयोऽपि	भूयोऽपि
१०६-६	अभिपततः	अभिपतितः			

भूमिका

संस्कृत साहित्य में प्राचीन नाटक अपनी सुंदर भाषा, चरित्रचित्रण तथा उदात्त शृङ्गारिक भावों के लिए प्रसिद्ध हैं, पर जहाँ तक जन जीवन के प्रदर्शन का समय है संस्कृत नाटकों की सामग्री सीमित है। अधिकतर नाटक राजाओं की प्रेम कहानियाँ पर आधारित हैं और उनका भाव, वर्णन शैली और पात्र रुढ़िगत होते हैं। चित्र, निद्रूपक, चेत इत्यादि के चरित्रचित्रण में तत्कालीन लोकजीवन पर प्रकाश डाला जा सकता था, पर संस्कृत नाटकों में उनका चित्रण भी प्रायः रुढ़िगत हो गया। शूद्रक का मृच्छकटिक एक ऐसा नाटक है जिसमें हम तत्कालीन लोकजीवन की कुछ झलक पा सकते हैं। मृच्छकटिक में चित्र, चेत, जुआड़ी, चोर, चारवनिया, तत्कालीन अनागत इत्यादि का बड़ा ही जीता जागता चित्र खींचा गया है। उसने जीते जागते पात्रों को देख कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संसार में किसी भी उन्नत समाज की तरह भारतीय समाज में भी वे ही बुराईयाँ थीं जिनका नाम सुनते ही हम आज नाक भाँ सिकोड़ने लगते हैं।

दोग न सबसे बड़े शत्रु परिहास, आवाजाऊश्री और तर्क हैं। तर्क में कारण देकर बहस की आवश्यकता पड़ती है पर परिहास तो बुद्धि के तीक्ष्णता की ही देन है। तर्क की मार का तो जवान हा सकता है पर हँसी की मार तो सीधी बैठती है और चतुर लाग इसका घुग नहीं मानते। अमरगवश संस्कृत में नोक भोक की दिल्लगियाँ और पत्रतियाँ का साहित्य सीमित है। इसमें सदेह नहीं कि इसा की प्राथमिक सदियों में अथवा उसके पहले भी ऐसे लेखक रहे होंगे जिन्होंने अपने समय के समाज का चित्र खींचते हुए सामाजिक झुर्रतियों और दोंगों की हँसी उड़ाई होगी पर कालान्तर में ऐसा साहित्य हलनेपन न दप से बच न सका। फिर भी संस्कृत साहित्य में ऐसे ग्रंथ उच गए हैं जिनसे समाज की दूषित अवस्था पर पत्रतियाँ कसने वाला का पता चलता है। दशकुमारचरित के लेखक दंडी तो इसमें सिद्धहस्त थे। देवता, लालची, मुरगे लड़ानेवाले ब्राह्मण, दोंगी साधु, बने हुए दिगम्बर और बौद्ध भिक्षु, चार, चेश्याएँ, जुआड़ी इत्यादि का ही दंडी की पैनी आँखा से नहीं बच पाया है। कथा साहित्यकार में भी बहुत सी ऐसी कहानियाँ हैं जिनसे हँसी के माध्यम से तत्कालीन समाज व्यवस्था, पात्रण्डियों, धूर्तों और बेवकूफों की हँसी उड़ाई गई है। क्षेमाद्र (११ वीं सदी) तो इस तरह के साहित्य के आचार्य ही हैं। समयमातृना में उन्होंने चेश्याआ और पेश का ब्रह्म ही जीवत लाका खींचकर उनके पर में पँसने वालों की खिल्ली उड़ाई है। दर्पदलन में कुल, धन, मान, विद्या, रूप, शौर्य, दान, और तप के दागों का मजाक उड़ाया गया है और देवताओं तक को नहीं छोड़ा गया है। कला निलास में टभी, लालची, बनिया, चेटा, चेश्याआ, ज्योतिषियाँ इत्यादि की हँसी उड़ाई गई है। कला निलास में जो कहानियाँ दी गई हैं वे तो हँसा से मरी पड़ी हैं। देशापदेश में कश्मिर, चित्र, कुत्नी, गुरु इत्यादि के टभों की हँसी है तथा नर्ममाला में कायस्थों की खबर ली गई

है। ज़ेमेन्द्र का वार सीधा होता है और कमी कमी तो वे अपनी पत्रियों में अश्लीलता नहीं बचा पाते।

हरिभद्र (८ वीं सदी का मध्य) ने धूर्ताख्यान^१ में भारतीय हास्य का एक नया रूप मिलता है। इसमें पुराणों की कथाओं को लेकर मनगढ़त कथानियों से उनकी हँसी उधड़ गई है। इन कहानियों में बातचीत, नोक भोंक और गापों का कुछ ऐसा सिलसिला है कि वह रसमय पढ़ने वालों को तभीयत खींच लेता है। धर्मविभेद से हरिभद्र केवल ब्राह्मणों पर ही कुपित हो ऐसी बात नहीं है। अपने समोच्चकरण में उन्होंने धूर्ताख्यान के तीरेपन से ही जैन भिक्षुओं के अधार्मिक आचारों की आलोचना की है। धूर्ताख्यान में मूलदेव का उल्लेख ऐतिहासिक है। देवदत्ता के प्रेमी इस पात्र का उल्लेख भारतीय कथा साहित्य में अनेक बार हुआ है। ऐसा पता चलता है कि मूलदेव के कणामुत, मूलभद्र और कलादुर नाम भी थे। चौर्यशास्त्र पर इसने एक ग्रन्थ का भी उल्लेख है। कादुरी, अवतिसुन्दरी कथा, तथा हरिभद्र की दशवैकालिक युद्ध की टीका में इसका उल्लेख है। जैसा हम आगे चलकर देखेंगे पद्मप्रभुतन्त्र का नायक भी देवदत्ता का प्रेमी कणामुत मूलदेव है।

संस्कृत प्रहसनों और भाणों में चोट करने, हँसी उड़ाने तथा तरनालीन समाज की कामुक और दागी वृत्तियों के प्रदर्शन का अच्छा सुयोग मिलता है। पर सिवाय चतुर्भाणी के जो भी प्रहसन और भाण बच गए हैं उनमें रुचिगत वर्णन, कामुसता, गाली गलौज और अश्लीलता के ऊपर नई बात कम मिलती है।

डा० दे ने^२ भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर भाण के निम्नलिखित लक्षण निश्चित किए हैं—(१) भाण में ऐसी स्थितियों का वर्णन होता है जिनमें अपने अधवा दूसरे ने साहित्यिक कार्यों का पता चलता हो, (२) उसमें केवल एक व्यक्ति होता है और दो सधियों, (३) भाण का नायक निरुपेक्ष होता है। (४) इसमें मुहजबानी सनेत आते हैं। (५) भाण आकाशभाषित सवाल जवाबों से आगे बढ़ता है। (६) इसमें हास्य का तो प्रयोग होता है पर शृङ्गार की द्योतक वैशिकीवृत्ति इसमें नहीं आती। भाण में हास्य के प्रयोग से स्टेन कोनो का यह विचार है कि भाण जनसाधारण में प्रचलित नकला से निकला होगा, पर डा० दे की राय है कि भाणों में प्राचीन नकलों का कोई अंश नहीं रच गया है। भाण में विद ने आते ही परिहास और शृङ्गार की कल्पना हो जाती है, पर यह उल्लेखनीय बात है कि शृङ्गारप्रधान नाटक की विशेषता वैशिकीवृत्ति की भरत उसमें नहीं आने देते और न वे यही बताते हैं कि भाणों में स्निग्धता का प्रयोग होना चाहिए। दसवीं सदी के अन्त में धनजय ने दशरूपक में भाण में भारतावृत्ति तथा वीर और शृङ्गार रस के प्रयोग का आदेश दिया है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भाणों में शृङ्गार रस तो आता है पर वीर रस का कहीं पता नहीं चलता। यह एक विचित्र बात है कि भरत अधिकांश धनजय भाण में हास्य का कहीं उल्लेख नहीं करते। अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका में भाण को प्रहसन माना है और उनके अनुसार उसमें कण्य, हास्य और अद्भुत रस आने चाहिए,

१. धूर्ताख्यान, डा० ए. एन. उपपाध्ये द्वारा संपादित, यमवर्द्ध १९४४। २. एन. दे, जे. भार. ए. एम. १९२६, पृ० ६३-६०।

शृङ्गार का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। दशरूपक के अनुसार भाण में भारतीयवृत्ति का उल्लेख आने से उसका प्रहसन से सम्बन्ध होना चाहिए क्योंकि भारतीयवृत्ति के चार अंगों में एक अंग प्रहसन भी था। इस वृत्ति का प्रयोग केवल पुरुषों की बातचीत में ही होता था और इसकी भाषा संस्कृत होती थी। निरुपनाथ के अनुसार भाण में भारतीयवृत्ति के सिवा वैशिकीवृत्ति का भी प्रयोग होता था। इसके यह माने हुए कि भाण शृङ्गाररस के अनुकूल था और इसमें हास्य भी आ सकता था। समग्र है कि वैशिकीवृत्ति का प्रयोग निरुपनाथ ने युग के अनुरूप ही।

चतुर्भाषी ने सिवा निम्नलिखित भाषाओं का पता चलता है :—(१) वामन भट्ट का शृङ्गारभूषण, (२) काशीपति कविराज का मुकुन्दानन्द, (३) कान्ची के प्रह्लादाचार्य का वसन्त तिलक, (४) रामचन्द्र दीक्षित का शृङ्गार तिलक, (५) नल्ला कवि का शृङ्गार-संस्थ, (६) केरल के सुरराज का रम सदन, (७) महिषमगल कवि का महिषमगल, (८) रगाचारी का पंचभाण विजय, (९) श्री निशासाचार्य का रसिक रजत, (१०) रामचर्मन की शृङ्गारमुधा (११) तथा कालिंजर के वत्सराज का कर्पूरचरित। इन भाषाओं में कर्पूरचरित और मुकुन्दानन्द को छोड़कर बाकी के सत्र भाषण दक्षिण भारत के हैं। इनमें कर्पूरचरित तेरहवीं सदी के आरम्भ का है और शृङ्गारभूषण चौदहवीं सदी के अन्त का। जाकी सत्र भाषण सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के हैं। इन भाषाओं में पिट का नाम तिलासशेखर, अनग शेखर, भुजगशेखर और शृङ्गारशेखर आता है। प्रस्तावना में सूत्रधार या पारिवाश्वक्य अथवा सूत्रधार और नटी आते हैं। प्रस्तावना में बाद विट का प्रेमविह्वल रूप में प्रवेश होता है। इससे बाद प्रातःकाल का लग्ना चौड़ा वर्णन आता है और विट प्रतलाता है कि इतने सकेरे वह अपनी प्यासी से क्यों मिल गया। उसकी प्रेयसी या तो गणिका होती है या निवाहिता पुरुचली। कभी वह अपने मित्र के पास उसकी रक्षिता की रंगमाली के लिए जाता है, तो कभी वह वेशवाट में घूमता हुआ दिखलाई देता है, जहाँ वह उसका या तो लग्ना चौड़ा वर्णन करता है अथवा अपने मित्रों से उनावग बात करता दिखलाई देता है। वह अपने दग से उदमाशों, गणिकाओं और नागरिका का वर्णन करता है, तथा मेढा की लड़ाई, मुर्गा की लड़ाई, मदारिया का खेल, कुश्ती, लूट, जादूगरी, नट का खेल, कुदुक लड़ाई, आंग्र मिचौनी, अजर करटक, मणिगुप्तक, सुग्मासुग्म दर्शन, चतुरंग विहार, गुरुपति बुग्म कदुक इत्यादि का वर्णन करता है। वह कामुका और गणिकाओं की बातें करने लगता है। अन्तर से वह कलत्र पात्रिका का जिसमें वेश्याओं की महीनेगारी रुपये जैसे, फूलमाला, कस्तूरी तथा कपूर से सुगन्धित पान देने की बात होती है वर्णन करता है। वह वीणा सुनता है और कभी कभी नृत्यर में घुसकर नर्तिका से मजाक करता है। अन्त में वह अपनी प्रेयसी से मिल जाता है और चन्द्रादय के साथ भाण समाप्त होता है। इन भाषाओं का स्थान या तो कोंची अथवा कोई स्थानीय स्थान जैसे कोलाहलपुर होता है। भाण किसी स्थानीय देवता के उत्सव के समय पर खेला जाता था।^१

भाषाओं में कहीं कहीं पौराणिक और ज्योतिषिया पर पञ्चमियाँ कसी गई हैं, भागवत का मजाक उड़ाया गया है और गुर्जर लोग लपेटे गए हैं। पर उपर्युक्त कथन से यह न

समझ लेना चाहिए कि भाषा में हास्य-रस की ही प्रधानता होती है। उनमें तो शृङ्गार और अश्लीलता ही अधिक होती है। इन भाषा के रुढ़िगत विवरणों में इतनी समानता होती है कि पढ़ने वालों का जी घबरा जाता है। शायद इसीलिए जनता से भाषाओं का चलन उठ गया।

लेकिन चतुर्भाषी के पढ़ते ही यह बात साफ हो जाती है कि उनका उद्देश्य तत्कालीन समाज और उसके बड़े कहे जाने वालों की कामुकता का प्रदर्शन करते हुए उन पर पत्रतियों कसना और उनका मजाक उड़ाना था। चतुर्भाषी के विट जीते-जागते समाज के एक श्रंग है जिनका ध्येय हँसना हँसाना ही है। इन भाषाओं में कहीं-कहीं अश्लीलता अवश्य आ गई है लेकिन विटों और आकाशभाषित पात्रों के संवाद की शैली इतनी मनोहर और चुटीली है कि जिसकी बराबरी संस्कृत-साहित्य में नहीं हो सकती।

चतुर्भाषी के भाषाओं की एक विशेषता यह है कि इनमें स्थापना बहुत छोटी होती है। पादताडितकम् के सिया दूसरे भाषाओं में न तो लेखक का नाम आता है और न भाष्य प्रस्तुत करने का समय। सिवाय धूर्तविट-संवाद के इन भाषाओं में विट स्वयं नायक न होकर अपने मित्रों का उनकी प्रेयसियों के पास संदेशवाहक है। पद्मप्राभृतकम् में मूलदेव का मित्र शश ही विट है; धूर्तविट संवाद के विट का नाम देविलक है और उभयाभिसारिका के विट का नाम वैशिकाचल। पादताडितकम् के विट का नाम नहीं मिलता। पर चारों भाषाओं में उनके असली नाम छोड़ कर विट शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। बाद के भाषाओं की तरह चतुर्भाषी के भाषाओं का आरम्भ प्रातःकाल के वर्णन से न होकर वसंत (पद्मप्राभृतकम् और उभयाभिसारिका में) और वर्षा (धूर्तविट-संवाद में) के वर्णन से होता है। पादताडितकम् में ऐसी किसी श्रुति का वर्णन नहीं आता। पद्मप्राभृतकम् का स्थान उज्जयिनी, धूर्तविट और उभयाभिसारिका का पाटलिपुत्र तथा पादताडितकम् का स्थान सार्वभौम नगर है जिसकी पहचान उज्जयिनी से की जा सकती है।

श्री एम० रायकृष्ण कवि और श्री एस० के० रामनाथ शास्त्री को चतुर्भाषी की एक प्रति त्रिचूर के श्रीनारायण नायदरीपाद के यहाँ से मिली जिसे उन्होंने बड़े परिश्रम से प्रकाशित किया। अपनी भूमिका का आरम्भ सम्पादकद्वय ने पद्मप्राभृतकम् के अन्त में आने वाले श्लोक से किया है जिसमें वररुचि, ईश्वरदत्त, श्यामिलक और शूद्रक के भाषाओं की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उनके सामने कालिदास की क्या हस्ती थी। विद्वान् सम्पादकों का मत है कि उपर्युक्त भाषाओं के लेखकों का काल और स्थान भिन्न भिन्न था और इनका एक साथ गूँथा जाना भाषुक कल्पना मात्र है। पर जैसा हम आगे चलकर देखेंगे उपर्युक्त श्लोक में बहुत तथ्य है। भाषाओं की भाषा, भाव तथा अनेक ऐसे भीतरी प्रमाण हैं जिनके आधार पर चतुर्भाषी के भाषाओं का समय एक माने जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

१. चतुर्भाषी पृ० ५ श्री एम. रायकृष्ण कवि और श्री एस. के. रामनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित, त्रिचूर १९२२। २. वररुचिरिवरदत्तः श्यामिलकः शूद्रकभग्यारः। एते भाषान् यमयुः वा शक्तिः कालिदासस्य। ३. वहाँ पृ० १।

चतुर्भाणी के विद्वान सपादकों ने उभयाभिसारिक के लेखक वररुचि की पाणिनि का समकालीन तथा कथाभरण और चारुमती का लेखक माना है। अतिसुन्दरी-कथासार के अनुसार उनकी जन्म भूमि गोगवरी नदी के तीर थी। पद्मप्राभृतम् के लेखक शूद्रक को और मृच्छकटिक, वत्सराजचरित, बालचरित, अविमारक चारुदत्त और कामदत्ता प्रकरण के लेखक शूद्रक को वे एक मानते हैं। शूद्रक अध्वभृत्य स्वाति का सेवक था। अपने स्वामी से लड़ाई लड़कर उसे बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ीं पर अन्त में उसने स्वाति को हराकर उज्जैन की गद्दी पर अधिकार कर लिया। उसके साइसिक कार्यों का वर्णन रामिल और सोमिल की शूद्रक कथा, प्रिकान्तशूद्रक नाटक, पञ्चार्णव ने शूद्रक चरित में मिलता है। धूर्तविट का लेखक ईश्वरदत्त शायद मगध के निवासी थे। इनके बारे में विशेष पता नहीं चलता गौकि उनके भाण का उल्लेख भोजदेव ने शृङ्गारप्रकाश और हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में किया है। पादताडितम् के लेखक श्यामिलक शायद कश्मीर के थे। उनका उल्लेख अभिनवगुप्त (क० १००० ई०) और ज्योतिष (११ वीं सदी) करते हैं। सपादकों की राय में श्यामिलक का समय करीब ई० ८००-९०० के बीच में होना चाहिए।

डा० टामस चतुर्भाणी का समय श्री हर्ष (७ वीं सदी का मध्य) अथवा गुप्तयुग का उत्तर काल मानते हैं। भाणों की प्रचीनता सिद्ध करने के लिए डा० टामस बहुत से प्राचीन प्रचलित शब्दों और मुहावरों का प्रयोग जैसे डिंडी, घात्र (भलामानस), चाक्ष, चाक्रिक, शीपर, क्षणिक (जिसके पास बचाने के लिए क्षण मान है), प्रभ्याति (न्यायाधीश) पारितोषिक (इनाम या पस), गुप्त प्राशिनक (हाल चाल जानने के लिए दूत), शाडीर्ष (सख्ती), विसादान (घटना) बतलाया है। सरकारी अफसरा के नाम जैसे महामान, महाप्रतीहार, कुमारामात्य, अधिकरण, प्राड्विवाक, आवणिक (गवाह), काष्ठकमहत्तर इत्यादि भी प्राचीन हैं। कुछ मुहावरे जैसे कौरुकुची (मुँह बनाना) पुरोभाग, पौरोभाग्य, 'कर्दनेन न मा दौमिनुमर्हसि', उन्मुच्य बालभाव इत्यादि भाण की आख्यायिकाओं में भी मिलते हैं।

डा० कीथ ने चतुर्भाणी का समय ई० १००० के लगभग माना है, पर इस मत में कोई तथ्य नहीं, क्योंकि जैसा चतुर्भाणी के सम्पादकों ने बतलाया है उस समय तक तो उनकी काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी। डा० दे ने इन भाणों की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए और प्रमाण उपस्थित किए हैं। उनके अनुसार दून भाणों में इस्लाम का कहीं पता नहीं चलता। पादताडितम् में बाद के गुर्जरों की जगह बराबर लाट शब्द आया है। चतुर्भाणी की शब्दावली की समानता केवल मृच्छकटिक में विट इत्यादि की शब्दावली से की जा सकती है। लड़की के लिए वामु शब्द पादताडितम् और मृच्छकटिक दोनों में ही आया है। समोधन के लिए देवानाप्रिय आदर्शार्थक है। पाणिनि पर नाटिक (६।३।२२) में इसका उल्लेख है पर भट्टोजी दीक्षित इसे मूर्ख का सम्बोधन मानते हैं गाँकि ऐसा मानने का महाभाष्य

१ वही, १-५। २ जे आर ए एस सेंटनरी सल्लिमेट १६२४, पृ० १२३-१२६, जे. भाइ ए स १६२४, पृ० २६२-२६५। ३ जे आर ए स से स १६२४ पृ० १३६। ४ जे आर ए स १६२६, पृ० ८६-९०।

और काशिका में कोई प्रमाण नहीं है। पतञ्जलि ने (५।३।१४) भी इसका ग्रन्थ ही ग्रंथ में प्रयोग किया है। मम्मट ने सबसे पहले देवानाप्रिय का प्रयोग मूल के अर्थ में किया है। नाटक के अन्त में मृदंग का प्रयोग भी पञ्चप्राभृतकम् (पृ० १४) के प्राचीन होने का प्रमाण है।

श्री बरो ने तो अनेक ऐसे प्रमाण उपस्थित किए हैं जिनके आधार पर पादतादितकम् का समय निश्चित किया जा सकता है। भाण का स्थान सार्वभौम नगर है। बरो का विचार है कि सार्वभौम नरेश से यहाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय का मतद्भव है। भाण में शकों और एक जगह हूणों का भी उल्लेख है। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि चन्द्रगुप्त द्वारा मालव, मुराष्ट्र और पश्चिमी प्रदेशों के जीतने के बाद चण्डन द्वारा स्थापित उज्जैन के शक वंश का स्थापना हो गया। यह घटना चौथी सदी के अंतिम दशक में घटी मानी जाती है। भारतीय इतिहास में हूणों का प्रवेश पाचवी सदी के अन्त में हुआ और उनके भयकर धावों से स्कन्दगुप्त ने किसी तरह से देश की रक्षा की। इसलिए यह सम्भव है कि श्यामिलक जिसे शक और हूण दोनों का पता था शायद पाँचवीं सदी के आरम्भ में हुआ।

श्री बरो ने हमारा ध्यान महाप्रतीहार भद्राशुव की ओर भी आकर्षित किया है। पादतादितकम् में उसे उत्तर के कारुप मलद और बाहोकी का स्वामी कहा है (पृ० १६३)। लाटों में शायद बहुत दिनों तक रहने से वह य का ज और स का श उच्चारण करता था। अथवा, शक और मालव के राजाओं को जीतने के बाद अपनी माता और मा गंगा के पास आकर उसने मगध राजकुल की लक्ष्मी का प्रताप रक्षित। अथवा, शक की ललनाएँ ताल परिवेष्टित सिंधु के किनारे पेड़ा पर चढ़ी लताएँ पकड़ कर उसका वशीगीत गाती थीं।

उपसृक्त वर्णन ने कई बातों का पता चलता है। भद्राशुव उत्तर में बाहोकी और कारुप मलद (जिनसे निहार में शाहानाद और हजारीबाग जिलों का बोध होता है) का स्वामी था तथा उसने मगध राज के लिये, जिसने चन्द्रगुप्त द्वितीय होने में बहुत कम संदेह है, मालव, शक और अपभ्रत का जीता था। इस आधार पर पादतादितकम् की रचना या तो चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य के अन्त में हुई होगी या कुमारगुप्त के राज्य के आरम्भ में। शक कुमार जयतन (पृ० २३६) और जयनन्द (पृ० १६०) के उल्लेख से पता चलता है कि मालव-मुगुष्ट विजय न बाद भी कुछ शक सामन्त बच गए थे। सेनापति सेनक का पुत्र भट्टिमथमा, जिसने ऐसा लगता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय यात्रा में अपना राज्य

१ टी० बरो (T. Burrow), श्यामिलक कृत पादतादितक का समय (दी डेट आफ श्यामिलकस् पादतादितक), जे. भार ए एम्, १९४३, पृ० ४६-४७। २ श्री बरो पादतादितकम् के श्लोक १४ की तुलना स्कन्दगुप्त के भीतरी चात्रे लेख की निम्नलिखित पंक्तियों से करते हैं—

पितरि दिग्भुजे जिजुता यशस्वमी भुजबलविजितारियं प्रतिष्ठाप्य भूपः।

जितमिति परितोषाम् मातर माघनेश्री हतरिपुरिय हृणो देवर्षिमभ्युपेत ॥

३. बरो, वहा, पृ० ४६।

लो लिया था, जिस को इसलिए धन्यवाद देता है कि उसने सामने उपस्थित होकर माना उसके काफी दिन पहले के राज्याधिकारों की याद को ताजा कर दिया हो (पृ० १८३)। इससे पहले आनन्दपुर (गडनगर) के कुमार मलवर्मा (पृ० १६०) से हमारी मेंट होनी है। बहुत सम्भव है कि भट्टिमलवर्मा और मधुमा दोनों एक ही रहे हों।

हूणा का उल्लेख केवल एक बार आता है गोकि आर्यशास्त्र अथात् कोतल घाड़े या सनीले उल्लेख की तरह जने ठने (पृ० १८१) मधुमा के हूण वेप के उल्लेख से ऐसा पता चलता है कि श्यामिलक का इशाग उन हूणा से है जा पाँचवीं सदी के मध्य में भारत पर अपने धावा के पहले भारत की सीमा पर जमे हुए थे। ऐसी अवस्था पाँचवीं सदी तक आरम्भ में रही होगी।

अनेक भौगोलिक अवतरणा के आधार पर श्री गुरु का कहना है कि सार्वभौम नगर पश्चिम भारत में था। अन्ति, मालव, अफरात, मुद्रा के उल्लेख इसी बात की आशंका करते हैं। एक श्लोक में (पृ० १६३) सार्वभौम नगर में रहने वाले शक, यवन, तुषार, पारसीक, मगध, फ्रात, फलिग, जग, महिपक, चोल, पाण्ड्य और केरलों का उल्लेख है। श्लोक में पूर्ण तथा दक्षिण भारत के लोग, पश्चिम के अभारतीयों की तरह, दूरदेश के रहने वाले माने गये हैं। सार्वभौम नगर के उज्जयिनी होने का यह भी प्रमाण है कि पाद ताडितकम् में पश्चिम भारत के बहुत से नगर जैसे दशपुर, आनन्दपुर, शृणारक, पद्मपुर और विदिशा का उल्लेख है। इतिहासकारों का यह विश्वास है कि पश्चिमी क्षत्रपों को जीतने के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उज्जैन में अपनी राजधानी बनाई।

पादताडितकम् में तत्कालीन जीवन का चित्र होन से उसने पान भी ऐतिहासिक मालूम पड़ने हैं। भद्रायुध का गह्वीक पर अधिकार उस ऐतिहासिक घटना की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने—सिन्धु नदी के सात मुखा का पार करके गह्वीक को जीता था। यह कोई कारण नहीं कि पादताडितकम् का पाना न तत्कालीन अभिलेखों में उल्लेख न होन से उनकी वास्तविकता संदेहजनक है, क्योंकि गुप्तकाल के अभिलेख कम हैं। परन्तु ने पादताडितकम् में काँकण के स्वामी इन्द्रस्वामी (१८६) अथवा इन्द्रवत् (१६१) का पता पश्चिम भारत के तैम्बूना के एक सिक्के से लगाया है जा आरम्भिक पाँचवीं सदी का होना चाहिए। सिक्के पर लेख है—महाराज इन्द्रवत् पुन परम वैष्णव श्री महाराज दहमेन । दहमेन और उसके पुन व्याघ्रसेन के क्रमशः ४५६ ई० और ४८० ई० के अभिलेखों से ऐसा पता चलता है कि इन्द्रवत् का कुल दक्षिणी गुजरात और कोंकण में राज्य करता था।

उपर्युक्त आधारों पर आठवें पादताडितकम् का समय ४१० और ४१५ के बीच निर्धारित करते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों के सिवा भी चतुर्मासी में ऐसे अनेक प्रमाण आए हैं जिनके आधार पर उसका समय चौथी सदी का अन्त और पाँचवीं सदी का आरम्भ माना जा सकता

१ ता वर्ग सप्तमुद्रानि येन समरे सिन्धुजिता वाहिका । चन्द्रका मेहरोला स्तम्भलेख । २ रेप्सन, कॉन्स-स ऑफ दि ग्राय डायनेस्टा, पृ० १६८ । ३ जे आर ए एम्, १९४८, ५२ । ४ वहा, पृ० ५३ ।

है। शूद्रक के पद्मप्राभृतकम् में दो ऐसे उल्लेख हैं जिनसे उस भाग के समय पर प्रकाश पड़ता है। उसमें मौर्यकुमार चन्द्रोदय का उल्लेख है। कुमुद्वती नाम की वेश्या उससे प्रेम करती थी, पर उसने सामन्तों के दमन के लिये मेना के साथ ग़दर करने पर उसने विरहिणों का व्रत धारण कर लिया (पृ० ४०)। शायद यही चन्द्रोदय अथवा चन्द्रधर शोगुदासी का भी प्रेमी था (पृ० ४५)। इतिहास हमें बतलाता है कि पश्चिम भारत में मौर्यसाम्राज्य के समाप्त हो जाने पर भी मौर्यवंश वाला का कर्ण पर आधिपत्य बना रहा। मौर्यसाम्राज्य के बाद पश्चिमी भारत के मौर्यों ने इतिहास पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। पर पाँचवीं या छठी सदी के कर्ण में गाडा से मिले एक लेख में मौर्य मुनेत्रुर्म्म का नाम पढ़ा जाता है^१। पुलनेशिन द्वितीय ने पेशावाली वाले अभिलेख से (एपि० ६, ६, पृ० १ से), जिसका समय ६३४-५६ ई० है, पता चलता है कि उसने कर्ण में मौर्यों पर गुरी में विजय प्राप्त की। डा० हीगनरद शाल्सी की राय है कि इस गुरी की पहचान उम्बई के पास एलोपेंटा द्वीप से की जा सकती है^२। कणासवा के शिवगण न लेख (७३८-७३९ ई०) से पता चलता है कि उस समय मेवाड और उसने आसपास मौर्य ध्वज का राज्य था (इण्डियन एण्टिक्वेरी, १९, पृ० ५५ से)। चालुक्य पुलनेशिवान के नवसारी ताम्रपत्र (७३६ ई०) से भी पता चलता है (गजेटियर, १, भा० १, पृ० १०९) कि कर्ण के मौर्य पश्चिम भारत में राज्य करते थे।

उपर्युक्त जॉच पड़ताल से यह बात साफ हो जाती है कि गुप्तकाल में और उसने बाद आठवीं सदी के मध्य तक पश्चिम भारत में अथवा यों कहिए कि कर्ण और मेवाड में मौर्यों के कुछ वंशों का अधिकार बच रहा था। यह कहना सम्भव नहीं है कि मौर्य कुमार चन्द्रोदय का अधिकार कहाँ था क्योंकि पद्मप्राभृतकम् का कथानक उज्जयिनी में होने से मौर्यों का अधिकार कर्ण अथवा मेवाड दोनों और होने की सम्भावना हो जाती है।

जैसा कि संस्कृत साहित्य के जानकारों का पता है नाटकों में ऐतिहासिक बातों का कम उल्लेख होता है। चतुर्भाषी के भागों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। फिर भी पद्मप्राभृतकम् और उभयभित्तिका में दो ऐसे संकेत हैं जिनसे पता चलता है कि शायद वे दोनों भाग कुमारगुप्त के समय में लिखे गए। पद्मप्राभृतकम् में भगवमुदरी ने धारे में इशारा करता हुआ निट कहता है—भो को नु एल्लव्य महेद्र इव सुतपशयाहूयते (पृ० ४८)—अरे यह महेद्र की तरह कौन है जिसका आवाहन सुत वंश के लिये हो रहा है? उभयभित्तिका में (पृ० १४१) प्रियगुप्तेना विट से कहती है—भगवतोऽप्रतिहतशासनस्य कुसुमपुरपुरदरस्य भवने पुरदरविजयसगीतने यथा रसामिनयमभिनेतव्यमिति देवदत्ता सह स पणित सवृत्त—‘भगवत् अप्रतिहत शासन कुसुमपुर के पुरदर (पादलिपुत्र ने राजा) के महल में पुरदरविजय नामक संगीतक को रसामिनय के अनुसार खेलने के लिए देवदत्ता के साथ मुझे बसाना मिला।’ उपर्युक्त दोनों ही अवतरणों में इलेपात्मक अर्थ निहित हैं जिनमें एक का अर्थ होता है इन्द्र और दूसरे का महेद्र यानी महेन्द्रादित्य कुमारगुप्त। कुमारगुप्त ने सिक्कों में अपने विरुद्ध श्री महेद्र, श्री अश्वमध महेद्र, महेद्र सिंह, अजित महेद्र, महेद्रकर्मा, सिंहमहेद्र, महेद्रकुमार, और महेन्द्रादित्य आए हैं^३ कुमारगुप्त के

१ बाव गजेटियर, १४, पृ० ३७२-७३। २ ए गाइड टु एण्टिक्वेरी पृ० ८-९।

३ एलन, वेदलगा ऑफ दि काय-स ऑफ दि गुप्त डायनेस्टी म्यूजिका पृ० ११५-१२०।

अभिनेत्रों और सिका में उनके नाम के साथ अप्रतिहत शासन तो नहीं आया है पर उनके एक सिक्के पर अप्रति^१ विरुद आया है जिसका अर्थ प्रायः वही होता है जो अप्रतिहत शासन का ।

जैसा हम पहले देख आए हैं उभयाभिसारिका के लेखक वररुचि का समय चतुर्भाषी के सम्पादकों ने ई० पू० माना है वह असम्भव है । जैसा श्री एस जे० दीक्षित ने अपने एक लेख में बतलाया है^२ कि अनुश्रुतियों पर विश्वास करने पर तो वररुचि को हम चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन मान सकते हैं । वे पत्रकौमुदी और सस्कृतविद्यासुन्दर के तथा कथित लेखक माने जाते हैं । जो भी हो पादताडितकम् (५० २५५) से पता चलता है कि वररुचि की काफी ख्याति थी और गुप्त और महेश्वरदत्त नामक दो कवि उनके काव्य के अनुसार कविता करते थे । अगर उभयाभिसारिका, जैसा हमने ऊपर दिखलाने का प्रयत्न किया है, कुमारगुप्त के समय की रचना है तो इसमें सन्देह नहीं कि वररुचि कुमारगुप्त के काल तक जीवित थे ।

हम ऊपर देख आए हैं कि श्री बरो ने अनेक युक्ति-संगत प्रमाणों से पादताडितकम् का समय निर्धारण करने का प्रयत्न किया है । उनके मत के पक्ष में कुछ और प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं । पादताडितकम् में दारोके रुद्रवर्मा का कई जगह उल्लेख हुआ है । विटों के समूह में उसकी गिनती हुई है (५० १५६) । शायद वह दारोकाधिपति और कुमार गुप्तकुल का पिता था (५० २०२) । भट्टिजीमूतवाहन के यहाँ वह विष्णुनाग के प्रायश्चित्त में शामिल था (५० २५७) । भाग्यश इन्दोर म्यूजियम के क्यूरेटर श्री हरिहर त्रिवेदी को मदसोर से कई सिक्के मिले हैं जिन पर गुप्तलिपि में रुद्र नाम आया है । बहुत सम्भव है कि ये सिक्के पादताडितकम् के दारोकरुद्रवर्मा के ही हों ।

पादताडितकम् में हमारी भेंट भिषक् हरिश्चन्द्र से होती है । विट ने उसे बाह्लीक काकायन भिषगोशानचन्द्रि हरिश्चन्द्र — कहा है । वह अपनी प्रेयसी यशोमती की बहिन प्रियगु यधिका के प्रेम में था । विट के पूछनेपर उसने वेरा में अग्ने आने का कारण प्रियगुयधिका की भारी शिरोवेदना बतलाया (५० १७६) । भिषक् हरिश्चन्द्र ने उपर्युक्त विवरण से कई बातों का पता चलता है । शायद वह बाह्लीक देश का रहनेवाला था, वह काकायन (काकायन) के मत का अनुयायी था और उसके पिता का नाम ईशानचन्द्र था । इसमें कम सन्देह है कि भिषक् हरिश्चन्द्र और चरक पर चरक न्यास के टीकाकार भट्टारहरिश्चन्द्र एक ही थे । चरकन्यास का कुछ भाग राजलविंडी ने श्री मल्लराम शास्त्री ने कुछ वर्ष पहले प्रकाशित किया था । चरक संहिता के एन स्थान (अ० २६, ३, १४) में भी बाह्लीक के वैद्या में श्रेष्ठ काकायन के उस मत का उल्लेख हुआ है जिसने अनुसार रमा की सख्या सीमित न होकर अग्रिमित है । श्री एस० जे० दाक्षित ने हरिश्चन्द्र की अनेक अनुश्रुतिया इकट्ठी की हैं^३ । राजशेखर ने काव्य मीमांसा में उस अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसने अनुसार हरिचन्द्र और चन्द्रगुप्त काशिकास इत्यादि के साथ उज्जयिनी में काव्य परीक्षा में बैठे थे । चाण ने हर्ष चरित (परच

१ भारतीय मुद्रा परिषद् की पत्रिका, भाग १०-२ (दिसम्बर १९४८), पृ० ११५ आदि । २ इण्डियन क्वार्टर, १९३६, पृ० ३३६ से । ३ इण्डियन क्वार्टर, १९३६ पृ० २०७-२१० ।

सस्क० पृ० ४ श्लो० १२) में भट्टारक हरिचन्द्र के गद्य की तारीफ की है। गौडवहो में भास, कालिदास और रघुकार के साथ उनका उल्लेख है। एक सुभाषित में हरिचन्द्र को वैद्यतिलक और वैश्य वतलाया गया है। हेमाद्रि ने अपने आयुर्वेद रसायन की प्रस्तावना में कहा है कि उसने हरिचन्द्र की चरक पर टीका पढ़ी थी। श्री उमाकान्त शाह ने मुझे सूचना दी है कि महेश्वरने अपने निश्वप्रकाश कोश में सूचित किया है कि चरक के टीकाकार भट्टारक हरिचन्द्र साहसक यानी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन थे। काकायन अवश्य आयुर्वेद के कोई बड़े आचार्य रहे होंगे। नावनीतक में जिसका समय डा० हर्नले ने ईसा की दूसरी सदी माना है^१ एक जगह काकायन (५।६।१५) का उल्लेख है। पर अगर काकायन हरिचन्द्र का ही विशेषण माना जाय तो नावनीतक के काकायन और हरिचन्द्र एक ही बैठते हैं। ऐसी अवस्थामें नावनीतक का समय हमें पाँचवीं सदी का मध्य मानना पड़ेगा।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह मानना अनुचित न होगा कि भट्टारक हरिचन्द्र अथवा भिषग् हरिचन्द्र एक ही व्यक्ति थे। वे बाह्यिक के रहनेवाले, काकायन गोत्र के अथवा काकायन की पद्धति के माननेवाले ईशानचन्द्र के पुत्र और वैश्य वंश में पैदा हुए थे। अनुभूतियों के अनुसार ये चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे। बहुत संभव है कि वे कुमारगुप्त के राज्य के आरम्भिक काल में भी विद्यमान रहे हों।

चतुर्भाणी की भाषा भी उसकी प्राचीनता पर प्रकाश डालती है। कम से कम जिस तरह की संस्कृत का भाष्यों में प्रयोग किया गया है वह कहीं दूसरी जगह नहीं मिलती। वह विटों की भाषा है जिसमें हँसी मजाक, नोक भोँक, गालीगलौज, तानाकशी और फूहड़पन (अश्लीलता) का अजीब समिश्रण है। भाष्यों के विट तत्कालीन मुशवरो और कहानतों का बड़ी रूढ़ी के साथ प्रयोग करते हैं। चतुर्भाणी को पढ़ते समय तो हमें ऐसा भास होता है कि मानो हम आधुनिक बनारस के दलालों, गुटों और मनचलों की जीवित भाषा सुन रहे हों। भाष्यों में विट अनेक तरह की आश्चर्य बोधक धनियाँ और सबोधनों का प्रयोग करते हैं, जैसे साधु भोः, आ, अहो, अये, भोः, हाथिक्, हत, कधं भोः, अघो, हीही, मा तावत्, मा तावत् मोः, अल अल, हहह, एवमस्तु, भगवत्, सखे, भाव, वयस्य, आर्ये, भद्रमुज, भान, अजुफा, इत्यादि। पादतावितकम् में विट शायद मजाक में हठे वाच्य का प्रयोग पुरुष के लिए करता है अथवा स्त्री के लिए (= कुतूहली लाटिका) शब्द जेदी ना.रुकी से, लिए व्यवहार में आता था। जैसा हम आगे चलकर देखेंगे चतुर्भाणी में नाट्य शास्त्र का बड़ा सहारा लिया गया है। मावशन्द भरत के अनुसार (ना० शा०, १६।१०)। विद्वान के लिए आता था; वयस्य समान के लिए (ना० शा० १६।१०) भरत के अनुसार तपस्वी और प्रशान्त ने लिए साधो (वही १६।११) सरोधन आता था, पर भाष्यों में तो सभी उसी तरह मजाक में साधो पुकारे जाते हैं जैसे कामुक और गण्डिमाएँ तपस्वी और तपस्विनी कहे गए हैं। उसी तरह राजकुमार के लिए प्रयुक्त होनेवाला भद्रमुज (वही, १६।१२) का भी वेश में आने वाले के लिए प्रयोग हुआ है। शाक्य और निर्ग्रन्थ के लिए भरत के अनुसार (वही १६।१५) भद्रन्त सरोधन होता था। भरत के अनुसार (वही, १६।२१) तपस्विनी को भगवती कहते थे। अजुफा सरोधन भरत के अनुसार वेश्या के परिचारक वेश्या के लिए

प्रयुक्त करते थे (१६।२७) । वही बात भाणों में भी है । भग्नी और आयें भरत में वृद्धा के सम्बोधन है (१६।२८) पर विट द्म शब्दों का प्रयोग भी हँसी में ही करता है । इतना ही नहीं, चतुर्भाणी के लेखकों ने भरत के आदेश के अनुसार ब्राह्मणों को उनके गोत्रों के साथ रक्ता है (१६।३०) ; वेश्यों के नाम में दत्त लगता है (१६।३१) और अधिकतर वेश्याओं के नाम के साथ दत्ता और सेना लगता है (१६।३३) । उपर्युक्त जाँच पड़ताल से भी यही पता चलता है कि चतुर्भाणी का समय वही होना चाहिए जन् नाट्य शास्त्र के सिद्धान्तों का सुव प्रचलन था ।

चतुर्भाणी और भरत की समानता उपर्युक्त उद्धरणों से ही नहीं समाप्त हो जाती । उभयामिसारिका में (पृ० १४१) एक जगह पुरटरपिञ्जय नामक संगीतक का वर्णन है । इसमें बहुत से ऐसे पारिभाषिक शब्द आए हैं जिनका सागोपाग वर्णन भरत में है । चार अभिनय (४।२३), अट्टरस (६।३६), वत्तीस नृत्यहस्त (६।१२-१७), छह स्थान (११।४६), तीन गति (१३।१२) इत्यादि का भरत में वर्णन है । पादताडितकम् (पृ० २२५) में एक जगह मयूरसेना के साख्यार का उल्लेख है । इस वर्णन में भी सामाजिक जन (५२७।५०-६२) और प्राश्निक यानी भव्यस्थ (२०६।६४-६८) के वर्णन नाट्यशास्त्र के अनुसार हैं ।

धूर्तविरसवाद में कामशास्त्र सम्बन्धी अनेक बातों का उल्लेख है । एक जगह (६०) वेश्या की तीन प्रकृतियाँ, उत्तम, मध्यम और नीच नाट्यशास्त्र (२५।३७-५२) के ही अनुरूप हैं । अनुरक्ता और विरक्ता (६१) वेश्या के लक्षण भी भरत के अनुसार ही हैं (२५।८-३१) । चतुर्भाणी में ग्रन्थों का कम ही उल्लेख हुआ है इसलिए उनके आधार पर भाणों के समय पर प्रकाश डालना संभव नहीं है । पद्मप्राभृतकम् में कामदत्ता प्राकृत काव्य (पृ० १२) और कुमुदती प्रकरण (पृ० ५०) का उल्लेख है । लगता है कुमुदती की कहानी प्राचीन संस्कृत साहित्यमें काफी प्रचलित हो चुकी थी । अश्वघोष ने सौन्दरनन्द ८।४४ में कहा है—

श्वपच क्रिल सेनजि मुता चकमे मोनरिपुं कुमुदती ।

मुगराजमयो बृहद्रथा प्रमदानामगतिर्न विद्यते ॥

उपर्युक्त श्लोक में मानरिपु ने साथ कुमुदती के प्रेम की कहानी की ओर दशारा है । यह मीनरिपु ही बुद्धचरित, १३।११ का शूर्पक है । कथासरित्सागर (पेन्जर, दि ओशन ऑफ स्टोरी, भा० ८, पृ० ११५-११८) में एक चीनर और राजकुमारी मायावती की कहानी में भी शार्पक शूर्पक और कुमुदती की प्राचीन कहानी का प्रकृत रूप उभर गया है । कहानी यह है कि सुप्रहार नाम का एक सुन्दर चीनर राजकुमारी मायावती को उपवन में देखकर मोहित होकर बीमार पड़ गया । उसकी माता ने राजकुमारी से उसे मिला देने का वादा किया । यह प्रतिदिन राजमण्डल में जाकर राजकुमारी को एक मछली भेंट देने लगी । इस भेंट से प्रसन्न होकर राजकुमारी ने उसकी इच्छा जाननी चाही । इस पर उसने अपने पुत्र की उसके प्रति प्रेम की बात कही । राजकुमारी ने उसे रात में लाने की कहा । सुप्रहार आया और राजकुमारी ने उसका स्वागत किया, पर सा जाने पर दूसरे कमरे में चली गई । जागने पर जब उसे पता चला कि उसकी प्रेमिका चली गई है तो उसने विषाग के दुःख से प्राण

दे दिए। उसका अन्त ऊपर इतना प्रेम देखकर राजकुमारी सती होने को तयार हो गई। राजा का पता चला कि वे पूर्व व म में पति पत्नी थे। इसके बाद अलौकिक घटना से धीवर का उग्न और राजकुमारी के साथ उसका व्याह हो गया। यह जानने लायक बात है कि कामन्द कामशास्त्री दत्तक का कई जगह उल्लेख है, पर वात्स्यायन का कोई उल्लेख नहीं है। पद्मभाष्यम् (७० ३२) श्रुति वेश्या के घर में गए बौद्धमिन्तु सखिलक से कहता है कि उसका बहा जाना उसी तरह असोमनीय था जिस तरह दत्तक सूत्र में आकार का प्रयोग। धूर्तविजय स्याद (५० १०७) में दत्तक का एक सूत्र 'कामादर्चनाशः पुत्रात्' दिया गया है। पादतद्धितम् (५० २१२) में एक दूसरा सूत्र 'अपुमान् शब्दकामः' आया है। उपर्युक्त उद्धरणों से यह साफ हो जाता है कि चतुर्भाषी के लेखकों को दत्तकसूत्र का ज्ञान था। दत्तक का समय तो ठीक ठीक निश्चित नहीं, पर कामसूत्र में (१।१।११) उनके उल्लेख से यह पता चलता है कि शायद वे ईसा की आरम्भिक सदियों में हुए हों। कामसूत्र के अनुसार दत्तक ने पाटलिपुत्र की गणिकाओं के लिए कामशास्त्र के छठे अधिकरण वैशिक अधिकरण का उदाहरण दिया था। जयमंगल टीका के अनुसार पाटलिपुत्र में एक माधुर ब्राह्मण रहता था जिसे सुदामे में एक पुत्र हुआ। उसने पैदा होने ही उसकी माँ चल बसी और पिता का भी थोड़े ही दिनों में देहान्त हो गया। किसी ब्राह्मण ने उसे गोद लेकर उसका नाम दत्तक रखा। उसने वेश्याओं से लोकायात्रा सीखी तथा वीरसेना इत्यादि की प्रार्थना पर उसने दत्तकसूत्र की रचना की। डा० रायचन्द्र ने अनुसार पश्चिमी गंग राजा माधववर्मन् द्वितीय, के जिनका समय ईसा की तीसरी सदी का प्रथमार्ध माना जाता है, एक लेख में (एपि० फनारिफ, ६, ५० ७) दत्तक का उल्लेख है।

डा० अग्रवाल ने मथुरा समुदाय में पड़े मिट्टी के एक फलक (स० २५५२ की पहचान शर्क और सुमुद्रती की कहानी से की है। उसने अनुसार जमीनपर लोग हुआ मनुष्य है। धीवर शर्क है जिसे कामदेव ने वश में कर लिया था। यहाँ पर कामदेव का चित्रण पूजा के बीच में घनुष बाण लिए हुए हुआ है। अगर डा० अग्रवाल की यह पहचान ठीक है तो सुमुद्रती और शर्क की कहानी ईसापूर्व पहली सदी के पहले भी प्रचलित होनी चाहिए।

पद्मभाष्यम् (५० १६) में दन्तशङ्खपुत्र दत्तकश्रुति नाम के एक पैदाकरणका उल्लेख है। उसी बात का से पता चलता है कि कातत्रिकों ने उसे शय कर रक्खा था पर ठगवा उत्तर जग भा विद्वान नहीं था। उद्धरण हम बातका सूचक है कि जिस समय पद्मभाष्य की रचना हुई उस समय पाणिनीय और कातत्रिक पैदाकरणों में काफी रसद रही थी। सूत्र संभा है कि इन विवाद का युग सुमशाल रहा हो जब बौद्धों में कातत्रिकों का काफी प्रसार रहा। कातत्र, अपना कीनार या काण्य शर्मन् की रचना थी। अश्विनिमित्र के अनुसार कातत्र की रचना ईसा की सातवीं सदी में हुई तथा अगाध और ५२१ में इसका स्थिर प्रसार हुआ। आरम्भ में उसके चार गुरु थे पर भाग भाग और

दुर्गासिंह की टीका में पूरक अंश भी आ गए हैं। इसने कुछ अंश मध्यएशिया से भी मिले हैं।^१

अगर गुप्तयुग की कला की कुछ अभिव्यक्तियों से चतुर्भांगी के कुछ वर्णन की तुलना की जाय तो यह बात और भी स्पष्ट होती है कि चतुर्भांगी गुप्तयुग की कृति होनी चाहिए। चतुर्भांगी में, जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, जो स्त्री और पुरुषों की वेषभूषा, रहन-सहन इत्यादि का वर्णन आया है, उसकी प्रतिकृति हम गुप्तकालीन मूर्तियाँ तथा अजंता और वाघ के चित्रों में पाते हैं। पादताडितकम् में (पृ० १७८) वेश की एक स्त्री आभ्रमजरी से मोर को डराती हुई उसे नचाती है। कुमारगुप्त ने अश्वारोही माँति की एक तरह की मुद्रा पर एलन के अनुसार लक्ष्मी मोर को फल खिला रही है, पर ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि मानो लक्ष्मी कोई दहनी मोर के सामने करके उसे नचा रही है। हमने एलन के श्री गणपतिप्रसाद शम्भूनाथ के संग्रह में कुमारगुप्त का एक ऐसा सिक्का देखा था जिसपर एक स्त्री ताली देकर मोरको नचा रही है। लगता है गुप्तयुग में स्त्रियों का मोर के साथ खेल एक प्रतीक बन गया था। मेघवत (२११६) में सध्या के समय यक्ष पत्नी उज्जने ऊठों की भक्तिकार और हाथ की ताली से मोर को नचाती है।

चतुर्भांगी में आसनपान के कई जगह वर्णन आए हैं। धूर्तस्मि सनाद में (पृ० ७२) गोष्ठी में वेश्याओं के साथ अर्घ्यपान पर बैठकर पान करने का वर्णन है। गोष्ठी में इस तरह के आसनपान का उल्लेख कामवृत्त (१४१३८) में भी है। अजिंता के भित्ति चित्रों में इस तरह के आसनपान के कई दृश्य आए हैं।^२ पादताडितकम् में (पृ० १८) अपनी प्रेमिनी के साथ हाथी पर चढ़े कामुकों का उल्लेख है। काले की लेख और अमरावती में अनेक ऐसे अर्धचित्र हैं जिनमें इस प्रतीक का अंकन है। शकटपर चढ़े खाते पीते और आलिंगन करते हुए स्त्री-पुरुषों का चित्रण प्रयाग संग्रहालय में गुप्तयुग के बहुत पहले की एक मिट्टी की गाड़ी पर है। चतुर्भांगी में तीन ऐसे प्रतीक और हैं जिनसे उनका गुप्तकालीन होना सिद्ध होता है। पादताडितकम् (पृ० २१०) में 'आलेख्य यक्ष की तरह दर्शनमान ही में सुन्दर' को उक्ति आई है। भारतीय कला के विद्यार्थियों को पता है कि शुंग-युग से गुप्तकाल तक सुन्दर यक्षों का चित्रण भारतीय कला की एक खास बात रही है। एक दूसरी जगह (पृ० २१६) आलेख्य पत्नी लिखी वर्णनरूपोत्पन्न चारुनेपा लक्ष्मी का उल्लेख है। जैसा अन्यत्र दिखलाया जा चुका है गुप्तकाल में लक्ष्मी एक प्रतीक बन चुकी थी। गुप्तकालीन लक्ष्मी के चित्र तो नहीं मिले हैं पर अनेक मृगमुद्राओं पर लक्ष्मी का अङ्कन हुआ है। तीसरी जगह गंगा यमुना की चाहराहाहिणी पुस्तकवाचिका मदनमती का उल्लेख है (पृ० २१२)। गुप्तकाल से जानकारी रखनेवाले यह जानते हैं कि उस युग में गंगा और यमुना के मूर्तरूप का कितना महत्त्व बढ़ गया था।

१ कांय, ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० ४३१।

२ कैटेलाग, गुप्त काव्यन्त पृ० १०, प्लेट १४, ६-८।

३ हेरिगम, अजंता, फलक ३, राजदानी, अचता, भा० १, फलक २७, भा० ३, ६०

४ पृ० २०० सा काला, टेराकोटा फिगरिन्स फ्रॉम कौशावा, फलक ४२।

५ माताचन्द्र, पद्मावती, नेहरू ग्रंथालय बुक।

कुमार सम्भन (७१४२) में 'मूर्ते च गगायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम्' अर्थात् चमर लिए हुए मूर्त गंगा और यमुना ने शिव की सेवा की' इसका उल्लेख है। गुप्तयुग के मन्दिरों में द्वार पर गंगा यमुना का होना आवश्यक हो गया था। लगता है गंगा यमुना की मूर्तियों पर चमर डुलाने के लिए एक खास सेविका की नियुक्ति होती थी। गुप्तकाल से पहले की गंगा-यमुना की मूर्तियाँ भारतीय कला में नहीं मिलती।

चतुर्भाषी के लेखकों का मुख्य उद्देश्य उस समय के समाज का जीता जागता चित्र सामने लाना और दाग का भड़ाफोड़ करना था। भाषों के पढ़ने से पता चलता है कि राजा, राजकुमार, ब्राह्मण, बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, कवि और यहाँ तक कि व्याकरण-आचार्य, बौद्ध भिक्षु इत्यादि भी वेश में जाने से नहीं हिचकिचाते थे। वेश्याओं और उनकी माताओं द्वारा कामिनी के दुर्लभ की तरकीबों, कामुकों के नाच और नचारे, मान-लीला हाथ इत्यादि का भी इन भाषों में बड़ा खुल्ल बर्णन हुआ है। भाषों के पात्र नाट्यशाला के रुढ़िगत पात्र न होकर जीते जागते स्त्री पुरुष हैं। इसीलिए भाषा बोल-चाल की संस्कृत में लिखे गए हैं, पर वह बोल-चाल की भाषा इतनी मनी हुई और पैनी है तथा मजेदार सवाल जवाबों से इतनी चोखी हो गई है कि पढ़ते ही बनता है। डा० रामस के शब्दों में, "मैं समझता कि लोग मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि इन भाषों में निम्नस्तर के पात्र होते हुए भी और कहीं कहीं अश्लीलता होते हुए भी इनमें बहुत साहित्यिक गुण हैं। इनमें अपने दग के भारतीय हास्य और व्यंग्योक्ति का ऐसा पुट है जिससे उन्हें बेन जागृत श्रमना मोलिया की स्वर्ण में भी डरने की आवश्यकता नहीं। इनकी भाषा तो संस्कृत का मया हुआ अमृत ही है।" साधारण तरह से हम यही बात सोचने दें कि संस्कृत साहित्य राजदरबारों और विद्वानों की भाषा में है और वह बात नाटकों तथा कादंबरी की तो बात ही क्या दण्डी के दशकुमारचरित पर भी लागू होता है। पर इन भाषा में मीठी गायी बातचीत की संस्कृत का प्रयोग जीवन की दैनिक घटनाओं और छिद्रान्वेषण के लिए होता है।

पर उपर्युक्त बात से यह न समझ लेना चाहिए कि चतुर्भाषी के भाषों की भाषा हमेशा सरल और गुपडेन की ही होती है। पद्मप्राभृतम् (५० ४२) में कन्दुक मीठा करती हुई मियगुपटिका का सजीव और गतिमय वर्णन हमें बाण और दण्डी की याद दिला देता है। इसी तरह धूर्तविजय संग्रह में बहुत वर्णन (२१३-२१४) भी भिन्न-भिन्न यम्युओं में कामियों की जीती जागता सगरीर चर्चा करता है। पादताडितम् में वेश के मरानों का वर्णन (१७१-१७४) भी बाण की याद दिलाता है। पर अरिस्तर वर्णन सीरी साधा भाषा में ही है। भाषा की तारीफ यह है कि बिना तूट दिए हुए जुद्ध हो शब्दों में ध्वन्य पस्तुआ का निम्न ये गीत देते हैं। कहीं कहीं कठु वर्णन और वेश्याओं के लीला हाथ के वर्णन में भी भाषा के लेखकों ने अपनी अनगनी सूझ और निर्गुण शक्ति का परिचय दिया है।

शब्दक विरचित पद्मप्राभृत का निम्न मूदेर और देवनागरी प्रेम है। मूदेरका उल्लेख मन्दार साहित्य में कई जगह हुआ है और ये धृता और चामे के आचार्य ज्ञान गए

हैं। नाग ने फाटरी में 'कर्णामृतम्भेव सन्निहितनिपुलाचला शशोपगता च', कह कर इस भाग्य के पात्र कर्णामृत, विपुला और शश का उल्लेख किया है। श्री रामकृष्ण कवि के अनुसार (भूमिका प्र० ३) यहाँ ग्रचला से अचलपुर यानी आधुनिक एलिचपुर का तात्पर्य है जो शायद मूलदेव की कार्यभूमि रही होगी। पर पद्मप्राभृतक (प्र० ५७) के अनुसार तो शायद वह पाण्डिपुत्र का रहने वाला था और उसका कार्य क्षेत्र उज्जैन था।

पद्मप्राभृतम्भे सूनधार रगमच पर आते ही वसत का गुणगान आरम्भ करता है। सफेद फूलों से भरे तुरन्त, ग्रशाक की कापलें, कायन्त्र का कूरु, मञ्जरित आम के वृक्ष, चिडिया की चहचहाट, सिंधुवार और कुन्द के फूल वसत की विशेषताएँ थीं। लताओं से पेड़ जकड़े हैं, तिलक वृक्ष पर तैठी कायल जूड़े भी लगती हैं, कुन्द पर तैठा भारा कगल का काम देता है तथा सौंवली कलियाँ से कमलिना शोभित है (प्र० १-३)।

देवदत्ता का प्रेमी कर्णामृत देवसेना के प्रेम में मस्त दिखलाया गया है। विन् यानी शश के अनुसार वह अनेक शास्त्रा का शास्त्रा, सब कलाओं में निष्णात और कामतन का पंडित था (प्र० ५)। उसका कामगूर देवसेना के कारण था। उसकी ऐसी अवस्था सुन कर उसकी प्रेयसी देवदत्ता ने परिचारक पुष्पाञ्जलिक ने आकर कहा कि उसकी मालकिन अपनी बहिन चण्डालिका (देवसेना) की बामारी से उसे देखने न आसकी थी पर वह जल्द ही आने वाला थी। पुष्पाञ्जलिक का विदा करके कर्णामृत ने अपने मित्र शश से कहा कि देवदत्ता के वहाँ आने पर वह उसका घर आकर देवसेना की बीमारी के कारण का पता लगावे (८)। अपने काम पर निकलते ही पहले तो विन् उज्जयिनी नगरी की शाभा का वर्णन करता है (८)। घूमते घूमते उसने कात्यायनगात्रीय शाग्वतीपुत्र सारस्वतभद्र नामक कवि को देखा। वह अपने घर के दरवाजे पर सफेद रंग हाथ में लिए आँगना से रस भावना प्रकट कर रहा था। यह पूछने पर कि वह आकाश की आर क्या देख रहा था उसने जवाब दिया कि काव्य का भूत उसे सता रहा था। कुद कर विन् ने कहा कि पुगने काव्यरूपी जूने गोंठने वाला वह मोची, अस्त व्यस्त गाथों वाले गाले की तरह, कैरे नए पदों की खोज कर रहा था। बाद में भीत पर लिखे उसने वसत सम्प्रधी श्लोक पढ़कर वह आगे बढ़ा (१०-११)।

इतने में उसे पीठमर्द दुर्दुरक की हँसी सुनाई दी। विन् के पूछने पर उसने कहा कि बामाश्वर की पूजा करना माना समुद्र पर पानी छिड़कना था। पर विन् ने जवाब दिया कि किस तरह सूर्य की पूजा दीवक से, समुद्र को पानी से, वसत की कूँचों से हाती है उसी तरह वह बामाश्वर की पूजा शर्तों से कर रहा है।

निपुलामात्य का देखकर विन् ने कहा कि वह मृतदेव के देवदत्ता के साथ पैँस जाने से निपुला का पक्ष लेकर उससे नाराज था, पर विन् ने उसे बताया कि कर्णामृत स्वयं निपुला को मनाने गया था। पर उसका और उसका सखी अवतिमुदरी के मनाने पर भी वह नहीं मानी और उसे पत्कार दिया। यह सुन कर निपुलामात्य उसे उलाहना देने चला गया (१२-१५)।

निपुलामात्य को विदा करते ही विन् की मुलाकात वैष्णवकरण दन्तशर्कर के पुत्र दत्तकलशि से हो गई। अपनी सूत्र से वह बहम में मार खाया हुआ दीव्य पडता था। उसकी कलह प्रिय बाणी जरा-सा छूने ही मन्दिर के घण्टे की तरह टननाने लगती थी। नूपुरसेना की पुत्री

रशनावतिका से उसका प्रेम था। विट के पूछने पर उसने बताया कि वह कातत्रिक वैयाकरणों से तग आ गया था पर वह उनकी जरा भी परवाह नहीं करता था। जब उसने विट को रोकना चाहा तो उसने कहा कि वह व्याकरण की निष्ठुर वाणी का अभ्यस्त नहीं था, वह चल्दू भाषा सुनना चाहता था। पर दत्तकलशि ने जवाब दिया कि बैल भिडन्त भाषा को वह सरल बनाने में असमर्थ था। उसने बतलाया कि रशनावती उससे इसलिए नाराज थी कि एक दिन यश करते हुए उसे उसने छूने की कोशिश की और डोंटने पर रुक हो गई (१६-२०)।

दत्तकलशि से पीछा छुड़ाने के बाद विट की धर्मासनिकपुत्र पवित्रक से भेंट हुई। यह गीते फपड़े लेकर लोगों की छून बचाता हुआ राजमार्गमें शिवपिंडी के चबूतरे के सहारे खड़ा था। विट ने उसकी छुआछूत का मजाक उड़ाकर वारुणिका के साथ उसके संबंध की चर्चा की और उसे विट बननेका उपदेश दिया (२१-२४)।

उज्जयिनी की पुण्यबीधी में उसकी मुलाकात पुराने नाटक के विट मृदंग वासुलक से हुई। हंसी में वेश्याएँ उसे भाव जरद्गव यानी बुढ़ा बैल कह कर पुकारती थीं। वह गायक आर्यनारादत्त के घर से निकल रहा था। खिजाब मलने, नहाने और लेप लगाने के उस शौकीन ने एक पुरानी भिस्टी पहन रखी थी। खिजाब लगाए उसकी तुलना विट ने किसी तरह मरम्मत किए हुए पुराने गिरहर घर से की, पर भाव 'जरद्गव' ने जवाब दिया कि पुरानी शराब मजा देती है (२५-२८)।

मृदंग वासुलक से बिदा लेने के बाद उसने द्यूत सभा के चबूतरे के पीछे छिपे हुए वासिष्ठीपुत्र शैपिलक को देखा। उसके छिपने का कारण मालतिका नामक दूती के प्रति उसका व्यंग्यहार था। मालतिका को शैपिलक के पडोस में बसने वाली एक बौद्ध भिक्षुणी ने उसके पास भेजा था, पर उसने एकमत में उसके साथ जबरदस्ती की (२८)।

इस तरह विट घूम घूम कर वेश में पहुँचा। वहाँ एक गन्दी चादर से अपने को ढके किसी वेश्या के घर से निकलते हुए धर्मारण्य के सधिलक नामक दुष्ट बौद्ध भिक्षु से उसकी मुलाकात हुई। उसे देख कर विट ने ग्रीह धर्म की घड़ाई की जो ऐसे दुष्ट के रहते हुए भी निष्ठुहम बना था। उसने उसे लज्जकार कर पूछा कि वह कहीं से आ रहा था। उसने जवाब दिया कि निहार से। इस पर विट ने उसकी हंसी उड़ाते हुए उस पर मुरत पिंडपात या लङ्गेरन की तलाश में घूमने का दाव लगाया। अपने बचाव के लिए उसने कहा कि अपनी माँ के मरने से दुखी सप्तदासी को बुद्ध वचन से सात्वना देकर वह आ रहा था। विट के निरहंसी उड़ानेपर वह माजन का समय बीतने का बदना करने भागा (३१-३४)।

सन्धिलक से छुटकारा पाते ही उसकी भेंट वसन्तवती की पुत्री वनराजिका से हुई। वह फूलों के गहनों से सजी, सीगात लेकर इठलाती हुई कामदेव के मन्दिर से उतर कर अपने प्रेमी के यहाँ जा रही थी। उससे बातचीत करके और अभीस देकर विट आगे बढ़ा (३५, ३७)।

वनराजिका से बिदा होकर वह इरिम की रत्नैक तानून्सेना के घर पहुँचा। यह विट की आवाज सुन कर आरना गिरता हुआ दुपट्टा संभालते हुए दरवाजे पर आई। विट ने उससे दिया मुरत पर पञ्चविषाँ कमी। उसकी आवाज सुन कर इरिम ने उसे भीतर बुलाया, पर वह आगे बढ़ गया (३७-३८)।

तामूलसेना से मिलने के बाद भाडोरसेना की पुत्री कुमुद्वती से उसकी भेंट हुई। वह घर के दरवाजे पर खड़ी कौओं का जल गिला रही थी। उसने बिना आँखें मूँदें, कपड़े, रूखे ताल और ढोले बड़े देवकर विन् भोंप गया कि वह विरह में व्याकुल थी और कौए से अपने पति के आगमन का शकुन पूछ रही थी। उसने ऐसा अकण्ट प्रेम देव कर वह बिना बोले ही आगे बढ़ गया (४०-४१)।

आगे जाने पर गहनों का झड़ार मुन कर वह खुले दरवाजे से एक उपवन में घुसा। वहाँ पाचालदासी की पुत्री प्रियगुपटिका अपनी सातियों से बाजी लगाकर गेंद खेल रही थी। कन्दुक मीठा में उसकी चालुरी देख कर उसने उसकी गति की बड़ाई की और उसके रोकने पर भी न रुककर आगे बढ़ा (४१-४४)।

प्रियगुपटिका से बिदा लेने के बाद वह चन्द्रधर की रसैल नागरिका की पुत्री शोणदासी के घर पहुँचा। वह बिना गहने पहने, मैथी चादर ओढ़े, ललाट पर चन्दन लगाकर, बुकूल की पट्टी से सिर ढक कर मद स्वर में गा रही थी। उसकी ऐसी अवस्था चन्द्रादय देव अथवा चन्द्रधर के साथ प्रणय कलह करने की वजह से थी। उसने उसे सात्वना दी। शोणदासी ने विट से कहा कि सखियों के बहकावे में आने से ही उसकी वैसी गति बनी थी। इस पर विट ने उसे अभिसार करने का उपदेश दिया (४५-४७)।

शोणदासी से मिलने के बाद विट ने नागरिका की पुत्री मगधसुन्दरी को देखा। उस सुन्दरी ने अपने काले मुलायम बालों में तेल और सुगन्धि लगा रखी थी। वह बाहरी दरवाजे के एक पल्ले के पीछे से मुरीले स्वर में बल्लभा नाम की चौपदी गुनगुनाती हुई किमी की गान जोड़ रही थी। विट ने उसके मुरत चिन्हां का मजाक उड़ाया (४७-४८)।

वेश म घूमने घामने के बाद विट अन्त में देवदत्ता के घर पहुँचा। वहाँ बगीचे में गायक गन्धर्वदत्त के शिष्य दहुरक नाम के भादरक से उसकी भेंट हुई। उससे उसे पता चला कि देवदत्ता मूलदेव से मिलने गई थी और व. आचार्य द्वारा प्रेषित होकर देवसेना से कुमुद्वती की भूमिका के सम्बन्ध में मिलने आया था। देवसेना ने भूमिका अपनी सखी का दे दी। पूछने पर दहुरक ने बताया कि उस समय देवसेना गान में थी (५०-५१)।

बागमें जाकर विट ने देवसेना की बीमारी का हाल पूछा पर उसने बात टाल दी। विट वहाँ माननेवाला था। उसने तालवन पर लिखी कुमुद्वती की भूमिका का एक श्रवण पढ़ा। विरह करने पर देवसेना ने मूलदेव के प्रति अपना प्रेम स्वाकार किया। उसको डराने के लिए विट ने कहा कि कणापुत्र पाटलिपुत्र जाने को व्याकुल था। यह सुनते ही देवसेना रो पड़ी। इस पर सात्वना देकर विट ने कहा कि कणापुत्र भा उसने विरह में व्याकुल था। उसने यह भी कहा कि वह और देवदत्ता दोनों उससे प्रेम कर सकते हैं। उसने मुझव रक्खा कि दूसरे दिन देवदत्ता नाचने जानेवाली थी। ऐसे समय देवसेना या ता इय आचार्य के पास चली जाय, अथवा स्वयं वहाँ आजाय। इस पर उसकी सखी प्रियवदनिका ने कहा कि वह मामला ऐसा जैठाएगी कि स्वयं देवदत्ता देवसेना को मूलदेव के पास ले जाय। अन्त में देवसेना से कणापुत्र के लिए चिह्न स्वरूप मृदित लीला कमल लेकर विट बिदा हुआ (५३-६१)।

धूर्त विट सनाद—इंशगदत्त प्रणीत धूर्त विट सनाद भाण बरसात के दिन आरम्भ होता है। उस दिन जादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी और फूज झिल रहे थे। बरसात

मैं लोग विदेश से लौट आते थे, मान भूल जाते थे और अपनी प्रेमिकाओं के पास रहते थे। बादलों से छिपी सूर्य की किरणें, गीले मैदान, फीके दिन, कुटजों पर मँडराते भौरे और नाचते मोर बरसाती दिन की विशेषताएँ थी। हरी दूब और नीरवहूटियों से भरी वनभूमि पैरों में आलता लगाए स्त्रियों के घूमने लायक बन गई थी। नदियाँ गहरी हो गई थीं, कदम्ब की गन्ध से सुरभित हुई हवा चल रही थी। ऐसे समय विट देविलक भी कहीं आ जा न सकने से अनमना हो गया था। अपनी घरानी के गाने से तृप्त होने पर वह भी सैलसपाटा पसन्द करता था। उसके भाग्य से एराएक बादलों की गरज बन्द हो गई, दिन खुल गया, बरसात से घरयाया मोर महल की चोटी पर चढ़ कर शोर मचाने लगा- और सील लगी बीणा और कामिनिर्वाँ घूप सेने लगीं। महल की मोरियों से पानी भँरभराने लगा। गदले दर्पण साफ किए जाने लगे। बड़े घरों में बन्द रहने के आलस्य से भरी कामिनिर्वाँ खिड़कियों पर जा पहुँचीं। बादलों की नमी से कसी हुई और बाघी सोने की करधनियों फिर से खोली जाने लगीं। कामियों के साथ उपवन में जाने के लिए वेश्याएँ घूमने लगीं तथा पैरों में आलता भर कर स्त्रियाँ हरियाली पर चलने लगीं (६४-६८)।

यह सब दृश्य देखकर विट ने घृतसमा अथवा चकले में अपना मन बहलाने की ठानी। पर जूएकी उसने दूरसे ही नमस्कार किया क्योंकि उसके पास केवल एक धोती माथ बची थी और पासोका कोई भरोसा न था। इसीलिए उसने चकले में जानेका विचार किया। घरका दरवाजा बंद करनेकी बात लेकर उसकी अपनी स्त्री के साथ नोक भोंक हुई। (६८-६९)

कुसुमपुर यानी पाटलिपुत्र की बढाई करते हुए रास्ते में विट की कृष्णिलक से भेंट हो गई। वह अपने पिता से बचाए जाने पर भी लुक छिपकर वेश की सैर करता था। विट ने पौरन प्रवृत्ति कसी कि क्या वह माधवसेना के घर से रति युद्ध से थका हुआ आ रहा था। कृष्णिलक ने यह बात स्वीकार कर ली और कहा कि अगर उसके बाप उसकी ऐसी हालत देख लें तो अपनी जान हो दे डालें। इस पर विट ने एक व्याख्यान ही दे डाला। पिता जगानी का सिर दर्द है, जूआ उसे भाता नहीं, शराब की गंध से उसे परहेज है, गोष्टी से वह दूर ही रहता है, साहसिकता से उसका काम नहीं। नाराज हाँकर विट पृथिवी की क्षत्रिय विहीन करनेवाले पशुगम की तरह उसे पिता विहीन करने पर तैयार हो गया। जब वह वेश्या प्रेम की तारीफ कर रहा था तब कृष्णिलक ने बताया कि उसके पिता उसका विवाह कर देने पर तैयार थे। विट ने कुल वधुओं का मजाक उड़ाते हुए कृष्णिलक को सलाह दी कि वह हम पैर में कटावि न पड़े। (६९-७४)

इसके बाद विट कुसुमपुर के राजमार्ग में होता हुआ वेश में पहुँचा। यह वेश का बड़ा सजीव वर्णन करता है (७१-७७)। यहाँ उसकी मेंट मदनसेना की परिचारिका वादगिका से हुई। यह बीजन के मद में जिसके स्वनप्रावरण की परवाह न करके गीनी मन्मथ की गाड़ी पहने, मेखला की ही नोती बनाकर, एक कान का कर्णशश भ्रम करके बाएँ हाथ की उँगलियों में कर्णोत्थल ठीक कर रही थी। विटने उसे गेककर उसके माथ हँसी की और यह हँसकर चल दी। (७८-७९)

वादगिका से मिलने के बाद विट ने अपनी मन्थी चतुरिका ने बातचीत करते हुए वनभूमिका को मेखला मंत्रों ने देखा। उसने उसके माथ हँसी की। पर उसके गेकने पर भी आगे बढ़ गया ७९-८२।

इतने में उसे रामदासी के घर से रोने की आवाज सुन पड़ी। उसको देखते ही वह और जोर से रोने लगी। इस पर विट ने अपने गार कुञ्जरक को शिकायत की। रामदासी ने बताया कि दूसरी स्त्री के साथ समागम का उलाहना देने पर कुञ्जरक उसे छोड़ कर चला दिया। यह सुनकर विट ने उसे अभिसार का उपदेश दिया (८१-८३)।

रामदासी को छोड़ते ही उसने रतिसेना को देखा। गर्मयुद्ध में बन्द रहने से पसीने से तर उसने थल अस्त व्यस्त थे और नशा उतर जाने पर जाग कर वह खिड़की के पास हवा खा रही थी। विट ने उसके नशे की सुमारी की तारीफ की। इस पर हँस कर उसने खिड़की बन्द करली (८४)।

रतिसेना के गार विट की प्रद्युम्नदासी से भेंट हुई। उसने उसकी हँसी उड़ाई। इस पर उसने बहुत दिनों के गार मिलने का उलाहना दिया और बतलाया कि वह रामिलक के डेरे से आरही थी (८५-८६)।

धूमते घामते विट त्रिशूलक और मुनन्दा के यहाँ जो अगना घर उन्द करके रहते थे, जा पहुँचा। त्रिशूलक अपना सन कुछ खोकर मुनन्दा के साथ रहता था। उसने विट की बड़ी आश्रमगत की और कहा कि रामिलक की गोष्ठी में विष्णुशस इत्यादि गोष्ठीकों को आरस में नहस करते हुए कामतन्त्र के गारे में कुछ शकाएँ हुईं। त्रिशूलक ने इस सम्बन्ध में अपना भी मत कहा पर वह विट (देविलक) का भी मत सुनना चाहता था। विट ने जवाब देना स्वीकार कर लिया और वे दोनों गोष्ठीशाला में टहलते हुए बातचीत करने लगे (८७-८८)।

त्रिशूलक ने पैसा की इच्छुक उत्तमा, मध्या और अधमा वेश्या का लक्षण पूछा। विट ने कहा कि अवमा दान से अधमा अकारण ही प्रेम करती है, मध्या दान अधमा जवानी से प्रसन्न होती है और उत्तमा दानी, सुन्दर और अनुकूल कामी की सेवा करती है। त्रिशूलक के कामी वेश्या के लक्षण पूछने पर विट ने श्रधपुली वितरने, हँसती भौहें, मतलब मरी बातें, ताली उठा कर चिल्लाना, हँसी रोकना, नाभि, कक्षा और मुँह खोलना, मेगला छूना, उससे भरना ये सब कामगनी के लक्षण बताए। त्रिशूलक ने यह पूछने पर कि वेश्याओं के कामचिह्नों में शठता या निष्ठा जानने का क्या उपाय है विट ने कहा आँखें, उसास, प्रेम मरी आँखें, दुर्गलना और पीनपन, पसीना होना तथा कामी का माल समाप्त हो जाने पर भी मुशामद वेश्या के प्रेम के छातक हैं। त्रिशूलक ने यह पूछने पर कि प्रथम समागम कामनिशा का क्यों अरुचिन्तर होता है विट ने जवाब दिया कि उसका कारण अविश्वास है। त्रिशूलक ने यह पूछने पर कि कामी निर्गुण स्त्रियों में क्यों रगते हैं और भ्रमटी स्त्रियाँ से कैसा व्यवहार करना चाहिए, विट ने जवाब दिया कि निर्गुणी स्त्रियों में रमना कामका प्रभाव है और भ्रमटी स्त्रियाँ को छोड़ देना चाहिए। त्रिशूलक ने यह पूछने पर कि क्या अपनी प्रेमिका को छोड़ देना चाहिए, विट ने कहा कि दूसरी स्त्रियों के प्रेम की रक्षा करते हुए उसके साथ कभी कभी प्रेम टिखलना चाहिए। त्रिशूलक ने स्त्री के प्रति कुसूरवार होने पर उसे मनाने का उपाय पूछा। विट ने उसका कोप दूर करने का उपाय बताया। कोप शांति के लिए प्रिया ने पैरों पर गिरना उस समय के लिए एक खास उपाय मानते थे, पर विट का उसमें विश्वास नहीं था, क्योंकि पैर पड़ने से आँखें बहने की सम्भावना रहती है और उससे दैन्य जो काम का शत्रु है, पैदा होता है। कसम दिला कर भी मनाना ठीक नहीं क्योंकि कुलवधुएँ तब कामी की शपथ नहीं मानती, फिर वेश्याओं की तो बात ही क्या। गाँव का रहना, आरिष का उपदेश,

परतंत्रता, कजूसी और भोलीभाली गारी, ये सब बातें काम का अन्त कर देती है। कोई-कोई हँसाना भी मानभग की दवा मानते हैं, पर उससे मान बाने का मय रहता है। विट के मत में हँसी मजाक से ही स्त्री का मान भग करना ठीक है। जबर्दस्ती चुम्बन भी मान भंग कर देता है (८६-९४)।

विश्वलोक के यह पूछने पर कि एक प्रेयसी के सामने यदि मूलसे दूसरी का नाम निकल जाय तो क्या करना उचित है विटने कहा कि ऐसा होने पर पौरन मुकर जाना चाहिए, डर का भाव दिखलाना चाहिए, हँसी ठिठाली करनी चाहिए, बात का रुख फेर देना चाहिए, या एक साथ बहुत से नाम लेने चाहिए। विश्वलोक के यह पूछने पर कि नखलत और दतलत पीड़ा क्यों नहीं देते विट ने कहा कि कामोद्दीपक होने से वे पीड़ा नहीं देते। विश्वलोक ने भीतर से विरक्त पर ऊपर से बनावटी प्रेम दिखाने वाली स्त्री के चिह्न पूछे। विट ने कहा—ऐसी स्त्री बिना कारण मुसकराती है, दूसरी का नाम ले लेने पर तमक कर उठ जाती है, अनमनी होकर सुनती है, समझती नहीं, गाढ़ आलिंगन देकर भी बीचमें छोड़ देती है। यदि स्त्री का राग कम हो जाय तो क्या उपाय करना चाहिए, इसके उत्तरमें विटने कहा—अन्य स्त्री का सेवन रति में शिथिलता, धीर बनकर बैठ जाना, भगडा कर लेना, कभी क्षमा दिखाना, साथ गोष्ठी करना, इत्यादि शिथिल प्रेम उभाड़ देते हैं। उसके वधुओं की पूजा करना, चालुरी भरी बातें, कभी कभी उसकी प्रशंसा, वेश्या का बहाना करने परसे प्रवास, भारी जोखिम के काम में अपने को डाल देना, उसके साथ राजधानी की सैर, और जी खोलकर दान, इनसे स्त्री का शिथिल राग भी फिरसे जग उठता है। बाला लडकान से, लोभी दान से, अकड़बाज सेवा से तथा अनुकूल अनुकूलता से बस में आती है। विश्वलोक के यह पूछने पर कि जो स्त्री काम चिह्न दिखलाने पर भी वश में नहीं आती, ऐसी मानिनी स्त्री को कैसे वश में करना चाहिए, विट ने कहा कि ऐसी स्त्री को शून्य में अगमर्दन से, मीठी बातें करके, छल से अथवा मन की बात छिपा कर वश में करना चाहिए। विश्वलोक ने फिर पूछा कि प्रेम चार तरह के होते हैं यथा—प्रथम समागम का प्रेम, क्रोध के बाद का प्रेम, प्रवास के समय का प्रेम और प्रवास से छोटने के बाद का प्रेम, इनमें विट की राय में कौन सा प्रेम अधिक महत्त्व का था ? विट ने जवाब दिया कि प्रथम समागम का प्रेम स्त्री के अनजानी होने से खतरे से भरा होता है, प्रवास काल का प्रेम कठणामय होने से ठीक नहीं, प्रवास काल के बाद की रति शृंगार विहीन और लज्जाविहीन होनेसे स्त्री का प्रेम कम करने वाली होती है, पर क्रोध चले जाने पर समरसतासे रति प्रशंसनीय है। विश्वलोक के यह पूछने पर कि वेश्याओं से बचने का क्या उपाय है विट ने कायस्थ और वेश्या की समानता करते हुए बताया कि छिद्र देकर दोनों प्रहार करते हैं, पर जहाँ कायस्थ मुट्ठी गरम होने पर कुछ देर सुप्त से बैठने देता है वहाँ वेश्या बराबर पर्व करता रहती है, इसलिए धूर्तों को ही वेश में जाना चाहिए। धूर्त प्रोढ़ाओं का विश्वास नहीं करता, माता (पाला) से नियंत्रित होने से अलग रहता है। उसे अपमान का क्षोभ नहीं होता, न सत्कार का आदर। वह बूढ़ा होने पर भी वेशमें रकम नहीं उड़ाता। विश्वलोक के यह पूछने पर कि एक साथ दो स्त्रियाँ होने पर किसे रखना चाहिए विट ने जवाब दिया कि नई के आने पर भी पुरानी को नही छोड़ना चाहिए। अगर तुनक पर पुरानी चल दे तो नई की राय से उसे मनाना चाहिए। विश्वलोक के यह पूछने पर कि वेश में घूमने से ही वेश्याओं की चतुराई कैसे मापी जा सकती है, विट ने कहा कि आँखें ही चतुराई

ना देती है। तिरछी चितवन वाली की रति कठिन होती है, पर नखदात और दतदात से युक्त मोटे ओंठ वाली की रति सुगम है। जो कमर पर पाँचों हाथ रखे हो, और जिसकी एक बाँध ऊँची नीची हो ऐसी वेश्या विश्वसनीय है। पर जो आँचल से स्नान टककर घर की देहली पर एक पैर रख कर दरवाजे के बाहर अपना पैर निकाले हो वह वेश्या नहीं पैदा है। जो वेश्या किवाड़ की फुलिया पकड़कर ग्राहुपाश दिखलाती हुई नौबीन्ध ढोला करने अपनी नाभि दिखलाती है वह रति कातर होती है। लाल अगुलियों, साफ नारून, गाल पर रक्ता हाँथ, नाटकीय गाने, ललित गीत, पडकते ओंठ, मुसमान, चंचल चितवन, अशक्ति मुख, नाभि के नीचे साड़ी बाँधना, ये सब गाने रतिशीला को प्रगल्भता देती हैं। विश्वलक के फिर यह पूछने पर कि रनापनी और छिपे काम में कौन अच्छा है, मिटने कहा कि रनापनी काम केवल वेश्याघ्रा में होता है, पर छिपा काम वेश्या और कुलवधू दोनों में होता है। अनुरागसे उत्पन्न प्रेम हर एक को न चाहने वाली वेश्या को पसन्दा है। फिर वह कुछ लोगोंने इस मतका कि वेश्याने साथ प्रेम निराप होनेसे प्रच्छन्न रतिकी कोई आवश्यकता नहीं, प्रतिपाद करता है। फिर वेमन से खालाकी वजहसे वेश्या अनचाहेसे नेह लगाती है, पर अनुराग होनेपर ही वह ग्रमको प्रेमसे नेह जोड़ती है। स्वयं दूती बननेवाली, रातमें जागनेसे लाल आँखें वाली, रोती, पीपी और प्रेमभरी शिकावतों से काली स्त्री भी अनुराग योग्य होती है। विश्वलक ने प्रश्न किया कि रूपवती और अनुकूलमें कौन अच्छी, मिटने कहा कि ये दोनों स्त्रियोंमें सिंगार हैं। विश्वलक के यह पूछने पर कि शिष्टाचारकी वजहसे क्यों वेश्याएँ भले आदमियोंसे मिलने लायक नहीं मानी जाती, मिटने कहा कि काम बनानेने लिये उपचार होता है, जो कभी रमाशा भरा भी मजा देता है। विश्वलक के यह पूछने पर कि क्या वेश्याको दिया गया धन व्यर्थ जाता है, मिटने कहा कि धनका उपयोग दान, उपभोग और गाढ़नेमें होता है। इनमें दान और उपभोग ही ठीक हैं। अर्थ सुख प्राप्ति के लिए है और वह सुख वेश्या से मिलता है। कला इत्यादि और कामशास्त्र का ज्ञान होने से मनुष्य वेश में क्यों न जाय? विश्वलक ने कुछ स्मृतिकारों का उल्लेख करते हुए उनसे गाने में वितकी राय पूछी। मिटने कहा कि भोग की श्रेष्ठता से वेश्याएँ श्रेष्ठ हैं। सुख इसी जन्म में मिलता है, दूसरे जन्म में उसका मिलना सदेहजनक है, फिर उसमें क्या मजा? इसने गाने अनेक ऋतुभोगों वेश्याओंसे साथ मिलने वाले सुखाना मिट उल्लेख करता है (६४-११५),

इसके बाद मिट छोटकशी करता है। निचारे तरसरी जीरिसा के लिए चारिया की तरह एक दूसरे के पीछे चलने हुए बिना अपने देखे हुए भी 'स्वर्ग है' इस झूठी कल्पना से वायु, प्रगात, अग्निप्रवेश इत्यादि और जल, तर हाम और नियमों से स्वर्ग पाने की साधने हैं स्वर्ग में स्त्रियाँ हैं ता अवश्य, पर निराध और विरह ने अमाय में उनसे मजा नहीं मिलता। मुना जाता है कि स्वर्ग में वृद्ध साने के हैं, तब सनाय यह उठता है कि स्त्रियाँ मजादे किम चीज से जाती हैं। ममान का साना भला स्त्रियाँ की शाभा कैसे बढ़ा सकता है? मृत्युलाक में तो आने लगाए वृद्धों से पूछ मिलने हैं, पर सने के कठोर वृद्धों में बढ़ मजा कहाँ? यहाँ ता उपायम्भ से प्रीति पैदा हानी है पर वहाँ ता शायम्भ से अप्यराएँ करती हैं। यहाँ तो मान मनाने के लिये उपाय सचे जाते हैं, पर इन्हीं रहित स्वर्ग में यह बात कहाँ? यहाँ की त्रास बात है ऐमिसा की गाढ़ में निद्रा। जहाँ पत्थर कभी नहीं भरती ऐमे स्वर्ग में बढ़

मुख कहाँ ? शराभ न होने तो स्वर्ग में पहुँची बातें भी नहीं की जा सकती। नव-वधू के साथ रतिमुख भी स्वर्ग में नहीं मिलता। बूढ़े श्रोत्रिया के साथ बैठने को भले हो तैयार हो जाया जाय पर स्वर्ग में अगस्त्यों के साथ नहीं। वहाँ बूढ़ी अप्सराएँ सस्रुत उगारती हैं। वसिष्ठ, अगस्त्य इत्यादि की माताओं से मुखभाग की कौन बात कर सकता है ? इसलिये काम के लिये यद प्रथिवी ही ठीक है (११५-११८)।

मुन-दा ने यह सब प्रश्नोत्तर सुनकर उसे रोकना चाहा, पर अपनी स्त्री के काँप के बहाने जब विट जाने को उठ पड़ा हुआ तब मुनन्दा और विश्वलोक उसने पैरों पर गिर पड़े। यहीं माण्य समाप्त हो जाता है (११९-१२०)।

उभयाभिसारिका—धरुचि कृत उभयाभिसारिका माण्य में सूत्रधार के बाद विट का प्रवेश होता है। आते ही वह कोयल, आम, अशोक, फूल, अच्छी सुरा, चन्द्र और भीरों से भरे वसन्त की प्रशंसा करता है। वसन्त में कामीजन आपस में दोग साध रहे थे, दूतिथों बेरोकताक इधर उधर घूम रही थीं तथा मणिमुक्ता, मलमल, हार और चन्दन के भाव बढ़ रहे थे। सागरदत्त सेठके पुत्र कुबेरदत्त ने नारायणदत्ता से अनघन हो जाने से अपने सहकारक नाम के सेवक का उसके पास भेजा था। नाराजी का कारण यह था कि कुबेरदत्तने नारायण के मन्दिर में मदनाराधन के लिए मदनसेना का जलसा किया जिससे नारायणदत्ता को यह भ्रम हा गया कि उसका पार उसे छोड़कर दूसरे की प्रशंसा करता है। कुबेरदत्तके उसने पैरों पर गिरने की परवाह न कर वह अपने घर चली गई। उसने दुप्री होकर विट से यह प्रार्थना की कि वह उसकी उससे मुलह करा दे। सन्ध्या के समय काम बनाने के लिए निरुल्लेखपर तैयार उसको उसकी स्त्री ने राकना चाहा, पर वह यह सोचकर भी कि प्रेमीयुगल को मनाने के लिए उनके गुण और वसन्त ही काफी थे बाहर निकल पड़ा (१२२-१२३)।

त्रि ने पाटलिपुत्र के राजमार्ग पर पहुँचते ही उसकी प्रशंसा की (१२५-११५)। रास्ते में उसने गतिखेद से थकी चारणदासी की पुत्री अनगदत्ता को नपे तुले कदम रखते देखा। पहले तो उसने त्रि को नहीं देखा पर बाद में वह उसकी ओर मुड़ी और उसे बतलाया कि वह महामात्रपुत्र नागदत्त के घर से आ रही थी। इसपर त्रि ने कहा कि वह तो कगाल हो चुका था, शायद इसीलिए अनगदत्ता की माँ उससे नाराज थी, पर वैशिक शासन की परवाह न करते हुए उसका अपने प्रेमी से मिलना ठीक ही था। विट ने उसकी माँ का मनाने का वादा करके उससे छुट्टी ली (१२५-१२७)।

अनगदत्ता का आसोस देकर आगे बढ़ने पर विट ने विष्णुदत्ता की पुत्री माधवसेना को देखा जा पीछे लगे अपने परिजनों की परगाह किए बिना विट की तरफ आ रही थी। उसकी सूरत देखकर त्रि ने अनुमान किया कि वह अपनी खाली को लालच से अनचाहे का सग करके दुखी थी। विट ने पूछने पर उसने बतलाया कि वह धनदत्त सार्थवाह के पुत्र समुद्रदत्त के घर से आ रही थी। त्रि ने कहा कि वह तो उस बमाने का कुबेर था पर माधव सेना ने उसकी बात अनमुनी कर दी। वह ताढ़ गया कि उसका अनुमान ठीक था। उसने कहा कि धन के लिए अनचाहे का प्रेम पेश्या का धर्म था। माधवसेना ने जवाब दिया कि त्रि भी उसकी माता से सहमत था। इसपर उसकी माता को समझाने का वादा करके वह आगे बढ़ा (१२७-१२९)।

इस पर अपना काम समाप्त करके उसका काम पूरा करने का वादा करके विट आगे बढ़ा (१३८-१४०) ।

धनमित्र से छुटकारा पाने के बाद विट ने किसी कोकिल कठो का गाना सुना । उसे पता लगा कि वह गाने वाली प्रियगुप्तेना थी । उसने उसकी सुन्दरता की प्रशंसा की । इस पर लजाकर उसने कहा कि कुसुमपुर के राजा के यहाँ पुरन्दर विजय नामक संगीतज्ञ में देवदत्ता के साथ उसे भी ब्रयाना मिला था; उसकी इस बदती का कारण विट ही था । पर विटने जराब दिया कि उसकी बदती का कारण उसका यार रामसेन था । फिर नृत्तांगों का वर्णन करते हुए विट ने कहा कि नाचना तो अलग, उसके नखरे ही काफी थे (१४०-१४३)

प्रियगुप्तेना से छुट्टी पाकर नारायणदत्ता की चेरी कनकलता से विट की भेंट हुई । दण्डप्रणाम के बाद उसने बताया कि उसकी मालकिन ईश्यायश महाना पहिरना छोड़कर अशोक वनिका में जब एक पेड़ के नीचे बैठी थी उसी समय कोई वसंत का गीत गाता हुआ उधर से निकल गया । गीत सुनते ही उसका मान ढीला पड़ गया और वह कनकलता की अपने साथ लेकर अपने प्यारे से मिलने चली । उसी तरह कुबेरदत्त भी उससे मिलने चला । दोनों की भेंट वीणानार्य विश्वावमुदत्त के यहाँ हो गई । विट कनकलता के साथ कुबेरदत्त और नारायणदत्ता से मिला । इसके बाद भरत वाक्य के साथ भाग समाप्त होता है (१४३-१४७)

पादताडितकम् ।

श्यामिलक के पादताडितकम् में भाग का आरम्भ सूत्रधार की काम स्तुति द्वारा होता है । आगे चलकर वह श्यामिलक की काव्य रचना में उस परिश्रम का उल्लेख करता है जिसका पुरस्कार भले आदमियों के आँसू हैं (१४६-१५०)

भाग का उद्देश्य राजपुत्र, आर्य और सत्तों को धता बताकर डिडिक, विट और हँसोडों को प्रसन्न करना था । श्यामिलक की राय में रो धो कर कोई स्वर्ग नहीं पाता, न जुहलवाजी स्वर्ग के रास्ते में रोड़ा अटकाती है (१५०-१५१) ।

इतने में सूत्रधार को विदो की बैठक की आवाज सुनाई देती है । कान लगाने पर उसे पता चला कि धूर्तों का सरदार श्यामिलक घटा बजा रहा है । प्रिया के द्वारा प्रियतम के सिर पर पैर रखने की जय जयकार मनाता हुआ सूत्रधार चला गया । (१५१-१५२)

इसके बाद विट कामिनी के चरणप्रहार की जय जयकार करता हुआ घुसता है । उसे दद्रुण माधव से इस बात का पता चला कि सुराष्ट्र की मुख्य वेश्या मदनसेना द्वारा ताँडि-कोकि विष्णुनाग के सिर पर पैर रख देने पर विष्णुनाग अपने पतिन और पिता माता द्वारा लालित सिर के इस घोर अपमान से बड़ा नाराज हुआ । मदनसेनिका उसका क्रोध देखकर उससे पैरों पर गिर पड़ी, पर क्रोध से उसने ऐसा करने का मनाही कर दी । विट ने यह सब सुनकर कहा कि शायद वह उससे पीछे महामात्रपुत्र और शासनाधिकृत होने से लगी थी । दद्रुणमाधव ने विष्णुनाग को पत्कारा और मदनसेनिका को दिलावा देकर कहा कि वह उसके लायक नहीं थी क्योंकि पादताडन और कर्णांतरल की मार तो कामियों का साधारण खेल था । इस पर प्रसन्न होकर वह अपने पलंग पर चली गई । दूसरे दिन दद्रुणमाधव नहा धोकर ब्राह्मणपीठिका पहुँचा । वहाँ उसने विष्णुनाग का वेश्या की लात लगने के पाप के प्रायश्चित के लिए त्रैविद्य ब्राह्मणों की दुहाई देते सुना । ब्राह्मणों ने उससे हँसकर कहा कि ऐसे प्रायश्चित

का विधान उनसे पास नहीं है। उसके फिर रोने चिल्लाने पर ब्राह्मण आपस में इशारा करते हैंस पड़े। इतने में शाहिल्य भवस्वामी नामक एक हँसोड़े आचार्य ने धर्मशास्त्र का प्रमाण उद्धृत करते हुए उसे विटों के पास प्रायश्चित्त की व्यवस्था के लिए जाने को कहा। विष्णुनाथ यह सुनकर चला गया। दद्रुणमाधव ने विट से कहा कि विटों की सभा बुलाने का काम उसे सौंपा गया था। विट की व्याख्या पूछने पर उसने विट शब्द की व्याख्या करते हुए विटों की श्रेणी में तत्कालीन बड़े बड़े राजकर्मचारियों और सामंतों के नाम गिनाए। उनमें दयितविष्णु का नाम लेते ही दद्रुणमाधव चमका और उसकी स्वामिमत्ति और देवभक्ति की बात चलाई। पर विट ने उससे वेश्या-प्रेम का हवाला देकर उसे विट सिद्ध किया (१५२-१६१)।

दद्रुणमाधव से बिदा होकर विट सार्वभौम नगरकी प्रशंसा करता है और वहाँ रहने वाली देशी विदेशी वेश्याओं की तालिका देता है (१३२-१६३)। सार्वभौमनगर के रास्ते में उसे पालकी पर चढ़ा हुआ पवित्रता का ढोंग साधने वाला विष्णुदास दिखलाई पड़ गया। उसके पास छुट्टी और कुण्डी होने से वह वैष्णव मालूम पड़ता था। ध्यान और अभ्यास के फेर में पड़कर वह न्यायाधीश का काम ठीक तरह से नहीं कर सकता था। विट को देखते ही वह पालकी से उतर पड़ा। इस पर विट ने उससे उसकी रखेली अनंगसेना के निमुल होने का कारण पूछा। उसके उत्तर का हाल सुनकर विट हँसकर आगे बढ़ा (१६३-१६५)।

विष्णुदास से बिदा होने के बाद विट सार्वभौम नगर के बाजार का वर्णन करता है। भीड़ भाड़ से घबराकर उसने पुष्पवीथिका में हाँते हुए पूर्णभद्र श्रृंगटक लौट कर मकरस्थला से वेश के रास्ते पहुँचने का इरादा किया (१६६-१६७)।

पानागार में उसने शाहिकपुत्र बाण को यौधेय के मृदञ्जिने और बजानेवालों के साथ शराब का घड़ा उठाकर नाचते गाते हुए देखा। विट ने उसे कभी होश में नहीं देखा था। वह निर्लज्ज गजक लेकर शरावियों के बीच घुसता था (१६८-१६९)।

बाण से बिना बोले ही विट ने आगे बढ़कर कामदेव के मन्दिर से पुरानी वेश्या सरणिगुप्ताको उतरते देखा। खुले सफेद बाल वाली वह तुरत से धुले कपड़े पहन कर मकरवाहिनी की प्रदक्षिणा कर रही थी। उसकी ज्वानी चली गई थी, पर नखरे नहीं। उसका यार मृदगिया स्थाणुमित्र था (१६९-१७१)।

सरणिगुप्ता को छोड़कर विट वेश में पहुँचा जिसका वह लम्बा चौड़ा वर्णन देता है (१७१-१७८)। उससे मिलकर भद्रा नाम की गणिका ने उसके न मिलने और धोखा देने की शिकायत की। उसे टालकर वह आगे बढ़ा।

रास्ते में विट को काकायन वैद्य ईशानचन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र मिला। वह अपनी प्रणयिनी यशोमतिकी की बहिन प्रियगुपटिका को चाहता था। पूछने पर उसने बताया कि वह उसके सिर दर्द को दवा करने जा रहा था। इस पर विट ने सिर दर्द को वेश्याओं का एक बहाना कहा। मष्ट जीमूतवाहन के यहाँ आने का न्योता देने पर उसने कहा कि उसे सब पता था (१७८-१८१)।

इसके बाद विट ने हूण न होते हुए भी हूणों का वेप धारण किए हुए सेनापति सेनक के पुत्र आर्यघोटक मधवर्मा को पाटलिपुत्र की वेश्या पुष्पदासी का दरवाजा खोलते देखा। वह लाट के डिडियों (गुडों) से घिरा था। विट के आवाज देने पर मष्टि मधवर्मा ने कहा कि प्रतिहारियोंसे घिरे रहने से विट उसे राजा समझता था। पर उसका ऐश्वर्य तो कभी का घट

लुका था। विट का उसने स्वागत किया पर ऋतुमती पुष्पदासी के साथ रति करने से विट ने उसपर और लाटो पर फव्वारियाँ कहीं (१८१-१८७)।

भट्टि मधवर्मा से छुटकारा पाकर विट ने वासी की मुख्य वेश्या पराक्रमिका को विच्छेद्योला बजाते देखा जिससे मयूर आकृष्ट हो रहे थे। उसके घर से इन्द्रस्वामी का रहस्य-सचिव हिरण्यगर्भक हड़बड़ा कर निकल रहा था। विट के ललकैरने पर कि वह वेश को अपरातकी से क्यों ध्वस्त कराना चाहता था, उसने जवाब दिया कि पहले तो पराक्रमिका का भाड़ा पाँच सौ मुद्रा था, पर अब तो वह हजार पर भी नहीं मानती थी। बिट ने उसे घतलाया कि अपने मालिक का चामरग्राहिणी कुडंकदासी से प्रेम हो जाने से वह दुःखी थी। काव्य, संगीत और नृत्य शास्त्र में प्रवीण कोंकण के स्वामीको भला कौन वेश्या नहीं चाहती थी? पर कुछ भी करने पर वेश्या के श्रॉगन में भगदत्त और इन्द्रदत्त एक थे। पराक्रमिका इन्द्रस्वामी के साले सिंहवर्मा से प्रेम करके उसे लज्जित कर रही थी। हिरण्यगर्भक ने यह कहकर कि यह उसने मनाने के प्रयत्न में था उससे बिदा ली (१८७-१९२)।

इसके बाद विट ने शूर्पारक की वेश्या सुमदासी के घर से आते हुए, डिंडिमों से घिरे, बाहिकों और कालूपमलहों के स्वामी, महाप्रतिहार भद्रायुध को देखा। खूब सजकर वह लाटों के योग्य ज-ज-ज उच्चारण में बात कर रहा था। उसने अपरांत, शक, मालव के राजाओं को हराकर कालांतर में भगघ लौटकर भगघ कुलका ऐश्वर्य बढ़ाया था। अपरांत की स्त्रियाँ बेलकूल पर उसका चरित गाती थीं। (१९३-१९५)

इसके बाद विट ने चित्रकार निरपेक्ष की प्रयुक्त के मंदिर की ध्वजा चित्रित करते देखा। देखते ही वह डिंडिमों की चित्रकला को गाली देने लगा और उसे अपनी प्रेमिका राधिका को मनाने का उपदेश दिया (१९६-२०१)।

निरपेक्ष के बाद विटकी भेंट दाशेरकाधिवसि के पुत्र गुप्तकुल के दूत से हुई। वह गंदे कपड़े पहने मूली खा रहा था। वेश का पता पूछने पर विट ने उसे लावणिकापण में गणिका हूँडने को कहा (२०१-२०४)।

गुप्तकुल से मिलने के बाद विट ने अपनी पुरानी प्रेमिका शूरसेना की बगीची में घुस कर शिलातल पर लिखा एक श्लोक पढ़ा। इतने में सजी-धजी शूरसेना विट का स्वागत करके उसके गगल में बैठ गई। जब उलाहना देते हुए विट ने श्लोक का मतलब पूछा तो उसने कहा कि उसकी सखी कुसुमावतिका का गहरा प्रेम चित्राचार्य शिवस्वामी से हो गया था। एक दिन शिवस्वामी सोने पर यौही कुजलकी बात करता रहा और छेड़ने पर भी जरा नहीं टसका। जब शूरसेना ने पञ्चपाल प्रतिहार से श्लोक भेजकर खबर पुछवाई तो उसने स्वयं आकर बतलाया कि उसके छेड़लानियों करने पर भी जब शिवस्वामी नहीं टसका तो वह रो पड़ी। इस पर शिवस्वामी ने दिलासा देकर कहा कि चर्चा घटाने के लिए गुग्गुल के सेवन से ही उसकी ऐसी दशा हो गई गी। विट उस पर हँस कर आगे बढ़ा (२०५-२१०)।

इसके बाद वेश कन्यकाओं को देखते हुए विट ने मोटे ताजे उपगुप्त को देख कर उसका गजाक उड़ाते हुए उसके उपनाम हरिकृष्ण, हरिभूति और दत्तिगुप्त लेते हुए उसकी तुलना जंगली गेंदे और फूजी मशक से की। विट को यह समझ में नहीं आया कि गंगा यमुना की चामर-ग्राहिणी मुस्तकवाचिका मदयन्ती त्रैविचवृद्ध पुस्तक वाचक को छोड़ कर बूढ़ी

होकर भी उपगुप्त से क्यों पैस गई । पुस्तक वाचक को देखकर विट ने कहा कि उसे मालूम था कि उसकी सास ने उस पर अदालत में नालिश कर दी थी । पुस्तकवाचक ने अदालत की तकलीफों का बयान करते हुए ग्रन्थाति विष्णुदास, उसके भाई कोट्ट, अधिकृत, पुस्तपाल, काष्ठ महत्तर, कायस्थ इत्यादि का उल्लेख किया । इस पर हँस कर विट ने उसे विदा किया (२१०-२१५) ।

इसके बाद उसने लाट में एक आदमी को जो शर्करापाल के घर में चर्मकार कीर और कोट्ट चेटी से पैदा होकर शर्करापाल को अपना पिता और निरपेक्ष को अपना भाई बताता था, रईसी डाट में देखा । बूढ़े हरिदत्त से उसने उसका नाम पूछा, पर पता नहीं चला (२१५-२१६) ।

धूमते-धामते विट अपने मित्र राम के घर पहुँचा जो मित्रों के डर से अपने घर का दरवाजा बन्द करके रहता था । पर भीतर से गहनों की झंकार सुन कर उसने भीतर घुसने का विचार छोड़ दिया (२१७) ।

इसके बाद विट ने दुगले पतले, काले तोंडिकौकि सूर्यनाग को देखा । मित्र को देखते ही वह मुँह छिपा कर भागा । उसका कारण यह था कि तीन दिन पहले पताका वेश्याओं ने उस पर मुकदमा चलाया था और वह स्तेच्छ अरबबन्धक आशुषिकों द्वारा पकड़ कर अदालत में लाया गया था जहाँ मलदशक स्वन्धकीर्ति ने यह कह कर कि वह उसके स्वामी विष्णु का साहू था उसे बचाया । विट के उसने चक्के में आने का कारण पूछने पर सूर्यनाग ने कहा कि वह अपने मामा हरिदत्त की बीमार रखेली का हालचाल लेने आया था । पर विट ने कहा कि उसका मामा तो जेल में बन्द था । मित्र को इस बात का पता था कि वह रूपदासी की परिचरिका कुब्जा से पैसा था । इसके बाद मित्र ने उसके टकहिया (पताका) वेश्याओं के यहाँ जाने की बात चलाई । इस पर वह हँस कर चला गया (२१७-२२३) ।

इसने बाद विट ने सिंहल की मयूरसेना के घर से निदम के तन्त्रर हरिशूद्र को रस सज सजाकर निकलते देखा । उसे नगी तन्त्रर लिपि हुए दाक्षिणात्य घेरे हुए थे । कावेरिका के सत्र के मयूरसेना उससे क्रुद्ध थी । विट ने उससे कहा कि मयूरसेना को द्रविड देश की कावेरिका को छोड़ कर उसने ठीक नहीं किया पर हरिशूद्र ने बताया कि उसका मयूरसेना से मेल हो गया था । उसका कारण यह था कि तीन दिन पहले वेश्याप्यक्ष द्रीणिलक के यहाँ जलते में शराब ने नदी में लामक उपचन्द्रक ने मयूरसेना के नाच म दोष दिखलाया । सत्र समाजी उसने पक्ष में थे पर हरिशूद्र ने उसका पक्ष लिखा और प्राशिनक ने भी उसका साथ दिया । इनाम पाकर जब मयूरसेना घर जाने लगी तो कावेरिका ने हरिशूद्र पर ताना माया । घर पहुँच कर वह मयूरसेना के बारे में सोच ही रहा था कि उसने पीछे स आकर उसकी अर्पित बन्द कर ली । हरिशूद्र ने उसके पैर घोर घर्षण पात्रसे उनमें आल्ला लगाया । इसके बाद दोनों ने मीठा की । मित्र ने उससे विष्णुनाग के प्राशश्चित्त में शामिल होने की कश पर उसने हँसी में बात टाल दी (२२३-२२९) ।

मित्र का घूमते घामते शाम हो गई और उसने चक्के की अपूर्व शामा देती (२२९-२३६) । उसने चक्के की गली में शकटुमार जयतरु के साथ घट्टामी बर्बरिका को देखा । वह घटी काली थी, निर बयनक उसमें कैम पग, हम बात को फेर उमने सौराष्ट्रिक, बन्दर और बर्बर की ममानता की (२३६-२३७) । हमने बाद उमने रस

यनी ठनी राका को आभीलक मथूरकुमार के साथ चन्द्रशाला में क्रीडा करते देखा (२३७-२३८)।

इसके बाद विट ने शार्दूलवर्मा के पुत्र वरहदास की खेली यवनी कर्पूरतुष्टि को जा अपनी तीन अंगुलियों से चपक पकड़े कपोल पर गिरते कुण्डल सँभाल रही थी देखा। उसने बाल और श्रोतों भूरो थी। वह मधुपान में अपनी परछाईं देखाती हुई नलों से लट्टे खिखेरती अपने गालों पर मद की लाली को आलता समझ कर खोल रही थी। विट ने मजाक में कहा कि मालव और यवनी की अच्छी जोड़ी मिली थी। पहचान होने पर भी उसकी भाषा न समझ सकने से उसने उससे मिलना व्यर्थ गमभा (२३८-२४०)।

रास्ते में विट ने देखा कि इम्हपुत्र विटप्रयाल बाला को हाथी पर चढा कर ले जा रहा था। वह अपने पिता के नाराज होने पर भी उसका साथ करता था। डिडी उसके साथी थे (२४०-२४१)।

घूम घूम कर विट भट्टि जीमूत के घर आ घमका। उसके दरवाजे पर विटों की सवा रियाँ झकझी थीं और चौंकी के कलशों से सेवक आगन्तुकों के पैर धुला रहे थे। घर में फूल बिखेरे जा रहे थे, दीपक जलाए जा रहे थे घूप घुमाई जा रही थी, गाना हो रहा था, लोग आपस में हँस भँद रहे थे, चदन बाँटा जा रहा था, घर्णक पोता जा रहा था, अंतर लगाया जा रहा था, चूर्ण उडाय़ा जा रहा था और विट वेश्याओं से परिहास कर रहे थे (२४१-२४२)।

विट ने कामदेव की प्रार्थना करके उनसे विष्णुनाग के प्रायश्चित्त की व्यवस्था देने को कहा। उसका पाप सुन कर विट लोग अपनी हँसी छिपा कर गम्भीर बन गए और भट्टि जीमूत त्रास बढ़ाने लगा। उनकी आज्ञा से कि लोगों से बातचीत करने लगा। धात्रिक अनन्तकथ ने कहा कि विष्णुनाग जैसे पशु के सिर पर पैर रखने में कसूर मदनसेनिका का ही था। महत्त्वामी ने अपनी गुडई का बजान करते हुए कहा कि मदनसेनिका प्रायश्चित्त करे पर वह बैठा दिया गया। काशी कोशल, भर्ग और निपाद नगर में अपना काव्य बेचने वाले शैव आर्यरक्षित ने कहा कि बकुल को पुष्पित करने वाला मदिरा का मुह्ला भला उसको कैसे शोभ सकता था। विट भवकीर्ति ने सुझाव रखा कि मेपला दाम से वैध कर वह उसका पैर दबावे। पर गन्धर्वसेनक ने, जो वीणा सिलाते समय रईसों के घरों की स्त्रियों की अंगुलियों के छूने का मजा लेता था, कहा कि वेश्या की रशना उस गधे को बाँधने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी। दाक्षिणात्य कवि आर्यक ने सुझाव दिया कि मदनसेनिका का विष्णुनाग के सिर पर कर्णात्पल ताडन करना चाहिए। यह सुन कर गन्धार के इस्तिमूर्त ने कहा कि कर्णात्पल की रज से उसका प्रायश्चित्त कैसे हो सकता था। एक ही आसन पर बैठे गुप्त और महेश्वरदत्त जो वर रुचि के वाक्य की नकल करते थे बीच में बोल उठे। गुप्त ने कहा कि मदनसेनिका के चरणों के धोवन से उसका सिर धोना चाहिए, पर महेश्वरदत्त ने इसका खण्डन किया। दारोपक कवि रुद्रधर्मा ने सल्ला दी कि उसका सिर मुड़ा दिया जाय। यह सुन कर विष्णुनाग ने कहा कि सिर मुड़ाने से उसे क्या देना अच्छा। इस पर भट्टि जीमूत ने कहा कि यदि मेरे सिर पर मदनसेनिका का पैर रख दे तो विष्णुनाग का प्रायश्चित्त हो जायगा। यह व्यवस्था सुनकर सब वाह वाह करने लगे और विष्णुनाग धन्यवाद देकर चलता बना। इसने बाद जीमूत के आशीर्वाद के साथ माण समाप्त होता है।

चतुर्भाषी के भाषों के समय और भाषा इत्यादि की हम विस्तारपूर्वक व्याख्या कर चुके हैं। पर इन भाषाओं में तत्कालीन भूगोल, नगर व्यवस्था, वेशभूषा, धर्म, संगीत तथा सबसे अधिक देश जीवन सम्बन्धी ऐसे अनेक उल्लेख आए हैं जिनसे गुप्तकालीन संस्कृति का एक जीता जागता रूप हमारे सामने खड़ा हो जाता है। चतुर्भाषी में वर्णित वेश संस्कृति की वास्तविकता का पता हमें वात्स्यायन के कामसूत्र, सूत्रक के मृच्छकटिक, बुधभट्ट के बृहत्-कथाश्लोकसंग्रह, सघदास महत्तर के वसुदेवहिंड़ी, बाण के हर्षचरित और कादम्बरी तथा दण्डी के दशकुमारचरित में आए देश सम्बन्धी वर्णनों की तुलना से लग जाता है। ईस्वी चौथी सदी से सातवीं सदी तक संस्कृत और प्राकृत के कथा ग्रन्थों में तत्कालीन समाज का जीता जागता रसका खींचने की प्रथा चल गई थी। गुप्तकालीन संस्कृति और समाज के अध्ययन के लिए उपर्युक्त सामग्री अनमोल कही जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। इन ग्रन्थों में भारतीय जीवन की एकसूत्रता स्थापित की गई है। उसकी सचाई इस बात से भी सिद्ध हो जाती है कि तत्कालीन मूर्ति और चित्रकला उसके भाषा का स्पष्टीकरण करती हैं। रुढ़िगत होने से संस्कृत नाटकों में हम तत्कालीन जीवन का एक धुंधला चित्र देखते हैं क्योंकि नायक और नायिका तथा इतर पात्र भी भरत ने नाट्यानुशासन से जकड़े मालूम पड़ते हैं। पर चतुर्भाषी के भाषा ही ऐसे हैं जिनमें हम जीती जागती दुनियाँ और उसमें रहने वाले वेश्यामत्तों, दोगियों, गुण्डों, त्रिगों इत्यादि ने मनमोहक चित्र देकर सस्ते हैं। यह जीवन कितना सच्चा था इसका पता आगे चलकर पाठकों को लग जायगा।

हम पहले कह आए हैं कि पद्मप्राभृतकम् और पादताडितकम् का कथास्थल उज्जयिनी थी। इन दोनों भाषाओं में नगर की एक जीती जागती तस्वीर हमारे सामने खड़ी हो जाती है। पद्मप्राभृतकम् में विट उज्जयिनी को अवतिमुन्दरो कहकर जम्बूद्वीप के गालों की परलेला से उसकी उपमा देता है। यह उस नगर के वेदाम्यास, हाथी घोड़ों और रथों की आवाज, विद्वानों के शास्त्रार्थ, दूकानों (त्रिपणि) पर चारों समुद्रों के माल की गाहफ़ी, गाना बजाना, जुआ, हँसी टट्टा, विगों की कहानियाँ तथा करघनों और कढ़ों तथा क्रीडापद्धतियों के क्लरव से घरों की तारीफ़ करता है (६)। वहाँ की पुष्पग्रीष्म में पद्म, सितमुकुल, नगोत्पल, रत्नाशोक, फूलों के गुच्छे, आपीड, मालाएँ इत्यादि विकती थी (२५)। वहाँ कामदेव का मन्दिर था जहाँ नाच जलसा होता था (३५)।

पादताडितकम् में मार्गमौम नगर यानी उज्जयिनी का वर्णन और बड़ा-बड़ा कर किया गया है। विट उसे जम्बूद्वीप का तिलक कहता है, उसकी विभूति का कारण अनेक युद्ध थे और वह सार्वभौम नरेश के रहने की जगह थी। नगर संगीत, गहनों की भूत्कार, क्रीडासद्विधानों के क्लरव, स्वाध्याय की घुमि, धनुष की टट्टार, कसाईखाने के शार, कलाओं के भीतर अभिनेत्रियों की आवाज से भरा था। वहाँ पहाड़ों, द्वीपों, समुद्री किनारों और रेगिस्तानों से आकर राजा घम गए थे। वहाँ शर, यवन तुषार, पारसीक जैसे निदेशा, पूर्व भारत के मगध, क्रिगत, कलिंग, धग और काश्य लाग तथा दक्षिण भारत के महिषक, चोल्क, पाण्ड्य और नेरल भी रहते थे (१६२-१६३)। सार्वभौम नगर का बाजार (त्रिपणि) अनेक देशों के स्थल जल मार्ग से आए बहिया घणिया (सार फल्लु) माल न खरीदने बेचनेवालों से भरा था जिनसे वहाँ बड़ा शोर मच रहा था। कारीगरों (कमार त्रिपणि) में खराद पर चढ़ (भ्रमारुद) कोंसे

के बरतनों की सरसरहट और हथियारों के सिकल से सॉय सॉय आवाजें या रही थीं। दूकानों में फूल विक रहे थे, पानागारों में लोग प्याले चढ़ा रहे थे, हाँकने पर भी कसाईखानों पर पत्नी टूट रहे थे। लोग आपस में बहस करते हुए कपों से कंधे सगकर चल रहे थे तथा जूए में जीतनेवालों के पास परिचारक घूए मौंस और आसन लेकर आ रहे थे (१६६-१६७)। बिन् का नगर का पूरा पता या इसीलिए मीठ से घनडाकर पुष्पशोथिका होते हुए पाना गारों को दाहिनी ओर छोड़कर पूर्णभद्र शृंगटक डक्किकर मकररथ्या के रास्ते उसने वेश में पहुँचने का इरादा किया (१६७)। लगता है राजनीधी में लवणिकापण में वेश्याएँ रहती थीं (२०४)। नगर में एक ब्राह्मण पीठिका थी जहाँ अनेक स्मृतिवा में पारगत नैविच ब्राह्मण प्रायश्चित की व्यवस्था देते थे (१५७)। नगर की इतनी त्रिभुति थी। वहाँ रहनेवालों में शिनि देश का कवि आर्यरक्षित (१५६, २५०), दाशेरक कद्रवर्मा (१५६ १५७) अरति का स्क दद्यामी, अरान्त का अधिपति इन्द्रवर्मा, इन्द्रदामी ग्रधवा इन्द्रदत्त भी था (१५६, १६०, १८६, १६२)। आनन्दपुर के कुमार अश्ववर्मा (१६०, १८३) सुराष्ट्र के जयनदक अथवा जयन्तक, बाह्लीक तथा काश्या मलद के स्वामी तथा अपरान्त शक और मालव राजाओं के विजेता महाप्रतिहार भद्रायुध (१६३, १६६), विदर्भ का तलवर हरिशूद्र (२२४) इत्यादि वहाँ रहते थे। नगर इतना समृद्ध था कि भारतवर्ष में चारों ओर से और बाहर से भी वहाँ वेश्याएँ आकर बस गई थीं। उनमें सुराष्ट्र की वासुदेवा मदन सेनिका (१५२), पाटलिपुत्र की पुष्पदासी (१८२), कश्यप की वारमुखा परान्तिका (१८७), सोपारा की रामदासी (१६३), सिहल की मयूरसेना (२२३), द्रविड देश की कावरीका (२२४), वन्नैरिका (२३६), यवनी कर्पूरमुष्टिका (२३८) थीं। वहाँ के ठाठ बाट से बिचकर रोहतक के बाजा बजानेवाले और बाह्लीक के नाचनेवाले भी वहाँ आ पहुँचते थे (१६८)। उज्जैन में कर्मदेव (६) और प्रद्युम्नकाम (१६६) के मंदिरों का उल्लेख है।

ऊपर जो भौगोलिक नाम आए हैं उनमें शक, तुषार, यवन, पारसीक, मगध, किरात कलिग (उडीसा) और काशी के लोग इतिहास प्रसिद्ध हैं। तुषार उस समय शायद बदख़्शान में रहते थे। किरात शब्द भोट वर्मा के रहनेवालों के लिए जातिवाचक शब्द है। दक्षिण भारत के लोगों में चोलक, पाण्ड्य और केरल क्रमशः तामिलनाड और मालाबार के बोधक हैं। मो० मीराशी ने हैदराबाद प्रदेश के कोडापुर और मल्की से मिले सिक्कों से तथा रामायण, महाभारत और वायुपुराण के आधारपर महिषमर्द्धक की पहचान दक्षिण हैदराबाद से की है। दाशेर देशसे साधारणतः दशपुर यानी आधुनिक मदसौरका बोध माना जाता है, पर श्रीसदानंद दीक्षितने हेमचन्द्र और यादव प्रकाश के आधारपर यह बतलाया है कि कम से कम मध्यकाल में दाशेरक शब्द मरुप्रदेश यानी मारवाड़ के रहनेवालों के लिए प्रयुक्त होता था। पर पद्मपुराण उत्तरखंड (७०।१५) के अनुसार मरुप्रदेश दाशेरक के पश्चिम में पड़ता था। आज दिन भी मारवाड़ मदसौर के इलाके के पश्चिम में पड़ता है। अवतिसे पूर्वा मालना, सुराष्ट्र से

आधुनिक सौराष्ट्र प्रदेश, आनन्दपुर से आधुनिक बडनगर, विदर्भ से मरार, अमरावती से काकण तथा शृंगारकसे जबई के पास के नालसोपारा का बोध होता है। साहित्य और पुराणों के आधार पर कुरु-मलद की पहचान हो सकती है। रामायण (१।२४।२५-२६) में मलद कुरु जनपदों में ताटका राजसी का निवास कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण (५७।३३) में मलद एक देशका नाम है। श्री पार्जित्य की राय में शुद्ध पाठ मलज होना चाहिए। ये मन्ज निहार के शाहाबाद जिले के वासी हैं। जैन सूत्रों का मल्य (जैन, बहो० पृ० ३१०) भी मलद या मलज ही है। भरत नाम्ब शास्त्र (१४।४४) में भी मलद का उल्लेख है। श्री पार्जित्यने कुरु देश की पहचान काशी और वत्सर दक्षिणमें, चेदि और मगध के बीच के पर्वतीय प्रदेशों की है। इसका माने यह हुए कि कुरु देश वह पहाड़ी इलाका था जिसका केन्द्र रीगा है, इसका विस्तार पश्चिममें केन नदी से लेकर पूर्व बिहार की सीमा तक पहुँचता था। उत्तर भारत के इलाकों में बाह्यीक यानी मल्ल और शिवि यानी पाकिस्तान में शेरकोटक पास का इलाका आ जाता है। बाहर के देशों में यवन, धर्मर यानी पूवा अफ्रिका और सिंहल आ जाते हैं। भर्ग और निपाद नगर का पता नहीं चलता।

उज्जयिनी का उपर्युक्त वर्णन गण की कादंबरी में दिए हुए उज्जयिनी के विवरण से बहुत कुछ मिलता है। गण के अनुसार वहाँ महाकाल का मंदिर था। उसके चारों ओर परिला थी, शहरपनाह पर चूना पुता हुआ था। वहाँ की दुकानों में शल, सीपी, माती, मूँगा, पन्ना और सोने का चूर्ण विक्रित थे। वहाँ की चित्रशाला देवता, दानव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और नागा के चित्रों से सजी थी। वहाँ गृहगणों के मंदिर सुवर्ण कलशों और ध्वजाओं से सजे थे। उपनगर (उपशाल्यक) में वावडियाँ थीं, जिनके चारों ओर वेदिकाएँ थीं। बागा में सिंघाई का प्रस्थ था। घरों में भी गीचे होते थे। काम न मंदिर में मकरनेतु लहराता था। धारागढ़ों से युक्त मकानों में मार नाचते थे, कमल पुष्पारिणियाँ थीं और उनके चारों ओर केले के वृक्ष लगे थे। वहाँ न नागरिकों ने सभा, आवसथ (धर्मशाला) प्रभा और मंदिर बनना रखे थे। नगर सेतु और यत्रों से सुसज्जित था। वहाँ के नागरिक सकल कलाओं में पारंगत और हँसोड़ थे। अच्छे कपड़े पहननेवाले, सब भाषाओं और लिपियों के जानकार और हाजिरजवाबी में कुशल थे। उन्होंने आख्यायिकाएँ, पुराण, रामायण, बृहत्कथा और बृहत् पञ्च रत्ना था। वे धूर्तनिष्ठा में कुशल, स्त्रियों ने चहेते और नाम्बनिष्ठा में कुशल थे। शहर माहरो, मदिरों, जूआखानों और काशुकों से भरा था।

शूद्रक के मृच्छकटिक में उज्जयिनी ने वर का जितना सुंदर चित्रण मिलता है उससे अनुरूप नगर का वर्णन नहीं के बराबर है। फिर भी उज्जयिनी के कामदेव न मंदिर का उसमें कई बार उल्लेख हुआ है। पहले अंक में शकार के अनुसार कामदेवायतन ने उद्यान में वसन्तसेना चाचदस को देखकर उस पर माहित हो गई थी। उसी अंक में त्रिदूषक भी उसी घटना की श्राव संकेत करता है।

धूर्त निष्ठा में पाण्डिपुत्र का वर्णन आया है। धूर्त निष्ठा में निष्ठा कहता है

१ दक्षिण, चैन, लाइफ इन एंशेंट इंडिया, पृ० २९६। २ पार्जित्य, दि मार्कण्डेय पुराण, पृ० ३०८ कु० नो० ३ १० पृ० पृ० ५० १८६५, भा० १, पृ० २४१। ४ कादंबरी, पृ० ८४ ८५, एम० आर० काले द्वारा संपादित बयह।

कि कुसुमपुर इतना प्रसिद्ध था कि केवल नगर कहने से उसका बोध हो जाता था। इस नगर में अनेक बड़ी बड़ी ऊँची इमारतें थीं तथा दूकान माल से हमेशा लज्जासच भरी रहती थीं। वहाँ के रहनेवाले दानी थे, कलाओं का वहाँ आदर था। स्त्रियों से लोग अनुकूल भावसे मिलते थे। वहाँ धनी, ईर्ष्यालु और मतवाले कम थे तथा लोग शिष्ट और गुणग्राही थे (६६-७०)। कुसुमपुर के राजमार्ग में विट की इतनी भीड़ मिली कि उसका पार पाना मुश्किल था। जो काँड़े उससे रास्ते में मिलता था वह जल्दी होने पर भी बिना बात किए नहीं जाता था। भीड़-भाड़ में भी लोग रास्ता दे देते थे। काम कर ख्याल करके कोई दूसरे को देर तक नहीं रोकता था क्योंकि पाटलिपुत्र के नागरिक दुनियादार थे (७४-७५)।

उभयभित्तिवासी में (१२४-१२५) भी कुसुमपुर का सुंदर वर्णन आया है। विट वैशिकाचल के अनुसार वहाँ की गलियाँ (रथ्या) खूब छिड़की हुई, राप सुपरी और फूलों से सजी थीं और दूकानें खरीददारों से भरी थी। वहाँ के प्रासाद वेद पाठ, संगीत और अनुपकार से गूँज रहे थे। कहीं कहीं ऊँचे प्रासादों की छिड़कियों से प्रमदाएँ बाहर भोंक रही थीं। महामात्र हाथी घोड़े और रथों पर सवार होकर इधर उधर आ जा रहे थे। युवकों की हृदय हारिणी प्रेम्ण दासियाँ घूम रही थीं तथा गलियों में नौचियाँ अपनी नल्लरे भरी चाल आजमा रही थीं। पाटलिपुत्र के गुणी, वने ठने, गधमाला से सजे और खेल कूद के रसिया नागरिक इधर-उधर घूम फिर रहे थे (१२५)।

नगरों के उपर्युक्त वर्णनों से पता चलता है कि गुप्त युग में और उसके बाद भी नगर वर्णन साहित्य में एक रुढ़ि सा बन गया था। नगर वर्णन में जैसा हम देख आए हैं नगर के राजमार्ग, शिल्पस्थान, बाजार, पुण्यवीथी, वहाँ होने वाली भीड़ भाड़ तथा तरह तरह के शोरगुल का वर्णन होता है। जैसा कि मिलिंद प्रश्न में शाकल के विस्तृत वर्णन से पता चलता है नगर वर्णन की प्रथा भारतीय साहित्य में ईसा की पहली दूसरी सदी में चल चुकी थी। वसुदेवहिंदी में गंगा के किनारे इलावर्द्धन नगर का वर्णन भी उपर्युक्त उज्जैन और पाटलिपुत्र के वर्णन जैसा ही है। नगर फलफूल और छाएदार बृक्षों से ढका था, उसकी बनावट बहुत सुन्दर थी, उसमें ऊँचा कोठ, दरवाजे, टाई और गोपुर थे। उसका राजमार्ग इतना चौड़ा था कि उस पर अनेक रथ आसानी से चल सकते थे और वह रसिक तथा नाना वेशधारी मनुष्यों से भरा था। वहाँ की दूकानों में दुकूल, चीनाशुक, हसलक्षण, कोशेय आदि वस्त्र, रंग विरंगे तूस, मणिशय, प्रवाल, सोने चाँदी के गहने और लुगन्धित द्रव्य विक्रय रहे थे।

पादताडितकम् मे बहुधा पश्चिम मारत और उसके बाहर रहने वालों की हँसी उड़ाई गई है। लाट के डिडियो को विट पिशाच से कम नहीं मानता। वे नगे होकर भीड़ में नहाते थे, अपने गाले कपड़े निचोड़ते थे, बिना पैर धोए शय्या पर चढ़ते थे, चलते हुए खाते थे, पटे हुए कपड़े पहनते थे और एक बार करने पर भी उसकी शेलो बघारते थे (१८४)। लाट के लोग यकार का जकार और सकार का शकार उच्चारण करते थे (१८४) वे लगता है धूँदे होने पर भी कीमती कपड़े पहनते थे (२१५)। लाट की स्त्रियों के धानों में

तालपत्र, वेणी के छोर में मणि मुक्ता और सोने से बने हेमगुन्ड होते थे। उसके स्तन और बाहुमूल कूर्पासक से कसे और नीची के बिनारे उसके नितम्बों पर पड़े होते थे (२३७)। सौराष्ट्रिकों, बानरों और बर्मों को निट एक ही राशि का मानता है (२३७)।

पर जैसा हम ऊपर कह आए हैं चतुर्भाणी का मुख्य उद्देश्य वेश और उसमें रहने वाली वेश्याओं, पिटों, तथा उसमें आने जाने वाले शौकीनों का वर्णन है। ईसा की प्रथम सदियों में वेश संस्कृति का काफी मान था। तत्कालीन साहित्य में वेश में जाने वालों को शिक्षा तो दी गई है पर वहाँ जाने में कोई विशेष बुराई नहीं मानी गयी है। मध्यकालीन भारत की तरह ही वेश नगर के एक विशेष भाग में अवस्थित होता था तथा अपनी सफाई, सुन्दरता और ऐशोभाराम के सामान से वह शहर के किसी भाग से टकर ले सकता था। पद्म प्राभूतस्म में वेश (पृ० ३१) को काम का आवेश, घटमाशों का उपदेश, माया का कोश, ठगी का अड्डा और गरीबों के लिए निषिद्ध कहा है। धूर्तविटसगद में वेश में सुन्दर अघगुनी आँखों से अग्रलोकन, मीठी और हँसोड बातें, भारी नितम्ब से घिरा हुआ अर्धासन, स्नेह भरे नखरे, ये सब बातें वेश के शिक्षाचार जानने वाले को बिना वेश्या प्रेम में पँसे ही मिल सकती है (६८-६९)। विट जन पाटलिपुत्र के वेश में पहुँचा तो वहाँ फूलमाला और आसन की गन्ध से भरी हवा चल रही थी, ऊँचे पिडकीदार मरानों में धूप जल रही थी और उपद्वारों पर फूल बिजरे थे। वहाँ गहनों की झन्कार थी। हँसती, भँहँ मटकती, छोटी चादर ओढ़े इठलाती हुई वेश्या परिचारिकाएँ घिरक रही थीं। वहाँ हँसती, मिना विस्मय के भी विस्मित आँखों वाली, तथा लम्बे धुँधराले बालों वाली नखरीली नौचियाँ (गणिसा दारिका) दिखलाई देती थीं। वेश के घरों के दरवाजे मशहूर शिल्पियों ने बनाए थे। रति की धकाघट मिगने ने लिए कहीं तेल सजोए जा रहे थे, कहीं स्तनों पर लगाने के लिए उचटन (वर्णक) पीसे जा रहे थे और मालाएँ दी जा रही थीं। बीणा की झन्कार सुन पड़ रही थी और शराब के दौर चल रहे थे। अग्रनी अघगुनी आँखों, बहाने से दिखलाए स्तनों, मुखपर छोटी छोटी बातों, हल्की साँसें और मधुर तान के साथ गीतों से वेश्याएँ कामियों को लुभा रही थीं (६७-७६)।

पादताडितकम् में उजैन के वेश और प्रधान वेश्याओं के महलों का बड़ा जीता-जागता वर्णन आया है। वहाँ के महल अलग अलग बने थे और उनमें सुन्दर वस्त्र (चहारदीवारी की कुरसी), साल, हर्मशिल्लर, कपोतपाली (कवूतरो ने मोस्ते), सिंहकर्ण (एक तरफ की खिडकी, गोपानसी (पाटक की कुर्चियाँ) बलभीपुट (ऊपरी कमरे), अष्टालक (अटारियाँ), अग्लोमन प्रतोली (पौर), विटक (कपोतपाली) साफ साफ बने थे। उनमें बगल में गुले कमरे (बच्चा विभाग) थे। वे रजतपूरित, सिंचे हुए, नलकियों से साफ किए हुए (सुपिर पूतृत), उपरियाए हुए (उत्क्रांति), लिपे हुए, चित्रित (लिखित), छाटी-बड़ी नकाशियों (रूप) से सजे, वैष, सधि, द्वार, पिडकियाँ (गयाह), चौपाल (वितर्दि), चार चौक (संजनन), दालान (बीची) और छत्रों (निर्यूह) वाले थे। महलों के बीच में एक दो या तीन बृद्ध लगे थे तथा वे चैत्य बृद्ध, हरियाली, फल और पुष्पवृक्षों की पडियाँ से सजे थे। उनकी विमल वापियों में कमल खिल रहे थे तथा पानी के बीच में दाढ़ पर्वतक, भूमिपद (भुइया), और लताग्रह थे। उनके तोरण खूब सजे थे और महलों पर पताकाएँ उड़ रही थीं (१७१-१७६)। निट ने वहाँ गाडियों के पास आवन्तियों और क्रियातों तथा

अपने मालिको का पता देने वाले हाथी और घोड़ों को देखा। वहाँ कोई नकली ऑसुओं से रोके जा रहे थे और कोई वापिस भेजे जा रहे थे। पालायें रईसों की सुशामद कर रही थीं और लुटे हुएओं को घुडक रही थीं। कोई वेश्या अपनी प्रेमी को मना रही थी, तो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को मना रहा था। कोई उत्कठिता गीत पर कण्ठ गीत गा रही थी, कोई कानी सामने दर्पण रख कर अपनी प्रिया को सजा रहा था, कोई कामिनी चोटी बाँध रही थी, कोई मैना पढ़ा रही थी, कोई गेंद खेल रही थी, तो कोई प्रिय के पास बैठ कर पासे फेंक रही थी। एक प्रौढा चित्र खिंच रही थी और आख्यायिका पढ़ रही थी (१७६-१७८)। वेश में कहीं-कहीं वेश्याएँ घन-ठन कर एक दूसरे के साथ घूम कर कन्दुक, पिंजोला और गुड्डा गुड्डी के खेल से निपट कर गली में विश्राम कर रही थीं (११०)।

वेश में घूमते घामते शाम हो जाने पर विटने चकले के महापथ की अपूर्व शोभा देखी। घरों को साफ-सुथरा करके दरवाजों और आँगनों में फूल बखेर दिए गए थे। सन्ध्या ने उपचारों में परिचायक लगे थे। वेश, वप और विभन के अनुकूल वेश्याएँ अपने सिंगार पटार में लगी थीं। मदनदूतियाँ घूम फिर रही थीं। विट हँसी कर रहे थे और कामी नन्हा धोरर इन फुनेल लगाकर चोगहे और तिरमोहानी पर इकट्ठा हो रहे थे। कहीं बैठी हथिनी चिरगाड़ रही थी। कहीं द्वार पर लटकी बहली (कबलवाहक) पर कोई रनी चब रही थी और कहीं घोड़े पर चढ़ी वेश्या दील पड़ रही थी। चन्द्रोदय होते ही गाठ बाँधकर शराब पी जाने लगी तथा युवकगण घोड़ों, हाथियों और कर्णारथों पर चढ़कर आने-जाने लगे (१३१-२३६)।

चतुर्भांगी में वेश का जो उपर्युक्त चित्र रीखा गया है उसका करीब करीब वैसा ही चित्र शूद्रक ने मृच्छकटिक और बृहत्सामी की बृहत्साम्यार्थलोकसंग्रह में मिलता है। मृच्छकटिक के अनुसार सन्ध्या ने समय राजमार्ग पर विट वेश्याओं और राजा के मुसाहिबों का जखीरा जम जाता था। ऐसे ही एक दृश्य का वर्णन राजमार्गमें वसन्तसेना का पीछा करते हुए विट, शकार और चेठ की बातचीत में आया है। वे वसन्तसेना को रोककर गुण्डई की भाषा में बातचीत करना चाहते हैं। शकार कहता है कि वसन्तसेना का देखकर उसका हृदय माना अज्ञान में गिरे हुए मसि के एक टुकड़े की तरह हो रहा था। (११८)। चेठ कहता है कि भागती हुई वसन्तसेना डीनेदार ग्रीष्ममधूरी की तरह थी और उसका मालिक शकार उसके पीछे कुक्कुट शावक की तरह भाग रहा था (११९)। विट ने पूछा कि कोमल कदली वृक्ष की तरह काँसती हुई, गिरने हुए रत्नाशुक को जमीन पर लयेबती हुई, कानों से कर्णात्पल गिराती हुई वह क्यों भाग रही थी (१३०)।

शकार बेसिर पैर की बात करनेमें कुशल था। वह वसन्तसेना की तुलना रावण के वश में पड़ी कुन्ती से करता है (१२१)। उसे गालियाँ देते हुए शकार उठे बगए लूटने वाली (नागन मायिका), मञ्जुनीयार, नचनी (लसिका), भदी नाटकशाली, कुलनाशिका, बिगडैल, काम की पिटारी, वेशवधू, अच्छे वेश (सुवेश) में रहनेवाली रखड़ी और वेशिका कहकर सम्बोधन करता है (१२३)। फिर वह उसकी तुलना राम से भागती हुई द्रौपदी से

करते हुए हनुमान जैसे सुमद्रा को उठा ले गए उसी तरह उठा ले जाने की धमकी देता देता है (१।२५) ।

चेष्ट का नीच स्थान इससे भी प्रष्ट होता है जब वह वसन्तसेना को लालच देता है कि शकार की अधीनता स्वीकार करने से उसे राने की खूब मछली मॉस मिलेगा । अपनी सहायता के लिए वसन्तसेना ने परिचारिकों को पुकारा पर कोई जवाब न मिला । क्रुद्ध होकर शकार ने उसे मारने की धमकी दी तो इस पर वह बहुत डर गई । इस पर विट ने फिर ताना मारा कि वह तो भले बुरे का समान रूप से चाहनेवाली ब्राह्मण और शूद्र जिसमें समान भाव से नहाते हो ऐसे कुप की तरह, राज और कौए का समान रूप से बौझ समालनेवाली, लता की तरह, तथा सज जातियों का समान भाव से बौझ समालनेवाली नाव की तरह थी (१।३१-३२) ।

मुख्य-चरित्रों में एक जगह वेश के ठाट बाट का भी अपूर्व वर्णन आया है । वेश में पहुँचने पर विद्रुपक ने वहाँ की अपूर्व शोभा देखी । वसन्तसेना का घर लिपा पुता था । दीवारों पर चित्र बने हुए थे और वह फूलों से मजा था । उसके शिखर पर एक भारी मालती की माला लगी थी तथा तोरण के खम्भों के पास आम की पत्तियों से सजे पूर्ण घट रक्ले थे । तोरण पर हाथी दाँत का काम किया हुआ था । विद्रुपक ने पहले परकोटे (प्रकोष्ठ) में चूने से पुती और लिङ्कियों और सीढियों से युक्त प्रासाद-युक्ति देखी । दूसरे परकोटे में मोटे ताजे गाड़ी के चैल थे जिनके सोगा में तेल लगा था, भेटों की लड़ाई के बाद मालिश हो रही थी, घाँड़ों के गाल सँवारे जा रहे थे, घोड़ों के अस्तबल में बन्दर थे तथा महावतों द्वारा भात और घी गिलाए जाते हुए हाथी थे ।

तीसरे परकोटे में कुलपुत्रों के लिए आसन लगे हुए थे । एक पाशपीठक पर एक आधी पड़ी हुई पौधी पड़ी थी तथा दूसरे पीठक पर पासे पड़े थे । वहाँ विटने वेश्याओं तथा मानमग और सयोग करनेवाले पुराने दूतों को चित्ररत्नक लिए हुए देखा । चौथे परकोटे में वेश्याएँ मृदग, काव्यनाल, वशी और बीणा बजा रही थीं तथा गणिका दरिकाएँ गीत नृत्य, कामशास्त्र और नाट्यनी शिल्पा ग्रहण कर रही थीं । लिङ्कियों पर पानी के उल्टे घड़े हवा खींचने के लिए लटकाए हुए थे । पाँचवें परकोटे में पहुँचते ही हींग और तेल की गंध से विद्रुपक का पता चला कि वहाँ रसोई घर था । वहाँ कसाई जानवरों को खलिया रहे थे तथा रसोईए मोदक बना रहे थे और पूर तल रहे थे ।

घर के ईधुल यानी दोगले दूसरों के घर पाल पुमकर दूसरे का भोजन करके, अनजानी औरतों से दूसरा द्वारा जन्म लेकर, तथा दूसरों का माल उड़ाकर बिना किसी गुण के ही मौज उड़ा रहे थे (४।२८)

छठे परकोटे में उसने शिल्पियों को वैद्यक्य, मोती, मूँगा, पुष्कराज, नीलम, कर्कसन, मानिक और पन्ने के बारे में बातचीत करते देखा । मानिक सोने में जड़े जा रहे थे (वध्यन्ते जातरूपैः), सोने के गहने गढ़े जा रहे थे (घट्यन्ते), लाल रेशमी डोरी में माती पोढ़े जा रहे थे, वैद्यक्य घिसे जा रहे थे, शरत काटे जा रहे थे, तथा मूँगे सान पर चड़े हुए थे । गीली केसर के धर सूझने के लिए खुले पड़े थे, कस्तूरी गीली का जा रही थी, चन्दन घिसा जा रहा

था और तरह तरह की गद्ययुक्तियाँ तैयार की जा रही थीं। कपूर पढी पान की गिलीरियाँ आगतुकों को दी जा रही थीं। लोग हँसते हुए कटाक्ष पात कर रहे थे और डटकर शराब पी रहे थे। अपना घर द्वार और माल मत्ता छोड़कर आए हुए दास दासियाँ को अपने घर छोड़कर वेश्याएँ मद की सुराहियाँ (आसन करक) से शराब पीकर चल रही थीं।

सातवें परकोटे में कबूतरों के जोड़े मोरों (विहगवादी) में आराम कर रहे थे। दही भात खाकर सुगो अपने पिंजडों से सूत पाठ कर रहे थे। मदनसारिकाएँ अनवरत बटबटा रही थीं और कोयलें कूक रही थी। पिंजड़े छुँटियों (नागदत्तक) से टँगे थे, लवे लडनेके लिए उसकाए जा रहे थे, कपिंजल बुलयाए जा रहे थे, दरजों में पालतू कबूतर एक दूसरे पर चढ़ रहे थे, मोर नाच रहे थे और राजहंस गणिकाओं और यह सारसों के पीछे चल रहे थे।

आठवें परकोटे में घसतसेना का भाई पट्ट, प्राघरक और गहने पहनकर इधर उधर डोल रहा था। मोनी ताजी और नशेमें मदमस्त गणिका मात्ता पुण प्राघरक और जूते पहनकर लेंचे आसनपर बैठी हुई थी। यह उपवन में झूला पड़ा हुआ था।

बुधस्वामी ने बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में जो वेश का वर्णन दिया है वह मृच्छकटिक के वेश वर्णन से इतना मिलता जुलता है कि मालूम पड़ता है जैसे शूद्रक और बुधस्वामी दोनों ने यह वर्णन गुणादय की बृहत्कथा से लिया हो। कथा यह है कि छत्रशाटक कावस्थ के बृहत्कावे में आकर गामुत्तने अपने सारथि का वेश की, जिसको चेतस्यावास कहा गया है, स्वयं रथ हाँक देने को कहा। पहले उसका रथ पशुवार वणिक्पथ में पहुँचा जहाँ मालाएँ, गहने, धूप इत्यादि विक्रय रहे थे। उसके आगे गोमुख को उपवनयुक्त प्रासाद पक्ति मिली। वहाँ उसने अलज व्यवहार (उत्कटाचार) करते हुए शराब के नशे में मस्त कुछ मर्द और औरतों को देखा। अपने पीछे आते हुए एक कामुक से एक वेश्या मधुर दारुण शब्दों में कह रही थी, “अरे बल्लवक, तू मुझ अभागी को क्या छूता है, जा बहुत से बल्लवकों (रसोद्यों) से छूई गई अरनी बल्लविका को छू।” कहीं श्रैगुष्ठियों से निचवी और कोर्णा से परिवादिनी छेड़ी जा रही थी।

रथ जब धीरे धीरे चल रहा था तब गोमुख ने कुछ कन्याओं को पहिनाएँ पड़ते देखा। पृच्छने पर पता चला कि वह विट शास्त्र था। शरमा कर गोमुख ने लौटना चाहा लेकिन सारथी रथ बढाता ही गया। अन्त में रथ एक बड़े भारी महल के पास आकर रुका। महल मुन्दरियाँ और विनोत पुरुषों से भरा था। गहनों से सजी गणिकाओं ने पौरन बाहर निकल कर रथ की घेर लिया। एक अघेड स्त्री ने हाथ जोड़ कर उसके आने का कारण पूछा। उन वेश्याओं की आर से श्रवनी आँखें माड़ कर उसने तिडकी में एक मुन्दरी का सिगार करते देखा। तीन दासियाँ उस पर पले भल्ल रही थीं। उसने अपना कपित शरीर उठा कर गोमुख का नाम पूछा। उसका आकर्षण देख कर सारथी ने उसे महल के अन्दर घुसने को कहा।

पहली कदवा में घुसते ही उसने एक लडकी को विनय का पाठ पढ़ते देखा, दूसरी कदवा में कलारिथ और शिबिकाएँ पड़ी थीं, तीसरी कदवा में देय देय के घड़े थे, चौथी कदवा में मोर, चकोर, मुग्गे, मैना और कुक्कुट थे। चतुर्थ शिल्पियों ने उनके पिंजड़े सोंगे और ताँचे

के मेल से बनाए थे। छुट्टी कदया में गन्ध शास्त्र की सामग्री और सुगन्धित लेपों के बरतन थे। सातवीं कदया पट्ट, कौशेय, दुकूल इत्यादि से भरी थी। आठवीं कदया में मोती छेदे जा रहे थे और जगहगतों पर सान दी जा रही थी। वहीं पर उस सुन्दरी ने जिसने उसका नाम पूछा था उसके आगमन का कारण पूछा। वेश्याओं ने चेतस्यावास की तारीफ करते हुए कहा—

दीर्घायुया गृहमिदं चिन्तामणि सधर्मणा

अलकृतं च गुप्तं च गमितं च पवित्रताम् (१०।१०३)

दीर्घजीवी और चिन्तामणि की तरह सन पलदायक आपके घुसने से यह अलङ्कृत और गुप्त घर पवित्र हो गया।

इसके बाद वह सोड़ी चढ़ कर महल में घुसा और वहाँ नायिका से भेंट की।

वेश और पानागार का चोली दामन का साथ कहना अन्युक्ति न होगी। चतुर्भाषी में आपानक के बहुत से उल्लेख हैं। पद्मपाश्र्वतकम् में (५) मधुपान के समय स्नाद बढाने के लिए गजक (उपदश) राने की प्रथा का उल्लेख है। धूर्तवित्सनाद (७१-७२) में शराव में उत्पल पत्र और सहकार तैल पड़ने का और चपक के नाचते हुए मोर की शक्ति का होने का उल्लेख है। शराव की किस्मों में वारुणी (धू० वि० ७२-७० मि० १२२) आसव (धू० वि० ७६), शोघु (धू० वि० ७७, पा० ता० २५२) मधु (पा० ता० १५०), मदिरा (पा० ता० २१५) के नाम आते हैं। चपक कभी कभी बॉसे का भी होता था (पा० ता० २३८)।

पादताडितकम् में (१६७) एक जगह पानागार का सुन्दर वर्णन आया है। वहाँ रूस दौर चलते थे। मिट ने वहाँ एक अजीब दृश्य देखा। रोहतक के मृदगियों तथा भौंभ भौंसुरी बजाने वालों के साथ बाह्यिक पुत्र बाण्य यौधेयों का बाँगा गीत गा रहा था। उसके एक कान में कुरण्ड की माला पड़ी थी। बाएँ हाथ से पटकते हुए उत्तरीय को सँभालता हुआ तथा दाहिने हाथ में शराव का घड़ा लेकर वह नाच रहा था। उसके हाथ में कभी आधा मापक भी नहीं टिकता था। महल बाध कर पीने वाले नट, नटी और चेट इत्यादि को गजक देकर वह इनाम पाता था और उसी से डट कर शराव पीता था।

लगता है गुप्त युग में और उसके पहले भी शरावप्योरी का धर्म विकृत होते हुए भी बहुत प्रचलन था। जैन ग्रंथों के अनुसार पानागारों (पाणागार, कपसाला) में शराव बेची जाती थी। शराव बेचने को रसवाणिज्ज कहते थे। लगता है घरों में भी शराव के कुम्भ होते थे। जैन ग्रंथों में चन्द्रप्रभा, गणेशलाक, वरसीधु, वर-वारुणी, आसव, मधु, मेरक, कष्ट्रामा अथवा जसुफल कलिका, दुग्ध जाति, प्रसन्ना, तल्लक (तेल्लक, मेल्लग), शताद्र, खजूरसार, मृद्रीकासार, कापिशायनी, सुपक और इल्लुरस, सुग, मज्ज, इत्यादि नाम आए हैं। आसव कपित्थ, शकर और मधु से बनता था। मधु शायद अगूरी शराव थी। मेरक मेपशृंगी, गुड, बड़ी और छोटी पीपल और निपला के योग से बनती थी। प्रसन्ना पिष्ट, बिण, मत्तलें और पुचक के मेल से बनती थी। कापिशायन (वृहत्कयाश्लोकसंग्रह, १३।२६) कापिशो की अगूरी शराव थी। कदम्बरी कदम्ब के फलों से बनती थी।

मृच्छकटिक में आपानक का एक सन्नेह है जिससे पता चलता है कि आपानक में गजक की तरह लाल मूली का उपयोग होता था। वृहत्संहिताश्लोकसंग्रह में आपानक का कई जगह व्योरेवार वर्णन है। सवेरे आस्थान मण्डप में लोगों से मिल कर राजा अपने मंत्रियों के साथ उद्यान की आपान भूमि में जाता था। वहाँ सारा शहर इकट्ठा हो जाता था और राजा लोगों का कपड़े, गहने, मालाएँ बाँटता था। इसके बाद पद्मराग शुक्तियों में कमल से सुगन्धित सुरा का पान होता था। शराब के दौर के बीच में कभी बीन बजती थी, कभी गाना गाया जाता था और कभी नट नाचते थे। संध्या के बाद राजा महल में जाता था। वहाँ गाना और नाटक, जिसमें केवल स्त्रियाँ ही भूमिकाएँ लेती थीं, होते थे। इसने बाद वह महल की स्त्रियों को शराब बाँट कर सोने चला जाता था। सानुदास की कहानी में भी आपानक और उसकी बुराइयों का सुन्दर चित्रण हुआ है। सानुदास एक रहस्य सार्य बाह का पुत्र था। उसके भुव नामक एक मित्र ने एक दिन उससे कहा कि उसकी मित्र मण्डली बगीचे में खाने पीने और जलक्रीडा का मज़ा ले रही थी। उसने अपनी स्त्री के साथ उसमें शामिल होने को कहा। सानुदास ने पहले तो आनाकानी की लेकिन भुव उसे गाँधी में लाया ही। उसके शराब न पीने पर उसके मित्र ने उसकी हँसी उड़ाई और उसे इस बात पर राजी कर लिया कि कम से कम वह उन्हें पीता ही देखे। बगीचे में पहुँच कर सानुदास ने लोगों को मालाओं से सजा देखा। भुवक ने उसने लिए माधवी लता और चूता फूलों का आसन बनाया। इसने बाद उसने अपने मित्रों को पीते और अपनी स्त्रियाँ को पिलाते देखा। कुछ लोग बीणा पर बसंत राग गाने लगे। इतने में शैबल और कीचड़ से सनी धोती पहने एक मित्र उठ खड़ा हुआ और एक कमल के पत्र में पुष्कर मधु भर कर उसकी तारीफ का पुल बाँधने लगा और सानुदास को इस का भरोसा दिलाया कि उसका स्वाद शराब की तरह बिल्कुल नहीं था। विचार सानुदास उसके बहकावे में आकर शराब पी गया और कहने लगा कि पटरियों से उसका स्वाद भिन्न था। इस पर उसने मित्र हँस कर कहने लगे कि वह सातवों रस था जिसे मुरत रस कहते थे। उन्होंने उसे इतनी शराब पिलाई कि वह बेहोश हो गया (१८।३२-५६)।

नये में सानुदास को एक औरत की चिल्लाहट सुन पड़ी। माधवी मण्डप में पहुँचने पर वहाँ उसे एक सुन्दरी दीप्त पड़ी। पूछने पर उसने कहा कि वह गगदत्ता नाम की यक्षिणी थी और उसने वह पूँ किया था कि उससे स्वीकार न किए जाने पर वह अपना प्राण दे देगी। इस पर सानुदास उसने घर गया जहाँ उसकी माँ ने उसका स्वागत किया। इसने बाद वह गगदत्ता के साथ अपने मित्रों के पास लौटा। उसे नये में गङ्गण्य देख कर उसके मित्र खूब हँसे और उसे बताया कि गगदत्ता यक्षिणी नहीं वेश्या थी (१८।५७-६२),

जिस समाज का हमें चतुर्भाषी में दर्शन होता है उसमें वेश्या सग और शराबखारी के साथ साथ जूआ भी आमोद प्रमोद का एक प्रधान साधन था। पद्मप्राभृतकम् में (२८) उज्जयिनी की चूत सभा का उल्लेख है। धूर्तवित्तवादा (६८) में विट जूए का इसलिए दूर ही से नमस्कार करता है क्योंकि रईसों की तरह पास हमेशा साँचे नहीं पड़ते। पद्मियुद्ध में भी खूब दाँव लगता था। गोष्ठी दा दलों में बँट जाती थी और अपनी प्रेयसियों का रिश्ताने

के लिए वे बेहिसाब टॉन (पण) लगाते थे (७२) । पादताडितम् (१६६) में सार्वभौम नगर के रास्ते में मापक जीत कर पूरे मास और मदिरा लिए हुए परिचारकों के साथ जुआड़ियों का वेश की तरफ जाने का उल्लेख है । पर इन सब उल्लेखों से तत्कालीन द्यूत सभा और जुआड़ियों के जीवन पर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता । उसके लिए तो हमें वात्स्यायन कृत कामसूत्र, मृच्छकटिक, वसुदेवहिंदी और दशकुमार चरित का सहारा लेना चाहिए ।

वात्स्यायन की चौंसठ कलाओं की तालिमा में (४२) मेघ लावक कुङ्कुम युद्ध विधि, और (५६) द्यूतनिशेष का वर्णन है और (६०) आकर्ष क्रीडा से जूए का प्राध हाता है (का० सू० १।३ १६) । नागरक के रहने के कमरे में आकर्षकक और द्यूतकक होते थे (१।४।१२) भोजन करने के बाद नागरक लगे, मुर्ग और मेढों की लड़ाई देखता था (१।४।२१) । बाग गीचे की सैर में भी लगे मुर्ग और मेढों की लड़ाई में जुआ हाता था (१।४।४०) । पत्नी अपने पति के लिए मेघ, लावक और कुङ्कुम का पालन करती थी (४।१।३३) । पत्नियों के युद्ध के समय पीठमर्द नायक को वेश्या ने यहाँ ले जाता था (६।१।२५) ।

मृच्छकटिक के दूसरे अंक में जुआड़ियाँ और जूएखाने का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है । सवाहक नाम का जुआड़ी जुए में सौ मुहरें हार गया था । पैसे न दे सकने के कारण वह जुआड़ी और सभिक (नाल उठाने वाला) को बुत्ता देकर भागकर एक सूने मन्दिर में छिप गया । पर जुआड़ी माधुरक और सभिक पूरे काइयों थे । वे उसके पैरों के निशान देखते देखते मन्दिर में पहुँचे जहाँ सवाहक मूर्ति बना हुआ खड़ा था । वहाँ उसे न पाकर माधुरक और सभिक वहीं जूआ खेलने लगे । अपने को रोकने में असमर्थ सवाहक ने अपना मेढ़ खोल दिया । उसे पीठ पाटकर माधुरक ने उसे द्यूतकर मण्डल के नाम पर गिरफ्तार कर लिया । भगवै भगवै में सवाहक ने फिर से निकल भागना चाहा पर उसको पकड़ कर दोनों जुआड़ी पीटने लगे । इतने में दर्दुरक ने आकर बीच बचाव किया और इस बात का मुन्ताव रखा कि वे दोनों सवाहक को दस मुहरें उधार दें जिससे अगर वह जीते तो अपना कर्ज चुका दे । पर माधुरक ऐसी बुत्तेशाजी में आने वाला नहीं था । भगवा फिर शुरू हो गया और दर्दुरक ने माधुरक को पीट दिया ।

वसुदेवहिंदी में अनेक स्थलों पर जूए का अजीब वर्णन बच गया है । एक जगह कहा गया है कि अधिकतर दुष्ट और चोर पानागार, द्यूतशाला, हलवाई की दुकान, पाहुबस्त-धारी परिव्राजकों के मठ, रत्नाग भिक्षुओं के काठे, दासीगृह, आराम, उद्यान, सभा, प्रपा और शून्य देवकुलमें रहते थे । मार्दूलपुर में वसुदेव का साथी अशुमान् एक सार्थवाह से मिल कर उससे ठहरने का स्थान पूछ रहा था कि इतने में उसने बड़ा कोलाहल मचा । पूछने पर पता चला कि शोर गुल उस जगह से आ रहा था जहाँ लम्बे दाव लगाकर इम्पुन जूआ खेलते थे । अशुमान् द्यूत समामें पहुँचा । पहले तो द्वाखाल ने उसे ब्राह्मण समझकर रोकने पर जब उसने पाखिलायव और बुद्धि की तारीफ की तो उसने उसे अदर जाने दिया । मीतर घुसकर उसने देखा कि एक करोड़ का दाव लगा था । यह देखकर वह यह निश्चय न कर सका कि किसका साथ दे । पर अशुमान् ने अपनी चाल कही और वीणादत्त जीत गया । वीणादत्त

ने अपनी रकम पर उसे जूआ खेलने को कहा और अशुमान् उसके साथ बैठ गया। इस पर विपक्षी ने ललकारा कि अगर उसके पास अपनी रकम हो तो खेले। उस खेल में ब्राह्मण का काम नहीं था। वीणादत्त ने कहा कि उसे उसकी चालसे जूआ खेलने का अधिकार था। इसके बाद अशुमान् ने विपक्षी को अपने गहने दिखलाए। उसपर गृह दृष्टि नमाकर उसने खेल शुरू कर दिया। सोना, हीरा, और रुपए का मारी दाव लगा। अशुमान् जीत गया। इसके बाद वह वीणादत्त के यहाँ गया और जीत का धन मुद्रित करके उसके यहाँ रख दिया।^१ एक दूसरी जगह राजगृह की दूत सभा का उल्लेख है।^२ वहाँ बड़े-बड़े धनी, अमात्य, सेठ, सार्थवाह, पुरोहित, तलवार (नगर रक्षक) और दण्डनायक मणि और सुवर्ण की ढेरियों की बाजी लगाकर जूआ खेलते थे। लोगों के यह पूछने पर कि वह कौन से दाव से खेलने वाला था वसुदेवने अपनी हीरे की अँगूठी दिखलाई जिसका दाव एक रत्नपरीक्षक ने एक लाख आका। मामूली दाव में मणि का ढेर एक लाख का, मध्यम दावमें बत्तीस, चालीस और पचास लाख का और लकड़ दाव में अस्सी नब्बे और करोड़ का होता था। सबसे नीचा दाव पाँच सौ का था। हारने पर जुआड़ी दौब वूना तिगुना कर देते थे। जब वसुदेव ने हिसाब करने को कहा तो उसकी जीत मध्यस्थों के अनुसार एक करोड़ की निकली। दूतशास्त्रके अधिपति को बुलाकर वसुदेव ने उस रकम को गरीबों में बाँट देने को कहा।

कुक्कुट युद्ध के बारे में भी वसुदेवहिंदी में दो उल्लेख हैं। एक बार गंगरक्षित नामक द्वारपाल अपने मित्र वीणा दत्त के साथ आवस्ती के चौक में बैठा था। उसी समय रंगपताका वेश्या की दासी ने वीणादत्त को खबर दी कि रंगपताका और रतिसेना के कुक्कुटों में लड़ाई हो रही थी और इसलिए उसकी मालकिन ने उसे प्रेरक बनाया था। वीणादत्त ने गंगरक्षित को साथ ले जाने के अभिप्राय से उसकी ओर देखा। इस पर दासी ने पाना मारा कि भला वह परदेसी गणिका का रस कैसे जान सकता था। चिढ़ कर गंगरक्षित वीणादत्त के साथ हो लिया। रंगपताका ने उनकी अभ्यर्थना करके उन्हें आसन देकर गंध माल्य से उनकी पूजा की। इसके बाद कुक्कुट युद्ध शुरू हुआ और एक लाख की बाजी लगी। वीणादत्त ने रंगपताका का कुक्कुट लिया और रतिसेना का कुक्कुट हार गया। पीछे दस लाख का दाँव लगा। रतिसेना का कुक्कुट गंगरक्षित ने लिया और वह जीत गया। दूसरे दिन रतिसेना की दासी ने उसे एक सौ आठ दीनार दिए।^३

एक दूसरी जगह^४ वसुदेवहिंदी में कुक्कुट युद्ध और उसी प्रसङ्ग में महिष युद्ध और मेघ युद्ध का उल्लेख हुआ है। एक बार घनरथ नामक राजा के यहाँ सुपेणा नाम की एक गणिका एक कुक्कुट लेकर आई और कहने लगी कि एक लाख की शर्त पर उसका कुक्कुट लड़ने को तयार था। रानी मनोहरी ने वहाँ आकर अपनी दासी से बज्रगुण्ड नामक कुक्कुट लाने को कहा और सुपेणा की बात मान ली। आज्ञा पाकर दासी ने बज्रगुण्ड को सुपेणा के कुक्कुट से भिटा दिया। लड़ाई देख कर घनरथ ने कहा कि उनमें कोई जीतने वाला नहीं था। क्योंकि पूर्वजन्म में वे अयोध्या के नन्दिमित्र के पशुपथ में भैसे होकर घनगणसेन और नदिपेण से लड़ाए जाकर मरे थे, बाद में वे अयोध्या में मेदे

१. यहाँ, २०३-२०४। २. यहाँ २२२-२३। ३. यहाँ, पृ० ३०८। ४. यहाँ पृ० ४३६-४३७।

होकर जन्मे और उनका काल और महाकाल नाम पडा। वे भी आपस में लड कर सिर फूटने से मरे थे।

उत्तराध्ययन टीका की एक प्राचीन कहानी में भी कुक्कुटयुद्ध का सजीव चित्रण हुआ है। कौशावी के बाहर उद्यान में सागरदत्त और बुद्धिल ने मुर्गों की लडाई में एक लाख की बदलन बदी। पर सागरदत्त का मुर्गा डर गया और इस तरह वह बाजी हार गया। पर सागरदत्त के मित्र वरघनु ने बुद्धिल के मुर्गे को परीक्षा की तो पता चला कि उसके पनो में तेज सूइयाँ खुसी थीं। बुद्धिल ने उसे घूस देकर मना लेना चाहा पर उसने कनली से सागरदत्त पर उसका राज खोल दिया। इस पर सागरदत्त ने चतुर्पई से बुद्धिल के मुर्गे के पैरों से सूइयाँ हटा दीं और इसके बाद उसका मुर्गा जीत गया। (मेयर, ओल्ड हिन्दू टेल्स, पृ० ३४-३६)।

दण्डी के अपहारवर्मा की कहानी में भी जूए का बहुत ही सुन्दर वर्णन आया है।^१ चपा में अपहारवर्मा ने घूतसभा में जाकर जुआड़ियों (अक्षधूर्त) से मेल मिलाया। उसने उनकी पचीस तरह की घूताभित कलाओं^२, पड (अक्षभूमि) पर हाथ की सपाईं, अत्यन्त चालाकियों (कूटकर्म), गर्व भरी गालियाँ, जीवन की परवाह न करने का काम करना, सभिक को प्रत्यय देने वाले न्याय, बल और प्रताप युक्त साधनक्षम व्यवहार, बलियों को सालना देना, कमजोरों को पटकारना, अपने पक्ष के समर्थन में निपुणता, अनेक तरह के प्रलोभन, दाँव (गुह) के मन्दों का वर्णन, घन बाँट कर उदारता दिखलाना, बीच बीच में गाली गुप्ता भरा शोर इत्यादि बातें उसने सीख लीं। एक दिन असावधानी से किसी जुआड़ी (कितव) के पासा फेकने पर वह हँस दिया। इस पर विपक्षी जुआड़ी (कितव) ने क्रोध से जलती आँखों से मानों उसे जलाते हुए कहा—“क्यों वे, तू हँसी के बहाने मुझे जूए का रास्ता सिखलाता है। यह शरीर अशिक्षित दयनीय है। मैं तुझ चतुर के साथ ही खेलूँगा। यह कह कर वह घूताभ्युद्ध की अनुमति से अपहारवर्मा के साथ भिड गया। अपहारवर्मा उससे सोलह हजार दीनारें जीता। उसमें से आधा उसने सभिक और सम्भों में बाँट दिया और आधा स्वयं लेकर उठ खडा हुआ। लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। सभिक के अनुरोध से उसने उसने घर भोजन किया।

प्रमति के कथानक में कुक्कुटयुद्ध का अच्छा वर्णन है।^३ भावस्ती जाने के रास्ते में एक निगम में उसने नैगमों का कुक्कुटयुद्ध का महान कोलाहल सुना। वह वहाँ पहुँच कर कुछ हँस पडा। इस पर पास में बैठे हुए किसी बूढ़े ब्राह्मण निट ने धीरे से उसके हँसने

१. दश कुमार चरित, पृ० ३४। ३५। ता० ना० गोडबोले द्वारा संपादित, बंबई १९३६। २. जयमंगला टीका (का० सू० १।३।१५) ने घूताभ्युद्ध की बीस कलाएँ यथा- निर्जीव, (१) नायु प्राप्ति, (२) अक्षविधान, (३) रूपसख्या, (४) क्रियामार्गण (५) बीज-प्रहण, (६) नयज्ञान, (७) करणादान, (८) चित्राचित्रविधि, (९) गूढराशि, (१०) तुल्या-भिहार, (११) चिप्रग्रहण, (१२) अनुप्रासिलेखस्मृति (१३) अग्निमम, (१४) द्रल या मोहन, (१५) प्रहदान। सजीव—(१) उपस्थानविधि, (२) युद्ध, (३) रक्त, (४) गत, (५) नृत्त।

३. वही, पृ० १३०-१३८:

का कारण पूछा। इस पर उसने कहा कि पूरव के नारिकेल जाति के कुक्कुट का बलाका जाति के पछाहीं कुक्कुट की शक्ति बिना समझे ही लोगों ने लड़ा दिया था। विट ने कहा कि वह भी इस बात को जानता था पर चुप रहना ही ठीक था। यह कह कर उसने थैली से कर्पूर से मुगधित एक पान दिया। पछाही कुक्कुट ही जीता।

अमरकोश में भी जूए की अच्छी चर्चा है। जुआड़ी के लिए धूर्त, अक्षदेवी, कितव, अक्षधूर्त और द्यूतकृत शब्द आए हैं (२।१०।४४)। शायद लम्गा लगाने वालों के लिए लगनक और प्रतिभू (२।१०।४४) शब्द आए हैं। नाल उठाने वाले के लिए द्यूतकार और सभिक (२।१०।४४), जुआ के लिए द्यूत, अक्षस्त्री, कैतव और पण (२।१०।४४), बाजी के लिये ग्लह, पासे के लिए अक्ष, देवन और पाशक (२।१०।४५), पासा (पारी) फेंकने के लिए परिणायस् (२।१०।४६) और पड के लिए अणपद और शारिणल (२।१०।४६) शब्द आए हैं।

लगता है गुप्तयुग में गेंद खेलने की प्रथा चल पड़ी थी। पद्मप्राभृतक और दश कुमारचरित में कदुक क्रीडा के बहुत सुन्दर वर्णन आए हैं। पद्मप्राभृतकमें प्रियगुणयष्टिका अपनी लाल अंगुलियों से लाल रंग का कदुक उछाल रही थी। विट के यह कहने पर भी कि वह मानों कदुक क्रीडा के बहाने अपनी सखियों को नृत्य सिखला रहा था वह खेलती ही गई। उसने अपनी सखियों के साथ बाजी (पणित) लगा रखी थी। नत, उन्नत, आवर्तन, उत्पतन, अपसर्पण, प्रधावन, परिवर्तन, निवर्तन, उद्धर्तन इत्यादि गतियों से उसने कपड़े उड़ रहे थे, कुण्डल झूल रहे थे, बालों से फूल गिर रहे थे, काची झनझना रही थी। पूरा सौ करके वह रुकी और इस तरह वह अपनी सखियों से बाजी जीत गई।

कामवृत्त (१।१।१६) में बालक्रीडनकानि पर टीका करते हुए जयमंगला टीका ने उसमें घरींदा, गुडिया (पुत्रिका) और गेंदको रूकता है। एक जगह (१।१।१३) बालिका को भेट में गेंद देने का उल्लेख भी है।

दशकुमारचरित में एक जगह वायणसी के प्रमदवन में काम पूजा के लिए निकली हुई राजकुमारी कान्तिमती का अपनी सखियों के साथ गेंद खेलने का उल्लेख है। दश कुमार के छोटे उच्छ्वास में कदुकात्सव का बड़ा ही जीवित चित्रण हुआ है। चित्रगुप्त ने ताम्रालिपि के बाहर के बर्गों में एक बड़ा उल्बन देखा। 'एक भीम भजाते हुए पुत्र ने उसे बताया कि विंध्यवासिनी के प्रसाद से सुसपति वरगन्धर्वा को एक पुत्र और एक कन्या हुई। देवी ने कन्या का प्रतिमास कृतिका नक्षत्र में अच्छे वर की प्राप्ति के लिए देवी को प्रसन्न करने के लिए कदुक नृत्य का आदेश दिया। मित्रगुप्त ने इतने में कदुकावती का आते देखा। उठाने भगवती को नमस्कार करके कदुक का हाथ में लेकर उसे जमीन पर पेंका जगह जग ऊपर उठा ता उसने अँगुलियाँ पसार कर और अँगूठा मोड़ कर हाथ से उसको थपकी देकर हाथ के प्रथम भाग से उसे ऊपर उछाला और फिर उस छोड़ दिया। मध्य

१ टाकाई वैजयन्ता से नालिकर और बलाकाका लक्षण देता है—दार्ढमाव सितवपुर्महाप्राण सख-मना। बलाका जातिरित्युक्तस्तदयो नालिकरज। नालिकर हा मानसोल्लास भा० २, पृ० २३६-४० का नार जाति का कुक्कुट मालूम पड़ता है।
२ दशकुमारचरित, पृ० १७०।३ वहा, पृ० २०६-२११।

मिलगित और द्रुत लय में घीमे घीमे गेंद पेंकते हुए उसने चूर्णपद^१ दिखलाया। गेंद के शिथिल होने पर उसने उसे जोरा से मार कर फिर उछाला, और फिर चक्कर काट कर (विपर्ययेण) उसे शांत हो जाने दिया। फिर उसे बगल और तिरछाई में बाएँ और दाहिने हाथ से मारते हुए चिड़ियों की तरह उसे उड़ाया। ऊपर उठ कर नीचे गिरने पर पकड़ने में उसने गतिमार्ग^२ दिखनाया। फिर उसे चारों ओर घुमा कर वापस लाई। इस तरह से अनेक मौँति से खेलती उसने दर्शकों की प्रशंसा स्वीकार की और उसने मित्रगुप्त की ओर देखा और फिर खेलने लगी। गेंद ने जोर से पिन्ने से वह चक्कर काटती थी। उसने पञ्चमिन्दु (पञ्चार्त प्रसार) दिखलाया और बरदमुत्तान (गोमूत्रिका) में चक्कर काटा। उसने आभरण भन्कार रहे थे, उसने ओठों पर मुमकान थी, कर्वा पर लहराते बालों को वह सँभाल रही थी, मेगला रख कर रही थी, बटुरा, उठा और नितरों से लगा उज्ज्वल अशुक पडपडा रहा था, बाएँ सिनाइ और पसार कर वह गेंद को ठोक रही थी, उसने बाहुपाश मुड़े हुए थे, ऊपर उठाए हुए गाल त्रिक पर लहरा रहे थे। उसने कर्णपूर और कनरूपन खेल की शीघ्रता में गिर रहे थे। वह बार बार हाथ पैर उठा कर कटुक को भीतर बाहर पेंक रही थी, अवनमन और उन्नमन से उसकी कमर कभी दिखलाई देती थी कभी नहीं, अवनतन और उन्नतन से मोती की माला अवस्थित हो रही थी, पसीने की बूँदों से पत्रमग मिट रहा था और कर्णावतस सूख रहे थे। स्तनत्र से हटे अशुक को सँभालने के लिए एक हाथ लगाए, बैठती, उठती, आँखें खोलती, बन्द करती कन्दुकायती खेल रही थी। खेल समाप्त होने पर देवी को घटना करने अपनी सखियों के साथ वह पुर को लौट गई।

उपवनयात्रा भी वैशिक संस्कृति का अंग रहा है। चतुर्भाषी में प्रसंगश ही कहीं कहीं उपवनयात्रा का उल्लेख हुआ है। विष्णुधर्मसूत्र (६७-६८) में वर्षा यम जाने पर प्रधान वैश्याओं के साथ कामियों का उपवनयात्रा की तैयारी करने का उल्लेख है। उपपातिसारिका (१३८) में वैश्या द्वारा सार्थगाह धनमित्र का अशाक्यनिका में लेजाकर छोड़ देने का उल्लेख है। पर कामसूत्र (१।४।२६) के अनुसार उद्यानगमन नागरिक वृत्त का एक विशेष अङ्ग था। नागरिक दोपहर के समय सज धज्ज कर वैश्याओं और परिजनों के साथ उद्यान में जाते थे और कुकट्ट, लावक, मेघ युद्ध पे और गाने बजाने से जी रहला कर उद्यानगमन का चिन्ह जैसे फूल माला लेकर लौट आते थे (१।४।४०)।

वसुदेव हिंटी^३ के अनुसार राजा भी उद्यानयात्रा में निमग्न होते थे। उनके साथ टाट-वाग के साथ एक दूसरे की स्पर्धा करते हुए नागरिक भी हो लेते थे। वहाँ खाना पीना, नाच गाना और हँसी-मजाक होता था।

वृहत्कथाश्लोकसंग्रह में नागवन की यात्रा का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। उदयन की आज्ञा से नरवाहनदत्त और उसने मित्र नागवन यात्रा के लिए तैयार हो गए। उन्होंने देखा कि नगर के द्वारा पर सने घने लोगों की माड निकली चली आ रही थी। भीड़ में घोड़े हाथी और शिकारियाँ थीं। उन्होंने कमण्वन्त को हाथी पर चढ़े देखा। वासवदत्ता

१. ग-यागत्थोरातुलोच्य न्यूनाधिक्य क्षेपण तच्चूर्ण पदम्-कटुकतत्र। २. दशपद च क्रमण गतिमार्ग विदुः — कटुकतत्र। ३. वसुदेव हिंटी, पृ० ५६।

और पद्मावती को घेर कर कचुकी और परिचारक चल रहे थे। मकरयष्टि और रत्नपताकाएँ लेकर वेश्याएँ चलती हुई दूसरों का अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर रही थीं। नरवाहनदत्त और उसने साथी रथ पर चढ़ कर राजमार्ग पर हाते हुए नगरद्वार पर पहुँचे। चाभदार रथ के लिए रास्ता साफ कर रहे थे। भीड़ को देखने के लिए वे एक देवान्ध में पहुँचे। वहाँ नरवाहनदत्त ने स्त्रियों से भरा एक प्रवहण देखा। उत्तम से एक ने अपनी दाँ अँगुलियाँ मुँह पर रक्ती और हाथ जोड़े। कामशास्त्र से अनजान होने से नरवाहनदत्त ने उस इशारे का मतलब नहीं समझा। हँसोड़ गोमुख ने उसे उस वेश्या को प्रणाम करने को कहा। उसने ऐसा करने पर लोग हँसने लगे। इस पर वेश्याएँ भी कुमार के भालेपन पर हँसने लगी। (१। १-२०)। क्रीड़ा स्थानों को देखने के बाद नरवाहनदत्त का दल यमुना पार गया। क्रीड़ा गृह में रात बिता कर सब लोग सबेरे नागवन पहुँच गए। वहाँ उन्होंने भीड़ को मौन उठाते देखा। सेनापति ने कुमार और उनके साथियों को यात्रागृह में ठहराया जहाँ उन लोगों ने सारा दिन राग रग, नहाने और खाने पीने में बिताया।

गुप्त युग में संगीत और नृत्य का बड़ा प्रचार था। संगीत में कुशलता तो वैशिकी शिक्षा का एक विशेष अंग माना जाता था। अतः पुर की स्त्रियाँ भी गाने बजाने और नाचने की आचार्यों से शिक्षा पाती थीं। चतुर्भांगी में ऐसे अनेक स्थल आए हैं जिनसे तत्कालीन नृत्य, संगीत और नाट्य पर प्रकाश पड़ता है। अतः पुर की स्त्रियाँ आचार्यों की शिक्षा के अनुसार नाचती थीं (प० प्रा०)। वेश्याएँ नृत्यकार के दिन आचार्यों के यहाँ नाच सीखने जाती थीं (प० प्रा० ५८)। संगीतक अथवा कलसे का कई बार उल्लेख है। नारायण के मंदिर में संगीतक होता था (उभ० १२२-१२३)। संगीतक में शाम्भु होने के लिए दयाना मिलता था। कुमुदपुर के राजा द्वारा आयोजित पुरदरविजय नामक संगीतक के लिए मियगु सेना और देवदत्ता को न्योता मिला था। लगता है राजभवन में उसने लिए सिंगारिश की आवश्यकता पड़ती थी (उभ० १४१)। ऐसे संगीतकों में नर्तकियों में होड़ लगती थी। नृत्य व निम्नलिखित अंग माने जाते थे—रूप, श्री, नवयौवन, युति काति, आदि, चार तरह की अभिनय सिद्धि, बचोस तरह के हस्त प्रचार, अक्षरह भक्ति के निरीक्षण,^१ छह स्थान,^२

१ आगिको वाचिकश्चैव भाहार्यं सात्त्विकस्तथा ।

च चारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रया ॥ भरत, ६।६३

२ नृत्तहस्त—वनुरख, उद्वृत्त, तलमुख, स्वस्तिक, विप्रकार्ण, भ्राल, खट्कामुख, भाविद्धक, सूर्याख्य, रेचित, अधरेचित, उत्तान, अवाचित, पल्लव, नित्य केशवध, कटिहस्त, लताख्य, पञ्चवचितक, पञ्चप्रद्योतक, गरुडपक्ष, हंसपक्ष, ऊर्ध्वमंडलिन्, पार्श्व उरोमंडलिन्, उरो पार्श्वोर्ध्वमंडल, गुष्टिक, स्वस्तिक, नलिनी, पद्मकोश, भलपल्लवोद्वेग, ललित और वलित—ना० शा० ६।११-१७

३ देखिए नाट्यशास्त्र, ८।४०-४५

४ वैष्णव, समपाद, घेशाख, मंडल, प्रत्यालीढ और अलीढ, ना० शा० १०।५१

१ (तीन) गति, आठ रस, गाने बजाने इत्यादि में तीन लय (उभ० १४२) । जलसे की प्रेक्षा (वा० ता० २२५) भी कहते थे । प्रेक्षा और समाज में सामाजिक भाग लेते थे । मयूरसेना के लास्यनार से पता चलता है कि राजा बजने के बाद पहले देवता मगल होता था और इसके बाद गीत और नृत्य होता था । मयूरसेना के नाच की प्रथम वस्तु में ही लासक उपचन्द्र ने उसमें प्रयोग दोष दिखलाया और उसके पक्ष में सामाजिक जन से पर तलवर हरि शूद्र ने मयूरसेना का पक्ष लिया और प्रारिणिक (मध्यस्थ) ने भी उसी का समर्थन किया (पा० ता० २२५-२६६) ।

१. स्थित, मध्य और द्रुत-ना० शा० १२।१६

२. शृंगारादि भवेदास्थो रीद्राक्षु करुणो रसः

वीराद्यैवाद्भुतोत्पत्तिर्विभक्ताद्य भयानकः ना० शा० ६।३६

३. अमरकोश (व० २।७।१५) में समज्या, परिपद, गोष्ठी, सर्मा, समिति, ससद्, आस्थानी, आस्थान और सद् कहा गया है । इनके सदस्यों को सभासद्, सभास्तार, सम्य और समाजिक कहा गया है (२।७।१६) ।

४. भरत के अनुसार लास्यांगों में गेयपद, स्थितिपाठ्य, आसीन, पुष्पगंधिका, प्रच्छेदक, त्रिमूढ, सैन्धवक, द्विमूढक, उत्तमोत्तमक, विचित्रपद, उत्कप्रयुक्त और भावित होते थे । आसन पर बैठ कर साजके साथ सूत्रा गाना अथवा नृत्य न्यास में स्त्री द्वारा प्रिय के गुण युक्त गाने को गेयपद कहते थे । आसन पर बैठकर कामदग्धा का प्राकृत पाठ स्थितिपाठ्य है । आसीन में चिन्ता और शोक का पुट होता है । जहाँ मनुष्य के प्रेम में स्त्री संस्कृत गान करती है उसे पुष्पगंधिका कहते हैं । प्रच्छेदक में चोदनी से व्याकुल स्त्रियाँ प्रिय को सजाती हैं । त्रिमूढ में पद कम और पुरुर्य पात्र अधिक होते हैं । सैन्धवक में विस्मृत सकेत, करुणा इत्यादि आते हैं । द्विमूढक में गीत अभिनय भाव और रस का समि-
धन होता है । उत्तमोत्तम में अनेक रस और श्लोकवध. विचित्रपद में प्रतिकृति, उत्कप्रयुक्त में सवाल जवाब, उल्लाहना इत्यादि तथा भावित में स्वप्नदर्शन से भाव प्रकाश करना होते हैं (१६।१३८-१५२) ।

५. भरत के अनुसार प्रेक्षक चरित्रवान, शान्त, विद्वान, यशस्वित, मध्यस्थ, बड़ी उम्र वाला, नाटक के छः अंगों में कुशल, पवित्र, जागरूक, चार तरह का बाजा बजाने में कुशल, नेपथ्य कर्म में कुशल, देश भाषा जानने वाला, कला और शिल्प में चतुर, अभिनय, रस, भाव, शब्द छद् और जाना शास्त्रों में कुशल होता था (२७।४३-५३) । वह ऊहापोह में कुशल, दोष ढूँढने वाला, प्रेमी, तुष्टि में तुष्ट, शोक में शोक, दैन्य में दीनता इत्यादि गुणों से युक्त होते थे (२७।५४-५६) । पर एक ही प्रेक्षक में ये सब गुण असम्भव थे इसलिए बहुत से प्रेक्षक की आवश्यकता पड़ती थी (५७) । मगदा पढ़ने पर प्रारिणिक का काम पढ़ता था । यज्ञवित्, नर्तक, छद् शास्त्र का ज्ञाता, विच्छेद, वित् इष्टवाह, चित्रवित्, वेरया, गन्धर्व, राजसेवक प्रारिणिक होते थे (२१।६३-६५) । यज्ञ में याज्ञिक की, अभिनय में नर्तक की, छद् में छद् शास्त्र जानने वाले की, पढ़ने में शब्द शास्त्री की, विभूति, अन्त-
पुरकी बातें तथा राजा सबर्षी बातों में इष्टवाक्की आवश्यकता होती थी ।

चतुर्भाषी में नाटक के सम्बन्ध में भी कुछ उल्लेख है। भाव गन्धर्वदत्त नामक नाटकाचार्य का उल्लेख है। लगता है नाटकाचार्य के शिष्य भी होते थे। नाट्यरेक दर्दुरक नामक ऐसे ही एक शिष्य का उल्लेख है। आचार्य छोटे मोटे कामों के लिए ऐसे शिष्यों को दौड़ाते थे। दर्दुरक कुमुद्वतीप्रकरण का भूमिका पत्र लेकर देवसेना के पास गया था (प० प्रा० ५०)। भूमिका तालपत्र पर लिखी होती थी (प० प्रा० ५४)।

वीणा के साथ गाने का चलन था। शोणदासी (प० प्रा० ५४) काकली मन्द मधुर स्वर में बल्लकी का जरा छेड़ते हुए कैशिक के सहारे कूज रही थी। कैशिक के सहारे गाना करुणा से ओत-प्रोत होता था। मगधमुन्दरी के स्फुट वर्ण और अलङ्कार से सजी, पट्टन ग्राममें बल्लभा नामक चौपदी गाने का उल्लेख है (प्र० प्रा० ४८)। यक्त्रा और अपरधक्त्रा छद्मों में भी गाने का रिवाज था (उ० १५४)। यौधेय यानी पूवा पञ्चाब के बागहू गीत गाने का चलन था। गाने वाले के साथ रोहतक के मृदंगिए, कर्क और बाँसुरी बजाने वाले होते थे (पा० ता० १६८)। एक जगह (पा० ता० १७७) सततनी वीणा पर काकली पञ्चम स्वर से गाने का उल्लेख है। विष्णोला शायद मुँह से बजाने का किसी तरह का ढाजा था (पा० ता० १८७)। वीणा की किरमों में बल्लकी (प० प्रा० ५४) जिसमें तूवा (पा० ता० २५३) लगा रहता था, सततनी वीणा (पा० ता० १७७), विपची (पा० ता० २३४), और तनी (पा० ता० २५३) के उल्लेख हैं। बल्लकी आधुनिक शायलिन की शकल की वीणा होती थी, विपची और सततनी वीणा में सात तार लगे होते थे और उसकी शकल कानून की तरह होती थी (अमरकोश १।६।४)। ऐसे ही वीणाचार्य गान्धर्व सेनक का नाम पादताडितकम् (२५३) में आया है। उसे तीन तरह के ढाजों पर अनेक करणों में अम्पस्त वीन पर गिरती अँगुलियों वाला तथा बल्लकी के तूवे की धोणि पर रखते हुए रईसों के अन्तःपुर की सुन्दरियों की हथर उधर घूमती हुई अँगुलियों का मजा लेने बाजा कहा गया है।

चतुर्भाषी में सगीत, नृत्य, इत्यादि के उपर्युक्त वर्णनों में हमें तत्कालीन सगीत की एक अस्पष्ट सी क्रांती मिलती है। पर भारत के नाट्यशास्त्र, गृन्थकटिक, वसुदेवहिंदी और बृहत्कथाश्लोकसमग्र के आधार पर हम उस अधूरे नित्र को और भी साफ कर सकते हैं। नाट्यशास्त्र के अट्टाईसठे अध्याय में आलोचविधि का सविस्तर वर्णन हुआ है। बाजे चार तरह के होते थे यथा तत, अनवद्ध, घन और मुपिर (१)। तनीगत नाओं को तत, मृदग इत्यादि को अनवद्ध (मटे हुए), ताल को घन, और बाँसुरी को मुपिर कहते थे (२)। इनका उपयोग, नाच, गाने और नाटक में होता था। वैपचिक (नीनकार), वैशिक, पश-नादक, मार्दमिक पाणविक (हाथ से ताल देने वाले), दार्दुरिक इत्यादि गाने-नाचने में साथ देते थे (३-५)। अनेक ढाजों के साथ वीणा वादन का शास्त्र कहते थे। देवताओं और गणवों के प्रिय होने से इसे शास्त्र कहते थे (८-९)। शास्त्र स्वरात्मक तालात्मक और पदात्मक होते थे (१२)। भारत के अनुसार (२६।१५४) चित्रा वीणा में सात तार होते थे और विपची में नौ। विपची कोण से बनाई जाती थी और चित्रा अँगुलियों से।

वसुदेवहिंदी में नाटक (नाट्य) शब्द का व्यवहार केवल नृत्य के लिए हुआ है।

खाने के बाद पान लेने पर नाटक यानी नृत्य दिखलाया जाता था^१। वर्षरी और किरात आदि जाति की दामियाँ संगीत और नाचने में बहुत कुशल होती थीं। कुन्ज, वामन किरात नर्तकियों का उल्लेख एक दूसरी जगह है^२। वसन्ततिलका के नृत्य का वर्णन एक जगह है।^३ नालिकागलक नृत्य में^४ जलघड़ी के अनुसार नाच चलता था। पानी समाप्त होते ही नृत्य समाप्त हो जाता था और उसी पानी से नाट्याचार्य नर्तकी को स्नान कराता था। सूचनास्थ में प्रेक्षण गृह में सूई के ऊपर इस तरह से नाचती थीं कि सूईयों अपनी जगह से हटती नहीं थीं।

वसुदेवहिंडी के गन्धर्वदत्ता संभक्^५ में चंपा नगर में संगीत प्रेम का एक अच्छा चित्र खींचा गया है जिसका मेल जैसा हम आगे चल कर देखेंगे, बृहत्कथाश्लोकसंग्रह के वैसे ही दृश्य से मेल खा जाता है। जिन मन्दिर से निकल कर वसुदेव ने वीणा लिए हुए बहुत से युवकों को देखा। बहुत से लोग वीनों से भरी गाड़ी को घेरे हुए थे। वीणा का वहाँ उतना प्रचार देख कर वसुदेव ने जब उसका कारण पूछा तो पता लगा कि सेठ चाक-दत्त की पुत्री गंधर्व विद्या में अत्यन्त कुशल थी। उसका प्रण था कि जो संगीत में उसे जीतेगा उसी के साथ वह विवाह करेगी। हर महीने विद्वानों के सामने इस बात का निर्णय होता था। वसुदेव ने नगर के प्रतिष्ठित संगीतज्ञों के बारे में पूछा तो सुग्रीव और जयग्रीव के नाम का पता चला।

वसुदेव ने उन्हीं के यहाँ समय बिताने का निश्चय किया और सुग्रीव के यहाँ बेवकूफ का बाना घर कर पहुँचा। उपाध्याय से उसमें अपना नाम रूंदिल बतलाया और बिन सीखने की इच्छा प्रकट की। मूर्ख जान कर सुग्रीव ने उसकी भारी वैशज्जती की पर उसने उसकी पत्नी को एक रत्न जटित कड़ा देकर घर में कर लिया। और उपाध्याय ने उसकी मदद से वसुदेवको शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। नारद और 'तुम्बुरु' की पूजा करने के बाद उपाध्याय ने उसे धीन दी जिसे उसने तोड़ दिया। ब्राम्हणी ने एक बड़ी तंत्री बनाने की सलाह दी। उपाध्याय ने ऐसा ही करके उसे धीमे-धीमे बिन सजाने की सलाह दी। अपनी बनावटी मूर्खता से शिष्यो को वसुदेव हँसाता था। इतने में संगीत परीक्षा का समय आ पहुँचा। ब्राम्हणी की मदद से वसुदेव भी समा में गया।

समा में सजे आसनों पर विद्वान बैठे और बाकी लोग फर्श पर। उपाध्याय विचारे हर रहे थे कि कहीं वह उनके पास न आए। पर वसुदेव की तारीफ से प्रसन्न होकर चारुदत्त ने आसन दिया।

बाद में गन्धर्वदत्ता आकर बचनिका के पीछे बैठ गई। किसी की हिम्मत बिन बजाने की नहीं हुई, पर वसुदेव तैयार हो गया। एक वीणा लाई गई पर उसका तुम्बा साफ न होने से उसने उसे लीटा दिया। दूसरी वीणा को दावानल की लकड़ी से बने होने के कारण कठोर स्वर वाली होने से उसने अलग कर दिया। तीसरी वीणा को पानी में डूबी लकड़ी से बनी होने से गम्भीर स्वर निकलने के कारण उसने नहीं लिया। इसके बाद चन्दन चर्चित

१ वसुदेवहिंडी, पृ० ४६०, २ वही, पृ० ४२०, ३ वही पृ० ४७८, ४ वही ३५,

५ वही १२५, ६ वही १६१।

और फूल माला से सजी एक वीणा लाई गई और वह आसन पर बैठ गया। चारुदत्त ने उससे विष्णुगीतक बजाने को कहा। विष्णुगीतक की उत्पत्ति का हाल कह कर वसुदेव और गन्धर्वदत्ता ने वीणा को भुङ्कार कर गावार ग्राम की मूर्छना से वीन स्थान, किया शुद्धि, ताल, लय और द्रष्टृ की समता से विष्णु गीतिका गाई। लोग वाह वाह करने लगे और कहने लगे कि नगर का उत्सव और वीणा का व्यापार बन्द होने वाला था। उसने बाद वसुदेव ने गन्धर्वदत्ता का वरण किया।

वृहत्कथाश्लोक समग्र में कई स्थानों पर नाच गाने का सुन्दर चित्रण हुआ है। उदयन की आज्ञा से (११।१ से) मदनमधुका के नृत्य की व्यवस्था की गई। अपने साथियों और नागरकों के साथ नरवाहनदत्त राजमहल में पहुँचे। उदयन को नमस्कार करके वे सिंहासन को घेर कर बैठ गए। कुशल प्रेक्षकों से रागागण भरा देख कर दोनों नृत्याचार्यों ने राजा को नमस्कार करके कहा कि दोनों नर्तकियों नाचने को तैयार थीं और उनकी आज्ञा चाहती थीं। राजा ने कौन पहले नाचे इसका चुनाव गोमुख पर छोड़ दिया और उसने इसके लिए सुयामुनदत्ता को चुना। उसके रंग मन्त्र पर आते ही प्रेक्षक स्तब्ध हो गए। अन्त में सुयामुनदत्ता ही प्रतिस्पर्धा में जीती। लगता है इस तरह की होई उस समय की एक खास बात थी। पाटलिपुत्र में प्रियशुसेना और देवदत्ता की होड़ का उल्लेख उभयाभातिरिका में भी है।

वीणावादन की प्रतिस्पर्धा का एक बहुत सुन्दर चित्र वृहत्कथाश्लोकसमग्र के सोलहवें और सत्रहवें अध्यायों में बच गया है। वसुदेवहिंडो के गन्धर्वदत्ता लभक के ऐसे ही उपशुक्त वर्णन से तुलना करने पर पता चलता है कि शायद दोनों कथाओं का मूल स्रोत गुणाढ्य की अग्रज वृहत्कथा रही हो। कथा यह है कि नरवाहनदत्त ने विद्याधर अभितगति जहाँ गिरा था उस जगह का नाम बिना पूछे ही उसे बिदा कर दिया। आज्ञा पास का जगल बड़ा घना था। रात के समय उसे पार करके नरवाहनदत्त एक उपवन में पहुँचे और एक माली से उसके मालिक का नाम पूछा। इस सवाल से वह बेचारा स्तब्ध रह गया और कहा कि यह शायद उससे हँसी कर रहा था। इसके बाद नरवाहनदत्त तोरणयुक्त एक दूसरे प्रगीचे में पहुँचे। वहाँ उन्होंने चित्रोपधानक से सजी एक शिला पर एक जन को वीणा बजाते देखा। वह नागरक बजाने में इतना मस्त था कि पहले तो उसने नरवाहनदत्त को देखा ही नहीं। नरवाहनदत्त के आवाज देने पर वह उठ खड़ा हुआ और उनका स्वागत करके उन्हें शिला पर बैठाया। नरवाहनदत्त ने उससे जब उस देश का नाम पूछा तो उसने कहा कि वे जरूर आसमान से एक पदें होंगे। पीछा छुटाने के लिए नरवाहनदत्त ने उससे कहा कि वे वत्स देश के निवासी थे। उनसे प्रेम में पसं कर एक यक्षी उन्हें उड़ा ले गई थी, पर लड़ाई हाने से उन्हें उस जगह पटक कर यह चल दी। यह सुन कर उसने बतलाया कि वह अग देश की चम्पा नगरी में था। उसका वास्तविक नाम दत्तक था पर उसने मित्र उसके वीणावादन में कुशल होने से वीणादत्तक कहते थे। वीणादत्तक ने एक परिचारक को पीरन गाड़ी लाने की आज्ञा दी। गाड़ी आने पर दोनों जन उसमें बैठ कर चम्पा की ओर चल पड़े। रास्ते में लोगों को यह देखा कर आश्चर्य हुआ कि किस तरह वीणादत्तक ने एक अजनबी को गाड़ी में मान्य स्थान दे रखा था। नरवाहनदत्त ने यह भी देखा कि खेतियर हल छोड़ कर और ग्वाले अपने

पशु छोड़ कर बीन बजा रहे थे ! राज द्वार पर उसने बीणा के भाग ढोतो हुई बैलगाड़ियों का एक ताता देखा । आगे बढ़ कर वणिक्मार्ग पर उसने कुम्हारों, षड्विधों और बेंत विनने वालों को बीन बजाते देखा । अन्त में दोनों वीणादत्त के घर पहुँचे (१-५५) ।

वहाँ वीणादत्त ने अपने परिचारकों से नरवाहनदत्त के साथ अपने जैसा ही व्यवहार करने को कहा । अपने को ब्राह्मण बतलाने के लिए नरवाहनदत्त ने पावस भोजन की इच्छा प्रकट की । एक मर्दन शास्त्रज्ञ ने उसकी मांशिक की । उद्धर्तन के बाद उसने स्नान करके कीमती कपड़े पहने और देव दर्शन करके सीधे भोजन मंडप में पहुँचा । उसके बैठने के बाद वीणादत्त अपने भाइयों और भतीजों के साथ बैठ गया । रसोद्दय ने नरवाहनदत्त के सामने खीर से भरा सोने का कटोरा और उसके पार्श्व में यशत्र (महामसार) की कटोरी में घी शहद रखा । अच्छे भोजन और पेयों को देख कर नरवाहनदत्त का मन ललच गया और वह गरम खीर से मुँह जलने का बहाना करके पानी पीने लगा । पर उसका मेद फुल गया और उसे सुगंधित मुरा टी गई । इसके बाद उसने अचार के साथ मास खाया । भोजन समाप्त हो जाने पर भोजन मंडप में ही उसके लिए एक पलग डाल दिया गया और उसे मुखगंध राग और पान दिए गए । नरवाहनदत्त ने वीणादत्त से चपा के लोगों का बीणा के पीछे पागल होने का कारण पूछा । उसने कहा सानुदास सेठ की पुत्री सुन्दरी गन्धर्व-दत्ता का यह प्रण था कि वह उसी के साथ विवाह करेगी जो उसके एक अज्ञात गीत के साथ बीणा का साथ देकर उसे हराएगा । हर छठे महीने वह चौसठ नागरकों के सामने एक अज्ञात गीत गाती थी पर उसका साथ करने में लोग अपने को असमर्थ पाते थे । बात चीत के अन्त में सानुदास के भेजे हुए दो आसावरदारों ने आकर पूछा की मुहब्द गोष्ठी और समास्या (६०) का आयोजन किया जाय (५६-६३) और वह सहमत हो गया ।

नरवाहनदत्त ने सगीत न जानने का बहाना किया । यह सुन कर वीणादत्त ने दर स्वर वालों और स्वर और भृतियों से सफा भूतिल नामक एक गायक को बुलाया । उस नरवानर को देख कर नरवाहनदत्त ने उससे पढ़ने से पहले राज्य तक गँवा देना ठीक समझा । वीणादत्त तथा उसके साधियों ने भूतिल की आवभगत की, पर नरवाहनदत्त ने उसकी ओर ओंछ तक न की । गुस्से से उसे गुरेखा हुआ भूतिल आसन पर बैठ गया । वीणादत्त ने उससे नरवाहनदत्त की नारदीय सगीत में शिक्षा देने की प्रार्थना की । उसने यह कह कर बात उड़ा देनी चाही कि नरवाहनदत्त उसे फूटी कौड़ी (कांजिणी) भी नहीं दे सकता था । उसकी राय में विद्या केवल गुरु भक्ति अथवा पैसे से ही मिल सकती थी और ये दोनों बातें उसके लिए सम्भव नहीं थीं । यह सुनकर दत्तक ने हठके तौर से झिटकने हुए कहा कि उसने रहते हुए नरवाहनदत्त मुस्ताब नहीं कहा जा सकता था । यह कह कर उसके सामने भी मुहूर् पटक दी । नारद और सरस्वती की पूजा के बाद भूतिल ने नरवाहनदत्त को एक चेमुरी बीन पकड़ा दी । जब उसने बीन को गान में लिया तो भूतिल बिगड़ कर वीणादत्त से कहने लगा कि ऐसे आदमों को ब्रिसे ठीक तरह से बीणा पकड़ने की भी अबल नहीं बीन मिलाना असम्भव था । इस तरह पटकाने हुए वह निपाद पट्ट की जगह निपाद स्वर मिलाने लगा । इस पर बिगड़ कर नरवाहनदत्त ने बीन के चार-पाँच तार चटका दिए । भूतिल के पटकाने पर अरुना गुप्त पेश भूतल कर नरवाहनदत्त ने दूरी बीन पर ही ऐसे स्वर छोड़े

कि लोग अचभे में आगए और भूतिल उसे काकतालीय धटना कह कर दक्षिणा लेकर चंपत हुआ (१७।१-२५) ।

ब्यालू करने के बाद नरवाहनदत्त मालाओं और धूप से सुगन्धित शयनागार में गए । वहाँ दो रूपाजीयाओं ने अपने रासम स्वर से उसे आकर्षित करना चाहा । उनसे चुटकारा पाने के लिए नरवाहनदत्त ने सोने की नकल साध ली और वे निराश होकर चली गईं (२६-३१) ।

आधी रात के समय नरवाहनदत्त की नींद खुल गई और उन्होंने चित्रपट में लिपटी नाम दंत पर लटकती वीणादत्त की वीणा देखी । बहुत दिनों से छूटे अभ्यास को जरा ताजा करने के लिये उन्होंने धीरे-धीरे ऊँचा-नीचा करके विना त्रैगुणियों से छुए ही वीणा के सुर मिला दिए । उसका रागोत सुन कर वीणादत्त के घर वालों ने आवाज लगाई कि स्वयं सरस्वती यहाँ वीणावादन कर रही थीं । उन्होंने आपस में कहा कि जब आरम्भ ही में इतना सुन्दर था तो अन्त की क्या बात ! उनकी बातें सुन कर नरवाहनदत्त ने पीरन वीणा खँड़ी पर लटका दी और सो गए । वे गीत जब उस कमरे में आए तो वहाँ कुछ न पाकर कहने लगे कि उनके जैसे तुच्छ आदमियों के सामने भला सरस्वती कैसे प्रकट हो सकती थी । (३२-४३) ।

दूसरे दिन सबेरे वीणादत्त ने नरवाहनदत्त से कहा कि गन्धर्व समस्या में ले जाने के लिये रथ तैयार लखे थे पर नरवाहनदत्त ने कहा कि वह और उसके साथी जैसे जाना चाहें जायें । उन्होंने पैदल जाने का इरादा कर लिया था । वीणादत्त उसकी बात मान कर उसे दल का श्रुआ बना कर निकल पड़ा । सवारियों छोड़ कर पैदल चलने से लौक कर नागरिकों ने नरवाहनदत्त को कोसा । एक बड़े महल में यक्षीकामुक नरवाहनदत्त को देखने लिये इकट्ठी हो गई थीं । इस तरह दल सानुदत्त के यहाँ पहुँचा । पहली कक्षा में पटोरे से सजे (महा प्रोणं वैशितम्) चौसठ आसन लगे थे । सानुदास ने आगन्तुकों का स्वागत करके उन्हें आसनों पर बैठाया । नरवाहनदत्त को देख कर सानुदास ने उन्हें आसन न दे सकने का ऐद प्रकट किया । यह सुन कर दत्त स्वयं उसे अपना आसन देने पर तैयार हो गया । उसके लखे होते ही आदरार्थ दूसरों को भी खड़ा होना पड़ा । नरवाहनदत्त को एक आसन मिलने पर सब लोग बैठे । इसके बाद तीन सौ गणिनाओं ने आकर अभागतो के पैर धोए । उनमें से जब एक नरवाहनदत्त के पास पहुँची तो उसके सौंदर्य को चकाचाँप से उसके सिर से पानी का घड़ा गिर पड़ा (४४-५८) ।

इसके बाद सत्र नागरिक एक बड़ी सभा में हुंसे जहाँ उनसे एक कञ्चुकी ने पूछा कि अगर वे आराम कर चुके हों तो गन्धर्वदत्ता अपना गीत आरम्भ करें । अपनी कमजोरी जानकर नागरकगण तो आनाकानी करने लगे पर नरवाहनदत्त शांत बने रहे । यह देख कर लोगों ने कहा कि उनकी शक्ति वेङ्कूषी की चोतक थी (७६-८६) ।

इसने सट जननिका हटकर कञ्चुकियों और परिचारकों के साथ गन्धर्वदत्ता ने सभा में प्रवेश किया । उमरी सुन्दरता से गोछी चकान्नीय हो गई । इसके बाद कञ्चुकी ने गन्धर्वदत्ता के गीत का बीत पर साध देने वालों को आमन्त्रित किया । मडली ने वीणादत्त का आगे बढ़ने को कहा । गन्धर्वदत्ता ने जैसे ही गीत छोड़ा नरवाहनदत्त को पता चल गया कि वह नारायणमोहन था जिस विभिन्न वी प्रदक्षिणा करते हुए गन्धर्व विख्यातमु ने गाया था ।

उदयन ने नरवाहनदत्त को यह गीत बनाया था। नरवाहनदत्त पीरान अरने आसन पर साथ चरने के लिए रखे हो गए। लोगों ने यह उनका वचन समझा पर नरवाहनदत्त बिना किमी की परवाह किए गंधर्वदत्ता के बगल में जा बैठे। उनके सामने एक वीणा लाई गई पर उसे उन्होंने यह कह कर अलग कर दिया कि उसके तूबे में झाला होने से तंत्री के स्वर दब जाने का भय था। उसके इस व्यवहार पर क्रुद्ध होकर नागरक उन्हें बेशर्म और झूठी शान दिप्ताने वाला कह कर कहने लगे कि भन्ना वेदपाठी बिन ब्रजाना क्या जाने। पर बिन का तुम्हा खोल कर नरवाहनदत्त ने अपनी बात सिद्ध कर दी। दूसरी बिन भी नरवाहनदत्त ने पसन्द नहीं की क्योंकि उसके तार ठीक नहीं थे। इस पर सानुदास फूलों से सजी कच्छप वीणा लाए। नरवाहनदत्त अरने पैर धोकर और वीणा की प्रदक्षिणा करके कौशेय से दैके मच पर बैठ गए। अँगुली के इशारे से ही उन्होंने वीणा मिला ली और फिर गन्धार ठाठ पर बजाते हुए उन्होंने गन्धर्वदत्ता से अपना गीत शुरू करने को कहा। उनका बाजा इतना सुन्दर था कि गन्धर्वदत्ता ने अपनी हार मान कर उन्हें वर लिया और कचुकी ने जैसे स्वर्ग से नास्तिक निकाल ग्राहर किए जाते हैं उसी तरह नागरकों को निकाल ग्राहर किया (६७-१६१)।

कालिदास के मालविकाग्निमित्र (अ० १-३) से भी गुप्तकालीन नृत्य और संगीत पर काफी प्रकाश पड़ता है। नाट्याचार्य संगीतशाला में शिक्षा देते थे। नाट्याचार्यों की राज दरबारों में भी काफी कदर थी। गणदास ऐसे नाट्याचार्यों को वेतन मिलता था। नाट्याचार्य में नृत्य में निपुणता और सिखाने की विद्या का होना जरूरी माना जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि नाट्याचार्यों में स्वर्ण की भावना होती थी। मालविकाग्निमित्र में हरदत्त नामक नाट्याचार्य ने गणदास को ललकार कर कहा कि उसके सामने उसकी कोई हैसियत न थी। राजा ने हरदत्त ने उन दोनों की निपुणता की परीक्षा के लिए प्रतियोगिता की प्रार्थना की। राजा रानी और कौशिकी मध्यस्थ बने। प्रतियोगिता के निम्नलिखित नियम सामने रखे गए—

अनाडी शिष्या के शिक्षा न ग्रहण करने पर दोष शिक्षक का था,। वेनकूप शिष्या को स्वीकार करना गुरु की भूर्जता थी और मामूली शिष्या को निपुण नर्तकी में परिवर्तन कर देना गुरु की बुद्धिमानी का परिचायक था। ऐसी प्रतियोगिता संगीतशाला में होती थी। गायध्वं आरंभ होने पर नर्तकियाँ सज्जक कर आती थीं और नाचती थीं। प्रेक्षक उनके गुण दोष बताने करते थे। अन्त में मध्यस्थ अपनी राय देते थे और जीतने वाले को गुरु को इनाम दिया जाता था।

चतुर्भांगी में जहाँ तहाँ गुप्तकालीन वेप भूषा और अलंकारों के उल्लेख आ गये हैं। उनकी तुलना गुप्तकालीन साहित्य और कला में वेप भूषा और अलंकारों के यत्न से करने पर ऐसा पता लगता है कि चतुर्भांगी गुप्तकाल की ही रचना होगी। उस युग में भीनी मन्मल (पेल्लाशुक धू० पृ० ७८) पहनने की बड़ी चाल थी। अशुक (पा० ता० १५२) भीनी होने से उसके अन्दर से बदन दिखाने देता था। रत्नाशुक (पा० ता० २४६) पहनने का रिवाज था। स्त्रियों और पुरुषों के उत्तरीय पहनने का उल्लेख है। जल्दी से चलने से उत्तरीय पिसक जाता था (पा० प्रा० ३७)। बाह्यी कारवने वाला बाप्य पानागार में नाचते

हुए अपने भ्रामे (सिरल), दाहिने कंधे पर पड़े, पडपडाते क्रिनारे वाले (व्याकुलादश) उत्तरीय का चार चार सँभालता था (पा० ता० १६८) । कभी कभी उत्तरीय से दाना बाहुएँ टक जाती थीं (पा० ता० १५४) । नीवी (पा० प्रा० २४) अथवा दशात नीवी (पा० २३७) अमर काश (३।३।२१२) के अनुसार स्त्री के कण्ठिख का बंध कहा गया है । शान्ति धोती और साडी का बोधक था (धू० वि० ६८) । स्त्रियाँ चादर (प्रावार) और दुकूल पट्टिका भी पहनती थीं (पा० प्रा० ४४) । अर्धाङ्क पुरुष (धू० वि० ७२) और स्त्रियाँ (उ० भ० १४१, पा० ता० १८५-१८८) पहनती थीं । अमर काश (२।६।११६) में अर्धाङ्क और चडातक स्त्रियों का वस्त्र माना गया है । अर्धाङ्क की व्याख्या ऊर्ध्वार्धाङ्कादक मशुकमधाङ्कम् अर्थात् आधी जाँचे ढकने वाला वस्त्र अर्धाङ्क है—की गइ है । उभेदुएँ कमरबद्ध क लिष्ट/रञ्जुवासत् (पा० ता० ११४) शब्द आया है । चोली के लिए स्तन प्रावरण (धू० वि० ७८) और कृपासक (पा० ता० २३७) शब्द आए हैं । अमरकोश (२।६।११८) में चोल और कृपासक को समानार्थक माना है । क्षीरधनानी के अनुसार कृपासक की व्याख्या है—कृपणैश्च्यते कृपास आणा कञ्जुलिकादयः ।

फूलों से बने गहने पहनने का बहुत प्रचलन था । फूल का बना कर्णपूर (पा० प्रा० १०, पा० ता० १४५) पुष्पापीड (सिर पर लगाने का गहरा—पा० प्रा० १८) और कर्णात्फल (धू० वि० ७८, पा० ता० १५५, २५४) का रियाज था । बहुधा लोग कुरटक का बना शेरार (पा० प्रा० १७ पा० ता० १६८) पहनते थे । फूलों की इतनी माँग थी कि फूल बाजार को पुष्प बीधी कहते थे । वहाँ कमल, कलियाँ, उत्तल, रत्ताशोक, फूलों के गुच्छे (स्तवक) पुष्पापीड, गूँथे हुए फूलों के बसन और मालाएँ बिकती थीं (पा० प्रा० २५) । वनराजिना के शृङ्गार से लोगों का फूलों के प्रति प्रेम प्रकट होता है । उसका केश वासन्ती, कुंद और कुरवक के फूलों से सजा था । उसकी चोटीकी फूँद में अशोक के फूल लगे थे, सिंदुरार के फूलों से उसके स्तन मजे थे, आम की मञ्जरियों और पल्लवा से कर्णपूर बने थे । उसके हाथों में भी फूल थे (पा० प्रा० १७) ।

आभरणों ने अधिक नाम चतुर्भांगी में नहीं आए हैं । हाथों में पहनने का कडा (बलय—पा० प्रा० ४०), कानों में पहनने का कर्णपाश (धू० वि० ७८), सफेद काठ की पर्णिका (पा० ता० १८२), काठ का बना विपुल सित कलश (पा० ता० १६३), कुण्डला (पा० ता० १८८, २२८, २३३), साने का बना तालपत्र (पा० ता० २३७), गले में पहनने का हार (पा० ता०), और साने का बना वैकुण्ठ (पा० ता० १८८) मुख्य थे । स्त्रियाँ चोटीला (गुच्छ) जो मणि, मोती और सोने से बना होता था पहनती थीं । (पा० ता० २३७) । करघनी के लिए कई नाम आये हैं यथा मेखला (पा० प्रा० ४६, उ० १२८, पा० ता० १५५, १६२, २५३), (काची धू० वि० ७३, ७६) और रशना (पा० ता० १८०, १५) । लगता है मेखला सजाना वश्याआ की एक विशेष कला थी धू० वि० ८० ।

गहनों के सिवाय भी पत्रलेखा, विशेषक तिलक, अगराग इत्यादि से स्त्रियों का शृंगार करने के उल्लेख चतुर्भांगी में आए हैं । कर्पोलों पर पत्रलेखा बनाई जाती थी । पद्य प्राभृतकम् ६, म उज्जयिनी की तुलना चन्द्रदीप रूपी वधू क गालों पर बनी पत्रलेखा से की

गई है। एक जगह तमाल और हरिताल के संयोग से पत्रलेखा बनाने की बात कही गई है (पा० ता० ३४)। विशेषक का भी उल्लेख हुआ है (पा० प्रा० २८)। उसका मकर का आकार होता था (पा० ता० २२८)। रोली का टीका (रोचना बिंदुक) लगाने की भी चाल थी (पा० प्रा० ३८)। सिर पर तिलक लगाये जाते थे (तिलकावभेद पिंजरी कृत ललाट—धू० वि० ८५)। स्त्रियाँ पैरों में आलता लगाती थीं। (धू० वि० ६६, ६८)। एक जगह आलेख्य वर्णक पात्र से मयूरसेना के पैर रँगने का उल्लेख है (पा० ता० २२८)। अगराग रचना (२०४) का विशेष महत्व था। नाना गंधों से अधिवासित तैल (अ० १४०) और वदन को सुगन्धित करने के लिए चूर्ण का उपयोग होता था (आ० १४०)। एक जगह निम्बू, गालरू और लाहे के चूरे से रंगे लिजाव का उल्लेख है (पा० प्रा० २६)। केशों में धूप देने की प्रथा थी (धू० वि० ६४)।

चतुर्मांषों में कहीं कहीं वस्त्रालंकारों का हलका सा वर्णन देकर तत्कालीन पात्रों की जीती जागती तस्वीर सामने खड़ी कर दी गई है। पद्मप्राभृतकम् में नीलालेप और लिजाव लगाए तथा पुरानी कौपीन पहने मृदग वासुलक निट (२६, २८), मलिन कापाय प्रावार पहने सधिलक (३१-३२), दूला ने गहनों से सजी वन राजिका (२५), बिना आँखों ओंजे, गद्दे कपड़े पहने, रूखे आल, शिथिल वय और झँगूडी पहने बिना विरहिणी कुमुद्वती (४०), गहने छोड़ कर, मैली चादर से वदन ढके, ललाट पर रक्त चंदन लगाए, दूकुल की पट्टी से सिर ढके मामिनी शोणदासी (४४) के चित्र जीवित हैं। पादताडितकम् में तो वेपभूषा के सहारे से पात्रों में से बहुतांश की तस्वीरें खींची गई हैं। वेन, दण्ड कुण्डिका भाङ लिए न्यायाधीश विष्णुनाथ (१४३), एक कान में कुरटक माला, कन्धे से लिसकते हुए बुपट्टे को ठीक करता, मद्य भाजन उठाए बाण (१६८), सफेद कपड़े पहने हुई कंधों पर गिरे सफेद ताला को समेटती हुई सरणिगुप्ता (१६६), वैरुच्य और अथाक पहने पराक्रमिका (१८८), सिर पर जूड़ा बाँधे, कलश नामक कुण्डल पहने, उत्तरीय से दोनों बाहुएँ बाँधे, कमर में उमेटा हुए पत्र लपेटे भद्रायुध (१६३), तलवार लिए हुए दाहिणात्थों से घिरा, नकाशीदार (भद्राक) मलमल का उत्तरीय और श्रांघ्र का बना जिरहबख्तर (काष्ठांयस) पहने, नैसर लगाए और पान लिए हुए महातलवार हरिशूद्र (२२४), कानों में साने के तालार चोरी में हेम गुच्छ लगाए कूर्पासक से बाहुमूल और स्तन ढके राजा (२३७) गुप्तकाल की जीती जागती तस्वीरें हैं।

गुप्तकालीन वेप भूषा और प्रसाधन सामग्री का जो वर्णन किया गया है उसका समर्थन तत्कालीन साहित्य और ज्ञानभट्ट की आख्यायिकाओं से हाता है। काममूर की चाँसठ कथाओं में विशेषकच्छेद्य (५), दशनवसनाङ्गराग (८), माल्य ग्रथन विकल्प (१४) शोखरका पीड योजन (१५), नेपथ्य प्रयाग (१६), कर्णपत्रमग (१७), गन्धयुक्ति (१८) और भूषण योजन (१९) (का० सू० १।३।१६) के अन्तर्गत वेप भूषा और प्रसाधन सम्बन्धी सारी बातें आ जाती हैं।

जयमंगल ने विशेषकच्छेद्य का अर्थ ललाट पर दिए जाते तिलक किया है। भूर्जादि पत्रों से पत्रच्छेद्य के अनेक अभिप्राय काटे जाते थे। त्रिगुणित्वा का प्रिय होने से आदर के ही लिए पत्रच्छेद्य का नाम विशेषक पड़ा। कर्णपत्रमग (१७) का अर्थ हाथी दाँत, शयन इत्यादि से बनाये गये कुण्डलों का उद्देश्य बताया गया है। अमरकोश में (२।६। १२२-१२३) चर्चा, चार्चिक्य, स्थापक, प्रसाधन, अनुबोध, पत्रलेखा, पत्रागुलि, तमाल पत्र

तिलक, चित्रक और मिश्रक शब्द तिलक इत्यादि क अर्थ में आए हैं। क्षीरस्वामी ने यहाँ चर्चा से चटनादि के पुण्ड्र लगाना, स्थासक से वदन में सुगन्धित द्रव्य के छापे लगाना, अनुवाध से कस्तूरीकादि का तिलक, पत्र लेखा और पत्रगुलि से पत्ती के आकार के अभिप्राय जा द्रविड इत्यादि देशों में गाल पर पत्रमग कहलाता था, तमालपत्र से मस्तक पर तमालपत्र के आकार का कस्तूरी का तिलक लिया है। तिलक शायद तिलक पुष्प के आकार का होता था। चित्रक अनेक रंगों का तिलक होता था।

तत्कालीन साहित्य में प्रसाधन के बहूत से उल्लेख आए हैं^१। स्त्रियों अलङ्कार से अपने ओठ रँगती थी तथा विशेषक काले, सफेद और लाल रंग में रंगे जाते थे। पत्रमग क लिए चदन और अमर व्यवहार में लाए जाते थे। कभी सारे शरीर में चदन पोतकर काले रंग से अभिप्राय बनाये जाते थे। अभिप्राय सफेद अगर, गारोचना, कृष्णागुरु, नसर, हिंगुल और से दुर स भी बनाए जाते थे और उनका स्थान मस्तक, जाहु, कपोल स्तन इत्यादि होता था। गालों पर मकरिका पत्रमग लिखा जाता था। कभी कभी अभिप्राय चक्राकार होता था अथवा वेल की शकल का। कभी स्त्रिया के गालों पर मरी नकाशी (चित्रनितान) नगई जाती थी। चदन से ललाटिका और विशेषक लिखे जाते थे। कभी कभी चदन की पुष्पिका (पुलकष) से शरीर सजाया जाता था। शरीर में लगाने के लिए चदन, अगर, कस्तूरी, नसर और कपूर का प्रयोग होता था। सर्वतोभद्र और यक्षकर्म नामक निलेपना का भी प्रचार था। गानानुलोचिनी, वति, वर्णक और निलेपन भी शरीर में लगाने के द्रव्य थे। श्रोतों में वज्रक लगाया जाता था। सुगन्धित तेलों का खून उपयोग होता था और सुगन्ध के लिए बाला में धूप दी जाती थी।”

गुप्त काल में पत्रच्छदा का कैसा रूप होता था इस सन्दर्भ में वृहत्सामाजिकसंग्रह में एक उल्लेख विशेष रीति से ध्यान देने योग्य है (६।१।७)। एक नदी के किनारे गामुत्त कमल की पत्तियों में ऐसे अभिप्राय काटन लगा जा मदनातुराजियों के गालों की शोभा बढ़ाते थे। पत्रच्छदा चार तरह का था—यस, चतुरस्र, दीर्घ और वृत्त माति का होता था। यस का उपयोग, पशु, पर्वत, पर इत्यादि अभिप्रायों के लिए होता था। चतुरस्र यानी चौरास का प्रयोग नगर मनुष्य इत्यादि अभिप्रायों के लिए होता था। दीर्घ का उपयोग नव, नन्ही, पद्म, प्रताप, सप इत्यादि प्रान के लिए होता था तथा वृत्त का भूषण सयाग, शङ्खत मिथुन क लिए होता था। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि पत्रच्छदा का प्रयोग न केवल आभूषण के लिए ही होता था उससे आधुनिक सौन्दर्य की तरह बहुत से अलङ्कारिक अभिप्राय भी बनाए जाते थे।

गुप्तकालीन वैदिक सभ्यता का आचार समझने के लिए गांधी जीवन का संगठन और आगरा वृत्त का अध्ययन आवश्यक है। वास्तव में देखा जायता चतुर्माणी में गांधी जीवन के एक परलू यानी घनगमन का चित्रण है। धूर्तिसंवाद में (७१-७२) में गांधी के कुछ अंगों पर यथा ललकार से भरा जूआ, कामिनिषा के बगल में बैठ कर सुगन्धित शराप पीना, अगसना पर चर्याआ का बैठ कर पक्षियुद्ध में गहरा चूआ खेचना

इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। धूर्तविट से ही यह पता चलता है कि गोष्ठी के सदस्य (गोष्ठिक) किसी एक सदस्य के गोष्ठ में शामिल होते थे और कामशास्त्र संबंधी अनेक प्रश्नों पर सहस्र करते थे। गोष्ठीशाला में भी गोष्ठी की बैठक होती थी (८६)। उभयाभिसारिका (१४६) के अनुसार गोष्ठी कामिजनों के मिलने का कारण होती थी। पाद-ताटितरुम् (१५०) में धूर्तगोष्ठी का बेल्टके मधुपान का उल्लेख है। वेश में चन्द्रोदय के समय गोष्ठी बाँध कर कामुक पीते थे (पा० ता० २३५)। एक दूसरी जगह विटों का गोष्ठी से पृथक् होने का उल्लेख है (पा० ता० ४४)।

पर चतुर्भाणो के गोष्ठी सम्बन्धी उल्लेखों से गोष्ठी के संगठन और आमोद प्रमोद पर पूरी तरह से प्रकाश नहीं पड़ता, उसके लिए तत्कालीन साहित्य की छान-बीन आवश्यक है। यह उल्लेखनीय बात है कि प्राचीन काल में गोष्ठ या गोष्ठी का अर्थ गुप्तकालीन कला गोष्ठी न होकर कुछ दूसरा ही था। गेल्डनर के अनुसार वैदिक साहित्य में गोष्ठ का अर्थ चरागाह था, पर ब्लूमफील्ड और हिटनी ने उसका अर्थ बाड़ा किया है। श्री सरकार के अनुसार गोष्ठ सारे कबीले के अधिकार में होता था और इसलिए बहुत संभव है कि बाद में चलकर उसका अर्थ समाज में परिणत हो गया। बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य में उसका अर्थ दिन भर के काम से थके कबीले का गोष्ठ में इकट्ठे होकर मौज-मजा करना हो गया। जो भी हो गायों के बाड़े के अर्थ में गोष्ठ शब्द का प्रयोग महाभारत इत्यादि में आया है। ईसा पूर्व तीसरी से पहली सदियों में गोष्ठी का एक दूसरा ही अर्थ होता था अर्थात् मन्दिरों अथवा पूजा स्थानों की प्रबन्ध समिति को गोष्ठी कहते थे। मट्टिपोल के मंजूषा लेखों में जिनका समय ई० पू० २०० के करीब माना जाता है बहुत से गोष्ठिकों के नाम दिए गए हैं। साँची के अभिलेखों में बौद्ध गोष्ठी का उल्लेख है। धर्मवर्द्धन की बौद्ध गोष्ठी का दान ६६-६७ संवत्सर लेखों में आया है। स० १७८ में विदिशा के बरलमिमी की गोष्ठी के दान का उल्लेख है। आबू के १२२० ई० के एक अभिलेख में कुछ भावक गोष्ठिकों के नाम दिए गए हैं जिनके वंशजों का मन्दिर के प्रबन्ध का अधिकार था। पंचतंत्र में गोष्ठी कर्म एक तरह का वाणिज्य है। यह कैसा वाणिज्य था इसका तो उल्लेख नहीं है पर यह कहा गया है कि गोष्ठी कर्म में निरत सेठ खुश होकर सोचता है कि धन से भरी पृथ्वी को बही ले ले दूसरा नहीं।

गुप्तयुग में गोष्ठी का अर्थ कलागोष्ठी अथवा आनन्द प्रमोद की बैठक में अधिकतर सीमित हो गया था और उसमें योगदान देना नागरिक वृत्त का एक प्रधान अंग हो गया था। गोष्ठियों में शामिल होना हीनता का चोख न होकर प्रतिष्ठा का चोख था। कादम्बरी में शर्द्धक को गोष्ठी वन्धों का प्रवर्तयिता कहा गया है। बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में उपर्युक्त वर्णित चम्पा की गोष्ठी से भी इस बात की पुष्टि होती है। मृच्छकटिक (६।४) से पता चलता है कि गोष्ठी यान पर चढ़ कर लोग सैल-सपाटे को बाँते थे। अस्तन्तसेना का रथ देखकर आर्यक

१. स० सा० सरका, सम आस पेक्ट्स आफ दि अल्लियस्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ इंडिया ७-६, लंडन १९२८। २. एपि० इ०, २, ३२७, ३२६। ३. दि मानुमेन्ट्स आफ साँची, १, ७० २६८। ४. एपि० इंडिका, ८, २१६। ५. पंचतंत्र (निर्णयसागर), ७० ७। ६. कादम्बरी, ७० १०।

ने सोचा कि या तो वह सैल तपाटे में जानेगले गोष्ठिकों का गोष्ठीयान था अथवा दुलहिन को ले जाने वाला वधूयान। यहाँ यह पता देना अनुचित होगा कि ई० पू० पहिली सदी में भी गोष्ठीयान का पता चलता है। इलाहाबाद म्युनिसिपल म्यूजियम में कौशाबी से मिला मिट्टी का एक गोष्ठीयान है। यान के दोनों ओर तीन तीन मूर्तियाँ दीप पड़ती हैं। इनमें से एक आदमी थाल में मूली, चपाती, कबाब और केले खा रहा है, एक लो नाच रही है और एक आदमी चीन उड़ा रहा है। दूसरी ओर एक आदमी मृदंग बजा रहा है और एक प्रेमी सुगल चुनन का मजा ले रहे हैं।

गोष्ठी ने आमोद प्रमोदों का सुहर चित्रण वसुदेवहिंदी में कई बार हुआ है। धम्मिल हिंदी में उल्लेख किया है कि सासारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए और कामकला में निपुण बनाने के लिए धम्मिल को उसके पिता ने विद्वधों की ललित गोष्ठी में प्रवेश कराया और वह गोष्ठिकों के साथ उद्यान, कानन, समा और उपवन की सैर करता हुआ समय बिताने लगा। लगता है उस समय गोष्ठिक प्रेक्षक का भी काम करते थे। वसन्त-तिथि के प्रथम नृत्य प्रदर्शन के अन्तर पर राजा ने गोष्ठी के अगवानों से कहलवाया कि उसे वसन्ततिलका के नृत्य की परीक्षा लेनी थी इसलिए वे किसी चतुर मेखक को भेजें। गोष्ठिकों ने इसके लिए धम्मिल को चुना और उसने वसन्ततिलका के नाच की प्रशंसा की। गोष्ठिकजन पन्च्येय की कला में भी निपुण होते थे। एक बार धम्मिल ने कुछ सुन्दर पन्च्येय बनाकर उन्हें एक सूती छाल की नाव पर रख कर बहा दिया। संयोगवश चपानगर का राजा जो ललितगोष्ठी का शौकीन था अपने विद्वन्मित्रों के साथ गंगा में स्नान पर रहा था। उसने पन्च्येयों को देखते ही उनके बनाने वाले को ढूँढ़ने के लिए आदमी भेजे। धम्मिल को लेकर वे हाज़िर हुए। राजा ने उसका स्वागत करके गोष्ठिकों से उसके ठहराने की व्यवस्था करने को कहा। जब गोष्ठी नायक ने आकर समाचार दिया कि डेर तैयार था तब राजा गोष्ठिकों से चला हुआ धम्मिल के साथ हाथी पर बैठकर नगर के बाहर उद्यान में पहुँचा और वहाँ धम्मिल कमलसेना और तिलसेना के साथ ठहर गया है। एक दिन राजा ने धम्मिल की परीक्षा अथवा हँसी के लिए गोष्ठी सहित उद्यानयात्रा की आज्ञा दी और गोष्ठिकों को अपनी अपनी पत्नी साथ लाने का कस (वही, ७०-७१)। कमलसेना ने तिलसेना की किमी तरह मना कर उद्यान गमन के लिए राजी कर लिया। दूसरे दिन वह सुनकर कि राजा ललित गोष्ठी के साथ उद्यान में गया है धम्मिल गहने पहने पहन कर तिलसेना के साथ रथ में बैठ कर उद्यान में पहुँचा। यहाँ परिचारकों ने सुहर तपू और मण्डप तैयार किए तथा कुम्भधुआँ के योग्य सेन तैयार कीं। भोजन मण्डप पर्व में और पश्य आसनों से सज्जाया गया। लोगों ने भोजन किया और इसके बाद मन्त्रिद्वय सुवर्णि ने गाया।

गोष्ठिकों के संगीत प्रेम और शराबप्राप्ति का एक उल्लेख अरदान शतक में मिला है। वही गद्य है कि प्रातःकाल जब सुद ने आश्रम में प्रवेश किया तो उन्होंने गद्य में

१. बाण, हेताकेन्द्रा निगर्हमन्त्रावली, पृ० ७०, पृ० ७०, पृ० XLII, एलाहाबाद १९५०। २. वसुदेव-हिंदी, पृ० ३४-३५। ३. अरदान शतक, १, पृ० १६३, पृ० १५०। शीघ्र ही प्रकाशित।

वेहोश-गोष्ठियों को वीणा, पणव, मृदंग इत्यादि बजाते और गाते देखा। उनके हारो और कपड़ों में कमल की पलड़ियाँ चिपकी थीं।

नागरकवृत्त और गोष्ठियों का विस्तृत वर्णन कामसूत्र में मिलता है। उससे गुप्त-कालीन या उसके पहले की गोष्ठी की जीती जागती तस्वीर सामने खड़ी हो जाती है। विद्या पढ़ कर ब्राह्मण दान से, क्षत्रिय जय से, वैश्य व्यापार से और शूद्र शिल्पादि कर्म से धन पैदा करके नागरक वृत्त को अपनाता था (१।४।१)। नागरक भलेमानसो के नगर, पत्तन अथवा खर्वट में अपना घर बनाता था (१।४।२) उसका घर नदी अथवा वापी के पास होता था। उसमें बृहद् वाटिका और काम करने तथा रहने की कच्चाई होती थीं (३)। बाहर के घर के बीच में तर्किए और चादनी से युक्त चबूतरी पर रात का बचा अनुलेपन, माल्य, मोमदानी (सिक्थ करडिका), सुगन्धि पुटिका, नीबू का छिलका और पान होते थे (७-८)। पर्श पर पीकदान (६) और रूँटी (नागदन्त) पर वीणा, चित्रफलक, रंगों की पेटी (वर्तिका समुद्रगक), कोई पुस्तक और कुरटक माला होती थीं (१०)। पर्लग के पास ही सारा पर्श वृत्तास्तरण घेरे रहता था (११)। दीवाल से लगा जूझा खेलने का पङ्क (आकर्ष पङ्क) लगा होता था (१२)। वासगृह के बाहर झंडापक्षियों के पींजरे टँगे होते थे (१३)। एक जगह कातने और बड़ईगरी का सामान होता था (१४)। बगीचे में छाया में एक झूला और फूलों से सजी कुट्टमित पीठिका होती थी (१५)।

नागरक सवेरे उठ कर शौच से निवृत्त कर, दातन करके, हल्का सा अनुलेपन और धूप का सेवन और माला ग्रहण करके, ओठ पर मोमरोगन और आलता लगाकर, शीशे में अपना मुँह देख कर और पान खाकर अपने काम में लगता था (१६)। नित्य रनान, हर दूसरे दिन मालिश (उत्सादन), हर तीसरे दिन शरीर में चिकनाई लाने के लिए समुद्र-फेन का व्यवहार (फेनक) तथा चौथे पाँचवें और दसवें दिन बाल, नख इत्यादि कटवाना आवश्यक था (१७)। यह हमेशा कपड़े से बगल का रसीना पोछता था (१८)।

नागरक दोपहर और शाम को भोजन करता था (२०-२१)। भोजन के बाद वह शुक सारिका को बुलवाने, लावक कुक्कुट और मेप के युद्ध, पीठमर्द विट त्रिदूषक के साथ घात-र्चात करके दिन में आराम करता था (२१)।

दोपहर के बाद वह गौरी झ्रीडा करता था और शाम को गाना-रजाना सुनता था (२३)। संगीत के बाद धूप से सुरभित वासगृह में वह अभिसारिकाओं की प्रतीक्षा करता था, दूतियों को भेजता था, अथवा प्रेयसीसे मिलने खुद जाता था (२४)।

नागरक घटा निबन्धक, गोष्ठी समराय, आपानक, उद्यानगमन, समस्या और झ्रीडाओं में योगदान देता था (२६)। पङ्क अथवा मास में पर्श के दिन सरस्वती भवन में जलसा (समान) होता था। आप हुण नयों (कुशील्य) का नान होता था। दूसरे दिन उन्हें उपहार दिए जाते थे। इससे बाद उनको रखना अयश विदा कर देना अपनी इच्छा पर था (३२)। सरस्वती घटा निबन्धन के सिवाय स्थिति के अनुकूल और भी घटाई होती थीं (३३)।

गोष्ठीभोजन वेष्ट्या के घर, सभा में, अथवा मित्र के घर होता था। समान विद्या, बुद्धि, शील, वित्त और वयस् वालों की वेष्ट्याओं के साथ अनुरूप वार्तालाप और गानिका का यथायोग्य आसनों पर बैठना ही गोष्ठी कहलाता था (३४)। गोष्ठी में काव्य समस्या अथवा

कला समस्या पर चर्चा होती थी (३५) । चर्चा के बाद लोग एक दूसरे को भेंट देते थे (३६) । आपानक (३७-३८) और उद्यान गमन (३९-४०) भी गोष्ठी के अंग होते थे । गमा में नागरक बापों इत्यादि में जल कीड़ा करते थे (४१) ।

विशेष उत्सवों को समस्या कहते थे । इनमें यक्षगान (दीगली), कौमुदी जागर (वार्तिका पूर्णिमा), सुवसन्तक (वसन्त पञ्चमी) इत्यादि शहरों के उत्सव थे । देशी उत्सवों में सहकार भजिका में आम तोड़े जाते थे, अम्पूपर्यादिका में हरा चना आदि भूनकर खाया जाता था, विसलादिका में कमल ककड़ी खाई जाती थी, नवरात्रिका वर्ष के आरम्भ में वनाम नई पत्तियों के खेव से मनाई जाती थी, उदकक्षेत्रिका से रंग छोंड़ने का मतलब था, पाचालानुयान में लोग दूसरों की नकल करते थे, एकशालमली में सेमल के फूलों के गहने बनाकर पहने जाते थे, यक्षचतुर्था यानी वैशाख शुक्ल चतुर्था को नायक एक दूसरे के ऊपर यक्ष का आँदा पेंकते थे, आलोलचतुर्था में लोग आवण शुक्ल तृतीया को हिंडोला झूलते थे, मदनोत्सव में मदन की प्रतिमा का पूजन होता था, दमनभजिका में परस्पर दोनो के फूलों के गहने दिए जाते थे, हाथका से हाँकी का मतलब है, अशक्कतसिका में अशक के फूलों से सिर के गहने बनाए जाते थे, पुष्पावचायिका में फूल धिने जाते थे, चूतलतिका में आम की मञ्जरिया से अयतस बनाए जाते थे, इच्छुभजिका में ईल तोड़ी और एजाई जाती थी, तथा कवयमुक्त में कवय के फूलों से एक दूसरे का मारा जाता था (४२) ।

नागरक के सहायकों में पीठमर्द (४४), बिट (४५) और विद्रूपक (४६) होते थे जो वैशाखों और नागरकों के साधिविग्रहिक होते थे (४७) । मिन्तुकी, मुडा, बधकी, बृद्ध गणिका भी नागरक की सहायता करती थीं (४८) ।

ग्रामरासी भी अपने समान जातीय, निचक्षण और कौतूहलियों का उत्साहित करके और नागरक वृत्त का वर्णन करके उनमें विश्वास पैदा करने नागरक वृत्त पालन करते थे, गोष्ठी योजन करते थे और एक दूसरे की सहायता करते थे (४९) ।

कामयून के अनुसार गोष्ठी में न तो अधिक सस्कृत बाली जाती थी न देश भाषा । गोष्ठी में कलाविषयक चर्चा होती थी (५०) । लोगों में विद्वप पैदा करनेवाली, निरकुश, हिसारील गाष्टी त्याज्य थी (५१) । लोगों को प्रसन्न करने वाली, बबल मीजमने के लिए ही गाष्टी ठीक होती थी (५२) ।

गाष्टी के मीजमनों का उल्लेख करते हुए भी कामयून में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे पता चलता है कि भली खियाँ का गोष्ठी में जाना ठाक नहीं समझा जाता था (५३) । ११५) पर पुनर्भू का समाज, आपानक, उद्यानयाना इत्यादि में जाने की अनुमति (५४) २१५६) थी । तरुण पढोसी के घर गाष्टी याजन करने वाली (५५) ११५२) स्त्री मुक्त साध्य मानी जाती थी । पुरुष की अतिगोष्ठीशीलता स्त्री के बिगटने का एक कारण था (५६) १५६) ।

गाष्टी न उपर्युक्त वर्णन में जल कीड़ा भी एक खास बात मानी गई है । सस्कृत काव्य साहित्य में आग चल कर जलकीड़ा एक अभिप्राय सा बन गया । गाष्टी व साथ जलकीड़ा का एक निनमय वर्णन हरिवंश में बच गया है । एक समय यादवा ने बिंदारक तीर्थ में समुद्र यात्रा की साची । कुमारों की गाष्टी ने साथ द्वारका का सहजो वषायो थीं (२१८८७-८) । वे सामाप, रच्छा भोज्य माछा नारियो अथन गुणों से रानियों की तरह लगती थी (९) समुद्र में

था या शस्त्र लेकर मारामारी करता था। गरीबी की वजह से उसके घर में पानी तक मयस्सर नहीं होता था। वह प्राण देकर भी मित्र की दुश्मनों से रक्षा करता था, कामी हमेशा उससे मिडने को तैयार रहते थे। वह बड़ा शाहखर्च होता था। विदों की श्रेणी में राजे, महाराजे, गवैये, बजवैये, वैद्य इत्यादि भी आ जाते थे। दहृण माधव के यह पूछने पर कि क्या राजा का बलाधिकृत भी विट होता था विट ने कहा वेशक वह तो विट सेना का हरील था क्योंकि पूर्वावन्ति के वेश कलह में उसकी अँगुलियों कट गई थीं, पञ्चनगर में दुश्मनों ने उसके नितम्ब से तीर खींच दिये थे, विदिशा में उसकी एक बाँह कट गई थी। वाजीकरण के लिए वह बैद्यों को पैसा देता था और वेश्याओं को भी उससे पैसा मिलता था। वह क्षीण शक्ति होने से ढाली रति कथा से श्रवण मन बहलाता था (१५८-१६१)।

✓ संस्कृत नाटकों में बहुधा विट आता है, पर नाट्यशास्त्र में उसकी ठीक ठीक व्याख्या नहीं हो सकी है। भरत ने नाट्यशास्त्र में (३५।५५) विट को वेश्योपचार कुशल, मधुर, दक्षिण, कवि, ऊहापोह में कुशल वाग्मी और चतुर कहा है। शृङ्गारतिलक और दशरूपक में उसे एकविद्य कहा गया है। साहित्यदर्पण (१।४१) में विट को निर्धनता की वजह से मौन उड़ाने में अद्भुत, धूर्त, वेशोपचार कुशल, वाग्मी और गोष्ठी में प्रतिष्ठा पाने वाला कहा गया है।

विट की उपर्युक्त व्याख्या से उसके स्वरूप पर कुछ कुछ प्रकाश, अग्रश्य पड़ता है, जैसे उसका वेशोपचार और बात चीत में कुशल होना, उसकी निर्धनता, पर उसका यथार्थ रूप कामधून से प्रकट होता है। कामधून (१।४।४५) में उसकी व्याख्या है—भुक्तविभवस्तु गुणवान् सखनो वेशो गोष्ठ्या च बहुमतस्तदुपजीवी च विटः, अर्थात् जिसका शौकीनी में माल समाप्त हो गया हो, गुणी, पत्नी वाला, अनेक कलाओं का जानकार तथा उनसे वेश और गोष्ठी में जीवन निर्वाह करने वाला विट कहलाता था। पीठमर्द और विदूपक के साथ वह वेश्याओं और नागरकों के साथिविग्रहिक (१।४।४७) का काम करता था। वह कभी नायक के दूत का भी काम करता था (१।५३७)। नायक विट को भेज कर नायिका को मनवा कर अपने घर बुलवाता था (२।१०।४८)।

विदों के उपर्युक्त उल्लेखों से यह पता लगता है कि बहुधा कामी अपना मालमत्ता खोकर विट बन जाते थे। इनमें कामुकता, कला, मैत्री, गुणवैद और शानिरजवाबी का एक अपूर्व समिश्रण होता था और इसी की वे रोटो खाते थे। पर जैसा कि मध्यकालीन साहित्य से पता लगता है विट शब्द वेश में घूमने वाले छिछोरो और गुणवैदों के लिए व्यवहार में आने लगा था। आठवीं सदी के ऐसे ही विदों का उल्लेख कुट्टनीमतम् में कई बार हुआ है। वे वेश्या की बिना भाड़ा दिये चण्ट हो जाते थे। पकड़ जाने पर वेश्या उनकी काफी मरम्मत करती थी (३३३)। वह वेश्या के आगे मुँह बना कर गाता हुआ चलता था (३३६)। वह किसी पनी के साथ वेश्या को लगा कर बीच में मुपत का मक्का लुटता था (३४०)। 'मैंने तेरे लिए घर छोड़ा, नू अब दूसरे के साथ जाती है' यह कह कर वह वेश्या को उलाहना देता था (३४१)। माइ के सम्बन्ध में बूढ़े विट मध्यस्थ का काम करते थे (३४२)। विदों की आपस की बात चीत का एक स्थान में अच्छा उल्लेख है (७४३-७५५)—'अरे गम्भीरेश्वर, टासी के साथ पँस कर तेरे मित्र की वही हालत होगी जो मेरी हुई।' एक वेश्या कहती है—'अरी सुरदेवि, त्रि चन्द्रवर्मा निःसार बातों से हथेली पर चाँद उतारता है,' 'अरी सुरमि मैं

देखती हूँ कि वसुपेण तेरे पीछे घूमता है, थोड़े ही दिनों में उसकी मिठाई का भेद खुल जायगा' इत्यादि। मध्यकाल में विट की जघन्य कामुकता का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने कलाविलास (६।२७) में किया है। उसके अनुसार अपना धन फूँक कर दूसरे के धन पर लज्जुमी नरायन खोलने वाले सदा वेश और वेश्या की स्तुति में लगे विट चिंतनीय थे। देशोपदेश और नर्ममाला में मध्यकालीन विट का वही रूप सामने आता है। उसकी कुटिलता, भोग में श्रावृत्ति, दूसरों की स्त्रियों के प्रति प्रेम, क्रोध, चपलता, वेश्याओं द्वारा तिरस्कार, भूले रहने पर भी झूठी शान, गरमी में गरम और जाड़े में ठंडा कपड़ा पहनना, कर्ज में चपे रहना, गर्प्य मारना, गुण्डई इत्यादि उसकी पास बातें थीं।

पद्मप्राभृतकम् में पीठमर्द का भी उल्लेख हुआ है (११)। दतुंरक ने यह कहने पर कि वागीश्वर से श्रात करना समुद्र को गोला करना है विट ने इसे उसका पीठमर्द करने का स्वभाव माना। इसके माने यह हुए कि पीठमर्द हँसी मजाक में निपुण होता था। कामसूत्र (१।४।४४) में पीठमर्द की व्याख्या मिलती है यथा—अविभवस्तु शरीरमात्रः मल्लिका फेनककपायमानपरिबल्लदः पूज्यादेशादागतः कलासु विचक्षणः तदुपदेशेन गोष्ठया वेशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि पीठमर्द गरीब होता था, उसका कोई परिवार नहीं होता था वह रोजी की पिराक में इधर उधर घूमा करता था। उसकी घेपभूषा में मल्लिका, फेनक और कपाय होते थे। जयमंगला के अनुसार मल्लिका दंडासनिका होती थी जिसे पीठमर्द अपनी पीठ पर लिए घूमा करता था। अपनी जाँधों को चिकना और मुलायम रखने के लिए वह फेनक यानी समुद्र फेन और कपाय (शायद ऑयल) का सेवन करता था। कलाआ में वह पारगत होता था और गोष्ठी में वेशोचित वृत्ति से वह जीविकापार्जन करता था। विट की तरह यह नायक का दूत कर्म भी करता था। चतुर्भाषी में चेत (पा० ता० १६६) का नेचल एक जगह उल्लेख आया है जहाँ वह पानागार में नट इत्यादि लोगों के साथ शराब पीता दिखलाया गया है। नाट्य शास्त्र (३५।३८) में चेत को कलहप्रिय, बकवादो, विरूप, गधसेवी, तथा मान्य और अमान्य का जानकार कहा गया है। संस्कृत नाटकों से यह पता चलता है कि चेत नीचे स्तर का परिवारक था। और नायक नायिका में विचर्चई का काम करता था। मृच्छकटिक (अंक ३) में चेत के चित्रण से उसने नीचे दूँ के का पता चल जाता है।

पादताडितकम् में विट के सिवा डिडिक का भी उल्लेख है। उनका उल्लेख धूर्तगोष्ठी के नर्मकला जानने वालों के साथ (१५०) किया गया है। लाट ने डिडियाँ की विट विशाचों से तुलना करता है (१८८)। जब मट्टिमघवर्मा पुष्पिता स्त्री के साथ रति की सफाई देते हुए महाभारत का एक श्लोक पढ़ता है तो उसे विट उसका डिडित कहता है (१८६)। महाप्रतिहार मद्रासुध डिडियों से घिरा था (१६३)। लगता है कि डिडि चित्रकला में भी दखल रखते थे (१६६-१६७)। डिडियों का उल्लेख संस्कृत और प्राकृत साहित्य में सिवाय वसुदेव डिडि के और दूसरी जगह नहीं मिलता। डॉ० भागीराल साहेंसरा

ने मुझे एक पत्र में लिखा है कि वसुदेवहिंडी (मूळ) के पृ० ५१ में इस शब्द का सात बार प्रयोग हुआ है। वसुदेवहिंडी के अपने गुजराती अनुवाद में (पृ० ६२) डा० सांडेसरा ने हिंडी शब्द का अर्थ न्यायाधीश किया है, पर अब वे स्वयं इस अर्थ को ठीक नहीं मानते। कथा यह है कि एक समय धनश्री अपने महल में बैठी थी कि नहा धोकर गहने पहने एक हिंडी महल के नीचे से निकला और धनश्री का झूका हुआ पान उसपर बिरा। हिंडी धनश्री की ओर देख कर उसपर रीझ गया। विनीतक की मदद से उसने धनश्री को पाना चाहा पर धनश्री ने न माना। अतः वह अपनी बात पर अडा ही रहा तो धनश्री ने एक दिन उसे उपरन में बुलाकर और शराब पिला कर उसका सिर काट डाला। गुजराती का डाडा शब्द जिसका अर्थ आवाय होता है शायद हिंडी से ही निकला है।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा पता चलता है कि हिंडी एक तरह का मनचला शीकीन होता था जिसे हम आजकल की माया में छैबा कह सकते हैं। लगता है विट की तरह उसमें जीउट न होकर छिछोरापन अधिक होता था और वह रईसों का पिछलग्गू घना रहता था।

चतुर्भाणी के चारों भाण, जैसा हम पहले देख चुके हैं, वेश्याओं और उनसे कामुकी से सन्ध रखते हैं। वेश्याओं के नखरे, मान, मानभंग, शृंगार, लीला, खेलकूद, सगीत और नृत्य में कुशलता, कलाप्रिय प्रेमी को चूसना; कुटनियों का गरीब प्रेमियों को कला पताना, कामशास्त्र में कुशलता, मद्यपान, गोष्ठी प्रेम, कभी कभी प्रेमी के विरह में कातरता, दूत श्रमया दूती भेज कर प्रेमी से सदेशा कहलवाना इत्यादि का इन भाणों में सुंदर वर्णन है। चतुर्भाणी से पता चलता है कि धर्मविरुद्ध होने पर भी वेश्याप्रसंग गुप्तयुग में नीच कर्म नहीं समझा जाता था। वेशमें जानेवालोंमें शारद्वती पुन सात्वतभद्र (प० प्रा० ६), श्री प आर्यरक्षित (पा० ता० २५०) दाक्षिणात्य आर्यरक्षित (पा० ता० २५५), गुप्त और महेश्वरदत्त (पा० ता० २५५), तथा दायेरक रुद्रकर्मा (पा० ता० २५७), कवि, दत्तकलशि वेश्याकरण (प० प्रा० १६), धर्मासनिक पुन पत्रिक (प० प्रा० २१) और न्यायाधीश विष्णुशर्मा जैसे वैष्णव (पा० ता० १६३), सखिलक ऐसे पतित बौद्ध भिक्षु (प० प्रा० ३२), मिलास कौटिली जैसी परिमार्जिका (उभ० १२६), कुण्डिलक (धूरि० ७०), कुचेरदत्त (उभ० १२२), समुद्रदत्त (उभ० १२८), धनमित्र (उभ० १३८) जैसे सेठ, मौर्य चन्द्रोदय (प० प्रा० ५४), कुमार मधुरदत्त (पा० ता० १६०), प्रथम अरशान्ताधिपति इन्द्रवर्मा (पा० ता० १६०, १८६), आनन्दपुर के कुमारमधवर्मा (पा० ता० २, १६०, १८२, १८३), राजा के सले रामसेन (उभ० १३६, १४२) और मधुरकुमार (पा० ता० २३८), महामान पुन नागदत्त (उभ० १२६), महामान पुन शासनधिकृत विष्णुनाग (पा० ता० १५५), अमात्य विष्णुदास (पा० ता० १५६), महापुत्र हरिदास (पा० ता० २२५), इन्द्रपुत्र विटप्रवाल (पा० ता० २४०), मिषक हरिवन्द (पा० ता० १५६, १७६), चित्रकार निरपेक्ष (पा० ता० १६८) और प्रेतिप नृद पुष्पक पाचक (पा० ता० २१२), मिट, पीठमर्द, चेट, नृत्य सिंगाने वाले, गवैये वज्रवैये और तरह तरह के लोग अपने काम से अपना या ही सैर सपाटे के लिए घरमें जाते थे। भूतेश्वर महादेव पत्रनेमें पता चला है कि उस युगमें वैशिक जीवन इतना प्रभावशाली हो गया था कि गौणिकानि वेश्या प्रेम के विभिन्न पक्षों पर बहस होती थी।

वेश्याओं के अनेक नाम चतुर्भाणी में आए हैं, यथा पुंश्चली^१, कामिनी^२, बघकी^३, वेशयुवति^४, गणिका^५, वेश्या^६, वारमुख्या^७, वेशत्रधू (धू० वि० ७३६०, १०२, ११८), गणिका-परिचारिका^८, गणिका दारिका^९, वेश्यामना^{१०}-परिचारिका (धू० वि० ७८; पा० ता० २२०), विलासिनी (धू० वि० ८८; पा० ता० १५२, १६१, १८६, २४२, २४५, २५२), वेशयुवती (धू० वि० ६१), वरयुवती (उभ० १२५), वेश्याजन (धू० वि० १०८), वेश्यावधू (धू० वि० १०६), मदनदूती (धू० वि० ११७, पा० ता० २३२), शमली (धू० वि० ११८) (उभ० ६०), प्रेक्षयुवति (उभ० १२५), वेशलक्ष्मी (उभ० १२६), वेशस्त्री (उभ० १३६, पा० ता० १५८), चेटिका (उभ० १४३), वेश देवता (पा० ता० १५३), अगना (पा० ता० १५६), वृषली (पा० ता० १५६), पात्री (पा० ता० १६२), नदी (पा० ता० १६६), चामरग्राहिणी (पा० ता० १६०, २१२), वेशकन्यका (पा० ता० २१०), पताकावेश्या (पा० ता० २१८, २२२), रूपवासी (पा० ता० २२०), रूपाजीवा (पा० ता० २२३), वेशमुन्दरी (पा० ता० २४१), दासी (पा० ता० २५०), वारस्त्री (पा० ता० २५६) और कुट्टिनी (पा० ता० २५६)।

वेश्याओं के इन नामों में क्या भेद था इसका पता चतुर्भाणी से तो नहीं चलता पर साहित्य से इन पर प्रकाश पड़ता है। पुंश्चली का आदमियों के पीछे दौड़ने वाली वेश्या से तात्पर्य है। अर्थशास्त्र में भी पुंश्चली का यही अर्थ है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में चार यारों वाली वेश्या को पुंश्चली कहा गया है (भारतीय विद्या, ४, भा० २, पृ० १६३)।

कामिनी का अर्थ शब्दकल्पद्रु के अनुसार अतिशय कामयुक्ता नारी है। बघकी शब्द बघ धातु से निकला है जिसके अर्थ होते हैं बाँधना, अर्थात् बघकी वह स्त्री है जिसका बहुतों से सम्बन्ध हो। वेशयुवति वेश की युवती यानी वेश्या है। वेश्या के लिए गणिका शब्द का व्यवहार हुआ है। अर्थशास्त्र (१।२६।५४) के अनुसार गणिका पर राजा का अधिकार होता था और उसे अपनी स्वतन्त्रता के लिए कुछ रुपये भरने पड़ते थे। उसी तरह वेश्या तमाम रजियों के लिए समान बाबक शब्द है। कागसूत्र के अनुसार (६।१।५४) कुंभदासी, परिचारिका, कुलटा, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीना और गणिका वेश्या के पर्याय हैं। वारमुख्या से वेश्याओं की श्रेणी में मुख्य वेश्या से मतलब है। वेशत्रधू का वेश की बहू से यानी वेश्या से मतलब है। गणिका परिचारिका से गणिका की दासी से मतलब है। वे बड़े टाट बाट से रहती थीं और बड़ी नखरेबाज होती थीं। गणिका दारिका से नौची वेश्या का मतलब है। दंडिन् के अगहारवर्मा चरित में काममञ्जरी को गणिका अथवा गणिकादारिका कहा है। उनसे सड़क पर नखरे से चलने का उल्लेख

१. प० प्रा० १६, पा० ता० १५३, १६६, २. प० प्रा० ३०; धू० वि०, ६७, ७१, ८५, ६०, ११, ६२, १००, १०५, ११२, ११६, पा० ता० १५१, १७८, ११५, २२२, ३. प० प्रा० २२, ४. प० प्रा० २४, ५. प० प्रा० २६, उभ० १२७, १३५, पा० ता० १८०, २०२, २०४, २१५, २३६, २४४, ६. प० प्रा० ३१, ३३, धू० वि० ६३, ७३, ७४, ६०, ६१, १०६, ११०; उभ० १३५, १४०, पा० ता० १६१, २४३, ७. धू० वि० ८६, पा० ता० १२५, १५६, १७६, २१५, २३२, २४७, १० धू० वि० ७७; उभ० २२०, १४०; पा० ता० ८. धू० वि० ७६, उभ० १३६, ८. धू० वि० ७६, उभ० १२५।

उभयामिसारिका (३) में है। वेश्यागना भी वेश्या का रोधक शब्द है और इसी अर्थ में भट्टरि ने उसका नीतिशतक (४७) में प्रयोग किया है। परिचरिका दासी वेश्या अथवा वेश्या दासी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। लगता है कि वह साधारण श्रेणी की वेश्या होती थी। विलासिनी विलासशील्य यानी वेश्या है। वरयुवती, वरखी, वेश्यावधू, वेशखी, वेशसुन्दरी भी एक ही अर्थ में वेश्याओं के नाम हैं। मदनदूती और प्रेण्ययुवति वेश्यादूती के अर्थ में आए हैं। वेश्याको वेशलक्ष्मी और वेशदेवता भी कहा गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार शृङ्गरी के तीन कामुक हस्ते थे (भारतीय विद्या भा० ५, पृ० १२२)। चेटी अथवा चेटिका का साधारण अर्थ दामी होता है पर हलायुध और हेमचन्द्र के अनुसार चेटी कुम्भदासी, चट्टवा और गणेरुका पर्याय हैं। वह दूती का काम भी करती थी (भारतीय विद्या, ४ (१), १६४२, पृ० ११३)। पात्री जिससे हिन्दी का पतुरिया निरला है वेश्या का पर्याय है। नदी भी कामसूत्र (६।६।५४) में वेश्याओं की श्रेणी में रची गई है। जयभगला ने उसे रगयोपिद् यानी अभिनेत्री कहा है। चामरग्रहिणी भी परिचरिका की तरह साधारण श्रेणी की वेश्या होती थी। पताका वेश्याएँ सिवान के बाहर ओरछियों में रहती थीं। पादताडितकम् के अनुसार उन्होंने घोड़ों के गलेच्छ व्यापारियों को गवाह बनाकर सूर्यनाग पर अदावत में शायद अपने भाड़े के लिए मुकद्मा चला दिया था। वे साधारण बच्चों की वेश्याएँ जगलों में रहती थीं। वे मतगाली काकिणी मान पण्य वाली, नीचों का गम्य थी। लगता है उनका पताका वेश्या नाम इसलिए पड़ा कि वे अपने घरों पर पताकाएँ लगाती थीं। रूपदासी स्वरूपगान दासी अथवा वेश्या है। अर्थशास्त्र (२।२६।४४) से पता लगता कि रूपदासी का दर्जा गणिका से घटकर होता था क्योंकि गणिका का वध करनेवाले को मृत्युदंड होता था। पर रूपदासी और मातृका को मारने वाले को गहरा जुर्माना होता था। रूपाजीरा यह नारी थी जो अपने रूपसे अपनी आजीविका चलाती थी। अर्थशास्त्र (२।२६।४४) में रूपाजीका शब्द का व्यवहार साधारण वेश्या और एक विशेष तरह की वेश्या के लिए होता था। काम

१. जस होता है पताका भेजियों और रोजगारों की प्रतीक बन गई थी। मृत्युकटिक में वसतसेना के घर का वर्णन करते हुए उसके भवन द्वार को सीमावर्त पताका समूह से उपशोभित कहा गया है। वे पताकाएँ जो शायद उसके स्वतन्त्रता की सूचक थीं उसके जनपदपञ्चांगी होने से उसके सीमावर्त की सूचक हो गईं। यहाँ मनुका वह भादेश उल्लेखनीय है जिसके अनुसार स्वतन्त्र किसी श्रेणि विशेष भगवा मघशाला का सांकेतिक चिह्न होता था (मनु, ४।८५)। हरिवंश में कम द्वारा सुलाए गए सम्राट में (४५२८-३८, ४९४२) अनेक भेजियाँ अपनी भेजियों की प्रतीक पताकाएँ लिए हुए दलवाई गई हैं। पृथ्वीराजसूतभाष्य (१।५३३) में रसावणदिहृत की स्वागता करने हुए मलयगिरि का बहना है कि मद्राष्ट देश के शरावणानों में बाढ़े पहाई शराव हो या न हो, उनके परिजान के जिए पताकाएँ लगाई जाई थीं जिन्हें देखकर जैन भिक्षु उमरे पाम नहीं करवने थे। मनु १।१९ के विधीलिया वाले लेख में [पृ० ६८०, २९, ७० १०२ से श्लो० ८३ (८९)] पञ्चाशद्विर्जापुत्रगण में वेश्याओं की प्रतीक द्विविर्जापुत्र पञ्चाङ्ग है। इन उक्तियों से यह सिद्ध होता है कि वेश्याएँ अपने घरों पर अपनी स्वतन्त्रता की प्रतीक पताका लगाती थीं और इसीलिए उनका नाम वेश्या पड़ा।

सूत्र (६।५।२६) में रूपाजीवा के लभविशय के परिचायक गहनों से सजे सव अग, कीमती चीजों और परिचारकों से मरा सजा घर होता था। जयमगल्य के अनुसार रूपाजीवा में केवल रूपा होता था कलाएँ नहीं। कामसूत्र (६।६।५४) में एक दूसरी जगह कुम्भदासी, परिचारिका, कुलगा, स्वैरिणी, नगी, शिल्पकारिका और प्रकाशविनय की गिनती भी रूपाजीवा में की गई है। मिलिन्दप्रश्न (प्र० ३३१) के अनुसार रूपाजीवा, कुम्भदासी, गणिका, लासिका, वारस्त्री और वेश्या नगरमडन समझी जाती थीं। दासी मामूली दर्जे की वेश्या हानी थी। हेमचन्द्र द्वारा दासी और चेटी के एक साथ रखने से दासी की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। दशकुमारचरित (अध्याय २) में काममजरी की जहिन राममजरी का दासी कहा गया है। पादताडितम् की घटदासी और कामसूत्र की कुम्भदासी एक ही हैं। जयमगल्य के अनुसार (६।६।५४) कुम्भ से तारत्य यहाँ जूत नीचा काम करने से है। एक दूसरी जगह (६।६।२७) कुम्भदासी के सफेद कपड़े और सोने के गहने पहनने, सुगन्धि और पान सेवन करने का उल्लेख है।

वेश्या की माता यानी खाला के लिए निम्नलिखित शब्द आए हैं—माता (प० प्रा० ३३), शम्भली (धू० वि० ११८), गणिकामाता (उभ० १३५), वेश्याजननी (उभ० १२७, १२८) और कुम्भनी (पा० ता० २५८)। मार्य शब्द वेश्या माता के लिए अनेक जगह साहित्य में आया है। डॉ० र्नेल्सन् द्वारा लुइसिक ने (भारतीय विद्या, भा० ५, ११४-१४२) गणिका माता के लिए इस शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र, कामसूत्र, दशकुमार चरित, पंचतन और मृच्छङ्गिक में दिखाया है। वेश्याजननी उड़ी खालची होती थी (उभ० १२७, १२८, १३३, १३४, १३५)। उसका हुकम वेश्या शासन कहलाता था। उसकी मर्जी व विरुद्ध वेश्या नहीं जा सकती थी। माल खतम होने पर वे वेश्याओं को कामिया का छोड़ने पर बाध्य करती थीं (उभ० १३८-१३९)। अमरकाश (२। १९६) के अनुसार कुम्भनी और शम्भली समानार्थक हैं। क्षीरस्वामी ने शम्भली की निरुक्ति श श्रेयो भालयति लाति या की है, और उसने लिए देशी शब्द चुदी शतनाया है।

वेश्यायका (पा० ता० २१०) से नीची अर्थात् कम उम्र की वेश्याओं से मतलब है। वे कटुक, पिंजोला (एक तरह का बाजा), गुड्डा गुड्डा (ज़तरकपुत्र दुहितृका) इत्यादि तिलीने खेलती थीं। कामसूत्र व बालोपक्रम प्रकरण (३।३) में कम्पात्रा के अनेक खेलों की सूचना मिलती है। उनमें फूल चुनना और गुहना (पुष्पावचय, प्रथन), धर्तीदा बनाना (गृहक), गुडियाँ खेल (दुहितृका क्रीडा याचना), भात पकाना (भक्त पाक करण), (३।३।५), पासा पेंपना (आकर्ष क्रीडा), पट्टी गृथना (पट्टिका क्रीडा), मुट्टी बाँधकर घुमाना (मुष्टियूत), छुल्लचल्ल, बीच की अगुली घूमना (मध्यमालगुलि भ्रमण), गाग गागी का खेल (पद्मगायणक) (३।३।६), पिचकारा चलाना (चचकनिस), आँव पिचो अल (मुनिमालिताकानि), टा टलमि विभक्त हाकर बीचमें नमकर देले की छुना (लयन वीथिका), जिसे जयमगल्य व अनुसार लयनहार कहते थे, पदियों की तरह डैने पत्रारने के खेल (अनिलताडितिका), गहूँ के टोमें छिपा रखा आगम में गहूँ काटकर टूट निकालना (गारूम पुत्रिका), गनेय घण्डो (अगुलिताडितिका), (३।३।७), कटुक, रंगाली (भक्ति चित्र), सूत, लकड़ी, मींग और हाथी दाँत, मोम, पीठी और मिट्टी की बनी पुतलियाँ (दुष्टाका) (३।३।१३), एक काठमें मेढे और मेढों की बाड़ी, बर्रे और मेढ की बोड़ी,

बोंस की पगड़ी, काठ ग्रथना मिट्टीने बने देव मंदिर, तोते, कोयल, मैना, लवा, मुर्गा, तोतर इत्यादि के मिट्टी के बने पिंजरे, शण्ड, सीपों, मिट्टी, काठ और पत्थर के बने तरह-तरह के जलभाजन, नकली याने इत्यादि बनाना (मच मातृका), छोटी धोणा (धोणिका), दठरी (पिंडोलिका), आलता, मैनसिल, दडताल, इंगुर, श्यामकण्ठ इत्यादि रखने की पिटरियाँ (वहीलिका, ३।३।१४) इत्यादि मुख्य हैं ।

चतुर्भांगी में वेश्याओं का जो चरित दिखलाया गया है उसके ठीक तरहसे समझने के लिए कामसूत्र, नाट्यशास्त्र, मृच्छकटिक, वसुदेवहिण्डी इत्यादि का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि इन सब की सम्मिलित सामग्री से वेश जीवन का एक सर्वांग चित्र उपलब्ध होता है । धूर्तविरसवाद में तो कामशास्त्र सम्बन्धी अनेक उल्लेख आते हैं जिनकी तुलना कामसूत्र और भरत में आए हुए उल्लेखों से की जा सकती है ।

भारत के अनुसार (२५।१) वैशिक शब्द के अर्थ सब कलाओं में विशेषता पैदा करना अथवा वेश्योपचार का ज्ञान है । वैशिकवृत्त को जानने वाला सब कलाओं का जानकार, सब शिल्पों में कुशल, स्त्रियों का चित्त खींचने वाला, शास्त्रज्ञ, रूपवान, खीर, धैर्यवान, बालिग, अच्छे कपड़े पहनने वाला, मीठा बोलने वाला, चतुर, पवित्र, कामोपचार कुशल, देशकाल जानने वाला, हाजिर जयात्री में चतुर, खचाला और मानी इत्यादि होता था (२५।२०७) । नायक का मित्र अनुरक्त, पवित्र, दान्त, दक्षिण, प्रतिपत्तिज्ञान, और छिद्रान्वेदी होता था (२५।७) । दूतियों में कपिनी, परिश्रानिका (क्षिणिनी), नगी (रंगोपभवा) पंडोसिन, सली, दासी, कुमारी, बढहन, धाय, पाण्डिनी, और भाग्यफल कहनेवाली (ईक्षणिका) इत्यादि होती थीं । ये मिठबोली, चतुर, समय पहचानने वाली, सलाह देने वाली होती थीं । ये कामुकों को प्रोत्साहन देती थीं, उनके गुण गाती थीं, ठीक समाचार देती थीं, भाव प्रदर्शन करती थीं, नायक के कुल और धन की तारीफ करती थीं और काम की बात करती थीं (२५।६-१४) । ये उरसवों पर, रात में, उद्यान में, रिश्तेदार धाय और सली के घरों में, म्थोते में, सूते घर में और बीमारी के बहाने से नायक नायिका की भेंट कराती थी (२५।१५-१७) ।

इसके बाद नाट्यशास्त्र में अनुरक्ता और विरक्ता के लक्षण, स्त्रियों के मनाने के उपाय और वेदशाओं की पौवन लीला के बारे में कहा गया है । अनुरक्ता स्त्री कामनेग से नपरे करती है, स्त्रियों के गुण गाती हैं, धन देती हैं, नायक मित्रों का पुजाती और दुश्मनों से बैर करती हैं, उसका समागम चाहती है, उसे देखकर और उसकी बातों से प्रसन्न होती है । साते समय उसके चूमने पर चूमती है, उसके उठने के पहले उठ जाती है और मुख दुःख दोनों में क्रोध नहीं करती (२५।१८-२१) । इसके विपरीत विरक्ता नायक के चूमने पर मुँह पीछली है, अनचाही बातें करती है, उसके मित्रों से द्वेष और शत्रुओं की प्रशंसा करती है, सेज पर मुँह घुमाकर साती है, श्रावभगत पर भी प्रसन्न नहीं होती, बलेश सहन नहीं करती, अकारण ही काप करती है, ओंलें नहीं मिलाती और उसका स्वागत नहीं करती (२५।२४-२७) । विरक्त के कारणों में हृदय आही माथों का त्याग, धन का अभिमान, बात छिपाना, बीमारी बनाना, गरीबी, दुःख और रुखाई, खबर न मिलना, नायक का प्रनास गमन, भान, अतिशोध, अतिरुग्, समय पितकर आना, और नायिका को अप्रिय लगने वाली वस्तुओं का सेवन हैं (२५।२८-३१) ।

भरत ने स्त्रियों के मनाने के उपाय भी कहे हैं यथा—लालची को धन से, पड़िता को कलागान से, चतुरा को क्रीडा से, मानिनी को मान से, तथा पुरुषद्वेषिणी को गहने देकर और कथाओं से मनाया जा सकता है। खिलौनों से बाला, आश्वासन से भयप्रस्ता, सेवा से गर्विता और शिल्प दर्शन से उदात्त मनाई जाती है। (२५।३२-३५)।

भरत ने धूर्त विट सवाद की तरह वेश्याओं और साधारण स्त्रियों को तीन श्रेणियों में बाँटा है। उत्तमा नारी ग्रप्रिय होने पर भी अपने प्रिय से लगनेवाली बात नहीं कहती, वह कलाओं और शिल्पों में चतुर, रूपवती, कुलीन और घनी की प्रेमिका, कामतन में कुशल, जरा से में ही क्रोध हटा देनेवाली, कारण से ही गुस्ता करने वाली, पर ईर्ष्या हटते ही बोलने वाली, काम और समय का विचार करने वाली होती है (२५।३६-३९)। मध्यमा या तो खुद पुरुषों को चाहती है अथवा पुरुष उसे चाहते हैं। वह कामोपचार में कुशल, अपनी प्रतिपक्षिणियों से डाह करने वाली, ईर्ष्यालु, चंचल, क्षणिक क्रोध में गर्व करने वाली और क्षण में ही प्रसन्न होने वाली होती है (२५।४०-४१)। अधमा बिना जात के ही क्रोध करने वाली, दुःशीला, अभिमानिनी, चपला, कठोर और गहरा क्रोध करनेवाली होती है (२५।४२)।

वेश्याओं की यौवन लीला के बारे में भी नाट्यशास्त्र में कुछ कहा गया है। नेपथ्य, रूप, चेष्टा और गुण के अनुसार प्रथम यौवन में उरु, गड्ढा, जघन पीन, और स्तन कर्कश होते हैं और मुरत में उरसाह होता है। यौवन के दूसरे काल में शरीर और स्तन भरे होते हैं और कमर पतली होती है। यौवन के तीसरे काल में लुनाई और रति प्रेम बढ़जाते हैं। नव यौवन बीतने पर चौथी अवस्था आती है। उसमें बदन ढल जाता है और रति में उरसाह नहीं रहता। यौवन की प्रथमावस्था में स्त्री क्लेश नहीं सह सकती, सौतो में न क्रोधित होती है न प्रसन्न, पर वह सौम्य गुणों से प्रेम करती है। यौवन की दूसरी अवस्था में वह कुछ कुछ मान, क्राध और ईर्ष्या करती है और क्रोध में चुप रहती है। यौवन की तीसरी अवस्था में वह मुरत में दक्ष, प्रतिपन्न, ईर्ष्यालु, गुणी और गर्वाली होती है। यौवन की चौथी अवस्था में ईर्ष्या चली जाती है और नायिका विरह नहीं चाहती (२५।४३-४६)।

भरत ने नायक के चार भेद माने हैं। नायक दुल में समान, क्लेश सहने वाला, प्रणय क्लेश को शांत करने वाला और रति के उपन्यासों में कुशल होता है। श्रेष्ठ नायक अग्रप्रिय न करने वाला, धीरोदत्त, प्रियंवद, मानी, हृदय के तत्वों का जानकार, स्मृतिमान्, मधुर, त्यागी अतोधी, काम के वश में न होने वाला, और स्त्री के अपमान से अलग हो जाने वाला होता है (२५।५६-५७)। मध्यम नायक स्त्रियों का सय तरह से अर्थ ग्रहण करने वाला लेकिन बरा-सा दोष देखते ही अलग हो जाने वाला, समय पर देने वाला तथा अपमानित होने पर भी क्रोध न करने वाला होता है (२५।५८-५९)। अधम नायक अपमानित होने पर भी स्त्री के पास जाता है और म्हेह से मिलन होता है। मित्रों के मना करने पर नए नए दोष देख कर उसकी प्रवृत्ति बदती है (२५।६०-६१)।

सप्रवृद्ध नायक भय और क्राध को परनाह न करने वाला, मूर्ख, सम्मान से ही उद्विग्न दिखाने वाला, जिद्दी, निर्लज्ज, रतिकल्ह में मार मेटने वाला, कर्कश और स्त्रियों का खिलौना होता है (२५।६२-६३)।

भरत के अनुसार गणिका का पद काफी ऊँचा होता था। उसमें लीला, हाव भाव, सत्य, विनय और माधुर्य का एक अपूर्व समिश्रण होता था। चौंसठ कलाओं में उसकी प्रवृत्ति होती थी। राजोपचार में वह कुशल होती थी तथा स्त्रियों के दोष उसमें होते थे। वह मृदु-मापिणी, चतुर, और परिश्रमी होती थी (३५।६०-६२)।

कामसूत्र को तो वैशिक वृत्त का मंदार कहना अनुचित न होगा। गोष्ठी, राजमहल तथा वेश में वेश्याओं का क्या स्थान था, कामुकों को लूटने में वे कौन से उपाय बरतती थीं, कला के क्षेत्र में उनका क्या स्थान था, इन सब प्रश्नों पर कामसूत्र में वेश्याओं और कुलस्त्रियों के कुछ मनोविकार सामान्य भी माने गये हैं। उससे यही भी पता चलता है कि धर्म विरुद्ध होते हुए भी वेश्याओं का समाज में एक विशेष स्थान था और कलाओं की तो वे विशेष ज्ञाता मानी जाती थीं। आपानक और कामुकता गोष्ठी के अंग तो वे ही पर उसमें भाग लेने वाले नागरिक और वेश्याएँ कला और काव्य सभास्थाओं पर विचार विनिमय करते थे। कामसूत्र और चतुर्भाणी से यह भी पता चलता है कि कुछ वेश्याएँ ऐसी होती थीं जिनका प्रेम केवल लूटने के लिए ही न होकर वास्तविक होता था। ऐसी वेश्याएँ प्रेमी के विदेश जाने पर एक कुलस्त्री की तरह विरहिणीयित धारण करती थीं और अपने प्रेमियों के कुशल मंगल के लिए देवार्चन पूजा इत्यादि करती थीं।

गणिका के जीवन में कलाओं का कितना महत्त्व था, इसका पता कामसूत्र के दो श्लोकों से लगता है। शील, रूप और गुणों से युक्त वेश्या कलाओं से ऊपर उठ कर गणिका कहलाई जाकर जन समाज में विशेष स्थान पाती थी, राजाओं और विद्वानों से पूजित और स्तुष्टमान, कला के उपदेश के इच्छुकों से प्रार्थित, विदग्धों द्वारा न्याही जाने वाली, और सबकी लक्ष्यभूत होती थी (१।३।२०-२१)। संस्कृत बौद्ध साहित्य में अनेक ऐसे उल्लेख हैं जिनसे तत्कालीन गणिका के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। महावस्तु (३।३५-३६) की एक कहानी में कहा गया है कि एक अग्रगणिका ने एक चतुर और रूपवान पुरुष को मुरत के लिए बुला-याया। उसने गंध तैल लगा कर स्नान करके, चूर्ण से अपना शरीर सुगन्धित किया, तथा आलेपन लगाने के बाद काशिक वस्त्र पहन कर अग्रगणिका के साथ भोजन किया। गणिका अवगली की कहानी बौद्ध साहित्य में विद्यमान है। (गिलगिट टेक्स्ट्स, ३ भा० २, पृ० १७-२१)।

कथा के अनुसार वह महानाम की पुत्री थी और वैशाली के सेठ साहूकार उसके साथ विवाह के इच्छुक थे। गण के जल्ते में महानाम ने किमी सुधान को अपनी कन्या देने का इरादा जाहिर किया पर गण ने यह निश्चय किया कि वह औरत गणभोग्या थी। जब आग्र पाली को गण का यह मन मालूम हुआ तो उसने जनपद कल्याणी बनने के पहले कुछ शर्तें रखीं यथा—(१) गण को उसे नगर के प्रथम भाग में घर देना होगा, (२) एक कामुक के रहते दूसरा कामुक नहीं आ सक्ता था, (३) उसका मादा पॉच सौ कार्यापणका होगा, (४) घर तलाशों के समय उसके घर की सातों दिन ही तलाशी हो सकती थी, (५) उसके घर में आने जाने वाली की देव रेणु नहीं हो सकती थी। गण ने उसकी शर्तें स्वीकार कर लीं। उसने एक बड़ी भिखारवाला बनवाई जिसमें देव के बड़े बड़े चित्रकारी ने राजा, पत्नी, श्रेष्ठी गणिक और मार्गयाहों की शबोहें बनाईं। वह आने वाली से उनके सम्बन्ध में प्रश्न करती थी। आग्रवाली चोमठ कन्याओं में प्रवीण थी। राजा भिखार से उसका सम्बन्ध था। उसका

इतना प्रभाव था कि एक बार उसने वैशाली के व्यापारियों से कहा कि वे उसने पास वाली राजा की मुहर लगाकर बिना शुल्क के माल ले जाएँ ।

वैश्याओं के चौंसठ कलाओं के ज्ञान के बारे में नाट्यशास्त्र और मिलिगिट से प्राप्त बौद्ध संस्कृत विनय ग्रन्थों में उल्लेख आए हैं । वात्स्यायन ने कामसूत्र (११।१६) में उन कलाओं की निम्नलिखित तालिका दी है—(१) गीत, (२) वाद्य, (३) नृत्य, (४) चित्रकारी (आलेख्य), (५) चेहरे पर पत्रभग बनाना (विशेषकच्छेद्य), (६) चावल और फूलों से अभिप्राय धूना (तडुल कुसुमावलि विस्तराः), (७) फूल मडली (पुष्पास्तरण), (८) दात रँगना, कपड़े रँगना और उबटन लगाना (दशन वसनाङ्गराग), (९) कर्णों में चौंते लगाना (मणि भूमिमा कर्म), (१०) सेज साजना (शयन रचना), (११) जलतरंग बनाना, (१२) जलक्रीडा या पानी उछालना (उदकाघात), (१३) नाना प्रकार के काम सम्बन्धी प्रयोगों का ज्ञान (चित्रयोग), (१४) माला गँथना (माल्य ग्रथन विकल्प), (१५) सिर पर के गजरे बनाना (शोपरकापीड योजन), (१६) वेश भूषा की कला (नेपथ्य प्रयोग), (१७) हाथी दाँत इत्यादि के कुण्डल बनाना (कर्ण पत्र भग), (१८) अक्षर बनाना (गद्ययुक्ति), (१९) गहने पहनना (भूषण योजन) (२०) इद्रजाल, (२१) सुभगकरण इत्यादि यानों का ज्ञान (कौत्सुमार), (२२) सत्र कामों में हाथ की सफाई (हस्त लाघन), (२३) तरह तरह के शाक जूस और खाना बनाने का ज्ञान (विचित्र शाक दूध भस्म विकार त्रिया), (२४) शराब और आसव बनाने का ज्ञान (पानक रस राग आसव याजन), (२५) कसीदा और बिनाई (सूची वान कर्म), (२६) कठपुतली का खेल (सूत्रग्रीवा), (२७) वीणा डमरू इत्यादि वाजे बजाना, (२८) पहेली बूझना, (२९) अत्याचारी का ज्ञान (प्रतिमाला) (३०) कठिनाई से पढ़े जाने वाले श्लोक कहना (दुर्वाचक्र योग), (३१) पुस्तक पढ़ना, (३२) नाचों और आद्यधार्मिकान्त्रों का ज्ञान, (३३) काव्य में समस्या पूर्ति, (३४) स्टाट की पाटी और बेंत बुनना (पट्टिका वेत्र वान विकल्प), (३५) कुन्दी करना (तर्कु कर्माणि), (३६) घड़ई गिरी (तद्वण), (३७) वास्तुविद्या, (३८) सिक्कों और रत्नों की परीक्षा (रूप्य रत्न परीक्षा), (३९) रत्नों और उनसे निकलने वाली वस्तुओं का ज्ञान (धातुवाद), माणियों और रत्नों की पानों का ज्ञान (मणिरागाकर ज्ञान) (४१) घृक्षायुर्वेद के योगों की जानकारी, (४२) गेहूँ, मूँगों और लवों की लड़ाई की जानकारी, (४३) शुक और सारिका के बुलवाने का ज्ञान, (४४) पैर से कचरने (उत्सादन), हाथ की मालिश (सहाहन) तथा सिर दबाने (केश मर्दन) में कौशल, (४५) गुप्ताचरों में लिपि लेने की कला (अक्षर मुष्टिका कथन), (४६) अन्धे शब्दांश प्रयोग होते हुए भी अर्थ समझने में कठिनाई की कला (ग्लेच्छित्त विकल्प), (४७) देशी भाषाओं का ज्ञान, (४८) फूल की डोली बनाना (पुष्प शकटिका), (४९) पलित ज्योतिष का ज्ञान (निमित्त ज्ञान) (५०) गाड़ी इत्यादि बनाना (यत्रमात्रिका), (५१) वस्तु कोप, द्रव्य, लक्षण और हेतु का ज्ञान (धारण मातृका), (५२) याद रखने की कला, (५३) मानसिक काव्य बनाने की क्रिया, (५४) कर्णों का ज्ञान, (५५) पिंगल का ज्ञान, (५६) काव्य बनाने की विधि का ज्ञान (त्रिया पत्तर), मेघ बदलने की क्रिया, (ललितक्रयोग), (५८) पड़े कपड़े ठीक तरह से पहनने की कला (वस्त्र गापन), (५९) जूआ, (६०) पासा फेंकना (आकर्षक माडा)

(६१) बच्चों के लिलौने बनाने की कला (बाल क्रीडनकानि), (६२-६४) विनय , जीतने और व्यायाम करने की कलायें ।

कलाओं की उपर्युक्त तालिका देख कर यह पता चलता है कि एक ही पुरुष अथवा नारी का इतनी कलाओं का ज्ञान होना सम्भव नहीं था तथा चौंसठ कलाओं में अधिक तर कलाएँ भिन्न भिन्न दर्जों में बाँट दी जा सकती हैं । गीत, वाद्य, नृत्य, उदक वाद्य, वीणा डमरूक वाद्य एक श्रेणी में; तहल कुमुदावलि विकार, पुष्पास्तरण, मणिभूमिका कर्म, पुष्प शकटिका और शयन रचना दूसरी श्रेणी में; विशेषरूप-वन्ध दर्शन ब्रजन अंगारग, माल्य ग्रथन, शैलरका-पीड योजन, नेपथ्य प्रयोग, कर्णपत्रभग, गद्ययुक्ति, भूषणयोजन, उत्सादन, सवाहन, केशमर्दन छलितक योग और वस्त्र गोपन तीसरी श्रेणी में; शाक और भोजन बनाना, और शराब बनाना चौथी श्रेणी में; मेढे इत्यादि को लडाई, द्यूत विशेष और पासे का खेल पाँचवीं श्रेणी में; प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचक योग, पुस्तक वाचन, नाटकाख्यायिका दर्शन, काव्य समस्या पूरण, अक्षरमुद्रिका कथन, म्लेच्छतविकल्प, देशभाषाज्ञान, धारण मात्रिका, मानसी काव्य त्रिया, अमिधान कोप, छन्दो ज्ञान और क्रिया कल्प छुड़ी श्रेणी में आ जाते हैं । शेष कलाएँ जैसे इन्द्रजाल, फोचुमार योग, पट्टिका घेन वान विकल्प, सूचीवान कर्म, तर्जुन कर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रूप्य रत्न परीक्षा, धातुवाद, मणिरागाकरज्ञान, वृत्तापुर्वेद, आलेख्य कर्म, यन मातृका, गंधों के तिलौने बनाने की कला इत्यादि स्वतन्त्र कलाएँ हैं ।

उपर्युक्त कलाओं पर जहाँ तक चतुर्भांगी का सम्बन्ध है हमने प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । लगता है गद्ययुक्ति का गुप्त युग में काफी प्रचार था । बृहत्कथाश्लोकसमूह (१६।६४-७२) के अनुसार कानन द्वीप का राजकुमार मनोहर और उसके मन्त्री बकुल और अशोक गंधों के फई शौरीन थे । एक बार सुमंगल नामका एक चतुर गंधी (बुद्ध-गद्यानुशासन) उनके पास आया । उसके सामने धूप लगाई गई और विलेपन बाँटे गए । पर गन्धी ने माल्य और पुष्पों की गन्ध से धूप और विलेपन के गन्ध अलग होने से सिर दर्द की शिकायत की । इसके बाद उसने स्वयं अपनी भोली (स्थगिका) और पैटी (फलक सपुटक) बाहर निकाली और एक सुगन्धित धूप तैयार की । एक बार सुमंगल द्वारा सत्र गन्धों के राजा यक्षकर्म नामक सुगन्धि तैयार करने का उल्लेख है (वही १६।१४०) ।

वेश्या का नागरकों के साथ जो सम्बन्ध था और वे कैसे उनके साथ आपानकों, उद्याननीहा और गोष्ठियों में सम्मिलित होती थीं, इस पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है । धूर्तवित्तसगड में एक जगह गोत्र स्तलन का उल्लेख आया है । कामधूत के अनुसार ऐसा होने पर नायिका क्लह करती थी, रोती थी, सिर के बाल नोचती थी, अपनी छाती बूझती थी, सेज से उतर कर जमीन पर लोटने लगती थी तथा गहने पँकने लगती थी (२।१०।४१) । उसके पैर पर गिर कर मनाना ही एक उपाय था । उसके मनाने में पीठमर्द, निट इत्यादि भी सहायक होने थे ।

कामधूत (४।२।७८) के अनुसार अन्तःपुर में आभ्यन्तरिक और नाटकीय वेश्याएँ सत्रों बाहर की कलाओं में रहती थीं ।

पैशिक नामक छठे अधिःकरण में वेश्याओं के सम्बन्ध में काफी जानकारी की बातें आई हैं । वेश्या का प्रेम स्वाभाविक अथवा कृत्रिम होता था । वह पुरुष को अपने वश में रगती थी । वह अपने राजगार के निद गहने कपड़े पहन कर, आधी छिन्नी और आधी

दिललाई देती हुई राजमार्ग पर आने जाने वालों को देखती थी (७)। वह गम्भ कामुकों का निरादर नहीं करती थी। अपना काम साधने के लिए आरक्षक, न्यायाधीश, देवज्ञ, साक्षिक, वीर, कलामाही, पीठमर्द, विट, विद्रूपक, कलाकार, गधी, कञ्जवार, धोत्री, नार्दे और भिल्लुक से ज्ञान पहचान बढ़ाती थी (८)। अर्थ के लिए स्वतंत्र, जवान, धनी, सामने दिखलाई देने वाला, रोजीवाला, अधिकारवान, बिना तर्कहीन के दौलत पाया हुआ, लड़ने वाला, बैधी आमदनी वाला, अपने को बड़ा समझने वाला, अपनी प्रशंसा करने वाला, नपुंसक, पुंस्व का अभिमानी, बराबरी करने वाला, स्वभाव से त्यागी, राजा अथवा महामात्र से खटकने वाला, भाग्य का भरोसा करने वाला, वित्त का अभिमानी, बड़ों के दम्भ के बाहर, सजातों में एक बनने वाला, घर का एक ही लडका, परिव्राजक, प्रच्छन्न काम और वैद्य, इनसे वह प्रीति करती थी। (१०) नायक महाकुलीन, विद्वान, समय जानने वाला, कवि, आशयान कुशल, वाग्मी, प्रगल्भ, विविध शिल्पज्ञ, विद्या में वयोवृद्धों का आदर करनेवाला बड़े होने का इच्छुक, उत्साही, दृढभक्त, अनीध्यालु, त्यागी, घटा, गोष्ठी, प्रक्षणक, समाज और समस्या में मज्जा लेने वाला, निरोग, सुदौल शरीर वाला, प्राणवान, शराब न पीने वाला, कारुणिक स्त्री का पालन और प्यार करने वाला और उनके वश में न आने वाला, स्वतंत्र भौतिका वाला, दयावान, इत्यादि गुणोंसे युक्त होता था (१२)। नायिका रूप यौवन, लक्षण और माधुर्य से युक्त नायक को चाहने वाली, गुणों में अनुरक्त अर्थ में नहीं, रति संगोप शीला, रिपरमति, एकवर्गी, लालच विहीन, तथा गोष्ठी और कला में प्रेम करने वाली होती थी (१३)। बुद्धि, शील, आचार, कृतज्ञता, दूरदर्शिता, प्रतिष्ठा भंग न करना, नागरक वृत्त में रस लेना, दैन्य, बहुत हँसी, लड़ाई लगाना, पैशुन्य, दूसरे का दोष निकालना, क्रोध, लोभ, घमंड और चपलता का त्याग, दूसरे के शोलने के पहले बोल उठना, कामशास्त्र और श्रंग विद्याओं का ज्ञान, ये सब नायक के साधारण गुण माने जाते थे (१४)।

क्षय से पीड़ित, रोगी, कुमि रोग से पीड़ित, दुर्गन्धित मुख वाला, अपनी स्त्री को प्यार करने वाला, कज्ज, निर्दयी, बड़ों से त्यागा हुआ, चोर, दम्भी, बशीकरण इत्यादि में विश्वास करने वाला, मान अपमान की परवाह न करने वाला, द्वेष साधन करने वाला और लज्जालू, इनके साथ वेश्या को प्रेम करने की मनाही थी (१६)। गम्भ के बताने पर भी पौरन उत्तरे पात्र दृष्टलिए जाना उचित नहीं था कि कहीं यह यह न समझ ले कि यह सुलभ थी (६।२१)। नीकर, संवाहक, गायक, विद्रूपक और मर्द से उसका भाव ज्ञान कर ही उसका संग करना ठीक था (२२)। वे ही नायक का शौचाशौच, प्रेम राग तथा देने लेने के बारे में बता सकते थे (२३)। विट नायक और नायिका का संयोग करता था। पक्षी और पशु युद्ध, चारिका प्रलापन, प्रेक्षणक और संगीत के बहाने पीठमर्द नायिकाको नायक के घर या नायक को उसके यहाँ ले जाता था (२४-२५)। प्रेम बढ़नेके लिए आपसमें उपहार देना-लेना, और गोष्ठी की योजना होती थी, फिर दासी भेजी जाती थी (२६-२८)।

नायक के साथ प्रीति हो जानेपर वेश्या एकचारिणी व्रतमा पालन करती थी (६।२।१२) और नदरेसे अपना प्यार बनाती थी। क्रूर और लोभी माताका उसपर अधिकार होता था, उसके अभान में वह राला के अधिकार में होती थी (३)। गणिसामाता कामुक से विशेष स्नेह नहीं रखती थी और जयर्दस्ती अपनी लडकी को उसके यहाँ से लीच लाती थी। उनके

बाद नायिका नायक को लुभाने के लिए बीमारीका बहाना करती थी कि जिससे वह उससे मिलने आए। वह बेटी के हाथ उसके पास निर्माल्य और पान भेजती थी। वह राजमार्ग में होते खेल तमाशे काठेपर बैठी अन्यमनस्क भाव से देखती थी, उसमें नायकको देखकर लजाती थी तथा उसके द्वेष में द्वेषभाव, उसके प्रियमें प्रियता, उसके शोक में शोक, और उसके हर्ष में हर्ष प्रकट करती थी। वह गुस्सा भी कम करती थी। वह स्वयं काम याचना न करके उसे अपने आकारसे दिललाती थी, सपने इत्यादि का बहाना करती थी और नायक के प्रशसनीय कामों की तारीफ करती थी। नायक के कुछ बोलते ही उसका अर्थ समझ जाती थी और उसकी प्रशंसा करती थी। उसका मन समझ कर बोलती थी, उसकी बात का ठीक जवाब देती थी। सोंसे भरकर, बार बार जमाई लेकर, अथवा जमीन पर गिरकर नायक के दुःख के साथ वह समवेदना प्रकट करती थी, उसकी बुझाईसे उसे आगाह करती थी। वह उसके दूसरे से प्यार जाने से दूसरों की प्रशंसा नहीं करती थी, उसी की ताह दूसरे नायक की निन्दा नहीं करती थी और जो कुछ भी मिलता था उसे ले लेती थी। नायक के वृथा नाराज होने पर वह अपनी नाराजगी गहने और भोजन छोड़कर दिखाती थी। उसके कष्ट सुनकर वह रोती थी, उसके साथ देश छोड़ देने की अभिलाषा दिललाती थी, तथा राजा के हाथ बिकी होने पर उससे दाम देकर छुड़ाने की बात करती थी। उसकी मंगल कामना के लिए वह मनोती मानकर इष्टदेव की पूजा करती थी। उसकी अनुपस्थितिमें कम गहने पहनती थी और कम प्लाती थी। रात में उसका नाम सुनकर श्लानि से सिर अथवा छातीपर हाथ रख लेती थी। निद्रा में उसका स्पर्श सुल पाकर वह गोद में बैठती थी, सोती थी और वियोगमें मिन के घर अथवा देव दर्शन को जाती थी। नायक के व्रत उपवास छुड़ानेमें दोष मिला दे वह कहकर गुद व्रत करने लगती थी। विनाद में वह उसकी अशक्ति की ओर इशारा कर देती थी। वह उससे और अरने घन में मेद नहीं मानती थी। वह विना नायक के गोखी इत्यादिमें नहीं जाती थी। उसके निर्माल्य और जूटे भोजन में वह मजा पाती थी। वह उसके कुलशील, विद्या इत्यादि तथा माधुर्य की पूजा करती थी। नायक को गीत आदि की तरफ झुकाती थी, और विना मौसमकी परवाह किए उसके पास जाती थी। वह नायक से कहती थी कि वे दोनों दुःख में भी एक साथ रहेंगे। वह नायक के भावों का अनुगमन करती थी। यशोकरण की बात होने से वह उससे पीरन नकार जाती थी। उसके प्रति प्रेम दिखलाने के लिए वह अपनी माता से निवृत्त भगवा करती थी। अगर उसकी मा बर्बर होती उसे दूसरे के यहाँ ले जाना चाहती थी तो मिन पाने, भूल हडताल, शस्त्र से आत्मघात अथवा पाँखों लगा कर मरने की धमकी देती थी। माता के व्यवहार से वह नायक की वह दूतों से सुलवाती थी और उसे रमाने के लिए चेर्या वृत्ति की निन्दा करती थी। वह इस बात का प्रयत्न करती थी कि घन के लिए नायक का उसकी माँ से भगवा न हो। पर विना माँ की सलाह ने वह कुछ नहीं करती थी। नायक के विदेश जाने पर कुलवधूकी तरह वह अपना शरीर नहीं सजाती थी, गहने न पहनकर केवल मंगलमूलक एक शल वस्त्र पहनती थी। वह बीती बातों की सोचती थी, शुभाशुभ पत्र जानने के लिए ज्योतिषियों के यहाँ जाती थी, और मन्त्र पत्र पढ़ती थी। वह सपने में नायक से भेटने की बात कहती थी। अनिष्ट स्वप्न होने पर वह शांति कर्म करवाती थी। नायक के लीगते ही वह काम पूजा करवाती थी, और देवताओं में भेट चढ़ाती थी और सगिर्वा मंगल कामना के लिए पूर्ण घट लगती थी। अपने नायक के

सकुशल लौट आनेके लिए कौए की पूजा करती थी। नायक से 'मैं आपके बिना जी नहीं सकती थी' ऐसा वह कहती थी (कामयूज, ६।२।१-५३)।

इसके बाद वेश्या कामुक से किस तरह माल दुहती थी इसका उल्लेख है। सक्त से स्वाभाविक रीति से ही माल मिल जाता था। आचार्यों के अनुसार जहाँ स्वाभाविक रीति से मनचाहा अथवा उससे अधिक धन मिले वहाँ उपाय की आवश्यकता नहीं होती। पर वात्स्यायन के अनुसार उपायों से उससे दूनी दौलत मिल सकती थी। गहने, पकवान, भोजन शराब, माला गंध, वस्त्र इत्यादि वह उधार लेकर उसका पर्चा सामने पेश करती थी जिससे वह उसे चुमादे। वह उसके धन की प्रशंसा करके व्रत, पेड़ लगाने, बाड़ी लगाने, मन्दिर बनवाने, तालाब खुदवाने, बगीचा लगवाने, और उत्सवों की बात चलाकर उससे रुपए वसूलती थी। रुपए ऐंठने का दूसरा तरीका यह था कि आरत्यों और चोरों की मदद से वह अपने गहने चुरावा लेती थी और फिर नायक से उनके लिए पैसे वसूल करती थी। घर जलाकर, दीवालें में लेंच लगवाकर माल गायन होनेका बहाना करके वह पैसे लूटती थी। फिर वह नायक के लिए कर्ज लेने का बहाना करके उसके चुकाने के बहाने अपनी माँ से लड़ाई करती थी। नायक के मित्रों के यहाँ उत्सवों में जाने से वह यह कहकर इनकार करती थी कि उपायन के लिए उसके पास पैसे न थे। वह नायक को यह भी सुनाती थी कि उसके मित्र पहले उपायन लाए थे। उससे रुपया वसूल करने के बहाने वह उचित कामों को भी छोड़ देती थी और गरीबी दिखलाने के लिए मामूली शिल्पों में लग जाती थी। अपना काम साधने के लिए वह वैद्य और महाभाज से साठ गाँठ जोड़ती थी। नायक के मित्रों और सहायकों के दुःख में वह उनकी इसलिये सहायता करती थी कि वे उसकी तारीफ करें। घर बनाने, सपरी के पुन के अन्न-प्राशन, मुक्कन इत्यादि, और उसके दोहद और बीमारी तथा गिन के दुःख दूर करने का बहाना बनाती थी। नायक के सामने ही उसके लिए अपने गहने बेचने की बात चलाती थी तथा बनिए से सॉट-गाँठ करके वह उसे गहना और बरतन भाड़ा बेचने के लिए दिखलाती थी। प्रतिगणिताओं के जैसी ही वस्तुओं को लेने के लिए वह उन्हें बनिए के हाथ नायक को दिखलाती थी जिससे वह उन्हें उसके लिए खरीद ले। वह बराबर उसके पहले के उपकारी की बात दिखलाती थी तथा दूतों के द्वारा उसके पास प्रतिगणिताओं के गहरे लाभ की खबर पहुँचाती थी। नायक के सामने वह लजाकर प्रतिगणिताओं से भी बदकर हुए अथवा अपने न होनेवाले लाभ का वर्णन करती थी। अपने पहले के लाभों का वर्णन करके वह वनावटीरन से कहती थी कि उसे कुछ नहीं चाहिए था जिससे वह पैंसरक गहरा माल दे। नायक के प्रतिस्पर्धियों के त्पाम की वह खबर उड़वा देती थी जिससे उसका मन डोले। शालमाज दिखलाकर वह मोगनी थी (कामयूज, ६।२।१-२६)।

वेश्या विरक्त कामुक का पता उसके स्वभाव बदलने अथवा मुँह के रंग से पा जाती थी। ऐसा होने पर वह उसे कम अथवा ज्यादा देता था, उसके रिपक्षियों के साथ प्रीति बताना था, करना कुछ चाहिए करता कुछ था, जो कुछ उचित था उसे भी नहीं देता था, देना जानकर भी उसे भूल जाता था, मित्रों के साथ दृष्टारे से बातचीत करना था, मित्रों के काम के बहाने दूरी बगद संता था और पहले की खेलेली के परिचारक के साथ गुप्तगुप्त बातचीत करता था (कामयूज, ६।२।३७-३५)।

अब वेश्या को नायक की निरक्ति का पता चल जाता था तो वह चुपके-चुपके उमका

माल अपने कब्जे में कर लेती थी और कह देती थी कि साहूकारों ने जबरदस्ती कब्जा जमा लिया। उसके भगड़ा करने पर 'माल मेरा है तू फौन होता है' यह कह कर वह अदालत पहुँचती थी (कामयूत्र ६।३।३६-३८)।

अपने सक्त कामुकों के साथ भी वेश्या गहरी चाल चली थी। जब उसको रकम छीज जाती थी तब उसका अपराध दिखलाकर उसे निकाल बाहर करनेकी तरकीब करती थी। खुश पर बाद में शायद माल पैदा करने वाले कामुक को वह ऐसे उपाय से निकालती थी कि जिससे उसके साथ उसकी पूरे तौर से खटक न जाय। नायक को निकाल बाहर करने के लिए वह उसके मन की बात नहीं करती थी, उसकी निन्दा करती थी, उसे देर कर ओठ बिचकाती थी, जमीन पर पैर पटकती थी, उसके अनजाने विषयों पर बात करती थी और जाने विषयोंकी इसलिए अवहेलना करती थी कि लोगों में उसकी हँसी हो, उससे घृणा करती थी, उसकी शान की हँसी उड़ाती थी, बहुतों का साथ करने लगती थी, उसके बैसों की निन्दा करती थी और अनेके में उसे पास नहीं आने देती थी। रति के समय पान इत्यादि लेने में आनाकानी करती थी, उसे चूमने नहीं देती थी, जघनस्थल छिपाती थी, नख और दंतच्छदोंसे घृणा करती थी, आलिंगन करने पर हाथ बाँध लेती थी, बदन स्तब्ध कर लेती थी, कमर टेढ़ी कर लेती थी, नींद का बहाना करती थी, थकावट दिखलाती थी, कमजोर की हँसी और मजबूत की तारीफ करती थी, तथा दिन में उसका रतिभाव साफ़ कर बाहर चल देती थी। उसकी बातों में वह खुश निकालती थी, उसके भोंदपन पर हँसती थी, हँसी करने पर बात उड़ा देती थी, उसके घात करने पर वह भीहँ मार कर चाकर की ओर देखती थी अथवा उसे मारती थी, उसे ठोक कर बात बदल देती थी, उसके अपराधों और बुराइयों का वर्णन करती थी, और खुदकी बजा कर उसको पीड़ा पहुँचाने वाली बातें करती थी (कामयूत्र, ६।३।३६-४३)।

पर वेश्या बड़ी काइर्यो होती थी। वह अपने कोठे के निकसुओं से भी फिर से दोस्ती गँठने के लिए तैयार रहती थी। वह यह खबर उड़ा देती थी कि निकालने में दोष नायक का था, जहाँ यह गया वहाँ से भी निकाला गया अथवा दोष दोनों का था इत्यादि। पर वह उससे मिलने का हमेशा मौना ताड़ा करती थी। जैसे ही वह देखती थी कि उसके धन अथवा मान में हृद्धि हुई, अथवा वह अपनी स्त्री अथवा घर से अलग हुआ कि वह उसे फिर से पँसाने का प्रयत्न करती थी। इसके लिए वह नायक के पीठमर्द आदि से कहलवाती थी कि अपनी माता की घटमाश्री से विग्रह होकर उसने उसे निकाला था। इस ताह उसके फिर से पँस जाने पर वह उसे दुहती थी (कामयूत्र, ६।४)।

वास्तव्य ने वेश्याओं के सम्बन्ध की ओर भी बहुत मो बातें कही हैं। बहुत से कामुकों के होने पर उसे लाभ के लिए हर रोज़ एक एक नया लेना चाहिए, एक ही को रोज़ पीठ न जाना चाहिए, देश, काल, स्थिति, अपने गुण और मौभाग्य और दूसरियों से अपनी बग़ियाँ देखकर रात में पन लेना चाहिए, गम्य कामुक के पास दूत भेजने चाहिएँ, लाभ के लिए एष ही के साथ दूसरे, तीसरे या चौथे दिन जाना चाहिए, बाकी दिनों में सबके साथ। नगद देने वाले से मिलना चाहिए। मन्दिर और तालाब बनवाना, बाँध पँधवाना आग्नि नैत्य बनवाना, दूसरे के हाथ से ब्राह्मणों को मोददान देना, देवपूजा और भेट करना इत्यादि गतिरा के अतिशय लाभ के साधक थे। अच्छा सजा घर, कीमती सामान, नीकर इत्यादि स्थायीय के स्वभाविशय के साधक थे। सपेट करके पहनना, अच्छा गाना गाना,

पान छत्र का सेवन और साने के गहने पहनना कुम्भदासी के सौभाग्य के द्योतक थे (कामसूत्र, ६।५)।

वात्स्यायन ने कामसूत्र में अपने युग की वेश्याओं के मनोवैज्ञानिक भावों का स्पष्टीकरण किया है, पर उसने रूप का स्पष्ट दर्शन तो साहित्य में होता है। उससे पता चलता है कि कुछ वेश्याएँ ऐसी होती थीं जो प्रेम के लिए सब कुछ त्याग देने का तैयार रहती थीं। मृच्छकटिक की वसन्तसेना ऐसी गणिताओं में एक थी, पर तत्कालीन वेश्याएँ सभी ऐसी नहीं होती थीं। विन् ने उसे घन हरने वाला पथशूत शरीर कहा है और उसकी तुलना उस धापी से जिसमें श्रेष्ठ ब्राह्मण और मूर्ख शूद्र दोनों नहाते हैं, उस लता से जो कौए और मार दोनों के भार से झुक जाती है, उस नौका से जिस पर चढ़ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पार उतर जाते हैं वही है मृच्छकटिक के चौथे अंक में वसन्तसेना और मदनिका ने सनाह से भा वेश्या जीवन के कुछ पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। वसन्तसेना चारुत्तकी शरीर पर ओंख गड़ाए हुए मदनिकासे पूछती है कि शरीर कैसी थी। मदनिकाने जवाब दिया कि शनाहत ठीक थी। वसन्तसेना के यह पूछने पर कि वह कैसे, उसने कहा है इसलिए कि उस पर उसकी ओंख लगी थी। इस पर वसन्तसेना कहती है ऐसा कहना उसका वेश में रहने की चतुर्गुण प्रकट करता था। इस पर मदनिका ने कहा कि क्या वेश में रहने वाले झूठ बोलने में चतुर होते थे। इस पर वसन्तसेना ने उत्तर दिया कि हर तरह के लोगों का साथ करने से वेश्याएँ झूठ बोलने में कुशल हो जाती हैं। उसी अंक में शर्विलक और मदनिका का आपस में रहे प्रेम से बातचीत करते हुए देखा जा सकता है कि वसन्तसेना कहती है कि ऐसा मालूम पड़ता था कि शर्विलक उसे दासी वृत्ति से छुड़ाना चाहता था। शर्विलक ने आगे चल कर मदनिका से पूछा कि क्या वसन्तसेना निष्क्रिय लेकर उसे छोड़ देने पर तैयार थी। इस पर मदनिका ने जवाब दिया कि वसन्तसेना की इच्छा निरा पैसा लिए सब परिजनों का दास बंधन से मुक्त कर देने की थी। फिर उसने कहा कि उसका पास इतना पैसा कहाँ से आया जो वह उसे छुड़ाने की बात सोचता था। उपर्युक्त कथनोपकथन से यह पता चला जाता है कि परिचारिकाएँ खरीदी हुई होती थीं और पैसे भर कर उन्हें छुड़ाया जा सकता था। उसी अंक में शर्विलक मदनिका से रिगड़ कर वेश्याओं की बुराई करता है—वेश्या रूपी चिड़ियाँ पले-पूने कुलपुत्र रूपी वृक्षा का सफाया कर देती हैं (४।१०)। मनुष्य कामासक्ति में अपना धन और यौवन भुक्त देते हैं (४।११)। वे मूर्ख हैं जो श्री और वेश्या में आस्था रखते हैं (४।१२)। वेश्याओं से प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि वे प्रेमी की प्रताड़ना करती हैं, केवल उसी से प्रेम करना चाहिए जो प्रेम करे, निरन्तर से दूरही रहना चाहिए (४।१३), वे धन के लिए होती हैं और ईसती हैं, पुरुषों पर विश्वास अभाव में हैं पर स्वयं विश्वास नहीं करती, इसलिए कुल शील वाले पुरुष का उनका पास नहीं पकना चाहिए (४।१४)। समुद्र की लहरों की तरह चंचल, सध्या व बाटलों की लड़ाई की तरह क्षणिक, लुटेरी वेश्याएँ पुरुष को लूट कर निचाड़े हुए आलने की तरह फट देती हैं (४।१५)। वे अपने दिल में एक का स्थान देकर दूसरे को आँखों के दूधारे से गुलाती हैं, एक कामुक को घटा उठा कर दूसरे की शरीर से कामना करती हैं (४।१६), पहान का चाग पर काँट नहीं फूँती, गदह घाड़े की सनारी

नहीं सँभाल सकते, बोया हुआ जो घान नहीं हो सकता और वेश्याएँ पवित्र नहीं हो सकती (४ १७) । पर वेश्याओं की बुद्धियों का बलान करते हुए भी शूद्रक ने विट के मुख से वसंतसेना की तारीफ़ करवाई है । शकार विट से वसंतसेना को मार डालने के लिए कहता है । इस पर वह जान नद करके कहता है कि वह जान ली, नगर का यूपण और वेप नियम के विरुद्ध प्रेम करने वाली थी । उस को मार कर भला वह किस ढांगी से परलोक की नदी पार कर सकता था (८।२३) ।

मृच्छकटिक में हम ऊपर देख आए हैं कि वेश्याएँ दासियाँ रखती थीं और नगद देकर वे दास बन्धन से मुक्त की जा सकती थीं । पादताडितकम् में अनेक देश की वेश्याओं का वर्णन है जिनमें सिंहल की मयूरसेना, बर्नरी और यवनी कर्पूरतुरिष्ठा की ओर हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं क्योंकि गुप्तकालीन और उससे पूर्ववर्ती साहित्यमें विदेशी और देशी दासियों के अनेक उल्लेख हैं । पेरिप्लस (ई० प्रथम सदा) के अनुसार भडान में उतरनेवाले विदेशी माल में मानेवाले लड़के और विदेशी दासियाँ होती थीं । अन्तमगदसाओं में विदेशी दासियों की सूची दी हुई है जिनमें कुछ को पहचान हो सकता है, कुछ की नहीं । बर्नरी बर्नर देश यानी उत्तरी और पूरब अफ़्रीका की, पौसय शायद यन्तु प्रदेश की, जाणिय यूनान की, पहुरी शायद उत्तर ईरान की, यूपिणय शायद यूपिक या पूरबी जाति की, दामिनी तमिल देश की, सिंहली सिंहल की, आरवी अरब की, पुलिद (भील), पक्षणी परगना की, नहली पञ्जाब की, मुकडी लमगान की । शररी और पारसी ता पहचानी जाती है पर घासणिगिणि, लासिय और लौसिय कहाँ से आती थी इसका पता नहीं । इन विदेशी दासियों की वेपभूषा उन-उन देशों के अनुरूप होती थी । वे दासियाँ इस देश की भाषा न समझ सकने के कारण जंगल इशारों से बातचीत कर सकती थीं । पादताडितकम् में यवनी कर्पूरतुरिष्ठा से कारण ही विटने इससे बातचीत नहीं की ।

वसुदेवहिंदी में भी वेश्या जीवन पर काफी प्रकाश डाला गया है जिसने कुछ पह छुआ का उल्लेख हम पहले ही कर आए हैं । धम्मिल्लहिंदी में वसन्ततिलका गणिका के प्रसंग में तरंगालीन वेश्या जीवन पर काफी प्रकाश पड़ता है । बेचारा धम्मिल्ल व्याहृष्ट जाने पर भी व्याकरण का समान और सज्जन धोखा करता था । इस बात की उसकी स्त्री ने अपनी सास से शिकायत की । उसने पिता ने उसे गाछिका के साथ लगा दिया । एक रात्र के समय वसन्ततिलका का धम्मिल्ल से प्रेम हो गया और वह उससे साथ रहने लगा । गणिका का माता के पास राज पाँचवी कार्याण भेजने से धम्मिल्ल के माता पिता धामे धीमे गुप्त हो गए और पुत्र के विवाह में उनकी मृत्यु हो गई । धम्मिल्ल की स्त्री भा पर बेच कर नहर चली गई । रामी के हाथ अपने सारे गहने उसने वसन्ततिलका के पास भिजना दिए पर उसने उन्हें लीज दिया ।

इस धम्मिल्ल का माल समाप्त हो जाने पर वसन्ततिलका को माता ने उसे निकाल बाहर करने का सलाह दी, पर वसन्ततिलका का धम्मिल्ल के प्रति प्रेम वास्तविक था

१ शॉप, पेरिप्लस ऑफ़ दि एरात्रियन मॉ, पृ० ४२ । एल० टॉ० बार्नेट, द्वारा मूद्रित, पृ० २८-२९ एडन १९०१; नायापमम कदाभो, ११२० । २ द्वेयो, मोताचन्द्र, प्राचीन भारताय पेश भूषा, पृ० १४१-१४२ । ३ वसुदेवहिंदी, पृ० ३३ में ।

और इसलिए उसने अपनी मा की जात नहीं मानी। पर माँ बड़ी धूर्त थी। उसने एक दिन घर में कर्वट देवता का उत्सव किया जिसमें तमाम गणिकाएँ शामिल हुईं। धम्मिल्ल उस उत्सव में जत्र शराब पीकर बेहोश हो गया तो गणिका माता ने उसे एक फग पुराना कपड़ा पहना कर नगर के बाहर फिक्का दिया। हाश आने पर धम्मिल्ल गणिकाओं को काँसने लगा। बाद में अपने माता पिता की मृत्यु का हाल सुन कर उसे अत्यन्त खेद हुआ। उधर जत्र यस्ततिलका को अपनी माता की घोखेबाजी का पता चला तो उसने एकवेणी बाँध कर और गध, पुष्प और अलंकार छोड़कर विरहिणी व्रत धारण कर लिया। बहुत दिना के बाद धम्मिल्ल के साथ फिर उसका मिलन हुआ।

यमुदेव हिंडी से वेश्याओं के सन्ध में ओर भी कुछ जानकारी मिलती है। एक जगह (पृ० १२८) गणिकाओं की एक निचिन उत्पत्ति दी हुई है। कथा यह है कि भरत नेबल एक स्त्री व्रतधारी थे। इस पर राम-तों ने एक साथ ही बहुत सी कन्याएँ उनके पास भेजीं। उन्हें देख कर रानी के मन में शका हुई और उसने भरत को इस बात पर राजी कर लिया कि वे राजा की सेवा बाह्यापस्थान में करें। इससे नाद छुन और चमर लेकर वे राजा की सेवा करने लगीं। बाद में वे कन्याएँ गणों को दे दी गईं और इस तरह गणिनाओं की उत्पत्ति हुई। इसी कथा का दूसरा रूप हमें बृहत्संथाश्लोकसंग्रह (१०।१८३-१८७) में मिलता है। कथा के अनुसार भरत ने जबर्दस्ती समुद्रकन्याओं का अपहरण करके उनसे विवाह करना चाहा लेकिन उनमें उसको केवल एक ही कन्या रची। नाकी कन्याओं से उसने श्राठ गण बनाए और प्रत्येक गण की एक नायिका नियुक्त की जिसे छुन, चमर और आसन रखने का अधिकार था। गण की नायिका महागणिका कहलाईं। वेश्याओं में गणिका सबसे ऊँचे दर्जे की वेश्या होती थी और क्रय दासी सबसे नीचे दर्जे की। गणिका की उत्पत्ति के उपर्युक्त विवरणों से ऐसा पता चलता है कि गणिकाओं का सन्ध गणों से था और जैसा हम एक दूसरी जगह देख चुके हैं शायद गण की आज्ञा से ही अम्रगणिका की नियुक्ति होती थी।

यमुदेव हिंडी (पृ० ४२५) में भी बर्वरी और किराती (चिलातिका) नामक सगीत और नृत्य में निष्णात दो दासियाँ का उल्लेख है। एक दूसरी जगह (पृ० ४७८) कुब्ज, धामन किरात और नाटक की पात्रियों का दहेज में देने का उल्लेख है।

दशकुमारचरित के द्वितीय उच्छ्वास में भी वेश्याओं का सुंदर चित्रण हुआ है। चपा में गङ्गा के किनारे अपहारवमा मरीचि नामक ऋषि से मिली और उन्होंने काममञ्जरी द्वारा अपनी दुर्गति रमने की बात कही। एक दिन चपा की काममञ्जरी नाम की वार युवति रोती, कलपती उनका पास पहुँची। ऋषि के पूछने पर उसने कहा कि ऐहिक सुख से उन्मा मन उचट गया था और इसलिए वह उनकी शरण में आयी थी। पर उसकी माता ने कहा कि उसने विगडने का कारण उसका अपना अविचार जतलाना था। वेश्या की माता लटकी जनमने ही उसकी मालिश (अगक्रिया) का प्ररूप करती थी, उससे तेज, बल, रग और बुद्धि बढ़ने के लिए और शराब की विगडी धातुओं को ठीक करने के लिए वह उसे कम आहार करा कर उसका शरीर का पोषण करती थी। उसकी पाँच वर्ष की उमर से उसका पिता भी उसे नहीं देख सकता था। उसका जन्म दिन तथा पुण्यदिनों पर वह उत्सव मनाती थी और मंगलाचार करती था। उसे कामशास्त्र की सांगोपांग शिक्षा दी जाती थी और यह

नृत्य, गीत, वाद्य, नाट्य, चित्र, पाठशास्त्र, गन्ध और माल्य ग्रन्थन तथा लिपि और हाजिर जगदीश्वरी कलाओं का भरपूर अध्ययन करती थी। उसे व्याकरण, तर्कशास्त्र और सिद्धान्त का भी थोड़ा थोड़ा ज्ञान कराया जाता था। जीविका पालन के उपाय, ब्रीडा कौशल और सजीव और निजाव द्यूत विधियों का उसे अध्ययन कराया जाता था। विश्वासियों द्वारा अग-स्पर्श कला का उसे ज्ञान प्राप्त होता था। यात्राओं, उत्सवों, आदिमें उसे सज धज कर उसका विज्ञापन किया जाता था। उस्तादों से उसे सामयिक संगीत इत्यादि की शिक्षा दिलाई जाती थी। चारों ओर समाजियों द्वारा उसकी तारीफ पैलगा दी जाती थी। स्नातुणियों को मिलाकर उसने कल्याणकारी लक्ष्णों की शुहरत कर दी जाती थी। पीठमर्द, विट, विदूषक और भिन्नुणियों नागरिकों की मञ्चलियों में उसने रूप, शील, शिल्प, सौन्दर्य और माधुर्य की तारीफ करती थी। युग के फैसने पर अधिक से अधिक पीस की व्यवस्था की जाती थी। जाति, रूप, वय, अर्थ, शक्ति, शौच, त्याग, दक्षिण्य, शिल्प, शील और माधुर्य से सपन्न और स्वतन्त्र व्यक्ति को ही वह दी जाती थी। बड़े गुणवान के स्वतन्त्र न होने पर भी थोड़े ही पर वह उसके साथ लगा दी जाती थी। जो स्वतन्त्र नहीं थे उनके गुरुजनों से उनके साथ माधुर्य विवाह का भय दिलाकर पैसा वसूल जाता था। कामी के निश्चित पीस न देने पर उसे अदालत में खींचा जाता था। असली प्रेमी के लिए वह एकचारिणी मत करती थी। नित्य और नैमित्तिक कार्यों के ब्रह्मने से कामुक का बचा चुचा धन पींच लिया जाता था। लालची के धन न देने पर उसे जबरदस्ती पकड़ कर बैठाए रखा जाता था, लोभी कामुक को दुहने के लिए पड़ोसों की मदद लेनी पड़ती थी। प्रेमी के दुरा हो जाने पर पाला उसे गालियों देकर, चिल्लाकर, लड़की को उसके पास जाने से रोक कर, उसे लज्जित हो जाने से रोककर, उसे लज्जित और अपमानित करने निकाल बाहर करती थी। उसे धन देने वाले, सकट टालने वाले और अनिष्ट रईस की खोज करनी पड़ती थी।

इस तरह वेश्या धर्म की विवेचना करने के बाद काममजरी की मा ने कहा कि वह एक से पैसे कर अपना पैसा पारचती थी। मना करने पर वह भाग कर ऋषि के पास चली आई। बेचारे मरीचिने भी उसे कुलधर्म पालन करने की सलाह दी पर वह अपनी बात पर डटी रही। इस पर ऋषि ने उसकी माँ को यह समझा कर विदा किया कि जगल की तकलीफें उठा कर वह कुछ दिनों में स्वयं ठीक हो जायगी। खाला के लौट जाने पर काममजरी हलके सुंदर वस्त्रभूषण पहन कर, देव पूजन, कुसुम चयन इत्यादि में अपना समय बिताने लगी। एक दिन उसने बातचीत में ऋषि का ऐसा लुभाया कि वह उसके साथ शहर में उसने घर आ पहुँचा। दूसरे दिन कामोत्सव में राजा ने मुसकरा कर उसे ऋषि के साथ बैठने को कहा। बाद में पता लगा कि काम मजरी ने एक वेश्या से ऋषि को पेंसा कर लाने की बाजी लगा रखी थी। इसके बाद अग्रहारवर्मा की एक जैन साधु से भेंट हुई जो रो रहा था। पूछने पर उसने बताया कि वह वमुपालित नाम का बनिया था। उसकी बदसूरती से लोग उसे विरूपक कहते थे। एक बार कुलु वदमाशों ने उसकी सुन्दरक नामक सेठ से जो बड़ा दूरदूरत था लड़ाई का दी और स्वयं दस बात का पैसाला किया कि काममजरी जिसे कथूल करे वहीं बड़ा था। काममजरी ने उसे पेंसा कर फेंकल लेंगाटा मात्र उसके पास छोड़ी। उसे सात्वना देकर अग्रहारवर्मा ने जुआडिया का सायफर लिया और फिर चोरी करने लगा और उसने अनेक साहसिक कामों में भाग लिया। एक बार अग्रहारवर्मा के कहने पर धनमित्र ने राजा से

जा कर कहा कि उसने पास एक गडुआ था जो उसे धन देता था और वह वनियाँ और वेश्याओं की भी मांगे पूरी करता था। इस प्रपच से धनमित्र को नगर में शोहरत हो गई। इस बीच में अपहारवर्मा काममजरी की बहिन रागमजरी के प्रेम में पँस गया और उसी तरह रागमजरी उसने प्रेस में। माता के मना करने पर कि वह गरीब था उसने अज्ञात दिया कि उसे गुण से मतलब था पैसे से नहीं। इस पर काममजरी और उसकी माँ ने राजा से रागमजरी के कुल परम्परा तोड़ने की और धन से मुँह मोड़ने की शिफायत की। राजा ने रागमजरी को समझाया पर वह अपनी बात पर डटी रही। यह सुनकर और यह जान कर कि बिना पैसे के रागमजरी की माँ उससे नहीं मिलने देगी अपहारवर्मा ने एक चाल चली। उसने उसकी माँ की कुत्नी बौद्ध भिक्षुणा धर्मरक्षिता से उसके पास यह सन्देश भिजवाया कि रागमजरी के मिलने पर जादू का चटुआ उसे भेंट कर दिया जायगा। काममजरी ने चटुआ लेकर रागमजरी और अपहारवर्मा की शादी की इजाजत दे दी। पर चटुए से धन पाने के लिए छल से कमाश रूपरा लौटा देना आवश्यक था और काममजरी ने भी वैसा ही किया। उधर उसने धनमित्र से राजा के पास परियाद करवा दी कि गडुआ उसका था जो चोरी चला गया था। जब राजा ने उसे बुलाया तो अपहारवर्मा से यह सुन कर कि उसकी दुर्गति होने वाली है रागमजरी ने धनमित्र को चटुआ लौटा दिया। पर माल बाँट देने पर वह खुश हो गई। इस तरह से अपहारवर्मा ने उसकी चालाकी का उसे भरपूर बदला दे दिया।

गुप्त युग में वेश्याओं का राजमहल और राजदरबार से काफी सम्बन्ध था। इस युग के पहले भी राजाओं और वेश्याओं के सम्बन्ध का पता चलता है। मेगस्थनीज^१ ने अनुसार राजा के शरीर की रक्षा का भार दासियों पर होता था। कर्तियस^२ के अनुसार वे राजा को भोजन कराती थीं और शराब पिलाती थीं और उसने नशे में वेहोश हो जाने पर शची देवता का गीत गाती हुई वे उसे शयनागार में ले जाती थीं। शिकार में वे भस्त्र राजा से सुसज्जित होकर हाथी घोड़ों और रथों पर चढ़ कर उसने साथ जाती थीं। कौटिल्य ने अनुसार (मूल पृ० ४४) वेश्याएँ राजा के नहलाने (स्नान), मालिश करने (सवाहक), पलंग लगाने (आस्तरक) तथा घोड़ी और माली का काम करती थी। राजा को जल, गन्ध, चूर्ण वस्त्र और माला देते समय परिचारकों के साथ वेश्याएँ उन वस्तुओं का अपनी ब्राह्मणों और छाती में लगा कर फिर उन्हें भेंट करती थीं। वेश्याभ्यक्ष (२१२७०४४) गणिका और प्रतिगणिका की नियुक्ति करता था। उसके ग़रिब चले जाने अथवा मरने पर उसकी बहिन उसकी जगह काम करने वेतन और आयदाद की हकदार होती थी। बारिस न होने पर आयदाद राजा को मिलती थी। गणिकाएँ उनके रूप और अलंकार के अनुसार उत्तम मध्यम और कनिष्ठ श्रेणियों में बाँट दी गई थीं और उनका वेतन हजार की इकाई में निश्चित कर दिया गया था। छत्र, भुङ्गार, और पखा लेना, शिबिका, पीठिका और रथ पर राजा का साथ देना गणिकाओं के विशेष अधिकार थे। रूप समाप्त हो जाने पर वह खाला (भ्रातृका) बना दी जाती थी। दासवृत्ति से अपने को मुक्त करने के लिये बारह हजार पण देने पड़ते थे। गणिका आठ वर्ष की उम्र से ही राजा के सामने गाने बजाने लगती थी। बूढ़ी हो जाने पर गणिकाएँ रसोदघर और भण्डारों

१ मेकिडिल, इंडिया एंड दिसकाइव्ड इन क्लामिकल लिटरेचर, पृ० ५८। २ वहा,

में लगा दी जाती थी। किसी की रखैल (अनरुद्धिका) उन बाने पर गणिकाको सवा पण दर महीने राजा को दह की तरह भरना पड़ता था। गणिकाप्यस्त गणिकाओं के आय और व्यय पर ध्यान रखता था और उन्हें फजूल खर्चा से रोकता था। गणिका को तग करने वाला के लिए टण्ड की व्यवस्था थी। गणिका तथा नाचने गाने वालों को बाहर से आने पर पाँच पण प्रेक्षावेतन भरना पड़ता था। रूपाजीवा को महीने में दो दिन की कमाई कर में भरनी पड़ती थी। वेश्याआ के कला और संगीत के शिक्षकों को राज की ओर से वेतन मिलता था।

गुप्त युग में भी राजाओं और वेश्याओं का सन्ध वैसे ही चलता रहा। मृच्छकटिक के अनुसार (३।१०) राजगणिकाएँ सड़कों पर नहीं चलती थीं। समुद्रगुप्त के अभिलेख (गु० ई० १, प्र० ८) में कन्यापायनदान अर्थात् भेज में कन्याओं के मिलनेका उल्लेख है। वे राज सेवा सम्बन्धी सब काम करती थीं। हर्षचरित (८० १८६-१८६) में पुन जन्म के अन्तर पर वेश्याओं का कुल वधुओं के साथ मिलकर नाचने का उल्लेख है। बाण कहते हैं कि जजान सामन्त राजा को सुश करने के लिये नाचे। शराव में मस्त दासियाँ गणिकाओं की नकल करने नाचीं, कुछ लोग कुनियों ने सग नाचने लगे। कुम्भदासियाँ तपस्वियों से भेजने लगीं, शस गालियाँ बकने लगे और रानियाँ कुचुकिगों को नचाने लगीं। गणिकाएँ धीन, तम्बूरे और मृदग इत्यादि के साथ नाचने लगीं और अपने प्रेमियों के मुत्तद रासपद गाने लगीं। उनके सिर पर गजरे और कानों में फूल ने भूमर थे। ललट पर चन्दन तथा कुरटक की मालाएँ नितम्बों पर लटकती थीं। उनके शरीर पर केसर और चेहरे पर सिन्दूर बिन्दु लगे थे। मुगन्धि से वे महमहा रही थीं और लोगों पर मालाएँ उछाल रही थीं।

वेश्याओं का देवाल्या से बहुत प्राचीन सम्बन्ध रहा है। चतुर्भाषी में कई जगह वेश्याओं का मंदिरों में गाने बजाने का उल्लेख है।

पद्मप्राभृतकम् (प्र० ३६) में वनराजिना फूल के गहनों और उपहारों से लदी कामदेव ने मन्दिर से उतरती कही गई है। उभयाभितारिका (१२२-१२३) में नारायण ने मन्दिर में कुचेरुत्त द्वारा मदनाराधन के लिए मदनसेना का जलसा किया गया। पाद साटिकम् (प० २१२) में पुस्तकगणिका और गंगाधमुना की चामरग्राहिणी मदयती भी वेश्या थी। पर इन सब उद्धरणों से यह नहीं पता चलता कि इन वेश्याओं का मन्दिरों से काई संबंधी रक्म मिश्रती थी या नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि देवदासी की प्रथा काफी प्राचीन है। अर्थशास्त्र के स्थाप्यस्त प्रकरण में (मूल० प्र० ११३) इस बात का उल्लेख है कि पित्राभा और वेश्याओं ने साथ साथ स्थाप्यस्त देवदासिया से भी सूत कतवाता था। इस उल्लेख से यह बात साफ हो जाती है कि मौर्यकाल में भी देवदासियों की प्रथा थी और ये दूसरी वेश्याओं से भिन्न माना जानी थीं। मण्डूत (१३४-५) में उज्जैन के महाकाय के मन्दिर में चामरग्राहिणी वेश्याओं के नृत्य का वर्णन है। उनके पदाक्षेप से साव में उनकी कर्पनी खटकती थी। भविष्य पुराण (१।६३।६७) में भक्ति-पूर्वक गुरु का वेश्यादान से सर्वलोभ प्राप्त होने की बात कही गई है। श्वसनन्शत्रु (चार्म, २, प० २५८) का अनुसार मुत्तान के सूर्य मन्दिर में वेश्याएँ बराबर गाती नाचती रहती थीं। वृद्धनागवत् में भी एक जगह (३०० ७४३) बनारस के गम्भारक्षर

के मन्दिर में देवदासी का उल्लेख है, जो बल्दी किसी को हाथ नहीं रखने देती थी। राजतरङ्गिणी में भी कई जगह देवदासियों का उल्लेख आया है। जयापीड घूमते घामते पौड्रवर्धन पहुँचा। एक दिन वह कार्तिकेय के मन्दिर में नाच देखने गया। वहाँ भरत की पद्धति से नृत्य देख कर वह दरवाजे पर बैठ गया। वहाँ उसकी कमल नामक देवदासी से मुलाकात हुई और वह उसे अपने घर ले गई (४।४२१ से)। उत्कर्ष की रखेली सहजा सती हो गई। वह देव दासी थी (८।८५० से)। एक दूसरी जगह (४।२६६) दो देवयहाश्रित नर्तकियों का उल्लेख है। जिस मन्दिर में वे नाचती थी वह जमीनमें घस गया था। ज्योत्स्ना की समयमातृका में भी देवदासी का उल्लेख है। एक जगह (३।३३) कहा गया है कि कायस्थको टरकाने से देवयह की वृत्ति वेश्या को नहीं मिल सकती थी। दूसरी जगह कुटनी एक बनीए से कर्ज माँगकर कहती है कि देवालय से मिले अन्न से वह कर्ज पूरा कर देगी (८।८८)। क्या सरित्सागर में मथुरा की रूपिणिका की कथासे पता चलता है कि वह पूजाके समय नाचने गाने के लिए देवमन्दिर जाती थी। वह देवदासी की वृत्ति और वेश्यावृत्ति दोनों का ही पालन करती थी।

अलङ्कार की अनुसार (सञ्चार, भा० २० पृ० १५७) ब्राह्मण और ऋषि इस प्रथा के बड़े विरोध थे, लेकिन राजाओं के पक्ष में होने से उनकी कुछ न चलती थी। राजस्थान के एक दसवीं सदी के अभिलेख (एपि० इडिका, १०, पृ० २८) में राजा ने अपने घरायों को आदेश दिया है कि उसके द्वारा मन्दिर में जो देव दासियों का प्रशस्ति किया गया था वह ब्राह्मणों और साधुओं की बात से नहीं रोका जा सकता था। बाघली (खानदेश) के १०६०-६१ के अभिलेख में गोविन्दराज ने एक पाटक का दान विलासिनियों के नाच गाने के लिए दिया था (एपि० इ० २ पृ० २२७)। चाहमान जोजल देव के १०६०-६१ के एक लेख में (एपि० इ० ११, पृ० २६-२७) सब देवदासियों को यह आदेश दिया गया था कि वे रुब वन ठन कर जलसा करें। दक्षिण में तो इस प्रथा का हाल तक बोल चाल था। राजराज के १००४ के एक लेख में (साउथ इंडियन इनस्क्रिप्शन्स, भा० २, पृ० २५६-३०३) इस बात का उल्लेख है कि तंजौर के प्रसिद्ध मन्दिर में ४०० तलि-चेरि पैरडगल यानी देवदासियाँ थीं। वे मन्दिर के आसपास की गलियों में रहती थीं और सेवा के लिए उन्हें पान के सौ कलम मिलते थे।

चतुर्भाणी का विषय वैश्विक जीवन है, पर प्रसंगवश उसमें अनेक ऐसे उल्लेख आ गए हैं जिनसे गुप्तकालीन धार्मिक निश्वासों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। हमें इतिहास से पता चलता है कि गुप्तयुग में भागवत धर्म का कितना प्रभाव था। चतुर्भाणी के कुछ उद्धरणों से भी तत्कालीन भागवत धर्म पर प्रकाश पड़ता है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले हमें 'चीत्' शब्द पर विचार करना होगा। पद्मप्रामृतकम् (पृ० २१, २३) में धर्मासनिकपुत्र परिव्रज को बिट चीत् कहता है। पादताडिकतम् (१६३, १६५) में भी अमात्य रिण्डास को चीत् बताया गया है। चीत् (पाणिनि ४।४।६२) के साधारण अर्थ परिव्रज के होते हैं, पर चतुर्भाणी में चीत् शब्द में व्यङ्ग्यिक अर्थ भी है। श्री चन्द्रबन्धी पांडे ने नईधाराएँ एक अर्थ में इस शब्द पर विचार किया है। वे दण्ड और कुडिका भाजन लिये हुए मृच्छन्तिक के परिव्राजक जिसे रुटमोडक नामक हाथी ने लपेट लिया था और वेनटण्ड और कुडिका भाजन लिए हुए अमात्य रिण्डास की तुलना करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि चीत् यास्तन

में एकायन भागवत थे। उनकी इस पहचान का समर्थक नाट्यशास्त्र का एक श्लोक और उस पर अभिनव गुप्त की टीका है। भरत^१ के अनुसार चौद या चोद (अपपाठ चैद), परित्राजक, मुनि, शाक्य, श्रोत्रिय, शिष्ट और घार्मिकों को सङ्कृत बोलना आवश्यक था। चौद पर टीका करते हुए अभिनव गुप्त ने कहा है—चोदा भागवतविशेषा ये एकायना इति प्रसिद्धा^२, अर्थात् चोद भागवत विशेष थे जो एकायन नाम से प्रसिद्ध थे। पञ्च-प्राभृतकम् में चौद पवित्रक के वर्णन से पता चलता है कि श्राव की तरह ही उन दिनों भी भागवतों को दृष्टादृष्ट का रोग लगा था, गोकि कभी-कभी वे वेश्यागमन से बाज नहीं आते थे। अमात्य विष्णुदास के वर्णन से चौदों के रूप पर कुछ और अधिक प्रकाश पड़ता है। उसके पाम बेनदड़ और कुडिका भाड़ थे। वह ध्यान अस्थिर के फेर में पड़कर न्यायालय का ठीक तरह से काम नहीं करता था। विट से उसकी बातचीत से पता चलता है कि वह आन्तर विचार में सलग्न रहता था। लगता है स्मृतिज्ञान, वदना, योगशास्त्र एकायन भागवत धर्म के लक्षण थे। भागवतों द्वारा प्रसाद रूप में विजौरा बँटने की श्रौर भी इशारा है।

चौदों के सिवाय भी चतुर्भाषी में भागवत धर्म पर कुछ कुछ प्रकाश पड़ता है। उभयामिसारिका (पृ० १२२) के अनुसार पाटलिपुत्र में भगवान् नारायण का मन्दिर था जहाँ मदनसेना ने मदनाराघन संगीतक टिप्पलाया था। पञ्च प्राभृतकम् (पृ० १५) में उज्जयिनी के कामदेवायतन का उल्लेख है जहाँ से पूजा पुरस्कार लेकर वनराजिका उतर रही थी। पादताडितकम् में कई जगह उज्जैन के कामदेवायतन का उल्लेख है। एक जगह (पृ० १६६) बूढ़ी वेश्या सरणिगुप्ता का विट ने कामदेवायतन से उतरते देखा। वह दुरत धुले कपड़े पहनकर मकरयष्टि की प्रदक्षिणा कर रही थी। एक दूसरी जगह (पृ० १६६) निरपेक्ष द्वारा प्रद्युम्न देवायतन की वैजयन्ती लिखने का उल्लेख है। एक तीसरी जगह (२१८) भी कामदेव के मन्दिर का उल्लेख है। वहाँ शायद प्रद्युम्न और कामदेव के मन्दिर से एक ही मन्दिर का मतलब है। यहाँ कामदेव और प्रद्युम्न की पूजा से पाञ्च-रात्र भागवतधर्म की श्रौर इशारा है। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र (२।२।४२) में चार ब्रूह यथा वामुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अर्जुन के साथ भगवत् वामुदेव की पूजा की विधियाँ दी हैं। टीकाओं के अनुसार से विधियाँ—(१) अभिगमन वचन, शरीर और मन भगवान् म लगाकर मन्दिर जाना, (२) उपादान—पूजा की सामग्री इकट्ठा (३) इष्या—पूजा, (४) स्वाध्याय—यानी मनसाठ और (५) वेग है।

चतुर्भाषी में कई स्थानों पर बौद्ध धर्म की भी चर्चा हुई है। भाष्यकारों ने बुराचारी बौद्धों की हँसी ता उड़ाई है पर बौद्ध धर्म न प्रति कहीं अनास्था नहीं प्रकट की गई है। पञ्च प्राभृतकम् (पृ० ३१-३५) में बौद्धमिच्छु सधिलक की घेरा में देवकर विट उल पड़ा और उसका मृषा मिर मुँडाने की निन्दा की, पर उस बौद्ध धर्म की मजबूती की तारीफ की जो पदमाय मिच्छुओं द्वारा प्रताडित होकर भी पूजा पा रहा था। सत्त्विक धर्माख्य विशार का योगी था। विट और सधिलक की बातचीत में बौद्धधर्म के पारिभाषिक शब्द जैसे मिच्छात, सुदयचन, सान्मत्ता में दया, तृणाच्छेद, परिनिर्वाण, अनात्मज्ञान, पचरिद्धा आदि हैं और इन सबका विट ने दूसरे ही अर्थ में व्याख्या की है। पञ्च प्राभृतकम् (पृ० २६)

दत्ता

में एक जगह शाक्यभिन्नुकी का शैषिन्क के घर बसाने का इशारा है। पातञ्जलितकम् (पृ० १६८) में विट बौद्ध निरपेक्ष पर बौद्ध धर्म को लेकर जो पत्रितियों कसता है उससे तत्कालीन वज्रयान पर कुछ प्रकाश पड़ा है। श्रीचन्द्रबली पाठेय (नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ३, स० २०१०, राधिका और रायण का रहस्य, पृ० २७५ से) ने विट और निरपेक्ष की निम्नलिखित बातचीत में मुद्रितायोपित् राधा पर मननीय विचार प्रकट किए हैं :—

तो इस पर पत्रती कसूँ। अरे भागवत निरपेक्ष, करुणात्मक भगवान् बुद्ध की मैत्री के अनुसार आचरण करनेवाले तुझमें मुद्रिता योपित् उस स्त्री के पति क्या उपेक्षा विहार (उदासीन आचरण) टोक है ?

क्या कहता है—तुझ ठग का मतलब मैं समझ गया। मैं अब उपासक हो गया हूँ तथागत ने कहा है यही ससार धर्म है। ठीक है, उसी के लिए तथागत का नवन प्रमाण नहीं है।

अरे यह ठठा कर हँसा। क्या कहता है—तथागत के शासन में शका नहीं करनी चाहिए। शास्त्र और है मनुष्य का स्वभाव कुछ और है और हम बीतराग नहीं हैं। अगर यह बात है तो तुझे चाहिए कि उस अवस्था में पड़ी भगवती राधिका का शोक सागर से उद्धार कर।

श्री चन्द्रबलीजी के अनुसार यहाँ राधिका का कृष्ण के साथ कोई सवध न होकर उसका सवध तथागती उपासकों से था। गुह्यममात्र तत्र में मुद्रामत्र विधानज्ञ के लिए सोलह वर्ष की स्त्री को तथागती भार्या बनाकर विद्याव्रत साधने का विधान है। यही तथागती भार्या साधिका या राधिका है—राध साध ससिद्धी न्याय से प्रज्ञायायविनश्रय में मुद्रासाधना का विधान तथा मन्मथ राजा वज्रसत्त्व की प्रसाधना में मुद्राविग्न का विशेष स्थान है। पर वज्र साधन में साधिका का संयोग ही निहित हैं, नियोग नहीं। मुद्रितायोपित् प्रज्ञा पारमिता का रूप है। पाठेयजी ने आगे चलकर बड़ी सूझी से यह दिखलाया है कि किस तरह मुद्रितायोपित् राधा का कृष्ण स्वरित से सवध जुड़ा।

निरपेक्ष बौद्ध बतलाया गया है। उसके और विट की नोक भोंक में भी बौद्ध धर्म के अनेक पारिभाषिक शब्द जैसे ससार धर्म, तथागत, तथागत शासन इत्यादि हैं और उन शब्दों की ताड़-मराड कर व्याख्या की गई है।

जैनियों का सिंहाय धूर्तविटसगद (पृ० ८७) के जहाँ विश्वलोक की उपमा नग्न भ्रमणक से दी गई है और वहीं उल्लेख नहीं आया है। तत्कालीन संस्कृत साहित्य विशेषकर दशकुमारचरित के अपहरणवर्मा चरित में क्षणिक विहार का उल्लेख हुआ है (पृ० ६० से)। लगता है कि दंडो की जैनधर्म का प्रति कर्म आस्था थी। वेचारा वसुपालित काममारी से छुटकर एक मुनि ने यह कहने से जैनधर्म में मार्गमार्ग गुरु है लंगोटी छाड़कर दिगंबर साधु बन बैठा। पर वह न नहाने से शरीर को गदगी, केशलुचन की भयकर पीड़ा, भूय प्यास का कष्ट, स्थान, आसन, शयन और भाजन सम्बन्धी नियमों की कड़ाई से आज्ञा आ गया था। इस पर वह था द्विजाति और उसने पूर्ण वैदिक धर्म में मानने वाले थे और जैनायतन में देवताओं की निन्दा की जाती थी। बाद में चञ्चल यह जैनधर्म छोड़कर फिर वैदिक हो गया।

ऐसी बात नहीं है कि केवल ग्रीक और जैन ही चतुर्भाणी के चिटों की हँसी के पात्र हों, उभयामितारिका (६७) में परित्राजिका विलास कौण्डिनी और विट की वहास में वैशेषिक दर्शन के पद्विपदार्थ इत्यादि का उल्लेख है ।

गुप्त युग में यक्ष पूजा की क्या अवस्था थी इसका चतुर्भाणी में कम उल्लेख है । पादताडितकम् (पृ० १६७) से पता चलता है कि उज्जैन में पूर्णमद्र शृंगाटक था, पर वहाँ यक्ष पूर्णमद्र का चैत्य था या नहीं इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं है । एक दूसरी जगह (पृ० २१०) आलेख्य यक्ष इव दर्शन मात्र रम्यः से पता चलता है कि यक्ष केवल चित्रों में ही सुन्दर दीखते थे स्वभाव में नहीं । यहाँ यक्षों के कूर कर्मों को ओर सजेत है । बृहत्कथा श्लोक समूह (१३।३-५) से पता चलता है कि यक्ष पूजा में शराव और फूल होते थे । पूजा में चढी शराव का भक्त प्रसाद पाते थे । एक दूसरी जगह (१६।७५-७६) यक्ष सत्र में एक सुन्दर यक्षिणी का चित्र होने का उल्लेख है । गुप्त काल में श्री लक्ष्मी की पूजा का चित्रों एवं मृणमुद्राओं से पता चलता है । पादताडितकम् में (पृ० २१६) आलेख्य पट पर वर्ण के अनुरूप सुन्दर बेव भूषा वाली लक्ष्मी का उल्लेख है ।

धूर्तव्रतसंवाद (पृ० ११५) में रत्नांभिलाषियों का हरा, प्रपात और अग्निप्रवेश द्वारा प्राणेश्वरगं कर देने का उल्लेख है । महाभारत में (१२।३६।१५) मेरु से अथवा प्रपात से गिर कर अथवा अग्निप्रवेश से जीवनात्सर्ग करने की महाप्रस्थान कहते थे । अग्नि के अनुसार सत्ता के पार पहुँच जाने पर श्रीर अशक्ति से नियमों का पालन न कर सकने पर, असाध्य बीमारी में मनुष्य पर्वत से गिरकर, अग्नि प्रवेश करके, ब्रह्मर अथवा अनशन करने अपना प्राण दे सकता था । लक्ष्मीपूर ने तीर्थ विनैचन कांड १ में वामुपुरण और देवी पुरण के उद्धरण देते हुए अग्निप्रवेश पर और प्रकाश डाला है । मंत्र पदकर अग्निप्रवेश करते थे । देवीपुण्य के अनुसार अग्निप्रवेश के पहले पट्ट पर लिखे भैरव की पूजा रक्तपुष्प और पत्र से करके लोग अग्नि की आग में डाल देते थे । आग में गिरने की आठ विधियाँ कही गई हैं यथा—(१) पतग पात—अर्थात् कीट पतंगों की तरह आग में जलना, (२) दस-पात—इसमें अग्नि पक्षों की सिकंदर आग में कूटते थे, (३) मृगपात में जैसे मृग अपकृप गत इत्यादि की लपिता है उगी तरह आदमी छुनाग मारकर आग में गिरता था । इसमें दाना पैर बगल रहते थे । (४) मुमक्षपात में आदमी आग में उसी तरह गिरता था जैसे अग्निलो में मूल, (५) तृण पात में घैर की तरह हुकार कर आदमी आग में कूटता था, (६-८) विमान पात, शाय पात और निहगत भी आग में कूटने की तरफों थीं । स्थिती भी अग्निप्रवेश कर सकती थी ।

चतुर्भाणी में अनेक शत्रुकर्मनाशियों के नाम आए हैं । धर्मात्मिक (प० प्रा० २१) नृपारिण हीन था । न्यायालय की धर्मस्थान अथवा धर्मात्मन (नारद, १।३८; मनु, ८।३३ पुनः, ४।५।१६) अथवा धर्माधिराज (गुप्त, ४।५।४४) कहते थे । प्राद्विराक् (प० प्रा० १६८) धर्माधिराज के लिए बहुत प्राचीन शब्द है । श्री कर्मे के अनुसार इसका उत्पत्ति

१. दिग्विजय धर्मात्मन, प्रा० ३, पृ० ३५८ ३२३

२. गीर्ध विनैचन कांड, पृ० ३५१-१२

गीतम, नारद इत्यादि में हुआ है।^१ न्यायाधीश के लिए प्रध्याति (पा० ता० २१४) शब्द नया है। महामात्र मुख्य (उभ० १२५) से यहाँ प्रधान सरकारी अपसरों से मतलब है। यह शब्द अग्रे के शिल्लेखों से लेकर बहुत दिनों तक भारतीय अभिलेखों में आता रहा है। मनी (उभय० १४०) राजा का सलाहकार होता था। कर्मा-कर्मो राजे अपना दोष उसके सर मढ़ देते थे। शासनधिकृत (पा० ता० १५४) शायद राजा के शासनपत्रों को निभालने का अधिकारी होता था। बलाधिकृत (पा० ता० १६०) जैसा कि आदित्यसेन ने ६७२-७३ ई० के एक लेख से पता चलता है (एपि० इंडिका, १२, पृ० २१०) सेना का अध्यक्ष होता था। महाप्रतिहार (पा० ता० १६३) राजा का एक बड़ा अपसर होता था और वह राजा की ओर से बड़े बड़े अभियानों पर भेजा जाता था। उसका उल्लेख सारंग सिंह ने ताम्र पत्र में (एरि० इ० १०, पृ०-७२) और गुप्त अभिलेखों (गुप्त २०, न० ४६, पृ० २१३, २१६ इत्यादि) में है। सेनापति (पा० ता० १८२) से यहाँ सेना के एक बड़े अधिकारी से मतलब है। महातलवर (पृ० ३३) का क्या कर्तव्य होता था इसका ठीक पता संस्कृत साहित्य से नहीं चलता। इस अपसर का उल्लेख नागार्जुनकोण्ड के दृचगकु राजाओं के अभिलेखों में हुआ है (एपि० इ० २०, पृ० ६, १६)। जैन शास्त्रा के अनुसार तलवर या महातलवर का आददा महासामन्त की तरह होता था। राजा उसे पट्ट से निभूपित करते थे पर उन्हें अपने ऊपर चौरी चलवाने का अधिकार नहीं था (जैन, वही, पृ० क० पु० १०, १३)।

✓ पादताडितम् में अधिकरण यानी न्यायालय का कई जगह उल्लेख है। न्यायाधीश निष्णुदास (पृ० १६३) के अधिकरण में पिनक लेने का उल्लेख है। सूर्यनाग पर अधिकरण में पताका घेराया ने मुकदमा चलाया था और वह स्पष्ट श्रवणच श्रावणिकों द्वारा यहाँ लाया गया। पर बलदर्शक स्कन्दकीर्ति ने यह कह कर कि वह राजा का साहू था उसे उखाड़ा। (पृ० २१८)। श्रावणिक का अर्थ डा० यामन ने गवाह किया है, पर श्रावणिक ✓ शायद सम्मन तलब करने वाले चपरासी हो सकते हैं। बलदर्शक अवर्दस्ती काम करवा कर अथवा जेल भेजकर कर्जदारों से ऋण वसूल करता था। मनु (४/४६) और नारद (४/१२२) ने अनुसार कर्ज वसूली के पाँच उपाय थे—धर्म (मनाना), व्यवहार (मुकदमा), छल या उपाधि (धोखा), चरित (चरना देना) और बल (अवर्दस्ती काम कराना और जेल)।

पादताडितम् (पृ० २१३-२१४) में एक जगह तत्कालीन कुमारामात्य अधिकरण का मजदूर चित्र खींचा गया है। पुस्तकवाचिका भद्रता पुस्तकवाचक का छूटकर उपगुप्त में अनुरक्त हो गई। उधर पुस्तकवाचक की अपनी सास के साथ टन गई और वह उसे अधिकरण में खींच ले गई। चित्र के पूछने पर उसने बताया कि वह कुमारामात्याधिकरण से आ रहा था। चित्र ने उसे जात की गथाई देना चाहा पर पुस्तकवाचक ने कहा कि जीत की ता शत क्या केवल तत्काल ही मिल रही थी। वहाँ निष्णुदास न्यायाधीश (प्रध्याति) था। उसका भाई फाड़ उसे धमकाता था। निष्णु रह रहकर चिल्लाता था और साता था। अनालत के अधिकृत, पुस्तपाल, और काष्ठक महत्तर बराबर उसका पीछा करते थे। अधिकृत

से यहाँ शायद अदालत के अधिकारियों से मतलब है, कायस्थ से पेशकार और पुस्तपाल से मीर दफ्तर से। पुस्तपाल शब्द गुप्त सवत् १२४ और १२६ के दामोदरपुर के ताम्रपट्टों में (एपि० इ० १५, पृ० ११३ और १३०) और पहाडपुर वाले लेख (एपि० इ० २०, पृ० ६१) में इसी अर्थ में आया है।

बनारस में राजघाट की खुदाई से गुप्तकाल के कुमारामात्याधिकरण की गजलक्ष्मी से अंकित मिट्टी की मुहरें मिली हैं। गुप्त युग में कुमारामात्य साधिविव्रहिक, महादण्डनायक, मन्त्री और विपयरति का काम करते थे तथा राजकुमारों और उपरिंकर महाराजा के मातहत होते थे। इस तरह कुमारामात्य का दर्जा अंग्रेजी के डेट की तरह होता था पर उसका उपरिंकर महाराज और केन्द्रस्थ सरकार से क्या सम्बन्ध होता था इसकी ठीक ठीक पड़ताल नहीं की जा सकती।^१

गुप्तों की राज्य व्यवस्था अधिकारियों द्वारा जिन्हें आधुनिक सरकारी दफ्तर और अदालत कह सकते हैं होती थी। वैशाली से मिली मुद्राओं पर भी परम भट्टारकनादीय कुमारामात्य अधिकरण^२, श्रीरामाडगागर अधिकरण^३, दंडपाश अधिकरण और तोरमुक्ति उपरिंक अधिकरण^४ के नाम आए हैं। राजघाट से वाराणस्यधिष्ठानाधिकरण की बहुत सी मुद्राएँ मिली हैं। यहाँ अधिष्ठान से जिले के प्रधान नगर से तात्पर्य है। बसाद की एक मुद्रा^५ में भी वैशाल्य धिष्ठानाधिकरण लेख अंकित है।

कादंबरी से अधिकरण पर कुछ और प्रकार पड़ता है। चन्द्रापीड ने शुद्रक के महल के अधिकरण मंडप में बड़े अप्सरी को अच्छे कपड़े पहनकर वेशासनों पर बैठे काम काज करते देखा। लेखक घडाघड राजा के सैकड़ों टुकड़ों में (शासनपत्र) लिख रहे थे। उन्हें तमाम ग्रामों और नगरों के नाम याद थे (वही, पृ० १५३)।

मन्त्रकटिक्त ने नौबें अउसे पौजदारी और माल अदालत की कार्यवाही पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अदालत बैठने के पहले अधिकरणमोजक शोधनक से व्यवहार मंडप में आसन लगा देने को कहते थे। ऐसा करने के बाद शासनक अधिकरणियों से प्रवेश के लिए कहता था। इसने बाद अधिकरणिक श्रेष्ठी, कायस्थ इत्यादि के साथ आता था। इसने और श्रेष्ठी और कायस्थ इत्यादि की बातचीत से पता चलता है कि व्यवहार में असंलियत तक पहुँचने के लिए बहुत सी बातों की आवश्यकता थी। शुक्रदशैराज अदालत में लोगों पर झूठी तुहमत लगाते थे और झूठे बयान देते थे। अगर अदालत का फैसला किसी एक के निश्चय गया तो वह राजा का बदनाम करता था। न्यायाधीश का सिवाय अपयश के और कुछ हाथ नहीं लगता था (६।३)। कानून को एक तरफ रखकर लागू शिंकायत करते थे और अपना दोष कभी स्वीकार नहीं करते थे (६।४)। इसलिए न्यायाधीश को शाखों का शाता, कपटचार का भडा पाड करनेवाला, वक्ता, शात, तरफदारी न करनेवाला, सब बातें जांचकर फैसला करने वाला, कमजोरों का रक्षक, मजबूतों का काल, चार्मिक और लालच रहित होना आवश्यक था।^१ इतना ही नहीं उसे सब तरह से सत्य तक पहुँचना पड़ता था और राजा का काप दूर करना

१. पृथ्वीस हिम्री आफ इटिया, पृ० १३३, लंडन १८४६। २. एपि, इ, २३, पृ० ५६। ३. ए० एम० आर० १६०३०४, पृ० १०८। ४. वही पृ० १०६। ५. वही पृ० १०६।

पड़ता था (६।५) । इसके बाद शोधनक उन्हें अधिकरण मंडप में ले जाकर अधिकरण भोजनों को सायधान कर देता था और न्यायाधीश की आज्ञा से बाहर जाकर कार्याधिकारों की पुनार करता था । पर्यादी की अर्जों कायस्थ लिख देता था । इसके बाद अधिकरणिक यादी और प्रतिवादी के जयान लेता था ।

अदालत में जाने के अलावा पाप के प्रायश्चित्त और धार्मिक व्यवस्थाओं के लिए लोगों के ब्राह्मणों की पीठिका में जाने का उल्लेख पादताडितम् (पृ० १५६-१५८) में है । विवरण से पता चलता है कि वहाँ के त्रैविद्य वृद्ध ब्राह्मण धर्मशास्त्र के ज्ञाता होते थे । वे दृढनीति, श्रान्त्योक्षिकी और दूसरी विद्याओं और कलाओं में निपुण होते थे । उनके साथ उनके विद्यार्थी भी होते थे । उनमें से आचार्य भवशर्मा ने विष्णुनाम को प्रायश्चित्त व्यवस्था पता कर कहा कि देशजाति कुलतीर्थ समय धर्माध्याम्यायैरविरुद्धाः प्रमाणम् अर्थात् देश, जाति, कुल, तीर्थ समय धर्म के अनुसार वेद विरुद्ध होने पर प्रमाण माना जाना चाहिए । यहाँ भवशर्मा गौतम और वसिष्ठ (गौतम ११२० २२, वसिष्ठ १।१७) के देश जाति कुल धर्माध्याम्यायैरविरुद्धाः प्रमाणम् का उल्लेख करता है । यह ध्यान देने लायक बात है कि राजघाट बनारस की तुदाई से त्रैविद्य लेखवाली मुद्राएँ भी मिली हैं ।

चतुर्भाणी से यह भी पता चलता है कि गुप्तयुग की निलासिता का प्रधान कारण व्यापार में भारी उन्नति थी । पद्मप्राभृतम् (६) में चारों समुद्र से आए माल का उज्जैन के बाजार में परीद बेचका उल्लेख है । पाटलिपुत्र (धू० टि० १६६) के बाजार में भी तरह तरह के मालों के बेचने का उल्लेख है । श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलक (धू० टि० ७०), श्रेष्ठि कुबेरदत्त (उभ० १२२), सार्यवाह समुद्र दत्त जिसे उस समय का कुबेर कहते थे (उभ० १२८), सार्यवाह घनमित्र जो पेशवा ससर्ग में छुट चुका था (उभ० १३८) ये सब पेशवाओं के प्रेमी थे । पादताडितम् में गुप्त कालीन सिक्कों का जैसे सुवर्ण (पृ० १८६), मापक (१६७), मापकार्थ (१६८) और काकिणी (२२२) का उल्लेख है ।

चतुर्भाणी के उपर्युक्त अध्ययन से यह पता चल जाता है कि उसके भाग गुप्त काल में लिखे गए । भाणों में पेशा जीवन का शायद दत्तक के वैशिक सूत्र का आश्रय लेकर बहुत बारीकी के साथ चित्रण किया गया है । पर साथ ही साथ वास्तविक जीवन और जीते जागते पात्र और पात्रियों का चित्रण उनकी सूखी है । आनुपगिकरूप से गुप्तकालीन धर्म, व्यापार इत्यादि पर भी काफी प्रकाश डाला गया है । ये भाण गुप्तकालीन जीवन पर कितना प्रकाश डालते हैं इसकी सचाई का पता हमें तत्कालीन साहित्य से भी चल जाता है ।

प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम
चम्बई

}

मोतीचन्द्र

श्रीरस्तु ।
 श्रीशूद्रकविरचितं
पद्मप्राभृतकम्
 [नान्द्यन्ते प्रविशति स्रग्धरः]

सूत्रधार—

- १— (अ) जयति भगवान् रुद्रः
 (आ) कोपादथगाप्यनुग्रहाद् येन ।
 (इ) श्रीणां विलासमूर्तिं
 (ई) कान्ततरवपु इत काम ॥
 (?) अपि च—
- २— (अ) पुष्पममुज्जलां कुरवका नदति परभृतः
 (आ) कान्तमशोऽप्युपसहितं चलति किमलयम् ।
 (इ) चूतसुगन्धयश्च पयसा भ्रमररतवहा
 (ई) सग्नप्रति काननेषु सधनुर्विचरति मदन ॥

१—उन भगवान् रुद्रकी जय हो जिन्होंने मोघ अथवा कृपासे स्त्रियों के विलास की मूर्ति • काम को और भी चमकीले शरीरवाला बना दिया ।

और भी—

२—कुरवक पृष्णे से श्वेत है । कोयल कूकती है । सुन्दर अशोक के फूल के साथ कोपल डोलती है । भौरो से गुजारती और आमकी गन्ध से महमहाती हवा चलती है । आज धनुष लिए हुए काम वन में विचर रहा है ।

? (आ) कोपादथगाप्यनुग्रहात्—रुद्र ने पहले काच में काम को भस्म किया और फिर अनुग्रहसे उसे जावन दानु दिया ।

? (ई) कान्ततरवपु —अग्नि में तपाने से जैसे सोने का रंग और निखर जाता है वैसे हा मानो कामदेव शिव की कोपाग्नि में तपकर अधिक सुन्दर था प्रभावशाली हो गया ।

(?) किञ्चान्यत्—

- ३— (अ) आतोद्यं पक्षिसंघास्तरसमुदिताः कोकिला गान्ति गीतं
 (आ) वाताचार्योपदेशादभिनयति लता काननान्तःपुरसखी ।
 (इ) ता वृक्षाः साधयन्ति स्वकुसुमहृपिताः पल्लवाग्रागुलीभिः
 (ई) श्रीमान् प्रातो वसन्तस्त्वरितमपगतो हारगौरस्तुपारः ॥
- ४— (अ) मृलादपि मध्यादपि
 (आ) विटपादप्यंकुरादशोकस्य ।

और क्या—

३—चिड़ियों के चहचहे को बाजा बनाकर प्रेम के रस से मतवाली कोकिलाएँ गीत गा रही हैं। वन के अन्तःपुर की कामिनी रूपी लता आचार्य वायु के उपदेशसे अभिनय कर रही है। उस लता को वृक्ष अपने फूलों से हर्षित होकर पल्लव रूपी अंगुलियों से फुसला रहे हैं। श्रीमान् वसन्त के आते ही हार-जैसा सफेद पाला फौरन गायब हो गया ।

यह श्लोक मल्लहण पुत्र पल्लभदेवकृत 'विदग्धजनवल्लभ' नामक उक्तिसंग्रह में दृष्टक नामसे उद्धृत किया गया है। [इस सूचना के लिए मैं अपने मित्र श्री डा० राघवन का अनुगृहीत हूँ] ।

३ (इ) साधयन्ति—कुमल होते हैं, मंवेत्तों से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यहाँ लता अन्तःपुर की स्त्री के समान है और वृक्ष उन विदों के समान हैं जो उस पाला को झरारों से अपनी ओर खींचते हैं ।

३ (ई) स्वकुसुमहृपिताः—पुष्पोद्गम ही जिनके हृषित या कामभाष से मत होने का लक्षण है ।

हर्षित—कामोत्तेजित ।

३ (इ) पल्लवाग्रागुलीभिः—पल्लवरूपी अंगुलिओं के अग्रभाग या पोरों से ।
 अग्रागुलि = पोरिया ।

३ (ई) श्रीमान् वसन्तः—रक्ष्मी सम्पन्न अथवा योग्यवृत्त सौन्दर्य से सम्पन्न नायक की तुलना वसन्त से की गई है । वेशमें ऐसे नायक के आने पर पुराने चुचके हुए या दरिद्र नायक बिदा हो जाते हैं ।

३ (ई) हारगौरस्तुपारः—हार = काम शक्ति का चय, वीर्यचय । गौर = पीला । हारगौरस्तुपार का संकेत उस नायक के लिये है जो वेश में अपनी पुष्पव शक्ति का चय कर चुका है और निम्बा रंग पीला पड़ गया है । ऐसा नायक दूसरे श्रीमान् अर्थात् वीर्यवान् श्रीमन्पन्न नायक का भागमन देकर वेश में मटक जाता है, यहाँ मुँह नहीं दिगाता। यह भी स्पष्टता है कि युवा नायक अपनी स्त्री से सुन्दर लगता है और पुराना दृढ़ नायक हारादि आभूषणों से वन-वनकर वेश में आता है । तुपार = पाने से मारे हुए या पल्लवाएँ हुए नायक की ओर संकेत है

(३) पिशुनस्थमिव रहस्यं
(३) समन्ततो निष्क्रमति पुष्पम् ॥

(१) अहो अयं—

५—

(अ) ससम्भ्रमपरभृतस्तः
(आ) समिन्धुवारः सकुन्दसहकारः ।
(इ) समदमदनः सपवनः
(ई) सयौवनजनप्रियः कालः ॥
(१) (निष्क्रान्तः)
(२) (स्थापना)

(३) [ततः प्रविशति विटः]

(४) साधु भोः । (५) रमणीयं खलु तावदिदं शिशिरजराजर्जरस्य संवत्सर-
विटस्य (६) हिमरसायनोपयोगात् वसन्तकेशोरकमुपोहते । (७) सम्प्रति हि—

६—

(अ) प्रचलकिमलयाग्रप्रवृत्तद्रुमं यौवनस्थायते
फुल्लवल्लीपिनद्ध वनम्

४—मूल से, बीच से, चोटी से अंकुरों से, सब ओर से अशोक के फूल खल के हृदय में से भेद की तरह फूट-फूट कर निकल रहे हैं ।

अहा ! यह—

५—मतवाली कोयल की कूक से भरा, सिन्धुवार, कुन्द और सटकार से सुशोभित, गरबीले काम और हवा से भरा जवानों का प्यारा मौसम है ।

[विटका प्रवेश]

बाह ! क्या खूब । शिशिर रूपी बुझापे से जर्जर संवत्सर रूपी विट की सुन्दर वसन्ती जवानी हिमरूपी रसायन खाने से लौट कर पास आ रही है । इस समय तो—

६—हिलती कोफ़्लो से नाचते हुए वृक्षों वाला और फूलों लताओं से लिपटा हुआ वन यौवन पर आ रहा है । तिलक वृक्ष पर बैठी कोयल जूड़े सी लग रही

५ (६) केशोरक = नगबोवन ।

५ (६) उपोहते—कर्मवाच्य, पास पहुँच रहा है, विट द्वारा अपना यौवन पुनः प्राप्त किया जा रहा है ।

६ (अ) यौवनस्थायते—यौवनस्थ से नामवात्, अपने यौवन पर आ रहा है ।

(आ) तिलकशिरसि केशपाशायते कोकिलः कुन्दपुष्पे स्थितः
स्त्रीकटाक्षायते पटपदः ।

(इ) कचिदचिरविस्मृत्वालस्तनी कन्यकैरोदगतैः श्यामलैः
कुड्मलैः पद्मिनी शोभते

(ई) वरयुवतिरतिश्रमस्तिन्नपीनस्तनस्पर्शधूर्तायिता वान्ति
वासन्तिका वायवः ॥

(१) इत्थं च मदनशरसन्तापकृशो वलवानयमृतुः (२) यदेवदत्तासुरतसुप्रति-
विहितयौवनोत्सवस्य (३) कर्णापुत्रस्योन्मुख्यमानवालभावयौवनावतारकोमला (४)

हे और कुन्द के फूल पर बैठा भौरा कामिनी के कटाक्ष का काम कर रहा है । कहीं नये उभरे छोटे स्तनों वाली कन्या की तरह कमलिनी सावली कलियों से शोभित है । कहीं वसन्त के वायु-समूह रतिश्रम के पसीने से भरे स्त्री के पीन स्तनों के स्पर्श की धूर्तता (छेड़खानी) करते हुए बह रहे हैं ।

काम के बाणों की मार से सन्ताप देने में कठोर यह वसन्तकाल अवश्य बलवान् है, क्योंकि देवदत्ता के साथ सुरत द्वारा भली भौंति अपनी जवानी का

६ (आ) तिलकशिरसि केशपाशायते कोकिलः—तिलकटुक की चोटी पर बैठी हुई कोयल की उपमा केशपाश से दी गई है । यह एक विशेष प्रकार का केशविन्यास होता था । इसमें सिर के ऊपर किसी रेशमी वस्त्र को गेंदरी के रूप में लपेट कर उसके भीतर से पेशों की घेणी ऊपर की ओर निकलती हुई दिखाई जाती थी । कुपाण काल में इस प्रकार के केशविन्यास का रिवाज था जो गुप्तकाल में भी लोकप्रिय रहा । अरवघोष ने इसका उल्लेख किया है—

पुष्पावनदधे तिलकद्रुमस्य दृष्टाऽन्यपुष्टा शिरसि निविष्टाम् ।

सकल्पयामास शिखा प्रियायाः शुक्लाशुकाटालमपाश्रितायाः ॥

सौन्दरनन्द ७७

‘श्वेत वृक्षों से लदे हुए तिलकटुक की चोटी पर बैठी कोयल की देवदत्त नन्द ने समझा मानो यह उसकी प्रियतमा के सिर पर बंधे हुए श्वेत रेशमी वस्त्र के ढेर पर लहराती हुई घेणी की लगती थी’ । शुक्लाशुकाटाल और उसके भीतर से निकलती हुई शिखा का शीकर रूप शिख के अवन से विदित होता है । मथुरा की कुपाण वालिन कन्या में हम विशेष केशविन्यास का अवन पाया जाता है [मथुरा सम्राट्टालय के वेदिका स्तम्भ जे५५ पर अशोक दोहद में लगी हुई स्त्री का केशविन्यास इसी प्रकार का है, विग्रह सख्या १] । अमरावती की शिखर-कला में भी इसके दो उदाहरण मिले हैं [शिवराममूर्ति कृत अमरावती स्वरूपचर्म, पृष्ठ ६, विग्रह ६, ११] । श्वेत वृक्षों से लदे हुए तिलकटुक की उपमा शुक्लाशुकाटाल या गेंदरी की भाँति लपेटे हुए श्वेतवस्त्र से दी गई है । केशपाशायते कोकिल वायव से जाना होता है कि हम प्रकार का केशविन्यास कोकिल केशपाश कहलाता था ।

मदनमञ्जरिका देवसेनाचृतयष्टिमतिलङ्घयते मदनप्रमर । (५) अथवा किमिदं कर्णापुत्रस्यातिकमिष्यति । (६) समधुसपिप्प हि परमत्र सोपदशमास्वाद्यतर भवति, (७) अतः शङ्के देवदत्तासुरतमधुपानोपदशभूत चण्डालिकाश्च (८) बाल-भावनिरुपस्थतोपचारहसितललितरमणीय दारिकासुन्दरीरतिरसान्तरमपि प्रार्थयत इति ।

उत्सव मनाकर भी कर्णापुत्र का काम रूपी भौरा देवसेना रूपी उस आम की डाली के लिये भूला तड़प रहा है जो बालापन छोड़कर यावनागम से कोमल बनी है, और काम की मजरी सी फूल रही है । अथवा कर्णापुत्र का भूला रहना कैसा ? धी शक्कर से बना तरमाल अचार चटनी (सोपदंश) के साथ अधिक जायका देता है । मैं समझता हूँ इसीलिए वह देवदत्ता के साथ सुरतरूपी मधुपान से छककर बालसुन्दरी पोडंशी (चण्डालिका) देवसेना के साथ कुठ और मज्जा देनेवाली सुरत की ऐसी गजक भी चखना चाहता है जिसमें बालापन की भोलीभाली आवभगत (उपचार), चुहलनाजी (हसित) और छेडखानी (ललित) भरी है ।

६ (३) कर्णापुत्र = मूलदेव । मूलदेव की कथा में उसकी प्रधान नायिका देवदत्ता और दूसरी नायिका देवदत्ता की बहन देवसेना थी । मूलदेव का मित्र शश था । बाण ने कादम्बरी में मूलदेव का उल्लेख किया है—कर्णासुतकथेव सन्निहितविपुलाबला शशोपगता च (विन्ध्यादर्वा घर्णन) । मूलदेव कामशास्त्र का, विशेषतः वैशिकतन्त्र का मुख्य पात्र समझा जाता था । क्षेमेन्द्र ने कलाविलास में उसका उल्लेख किया है । शुक्सप्तति की कहानियों में भी वैशसम्बन्धी मामलों के पचरूप में उसका चित्रण आया है ।

६ (४) अतिलङ्घयते—अतिलङ्घन कर रहा है, अति भूख से व्याकुल है । देवदत्ता के साथ रमण करके अब कोमल देवसेना के लिए तड़प रहा है, या भुज्राय रहा है, [धनारसी बोली में अभीतक सुरतेच्छा के लिये विटो की भाषा में कहते हैं भूखल हो] ।

६ (५) मधुपानोपदशभूत—मधुपान के साथ मूली या गजक आदि खाने का विवाज था, उसे ही उपदश कहते थे । हिन्दी में उसे चिखना या गजक कहते हैं ।

६ (६) चण्डालिका—सोलह वर्ष की आयु की कुमारी, पोडंशी बाला । इसे ही अम्बिका या दुर्गा भी कहते थे—क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभि पोडंशे चाम्बिका स्मृता । (रुद्रयामलतन, पटल ६, श्लोक ६६, पूना ओरियेन्टेलिस्ट वर्ष १४, पृ० १७)

चण्डालिका का ज्यम्ब सकेत वस्त्रयान मान्यता की शुद्राद्योपित् साधना से भी है जिसे चडाली या डोम्बी भा कहा जाता था । पादताडितक भाण में 'मुद्रित योपा' की साधना का उल्लेख आया है ।

६ (८) निरुपस्थत—उपस्थत = चटपटा, मसालेदार, बनाकटदार । निरुपस्थत = सादा, बिना बनाकट का, औपचारिकता रहित ।

६ (८) उपचार—आवभगत, किसी के आन पर उसके स्वागत स्कार का ढग. शिष्टाचार ।

(६) अहो नु सलन्य लघुरूपोऽपि बलवान् मदनव्याधिः, (१०) येनानेक-
शास्त्राधिगतनिष्पन्दबुद्धिं सर्कलाज्ञानविचक्षणो व्युत्पन्नयुवति-कामतत्रसूत्रधारः (११)
कर्णापुत्रोऽपि नागैतामवरथामुपनीतः । (१२) स हि—

- ७— (अ) उच्चिद्राधिकतान्तताम्रनयनः प्रत्युपचन्दनानो
(आ) ध्यानग्लानितनुविजृम्भणपरः सन्तप्तसर्वेन्द्रियः ।
(इ) रम्यैश्चन्द्रवसन्तमाल्यरचनागान्धर्वगन्धादिभि-
(ई) यैरेव प्रमुखागतैः स रुमते तैरेव सन्तप्यन्ते ॥

(१) अथवा देवसेनामुद्दिश्य नैतदाश्चर्यम् । (२) कुतः । (३) श्लाघ्य-
मन्मथमन्तोरथक्षेत्र हि सा दारिका । (४) अर्हत्यस्या रूपयौवनलावण्य कर्णापुत्रस्यो-
न्माद जनयितुम् । (५) तस्या हि

- ८— (अ) विभ्रान्तेक्षणमधृतोष्ठरुचकं प्राचीनगण्ड मुरा
(आ) प्रत्ययोत्पतितस्तनाकुरमुरो बाहलता कोमलौ ।

११ अहो ! निश्चित ही काम की बीमारी छोटी होने पर भी भारी होती है, जिसने
अनेक शास्त्रों के अच्छे जानकार, सम कला और ज्ञान में चतुर, युवतियों का काम-
रूपी ताना बुनने वाले (सूत्रधार) कर्णापुत्र को भी इस दशा को पहुँचा दिया ।

७— उसकी आँखें नींद में आने से कुछ अधिक अलसाई हुई और लाल हैं ।
उसका मुख सबरे के चन्द्रमा जैसा पीला है । चिन्ता से उसका शरीर दुबला है ।
वह जैभाई ले रहा है । उसकी सारी इन्द्रियों जल रही हैं । जिन सुन्दर और
सामने आप हुए चन्द्र, वसन्त, माल्यग्रथन, सगीत और सुगन्धि आदि से वह
आनन्द उठाता था, उन्हीं से अब वह सन्ताप पाता है ।

अथवा, देवसेना के कारण यह सब हुआ हो, यह अचरज नहीं, क्योंकि
वह नौची मन चाहे काम भावों को पैदा करने वाली है । यह ठीक ही है कि
उसकी रूपयौवनजनित लुनाई कर्णापुत्र को पागल बना रही है ।

८— उसका चंचल कटाक्ष, अशरणी शारता हुआ अक्षत अधर, गाल सामने

६ (८) दारिका सुन्दरी—वेश में वह कुमारी कन्या जो भर्मा नथपद हो, जिसे
बनारसी घोड़ा में नौचा कहते हैं । विधिपूर्वक उसकी नथपों उतार कर उसे छूती करने का
संस्कार मनाया जाता था ।

६ (१०) कामतत्रसूत्रधार—तत्र = ताना । सूत्रधार = सूत्र भरने वाले । सूत्र भरने वाले को काम के हावभाव का ताना पैदा करने वाला ।
सुन्दरी, जो काम के हावभाव का ताना पैदा करती है । उसकी बुनने वाले नायक को
सूत्रधार के रूप में कल्पित किया गया है ।

७ (अ) तान्त—शिथिल, अलसाई हुई ।

८ (अ) ओष्ठरुचक—जखन का कारण हुआ ओष्ठ । रुचक = निष्क, सुगन्धसुदा,
अशरणी । गुप्तकाल में अधर के नीचे का भाग निष्क जैसा लटवता हुआ भ्रमरता की

(६) अव्यक्तोत्थितरोमरेसमुदरं श्रोणी कुतोऽप्यागता

(६) भावश्चानिमृतस्वभावनमधुरः कं नाम नोन्मादयेत् ॥

(१) [परिक्रम्य]

(२) स इदानीं देवसेनासमुत्थं मदनामयमतिव्यायामश्रुतज्वरमुद्दिश्य (३) हारतालवृन्तचन्दनोपनीयमानदाहप्रतीकारः तत्समागमाशाकृतप्राणधारणं शयनपरायणः कथञ्चिद् वर्तते । (४) अद्य तु प्रागहरेव पुष्पाञ्जलिको नाम देवदत्तायाः परिचारकः सोपचारमुपगम्य कर्णापुत्रमुक्तवान्—

(५) आर्यपुत्र, विज्ञापत्यञ्जुका देवदत्ता 'न सन्तु मे ह्यस्तनेऽहन्त्यनागमनाद् बहुमानमभ्यस्यतामुपगन्तुमर्हत्यायं पुत्रः । (६) इयं हि मे भगिनिका चण्डालिका किमपि

किया हुआ मुँह, छाती पर नये उठे हुए स्तनादुर, कोमल बाहुलताएँ, पेट पर कुछ-कुछ भीनती हुई रोमावली, कहीं से आकर भरे हुए नितम्ब और उन्मुक्त स्वभाववाला चतुर प्रेम-भाव किसको पागल नहीं बना देते ?

[घूमकर]

वह अभी देवसेना से उत्पन्न काम व्याधि की छत्रपत्राने के कारण हरारत को हार, पंखे और चन्दन की मदद से दूर करके उसके, मिलने की आशा से प्राण रख कर खाट पंरुड़े हुए किसी तरह जी रहा है । आज ही सबेरे देवदत्ता के पुष्पाञ्जलिक नामक दास ने नम्रतापूर्वक जाकर कर्णापुत्र से कहा—'आर्यपुत्र, आजी देवदत्ता कहती है—'कल के दिन मेरे न आने से आर्यपुत्र का मेरे प्रति समादर भाव में

चित्रकला में प्रायः देखा जाता है (ग्रिकिथ, अजन्ता, फलक ७१ अप्सरा चित्र) । उस समय यह सोन्दर्य का लक्षण माना जाता था । बाण ने कादम्बरी में अशर-रुचक का दो बार उल्लेख किया है (कादम्बरी, वैद्य संस्करण, अनुच्छेद ६५, १४२) । 'अशरफी भारता हुआ' यह मुहावरा बनारसी थोली में बच गया है जो अवरय ही गुप्त कालीन ओष्ठरुचक या अशररुचक की कल्पना पर आधारित होना चाहिये । मुस्कलते हुए व्यक्ति के किये कहा जाता है—'का अशरफी भारत ही ।'

८ (अ) प्राचीनगण्डं मुरं—जिस मुद्रा में मुँह सामने न होकर गाल सामने किया गया हो । भाव यह कि मुग्धोचित शालीनता के कारण वह मुँह सामने करके नहीं देखती, मुँह घुमा लेती है जिससे उसका गाल दिखाई पड़ता है ।

८ (३) अव्यक्तोत्थित—जो अभी स्पष्ट नहीं निकली है, कुछ कुछ भीनती हुई रोमराजि ।

८ (६) अनिमृत—उन्मुक्त, ग्रन्थिहीन, खुला हुआ ।

८ (२) अतिव्यायामश्रुतज्वरं—कामव्याधि के बहुत लम्बा खिच जाने से ज्वर या ताप रहने लगा है, जैसे किसी रोग के पुराने पड़ जाने पर शरीर में हरारत रहने लगती है ।

८ (४) प्रागहः—दिन का पूर्व भाग या आरम्भ ।

अस्वस्थरूपा तदनुकम्पया पर्युषिताऽस्मि । (७) इयं तु साम्प्रतमागच्छामीति । (८) ततस्तदुक्तदत्तप्रतिवचनः प्रतिप्रस्थाप्य पुष्पाञ्जलिकं कर्णीपुत्रः सोपग्रहमिव मामुक्तवान्— (९) ‘सखे शश, त्वयाऽपि नाम श्रुतं ‘साम्प्रतमिहागच्छामि’ इति । (१०) तदेव इदानीमवसरः सुप्तप्रश्नागमनेन विविक्तविस्रम्भा देवसेनामवगाह्य सन्तापकारणमस्याः परिज्ञातुम् । (११) तदेवोऽञ्जलिः । (१२) सर्वांपायैरर्हति देवानाप्रियोऽस्माकं देवसेना-समुत्थं हृदयगतमापुंखनिस्तातं मदनशरशल्यं समुदघर्तुम्’ इति । (१३) ततः सस्मितानुयात्रमुक्तो मया ‘भवतु धूर्ताचार्य, किमिति त्वया दिवा दीपप्रज्वालनं क्रियते । (१४) किं नाभिज्ञोऽहं युवयोरन्योन्यमनोरथमूकदूतकानां नयनसङ्गतकानाम् । (१५) अपि च, स एवास्मि मूलदेवसरः शशोऽहम् (१६) नैनामप्रतार्यागमिष्यामि’ इत्युक्त्वा प्रस्थितोऽस्मि । (१७) तत् किं नु राजमार्गे सुदृष्टप्रनसङ्कयाभिः कालं क्षपयता तथा गन्तव्यम् (१८) यथा देवदत्ताविरहिता चण्डालिकामासादयेयम् ।

उपेक्षा लाना ठीक नहीं है। मेरी छोटी बहन चण्डालिका कुछ बीमार है, उसके प्रति सहानुभूति से मैं ठहर गई। अब मैं तुरन्त आती हूँ।’ तब उसके कथन का जवाब देकर पुष्पाञ्जलिक को रवाना करके कर्णीपुत्र ने प्रीतिपूर्वक मुझसे कहा—‘सखे शश, तूने भी सुना ‘मैं यहाँ आती हूँ’। तो यही अवसर है कि यहाँ पहुँच कर कुशल क्षेम पूछने के बहाने सर्वथा, विश्वास दिलाकर देवसेना की थाह लेकर उसके दुःख का कारण जाना जाय। तो यह मेरा प्रणाम। देवसेना द्वारा चलाए गए और मेरे दिल में अन्त तक घुसे हुए इस फाम गण को भाम्यशाली आप ही किसी तरह निकालने में समर्थ है।’ इस पर हँसकर बिदाई के रूप में मैंने उससे कहा—अच्छा धूर्ताचार्य, क्या तू दिन में दिया बालता है? क्या मैं तुम दोनों का आँख लड़ाना नहीं जानता जो तुम्हारे मनोभावों को चुपचाप प्रगट करता है। और भी, मैं मूलदेव का सखा, वही शश हूँ। मैं उसे बुत्ता दिए बिना नहीं आऊँगा।’ यह कहकर मैं चल पड़ा। फिर क्यों न मैं राजमार्ग में मित्रों के साथ बातचीत में

८ (६) पर्युषिता—ठहर गई, रह गई। परि-वस्= ठहरना, रह जाना।

८ (८) सोपग्रहं—प्रीतिपूर्वक, मनाकर। कादम्बरी पृ० १५६, सोपग्रहं=सानुकूल, और भी पृ० २२०।

८ (१०) सुप्तप्रश्न—कुशलप्रश्न। सुखरात्रि, सुगन्धव्या या सुलरायन पूछनेवाला व्यक्ति। सोलरात्रिक, सोलशाष्टिक या सोलशाष्टिक कहलाता था (पृच्छती सुप्तातादिभ्यः, वार्तिक ४।४।१)।

८ (१०) विविक्तविस्रम्भा—सब प्रकार से निरलुल विश्वास वाली। विविक्त=शुद्ध।

८ (१२) देवानाप्रियः—भात्रसूचक शब्द, भाग्यशाली।

८ (१३) अनुयात्र—यात्रा के समय कहे हुए बिदाई के वचन।

८ (१४) नयनसंगतक—नयनों का मिलाना या आँख लड़ाना।

(१६) (परिक्रम्य)

(२०) अहो तु खलु वसुन्धरानधूजम्बूद्वीपमदनम्पोलपत्रलेखाया नानाभाण्ड
समृद्धाया (२१) अवन्तिसुन्दर्या उज्जयिन्या परा श्री । (२२) इह हि—

६—

(अ) पुरयास्तावदाम्यासा द्विरदरथत्वरगनिनदा धनुर्गुणानि स्वना

(आ) दृश्य श्राव्य विद्वद्वादाश्चतुरुदधिसमुदयफले वृता विपणिक्रिया ।

(इ) गीत वाद्य धृत हास्य कचिदपि च विटजनकथा कचित्सकला कला

(ई) क्रीडा पक्षिक्षुब्धाश्चेमा प्रचुरकरचलयरशनास्वना गृहपङ्क्तय ॥

(१) (परिक्रम्य)

(२) अप्रीदानीमभितकार्यनिष्पत्तिसूचक किञ्चिन्निमित्त पश्येयम् ।

(३) (विलोक्य)

(४) अयं तावत् काव्यव्यसनी कात्यायनगोत्र शारदतीपुत्र सारस्वतभद्र
स्वगृहद्वारकोष्ठके श्वेतवर्णव्यामामहस्त (५) चिन्तितोपस्थितास्वादितकाराक्षिभ्रूविकारै-
रभिनयन्ति च क्रीडकक्रीडामनुभवति । (६) तत्काममस्मिन् काले प्रवृत्तप्रतिभास्वीतो-

समय निताते हुए ऐसे समय चण्डालिका के पास पहुँचूँ जब वह देवदत्ता
से अलग हो ।

• अहा ! वसुन्धरारूपी वधूटी के जम्बूद्वीपरूपी मुख कपोल पर पत्रलेखा
के समान उज्जयिनी की अपूर्व शोभा है जो तरह-तरह के भाण्ड से भरी पूरी है ।

यहाँ वेदों का पवित्र अभ्यास, हाथी, रथ, घोड़ों का निनाद, धनुमत्यञ्चा
की टंकार, नाटक, काव्य, विद्वानों का ज्ञानार्थ, दूकानों पर लगे गए चारों समुद्रों
के माल की लेगावेची, गाना, बजाना, जूआ और हँसीठट्टा, कष्ट विदों की गप्पें,
कहीं सन कलाएँ हैं । ये गृहपक्तियों पालतू चिड़ियों की चहचहाहट से क्षुध और
बहुत से कड़ों और करधनियों की झनझनाहट से भरी है ।

(घूमकर) अब मैं मनचाहा काम पूरे होने का कोई समुन देखूँ ।

८ (२०) वसुन्धरानधू—कहना यह है कि समस्त पृथिवी वधूटा है, जम्बूद्वीप
उसका मुखकपोल है और उज्जयिनी उस कपोल पर बना हुई पत्रलेखा है । पत्रलेखा =
चित्र में शोभा के लिए फूल पत्तियों का अवन । छियाँ मुख का शोभा के लिए इस प्रकार
फूल पत्तियों का चित्र बनाती थी । ये चित्र चन्दन, कस्तूरी आदि से एवं पत्रों में बने हुए
आकृतियों के कगव से लिखे जाते थे । ऐसे कगव को भविष्येद् या पत्रच्छेद कहते थे ।

८ (२०) भाण्ड—(१) व्यापारा माल (२) सजावट के आभूषण अलंकार ।

६ (४) स्वगृहद्वारकोष्ठके—घर के बराठे में । द्वारकोष्ठक—अलिन्द, घर के
सामने बने हुए द्वार में जो कोष्ठ या कमरे होते थे उन सबको 'द्वारकोष्ठक' कहा जाता था ।

६ (४) श्वेतवर्ण—खडिया या सफेद रंग ।

अस्वरूपं तदनुक्रमया पर्युपिताऽस्मि । (७) इयं तु साम्प्रतमागच्छामीति । (८) ततस्तदुक्तदत्तप्रतिपन्नं प्रतिप्रस्थाप्य पुष्पाञ्जलिं कर्णीपुत्रं सोपग्रहमिव मामुक्तवान्— (९) 'सखे शश, त्वयाऽपि नाम श्रुतं 'साम्प्रतमिहागच्छामि' इति । (१०) तदेव इदानीमनन्तरं सुखप्रशनागमनेन विविक्तविलम्बा देवसेनामन्गाद्यं सतापकारणमस्यां परिज्ञातुम् । (११) तदपोऽञ्जलि । (१२) सवापायैरर्हति देवानांप्रियोऽस्माकं देवसेना-समुत्थं हृदयगतमापुस्निखात् मदनशरशल्यं समुद्धर्तुम्' इति । (१३) ततः सस्मितानुयात्रमुक्तो मया 'भवतु धूर्ताचार्य, किमिति त्वया दिवा दीपप्रज्वालनं क्रियते । (१४) किं नाभिज्ञोऽहं सुवयोरन्योन्यमनोरथमूक्तकृतकानां नयनसङ्गतकानाम् । (१५) अपि च, स एवास्मि मूलदेवसस शशोऽहम् (१६) नैनामप्रतार्यागमिष्यामि' इत्युक्त्वा प्रस्थितोऽस्मि । (१७) तत् किं नु राजमार्गे सुहृत्प्रश्नसङ्ख्याभिः कालं क्षपयता तथा गतव्यम् (१८) यथा देवदत्तानिरहिता चण्डालिकामासादयेयम् ।

उपेक्षा लाना ठीक नहीं है । मेरी छोटी बहन चण्डालिका कुछ बीमार है, उसके प्रति सहानुभूति से मैं ठहर गई । अब मैं तुरन्त आती हूँ ।' तब उसके रुथन का जवाब देकर पुष्पाञ्जलि को खाना करके कर्णापुत्र ने प्रीतिपूर्वक मुझसे कहा—'सखे शश, तूने भी सुना 'मैं यहाँ आती हूँ' । तो यही अवसर है कि वहाँ पहुँच कर कुशल क्षेम पूछने के बहाने सर्वथा विश्वास दिलाकर देवसेना की थाह लेकर उसके दुःख का कारण जाना जाय । तो यह मेरा प्रणाम । देवसेना द्वारा चलाए गए और मेरे दिल में अन्त तक घुसे हुए इस काम बाण को भाग्यशाली आप ही किसी तरह निकालने में समर्थ है ।' इस पर हँसकर बिदाई के रूप में मैंने उससे कहा—अच्छा धूर्ताचार्य, क्या तू दिन में दिया बालता है ? क्या मैं तुम दोनों का आँख लडाना नहीं जानता जो तुम्हारे मनोभावों को चुपचाप प्रगट करता है । और भी, मैं मूलदेव का सखा बही क्षम हूँ । मैं उसे बुचा दिए बिना नहीं आऊँगा ।' यह कहकर मैं चले पड़ा । फिर क्यों न मेरे राजमार्ग में मित्रों के साथ बातचीत में

८ (६) पर्युपिता—ठहर गई, रह गई । परि-वत् = ठहरना, रह जाना ।

८ (८) सोपग्रह—प्रातिपूर्वक, मन्वाकर । कादम्बरी पृ० १५६, सोपग्रह = मामुक्त, और भा पृ० २२० ।

८ (१०) सुखप्रश्न—कुशलप्रश्न । सुखरात्रि, सुखशय्या या सुखशयन पूछनेवाला व्यक्ति सौखरात्रिक, सौखशायिक या सौखशायनिक कहलाता या (पृच्छती सुस्तातादिभ्यः, वार्तिक ३।३।१) ।

८ (१०) विविक्तविलम्बा—सब प्रकार से निरल्लख विश्वास वाला । विविक्त = शुद्ध ।

८ (१२) देवानांप्रिय—आदरसूचक शब्द, भाग्यशाली ।

८ (१३) अनुयात्र—यात्रा के समय बड़े हुए बिदाई के वचन ।

८ (१४) नयनसङ्गतक—नयना का मिलाना या आँख लडाना ।

(१६) (परिक्रम्य)

(२०) अहो तु सलु वसुन्धरावधूजम्बूद्वीपवदनकपोलपत्रलेखाया नानाभाण्ड-
समृद्धाया (२१) अवन्तिमुन्दर्या उज्जयिन्याः परा श्रीः । (२२) इह हि—

- ६— (अ) पुण्यास्तावद्देवाभ्यासा द्विरदरयतुरगनिनदा धनुर्गुणानिःस्वना
(आ) दृश्यं थाव्यं विद्वद्वादाश्चतुरुदधिसमुदयफलेः कृता विपणिक्रिया ।
(इ) गीतं वाद्यं घृतं हास्यं कचिदपि च विटजनकथाः कचित्सकलाः कलाः
(ई) क्रीडा पक्षित्वास्त्रचेमाः प्रनुरकरवलयरशनास्यना गृहपङ्क्तयः ॥

(१) (परिक्रम्य)

(२) अपीदानीमभिपतकार्यनिष्पत्तिपूचकं किञ्चिन्निमित्तं पश्येयम् ।

(३) (विलोक्य)

(४) अयं तावत् काव्यध्वसनी कात्यायनगोत्रः शारदतीपुनः सारस्वतभद्रः
स्वगृहद्वारकोष्ठके श्वेतवर्णव्यप्राग्रहस्तः (५) चिन्तितोपस्थितास्वादितकाराक्षिभ्रूविकारै-
रभिनयन्निव चक्रपीडकक्रीडामनुभवति । (६) तत्काममस्मिन् काले प्रवृत्तप्रतिभासोतो-

समय विताते हुए ऐसे समय चण्डालिका के पास पहुँचूँ जब वह देवदत्ता
से अलग हो ।

* अहा ! वसुन्धरारूपी वधूटी के जम्बूद्वीपरूपी मुख कपोल पर पत्रलेखा
के समान उज्जयिनी की अपूर्व शोभा है जो तरह-तरह के भाण्ड से भरी-पुरी है ।

यहाँ घेवों का पवित्र अभ्यास; हाथी, रथ, घोड़ों का निनाद; धनुप्रत्यक्षा-
की टंकार; नाटक, काव्य, विद्वानों का शास्त्रार्थ; दूकानों पर लाए गए चारों समुद्रों
के माल की लेवावेची; गाना, बजाना, जूआ और हँसीठट्टा; कहीं धियों की गप्पें,
कहीं सय कलाएँ हैं । ये गृहपङ्क्तियों पालतू चिड़ियों की चहन्नहाहट से शुब्ध और
बहुत से कड़ों और फरधनियों की झनझनाहट से भरी हैं ।

(घूमकर) अब मैं मनचाहा काम पूरे होने का कोई सगुन देखूँ ।

८ (२०) वसुन्धरारूप—वक्ष्मा यह है कि समस्त श्रुतिवी वधूटी है, जम्बूद्वीप
उसका मुखकपोल है और उज्जयिनी उस कपोल पर बनी हुई पत्रलेखा है । पत्रलेखा =
चित्र में शोभा के लिए फूल-पत्तियों का अंकन । स्त्रियों मुख की शोभा के लिए इस प्रकार
फूल पत्तियों का चित्र बनाता था । ये चित्र चन्द्रन, वस्तुरी आदि से एवं पत्रों में घने हुए
आकृतियों के कटाव से लिये जाते थे । ऐसे कटावों को भक्तिच्छेद या पत्रच्छेद कहते थे ।

८ (२०) भाण्ड—(१) व्यापारी माल; (२) सजावट के आभूषण अलंकार ।

६ (४) स्वगृहद्वारकोष्ठके—घर के बरतों में । द्वारकोष्ठक—अग्निद्वार, घर के
सामने घने हुए द्वार में जो कोष्ठ या कमरे होते थे उन सबको 'द्वारकोष्ठक' कहा जाता था ।

६ (५) श्वेतवर्ण—शुद्ध या मरुद रंग ।

विवातिन सुप्रियमपि सुहृदमभ्यसूयन्ते कवयः । (७) किन्तु सरस्वतीलताप्रभवाना
वाक्पुष्पाकारा कर्णपूरम् (८) अद्वैताऽतिक्रमिषु वञ्चितमिवात्मानं मन्ये । (९) याव-
देनमुपसर्पामि । (१०) (उपेत्य)

(११) सखे कात्यायन किमिदमाकाशरोमन्थनं क्रियते ! (१२) किं ब्रवीषि—
“स एव मा काव्यपिशाचो बाह्वयति” इति । (१३) मा तावन् मो. अधो पुराणकाव्यपद-
च्छेदग्रन्थनचर्मकार (१४) किमिदं नष्टगोयूय इव गोपालको नृपदान्यन्वेपसे । (१५)
अथ सखे किं वस्तु परिगृह्य कृतः श्लोक । (१६) किं ब्रवीषि—“ननु सल्लु इममेव
वर्तमानरमणीय वसन्तसमयमाश्रित्य कृतः श्लोक” इति । (१७) अथ शक्य श्रोतुम् ?
किं ब्रवीषि—(१८) “नन्वेव भित्तिगतो वाच्यताम्” इति । (१९) कासी ? (२०)
(विलोक्य) (२१) अये अय—

(देखकर) अभी यह काव्यव्यसनी कात्यायनगोत्री शारद्वतीपुत्र सारस्वतभद्र अपने
घर के दरवाजे पर खड़िया के रंग में अंगुली साने हुए सोची बात के याद आ-
जाने का मजा ऑख और मोह मटकाकर सूचित करता हुआ चकडोर का खेल
खेल रहा है । ऐसे समय में बहती हुई प्रतिभा के स्रोत को तोड़ने वाले
अपने प्यारे मित्र पर भी कविगण बिगड़ पड़ते हैं । किन्तु सरस्वतीरूपी स्त्रिया से
पैदा हुए वचनरूपी फूलों को बिना कर्णपूर बनाए आगे बढ़ जाऊँ तो घाटे में
रहूँगा । पहले इससे मिल लूँ । (पास जाकर)

मित्र कात्यायन, क्या बिना चारे के जुगाली कर रहा है ? क्या कहता
है—“यही काव्य का पिशाच सिर चढ़ाकर मुझे होंक रहा है ।” अरे पुराने काव्य
पदों के टुकड़ों को गँठने वाले मोची, क्या तू तितर-बितर हुई गौवों को खोजने
वाले गाले के समान नए पदों को ढूँढ़ रहा है ? अरे मित्र किस चीज को लेकर
तू ने श्लोक बनाया है ? क्या कहता है ?—“सामने दिखाई पड़ने वाले इसी छबीले
वसन्त को लेकर श्लोक रचा है ।” क्या सुन सकता हूँ ? क्या कहता है ?—“भीत
पर लिखा है, पढ़ ले ।” कहाँ है वह ? अरे यह है—

६ (५) चक्रीडक्रीडा—चकडोर या चकभारी का खेल ।

६ (७) कर्णपूर = १-हृय नाम का आभूषण, २-कान में भरना ।

६ (११) आकाशरोमन्थन—बिना चारे के जुगाली करना ।

६ (१३) छेदग्रन्थनचर्मकार—फटे टुकड़ों को गँठनेवाला मोची । यह नये चमड़े
के जूते बनाने वाले से मित्र होता है । पुराने काव्य में से पद लेकर उन्हीं से नये श्लोक
बनाने वाले तुलसीदास कवियों पर कटाक्ष किया गया है । यहाँ पुराने काव्य और नये काव्य के
भेद की स्पष्टता प्पान देने योग्य है । कालिदास ने भी ‘पुराण काव्य’ और ‘नवकाव्य’ का
उल्लेख कुछ हर्षा प्रकाश की आलोचनापरक वृष्टभूमि में किया है—पुराणमिषेव न साधु मयं
न पामि काव्य नवमिष्यच्च—पुराण काव्य मर्मा अक्षुः नर्ही, नया काव्य मर्मा निवृष्ट नर्ही ।

१०—

- (अ) पुष्पस्यष्टाट्टहासः समदमघुकरः कोकिलावावदूकः ।
 (आ) श्रीमत्स्वेदावतारः प्रसुमगपवनः कर्कशोदामकामः ।
 (इ) बालामप्यप्रगल्भां वरतनुमवशां कामिने सम्प्रदातुं
 (ई) कालोऽयं तत्करिष्यत्यनुनयनिपुणं यन्न दूतीसहसम् ॥

(१) साधु भोः कल्याण खल्वेतन्निमित्तम् । (२) वयस्य, सत्पुत्र लाभ इव
 यशस्करः श्लोकोऽयमस्तु । (३) वाक्पुरोभागानामभागी भव । (४) अये केनैतद्
 हसितम् ? (५) (विलोक्य) (६) अये दर्दरकः पीठमर्दोऽप्यत्र । (७) अंधो !
 दर्दरक, किमत्र हास्यस्थानम् ? किं ब्रवीषि—(८) इदं सलु भवता समुद्राभ्युक्षणं नियते
 यद् बागीश्वरं चाग्निर्चयसि” इति । (९) मा तावदलोक्य किं वसन्तमासी न
 पुष्पोपहारमर्हति ? (१०) अपि च न त्वया श्रुतपूर्वम्—

११—

- (अ) सूर्य यजन्ति दीपैः
 (आ) समुद्रमद्भिर्वसन्तमपि पुण्यैः ।

फूलों का खिलखिलाना, मतवाला भौरा, कूकती कोयल, सुन्दर पसीने का
 आना, मीठी हवा, कर्कश और प्रचण्ड काम, इनसे युक्त यह वसन्त का समय नई
 वेवस तथा छरहरी वाला को कामी के पास पहुँचाने के लिये जो कर सकेगा वह
 खुशामद में चतुर हजारां दूतियों भी न कर पाएँगी ।

‘ श्रावस, यह शकुन काम साधने वाला है । मित्र, तेरा यह श्लोक सत्पुत्र-
 लाभ की तरह यशस्कर हो । तुझे काव्यालोचना का शिकार न बनना पड़े । अरे,
 यह कौन हँसा ? (देखकर) अरे यह तो पीठमर्द दर्दरक है । अरे दर्दरक, इसमें
 हँसने की क्या बात है ? क्या कहता है—“निश्चय ही आप बृहस्पतितुल्य कवि जी
 की बातों से पूजा करके मानो समुद्र पर जल छिड़क रहे हैं ।” ऐसा मत कह मूर्ख !
 क्या वसन्त मास की पूजा में फूलों की भेंट नहीं चढ़ाई जाती ? और भी क्या तूने
 पहले नहीं सुना—

१० (आ) श्रीमत्स्वेदावतारः—सात्त्विक भाव जनित स्वेद के लिए धीमन् कहा
 कहा गया है, श्रमजनित स्वेद के लिए नहीं ।

१० (इ) वरतनु—छरहरी, लकलका (बनारसी बोली) ।

१० (३) वाक्पुरोभागाना—वाणी या काव्य में दोष निकालना, काव्य की विपरीत
 आलोचना । पुरोभाग = दोषैकदर्शन (तुलना कीविधि, रघुवश १२।२२) । दोषैकदक् पुरो-
 भागी—अमर ।

१० (६) पीठमर्द—नायक-नायिका के बीच प्रेम साधन में सहायक—

पताकानायकस्तन्यः पीठमर्दो विचक्षणः ।

तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिद्नश्न तद्गुणैः ॥ दशरूपक ॥

(३) अर्चामो मगधन्ता

(३) वयमपि वागीश्वर वाग्भिः ॥ इति ।

(१) भवतु (२) दशितस्ते पीठमर्दस्मान् । (३) सेरितोऽनमवान् । (४)
अपि च वसन्तकालोऽयमच्छलः परभृतप्रलापानाम् । (५) ईदृश एवास्तु भवान् । (६)
साधयाम्यहम् । (७) (परिक्रम्य विलोक्य)

(८) अये अयमपरो विपुलामात्यः कामदत्ताप्राप्तकाव्यप्रतिष्ठानभूतः (९)
वैशिकवृत्त्याऽधोमुखः प्रस्थितः । (१०) आ गृहीतम्—एष देवदत्तासौभाग्यसकान्ते मूलदेवे
विपुलायमानात् (११) आत्मानमवधीरितमगच्छन् प्रणयकुञ्जः सत्त्वेप धान् ।
(१२) भवतु परिहासप्लवेनैनमवगाहिष्ये । (१३) (निर्दिश्य) (१४) भोः सुहृत्-
कुमुदाननवबोधयन् दिवाचन्द्रलीलयाऽति-कामसि । (१५) पृच्छामस्तावत् किञ्चित् ।

दीपो से सूर्य पूजा जाता है, पानी से समुद्र की पूजा होती है और वसन्त
की भी फूलों से पूजा होती है । हम भी बातों से बड़े कवि की पूजा कर रहे हैं ।

ठीक, तूने पीठमर्द का स्वभाव दिखला दिया । बस, तुझसे मिलना हो
चुका । और भी—यह वसन्तकाल कोयलों की मदभरी कूकों से सुहावना है, तू भी
ऐसा ही हो । मैं चला । (घूमकर और देखकर)

अरे, यह दूसरा आ गया विपुलामात्य जो कामदत्तारूपी प्राकृतकाव्य के
सम्भालने में चतुर था, पर अब वैशिक वृत्ति (वेश के मामलों) में मुँह की खाकर
(मुँह लटकाए) चला जा रहा है । अब समझा—मूलदेव के देवदत्ता के साथ फँस
जाने पर विपुल के अपमान से अपने को अपमानित मानकर यह भलानोस
जरूर मान से फूला हुआ है । होने दो—हँसी की डुबकी से मैं इसकी गहराई में
पैटूँगा । (इशारा करके) “अरे मित्ररूपी कुमुदो को खिलाए बिना तू दिन के
चन्द्रमा की तरह क्यों हमें छोड़े जा रहा है ?” तुझसे कुछ पूछना है—

११ (२) दशितस्ते पीठमर्द स्वभावः—दर्दरक ने जो यह कहा कि वागीश्वर को
घात से क्यों मिलाता है, उस पर विट का कहना है कि दर्दरक ने अपना पीठमर्द का
स्वभाव प्रकट कर दिया, अर्थात् नायिका को नायक से मिलावा उचित ही तो है । पर
पीठमर्द अपना स्वार्थ था उल्टा साधा करने के लिए उन दोनों को मिलने देना
नहीं चाहता ।

११ (८) विपुलामात्य = विपुल का अमात्य, विपुल की प्रेम साधना में उसे
परामर्श देनेवाला । कर्णपुत्र मूलदेव पहले विपुल में अनुरक्त था, पीछे यह देवदत्ता से प्रेम
करने लगा ।

११ (८) कामदत्ताप्राप्तकाव्यप्रतिष्ठानभूतः—यहाँ प्रतिष्ठान पद साभिप्राय
प्रयुक्त हुआ है जो सरकारी दफ्तर या कार्यालय के अर्थ में आता था । अमात्य नाम का
अधिकारी प्रतिष्ठान का संचालन करता था । प्राकृत या साधारण प्रतिष्ठान का अधिकारी
यदि किसी नगर के प्रतिष्ठान का प्रमुख नियुक्त कर दिया जाय तो जैसे यह अयफल रहे

१२—

(अ) कलाविज्ञानसम्भन्ना

(आ) गर्वैकत्रतशानिनी ।

(इ) न सत्त्वत्यन्तधीरा सा

(ई) सिन्ना ते निपुला मति ॥

(१) किं नवीपि—‘गृहीतो वञ्चितरुस्यार्थः’ । (२) किं तनाचाया मूलदेवो न ज्ञायत” इति । (३) मा मैमम् । (४) देवदत्तासुरतसकान्तस्यापि निपुलागतमैव हृदयम् । (५) किं वशीपि—“तदपि मूलदेवीय शाठ्यम्” इति । (६) आम् । (७) भगन् खलु सत्याज्जैः किमिदानीं स्वशिष्या विपुला नोपालभते (४) यया प्रणयसौपार्थ मधिगतः कर्णोपुत्र —

“कला और विज्ञान से भरी हुई, सदा गरूर में मस्त वह तेरी विपुल बुद्धि निश्चित ही अतिग्रीव थी जो वह स्त्रिन्न नहीं हुई ।”

(दूसरा अर्थ) क्या तुम जानते हो कि कलाओं के प्रयोग ज्ञानसे युक्त, गरबोले स्वभाववाली वह विपुला अन्त तक धीरे न बनी रहने के कारण रोद को प्राप्त हुई ?

क्या कहता है—“तुम्हारे व्यङ्ग्य का मतलब मैंने समझ लिया । क्या गुरु मूलदेव की चटई मशहूर नहीं ?” नहीं, ऐसी बात नहीं है । देवदत्ता के साथ दिल लगने पर भी उसकी तनीयत निपुला में ही लगी है । क्या कहता है—“वह भी मूलदेवी बदमाशी है ।” ठीक, आप सच्चे-सीधे अपनी शिष्या निपुला को उलाहना क्यों नहीं देते, जिस प्रेम रूठी को मनाने कर्णोपुत्र आया था ?

ऐसे ही निपुला के साधारण प्रेम के सँभालने तक जिसके बुद्धिप्रकर्ष की सीमा थी, ऐसा विपुलामात्र वेरा के मामलों में मात खा गया, इसीलिए वह कर्णोपुत्र के मन को देवदत्ता की ओर से मोड़कर विपुला में अनुरक्त न कर सका । यहाँ कामदत्ता नामक प्राकृत भाषा के किसी काव्य की ओर संकेत है, उसमें प्रेम व्यवहार का जो स्तर था वहाँ तक उस विपुलामात्र की गति थी । इस वाक्य की यह भी व्यञ्जना थी कि प्राकृत काव्यों में प्रेम का जो सीधा साधा स्तर था, सम्स्कृत काव्य में वह उसमें अधिक विरसित या व्यञ्जनापूर्ण या नाकर्मिक से युक्त होता था । अतएव साधारण वेरया निपुला का पक्षपाती नागरिक वेरा का चतुराई का सफलता से गमना न कर सका ।

११ (३) सेवितोऽग्रभगान्—विट दर्दरक को टरकाने के लिये यह कहता है कि आपसे मिलना हो चुका । आदरार्थक अग्रभगान् पद इमलिए प्रयुक्त किया गया है कि दर्दरक को विट का वाक्य उरा न लगे ।

११ (४) अञ्जल—अच्छा, सुहावना । दूसरा अर्थ छल रहित ।

११ (४) परमृतप्रलाप—कायल का बालना । परमृत—कायल । परमृत का दूसरा अर्थ वेरया भी यहाँ संगत है । परमृतप्रलापानामञ्जल—दर्दरक के पक्ष में हम वाक्य का अर्थ यह होगा—तू परमृत अर्थात् वेरयाओं या रम्यता के वचनों को बिना छल व पहुँचा ।

- १३— (अ) प्राप्त इव शरत्कालः
 (आ) प्रावृट्कलुषा नदी प्रसादयितुम् ।
 (इ) क्षिप्तः कदर्थयित्वा
 (ई) हेमन्ते तालवृन्त इव ॥

(१) किं वयीपि—“कदा कथम्” इति । (२) ससे श्रूयताम् । (३) ननु-
 कतिपयाहमिवाद्य मद्द्वितीयः कर्णीपुत्रो विपुलामनुनेतुमभिगतः । (४) अथ द्वारकोष्ठकस्थे-
 नानेन कोषागाधपरीक्षार्थमहमादितः सोपग्रहं कल्पितः । (५) सोऽहं प्रियवचनो-
 पन्यासेनाभिगतश्चैनाम् । (६) साऽपि चेप्यादोषदूषितलावण्या हृष्ट्वैव मां (७)
 ‘कुतोऽयमायास’ इत्युक्त्वा पराङ्मुखी संवृत्ता । (८) ततः सपरिहासमुक्ता मया—

- १४— (अ) किमुक्ता केन त्वं प्रतिवच इदं कस्य वचसः
 (आ) तदावृत्ता भूत्वा यद् वदनचन्द्रेण वनिते ।
 (इ) प्रसन्ना त्वा दृष्ट्वा भवति हि मम प्रीतिरतुला
 (ई) भुजङ्गीव क्रुद्धा मुकुटिरियमुदवेजयति माम् ॥ इति

बरसात में गदली हुई नदी को प्रसन्न करने के लिये शरत्काल की तरह वह
 आया था । पर सरदी में ताड़ के पंखे की भाँति वेहज्जती से वह फँक दिया गया ।

क्या कहता है—“कहाँ कैसे ?” मित्र सुन । कुछ दिन पहले की तरह
 आज मेरे साथ कर्णीपुत्र विपुला को मनाने गया । उसकी ब्योड़ी पर खड़े होकर
 उसने क्रोध की गहराई जानने के लिये पहले मुझे प्रीतिपूर्वक मेजा । मैं भीठी बात
 कहते हुए उसके पास गया । डाह से जली-भुनी उस सलोनी ने मुझे देखते
 ही ‘फिस लिये यह सब मेहनत है’ यह कहकर मुँह फिरा लिया । इस पर
 मैंने हँसी से कहा ।

तुझसे फिसने क्या कहा ? यह उत्तर फिस बात का है ? वनिते, जरा सामने
 घूमकर पुन उसे अपने चन्द्रमुख से दुहरा । तुझे प्रसन्न देख कर मेरी प्रीति

११ (१२) प्लाव—डुबकी, डोंगी ।

१२ (अ) कलाविज्ञानसम्पन्ना—कला नृत्यसंगीतादि; विज्ञान कामतंत्र का
 शास्त्रीय ज्ञान ।

१२ (ई) ते विपुलामतिः—समस्त पद का संज्ञेत यह है कि विपुला के हित में
 लगी तेरा बुद्धि पर्याप्त धैर्य के अभाव से बीच में ही असफल हो गई ।

१२ (ई) ते मतिः—क्या तुम यह मानते हो ? (प्रश्नवाचक अर्थ) ।

१२ (१) वञ्चितक—व्यङ्ग्य । १२ वें श्लोक का व्यंग्य इस प्रकार है—कला
 विज्ञानसम्पन्न, सदा गरूर में भरी रहनेवाली तेरी विपुला मति अति धीर नहीं है जो इस
 प्रकार प्लित हुई ।

१२ (४) द्वारकोष्ठक—ब्योड़ी, अलिन्द । घर के बाहरी द्वार का प्रकोष्ठ ।

१२ (४) अगाध—गहराई, यहाँ यह विशेष्य की भाँति प्रयुक्त है ।

- (१) तदनन्तरमवन्तिमुन्दर्या सख्याऽमिहिता—
 १५— (अ) किं कृत्वा भृकुटीतरङ्गविपमं रोपोपरक्तं मुखं
 (आ) निःश्वासज्वरिताधरं प्रियसखं प्राप्तं न संभापसे ।
 (इ) सौभाग्येन हि शत्रुकर्म कुरुषे स्त्रीगर्वमेधाविनि
 (ई) मानं मानिनि मुञ्च सर्वमचिरादत्यायतं छिद्यते ॥ इति ।

(१) अथ गुणवती परिपदिति कृत्वा कर्णीपुत्रोऽभिगतः । (२) स चानया प्रणिपातावनतः सरोपमवधूयामिहितः—

- १६— (अ) कृत्वा विग्रहभागतोऽसि नियतं निर्वासितो वा तया
 (आ) कान्तालापविनोदने किञ्च वयं विश्रामभूमिस्तव ।
 (इ) किं नैराश्यनिरुत्तुकस्य मनसः संघुञ्ज्येमे पुनः
 (ई) पीतेनात्र किमीपधेन कटुना सुस्वागतं गम्यताम् ॥ इति ।
 (१) किं ववीपि—“यद्येवं तामेवाविनीतां तावदेनामुपालब्धुं गच्छामि” इति ।
 (२) छन्दतः (३) तयागृहीतवाक्यो भवानस्तु । (४) साधयामस्तावत् ।

बेहिसाब हो जाती है । नागिन की तरह गुस्से से भरी यह तेरी भृकुटी मुझे डरपा रही है ।

इसके बाद उसकी सखी अवन्तिमुन्दरी ने कहा—क्यों भृकुटी टेढ़ी करके क्रोध से लाल मुँह करके, साँस से अधरों को झुलसाकर मित्र के आने पर भी नहीं बोलती ? गर्व से फूली हुई तू अपने सौभाग्य से बैर करती है । मानिनी ! मान छोड़, सब चीजें बहुत खींचने से जल्दी ही टूट जाती हैं ।

‘मन-मिलाव की बैठक सदा भली है’ यह मानकर कर्णीपुत्र भी वहाँ पहुँच गया । उसे झुका हुआ देखकर उसने क्रोध से झटक कर कहा—‘तू लड़ाई करके आया है, या जरूर उसने निकाल बाहर किया है । चुहलभरी बातचीत से मन बहलाने के लिये तूने मुझे थकान मिटानेवाली अपनी आरामगाह समझ रक्खा है ? मुझे अरमानोंवाले मेरे मन को जलाने से क्या मतलब ? कड़वी दवा पीने से क्या फायदा ? जैसे भले आया है वैसे ही वापिस जा ।’

क्या कहता है ?—“यदि ऐसा है तो पहले उस उजड़ के पास ही डाढ़-हपट करने जाता हूँ ।” जा उससे मनमानी बातें कर । अब मैं चला । (धूमकर)

१५ (१) गुणवती परिपत्—यह मुहावरा इस अर्थ में था कि मिलना-जुलना सदा अच्छा ही है । प्रवान या चौधरी अपने अन्तरंग सदस्यों को बुलाकर जो बैठक करते थे, चमारली बोली में वह मेल-मिलाव की बैठक या ‘अठकौमल’ कहलाती थी । अन्तरंग परिपद् को ही सम्भवतः गुणवती माना जाता था ।

१६ (१) तामेवाविनीतां—इसका पाठ रामकृष्ण कवि के मंस्करण में ‘तामेवा-विनीतां तावदेनामुपालब्धुं’ है । मद्रास गवर्नमेन्ट ओरियेन्टल लाइब्रेरी की प्रति (R२०२५)

(५) (परिक्रम्य)

(६) हा धिक् अपरं मूर्तिमत् गमनविष्णुमुपस्थितम् । (७) एष हि पाणिनि-पूर्वको दन्दशकपुत्रो दत्तकलशिर्नाम वैयाकरणः प्रतिमुखमेवोपस्थितोऽस्मान् । (८) अपीदानीमधिघ्नेनास्य वाग्यागुरामुत्तरेयम् । (९) संरब्धमिवेनं पश्यामि । (१०) आम् वादविघटितेनानेन भवितव्यम् । (११) तथा हि । (१२) अस्य कलहकण्डू-वन्धुरा वार्गापदपि स्पृष्टा देवकुलघण्टेवानुस्वनति । (१३) प्रियगणिकाश्चैप धान्नः । (१४) ता किल नृपुरसेनाया दुहितरं रशनावतिक्र नाम व्यपदिशति । (१५) भोः कष्टम् । (१६) करभकण्डावसत्ता वल्लकीमिव शोचामि ता रशनावतिक्राम् । (१७) एष उद्यम्याग्रहस्तयभिमापत एवास्मान् ।

(१८) किमाह भवान्—“अपि सुखमशयिष्ठाः” इति । (१९) का गतिः, गवतु सभाजयिष्याभ्येनम् । (२०) स्वागतमक्षरकोष्ठागाराय । (२१) वयस्य दत्तकलशे संरब्धमिव त्वां पश्यामि । (२२) कचिन् कुशलम् । (२३) किं भवानाह—“एषोऽस्मि

हा धिक् ! यह हमारे मार्ग का दूसरा देहधारी विघ्न आ गया । दन्दशूक का पुत्र पाणिनि दत्तकलशि नामका वैयाकरण मेरे ठीक सामने ही मौजूद है । अब इसके वागजाल से सकुशल बच निकलना है । इसे घबड़ाया हुआ सा देखता हूँ । ठीक, यह बहस में कहीं रगड़ा गया है । वैसे भी, कलह की खुजलाहट से भरी इसकी चाणी जरा-सा भी छूने पर मंदिर के घण्टे की तरह टनटनाने लगती है । यह भला-मानस गणिका-प्रिय है । अपनी चहेती को नृपुरसेना की पुत्री रशनावती नाम से बताया करता है । हा ! ऊँट के गले पड़ी धीणा की तरह उस विचारी रशनावती के लिये अफसोस है । यह हाथ उठाकर मुझसे ही कह रहा है ।

तूने क्या कहा—“सखे, सुखसे तो सोया ?” अब इससे बचने का क्या उपाय है ? अच्छा तो इसका स्तकार करूँगा । अक्षरो से भरे कोठार का स्वागत । मित्र

में पाठ यह है—तामेवाविर्भातां तावदेवोपालब्धुं—अर्थात् उसमें एना पद नहीं है जो अर्थ में कीटनाई उत्पन्न करता है । त्रिरेण्वम् वेधो का पाठ यह है—तां तावदेनामुपालब्धुं । मद्राम गयर्नमेन्ट ओरियेन्टल लाइब्रेरी की दूसरी प्रति (R २७२६) में गच्छामि की जगह इच्छामि पाठ है ।

१६ (२) छन्दतः गृहीतमाक्यं—दिल खोलकर बातें करना ।

१६ (७) पाणिनिपूर्वक—पाणिनि जिसके नाम से पहले लगा है ।

१६ (१०) वादविघटित—वाद में पिटा हुआ या हारा हुआ ।

१६ (१२) देवकुलघण्टा—मन्दिर का झल्लाता हुआ घंटा जो तनिक हिलने से बहुत देर तक बजता रहता है ।

१६ (१४) व्यपदिशति—कहा करता है, बताया करता है ।

१६ (१४) तपस्विनी—वेचारी, असहाय ।

१६ (२०) अक्षरकोष्ठागार—शब्दों का कोठार; वैयाकरण के लिए बढ़िया व्यंग्य है ।

वतिभूमिरिव संघातवलिभिः कातन्त्रिकैरवस्कन्दितः' इति । (२४) हन्त प्रवृत्तं काकोलूकम् । (२५) सखे दिष्ट्या त्वामलूनपक्षं पश्यामि । (२६) किं ब्रवीषि—“का चेदानीं मम वैयाकरणपारश्वेषु कातन्त्रिकेष्वस्था” इति । (२७) यथातथाऽस्तु भवतः । (२८) साधयाम्यहम् ।

(२९) किं ब्रवीषि—“क सञ्चिचीर्षुः, (३०) तिष्ठ तावत्, किमसि दुद्रूपः”

दत्तकलशि, तुझे मैं घबराया सा देखता हूँ । कुशल तो है ?' तूने क्या कहा—
“मरा मांस खानेवाले डोम-कौओं की तरह कातंत्री वैयाकरण मुझ पर दूट पड़े हैं ।”
हाय ! कौओं और उल्लुओं में मच गई । मित्र, बधाई है कि मैं तुझे बिना परनुचे देखता हूँ । क्या कहता है—“इन हरामी कातंत्र वैयाकरणों को मैं समझता क्या हूँ ?” आप जैसे हैं वैसे ही रहें, मैं चला ।

क्या कहता है—“कहाँ चला ? (सञ्चिचीर्षुः) अभी ठहर । ऐसी दौड़

१६ (२३) संघातवलिभिः—मरा हुआ मांस खानेवाले डोम-कौए ।

१६ (२३) कातन्त्रिक—कातन्त्र व्याकरण के विद्वान् । गुप्तकाल में पाणिनीय वैयाकरण और कातंत्र वैयाकरणों में बड़ी नांक-फाँक चलती थी, विशेषतः पश्चिम भारत में । उसी की ओर संकेत है ।

१६ (२३) अवस्कन्दित—अवस्थब्ध । अवस्कन्द = मरना मार कर दूट पड़ना, अकस्मात् हमला करना ।

१६ (२७) यथातथाऽस्तु भवतः—विद प्रकट अर्थ में मानो उसका शुभ चाहता है, किन्तु वस्तुतः यह उसके अहंकार पर व्यंग्य कस रहा है कि कातन्त्रिकों के मुकाबले में भारू नू अपनी ऐसी-तैसी करा ले । यथातथा = ऐसी-तैसी । यह गुप्तकालीन बोलचाल का मुहावरा था । दूसरा अर्थ, आप जैसे हैं वैसे रहें, अर्थात् कातन्त्रों से भिड़कर भी आपकी कुशल बनी रहे । इसका व्यंग्यार्थ बिल्कुल दूसरा है, अर्थात् आपकी ऐसी-तैसी हो ।

१६ (२९) सञ्चिचीर्षुः—चर् धातु के सञ्चन्तरूप चिचीर्षंति से 'सनाशंभिच्च डः'

(३।२।१६८) से उपन्ययान्त कृदन्त 'जाने की इच्छा वाला ।'

१६ (३०) दुद्रूपः—दौड़-धूप का इच्छुक । द्रु धातु के सञ्चन्तरूप दुद्रूपति से उत्पत्त्य करके कर्तृवाचक बना हुआ रूप । दत्तकलशि के 'सञ्चिचीर्षु' 'दुद्रूप' जैसे भारो-भरकम कृदन्त प्रयोगों से चिढ़कर विट कहता है—“अरे सीधी सीधी चलतू मापा बोल ।' माघ, भट्टि आदि काव्यों में कृदन्त तद्धित शब्दप्रयोगों की जो प्रवृत्ति देयी जाती है, युग की उस प्रवृत्ति पर यहाँ व्यंग्य है । विट ने वैसे प्रयोगों को वैयाकरणों का वाग्व्यसन कहा है । ज्ञात होता है कि वाद-विवाद के लिये इस प्रकार के शब्द ढूँढ़ ढूँढ़कर लाए जाते थे । उदाहरण के लिये—

सोऽप्येष्ट वेदाखिदशानयष्ट पितृनताप्येति सममंस्त वन्धून् ।

व्यजेष्ट पड्वर्गमरीमरस्त समूलघातं न्यवधीदरीक्ष ॥

(भट्टिकाव्य १।२)

इति । (३१) हा धिक्, प्रसीदतु भवान् । (३२) नार्हस्यस्मान् एवविधैः काष्ठप्रहार-
निन्दुरैर्वागशनिभिरमिहन्तुम् । (३३) साधु व्यावहारिक्या वाचा वद । (३४)
अभाजन हि वयमीदृशाना करभोदगारदुर्भेगाना श्रोत्रविपनिपेकभूताना वैयाकरणवाग्-
व्यसनानाम् । (३५) किं वीर्यम्—“कथमहमिदानीमनेकगवदूकनादिवृषभविघटनो-
पाजिताम्” (३६) अनेकधातुशतघ्नी वाचमुत्सृज्य स्त्रीशरीरमित्र माधुर्यकोमला
करिष्यामि” । (३७) अहो अनाथः खलसि । (३८) कुतः—

१७—

(अ) स्वेरालापे स्त्रीव्यस्योपचारै

(आ) कार्यारम्भे लोकगदाश्रये च ।

(इ) कं सश्लेषं कष्टशब्दाक्षराणा

(ई) पुष्पापीठे कष्टकाना ययैव ॥

धूप क्या ?” हाय, तू माफ कर । इस तरह ढंढे की मार को तरह निदुर वाग्जनों
से मुझे मत कूट । भले आदमियों वाली बलनू भाषा बोल । ऊँट की बल-
बलाहट जैसी अशोभन, कानों में विप की तरह चू पड़ने वाली वैयाकरणों की इस किट-
किटाहट से हमें बचा । क्या करता है—“अनेक गडगडिये तार्किकों की बल-
मिहन्त से उत्पन्न हुई और अनेक धातुओं से ढाली गई शतघ्नी के समान गडगडाने
वाली शैली को छोड़कर मैं अब कैसे उसे स्त्री के सुकुमार शरीर जैसी बनाऊँ ?”
अहो, तब तो तू अनाथ है ।

१७—गपशप में, स्त्री और मित्र की खातिर में, अदालती मामले के अर्जी-
दावे में, कहावतों में, दाँततोड़ शब्द और अक्षरों का क्या मेल, जैसे फूल के सेहरे
और फोंटों का ?

१६ (३३) व्यावहारिक्या वाचा—बोलचाल की सीधी सारी भाषा ।

१६ (३५) वृषभविघटन—बैल मिहन्त ।

१६ (३६) अनेकधातुशतघ्नी—अनेक धातुओं से ढाली हुई शतघ्नी । अनेक
धातुओं की गडगडाहट से मरी हुई वाक्य-शैली ।

१६ (३७) अनाथ—असहाय । इसका दूसरा अर्थ बिना नाथ वाला बैल ।
शैली के विषय में विट के समझने से जब दत्तकलशि पर कोई असर न हुआ तो वह खोकर
कहता है—हाय, तू तो मेरे नाथका का बैल है ।

१७ (अ) स्वेरालाप—मौज मजे की बातचीत, गपशप ।

१७ (आ) कार्यारम्भ—मुकदमे के अर्जीदावे में । कार्य = अदालती मामला,
मुकदमा, दावा । मुकदमे में यह शब्द इस विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता था । पादतादितक
में घादी प्रतिवादी या मुकदमे से सम्बन्धित व्यक्तियों को कार्यक कहा गया है—

अधिकरणगतोऽपि क्रोशता कार्यकाणाम् । (श्लोक २५)

आरम्भ—मुकदमे के शुरू में दाखिल किया हुआ अर्जीदावा जिसमें घादी अपना
नामना पेश करता है । विट का आशय है कि अर्जीदावे की भाषा सीधी-सारी व्यावहारिक
होनी चाहिए । उसमें व्याकरण के डंढे मेढ़े प्रयोगों का प्रयोग उचित नहीं ।

(१) किमाह भवान्—“स्थाने सलु सा पुश्चली शब्दशीपरमाभापिता रुष्टा” इति । (२) तत्तेय पुश्चतीति ॥ (३) किं व्रीपि—“प्रिया नाम केनोच्यते” इति (४) (विमृश्य) (५) आ मिदितम् (६) रशनायतिका एतच्चारुति । (७) नातश्च भूय कष्टतर यत्सा प्रचुरपादपान्तरचारिणी कोकिला (८), स्वभावसर विल्वपादपमाश्रिता । (९) कष्ट भो महदिदं परिहासस्तु, आस्वादयिष्यामस्ताम् ।

(१०) वयस्य दत्तकलशे, एव स्वभावदक्षिणस्य भवत कथं कामिनी निरक्तेति पर मे कुतूहलं थोतुम् । (११) एतदुच्यता तावत् विस्तरत । (१२) किमाह भवान्—“साधु सा पुश्चली पूर्वेषु पर्वकाले (१३) वेशकोष्ठकमुपेत्य रिरसया मा हविर्जुह्वपन्त जिहृक्षतीतीपासीदत् । (१४) ततोऽहमेनामबोचम्—(१५) वृषलि हविर्जुह्वपन्त मा मा स्राक्षी” इति । (१६) हन्त ! इदं तत् दुष्टगान्धर्व नाम । (१७) मुकुमार

तूने क्या कहा—“जरूर वह छिनाल है जो मेरी ऐसी मीठी बोली से भी रूठ गई ।” यह छिनाल फौन हुई ? क्या कहता है—“उमे प्रिया कैसे कहा जाय ?” (सोचकर) हाँ, समझ गया । रशनायती इसी लायक है, क्योंकि इससे बढ़कर दुख की कोई बात नहीं कि अमराई में निचरनेवाली कोयल, स्वभाव से कनीले बेल के पेड़ पर बैठ गई । हाय, इस दर्द में भी बड़ा मना है । तो मैं उसका मजा लूँ ।

मित्र दत्तकलशि, तैरे जैसे मिठोले भलेमानुस से वह औरत कैसे फिरट हो गई ? यह सुनने की मुझे बड़ी चाह है । खोलकर सन बात कह । तूने क्या कहा—“जरूर वह छिनाल है । फलके दिन पर्णकाल में वेश के अलिन्द में आकर मदमाती होकर वह मेरे हवन करते समय मुझे मानो अंक्रारती हुई पास आकर बैठ गई । इस पर मैंने उससे कहा—दोगरी, होम करते हुए मुझ मत छू ।” हाय, इसी को निगडी मुलाकात कहते हैं । कामिनी को भी अपना बनाना नाजुक काम है । यह

१७ (आ) लोक्याद—कहावत, आभाषक । लोक्याद या कहावत को यातयात के याच में डालते हुए जैसा कहावत हा वैसा हा रचना आवश्यक है । उसमें अपना नार स कठिन शब्द का मेल नहीं बैठाया जा सकता ।

१७ (ई) पुष्पापीड—पूरा का सेहरा या मुकट ।

१७ (२) शब्दशीपर—सुन्दर सुकमार वचन, माटे बाल ।

१७ (१०) स्वभावदक्षिण—स्वभाव का अनुकूल, मिठोला ।

१७ (१३) वेशाश्रक—वेश का बाहरा अलिन्द या थरोटा । काष्ठ से तापय यहाँ द्वारकोष्ठक से है जो कि प्रवेशद्वार हाता था और निममें कुछ कमरे या घने रहते थे । वेश क बाहर होने के कारण उसमें पूनापाठ करना सम्भव था ।

१७ (१५) वृषली—एक गाली, दागला ।

१७ (१६) दुष्ट गान्धर्व—विगदा भेंट । गान्धर्व—कामराति स सा पुरष का मिलना, मुलाकात ।

खलु कामिनीसंपरिग्रहः । (१८) कलहोऽयमुपचारो नु । (१९) मा तावदलोकज्ञ
शुक्तं नाम त्वया प्रणयोपगता कामिनी विरागयितुम् । (२०) स्त्रीजनोऽपि त्वया कष्ट-
शब्दनिष्ठुराभिव्याकरणविस्फुलिङ्गाभिर्वाभिरुत्त्रासयितव्यो भवति । (२१) इदमपि
न त्वया श्रुतपूर्वम्—

१८—

(अ) रत्यर्थिनी रहसि यः सुकुमारचित्ता

(आ) कान्ता स्वभावमधुराक्षरलालनीयाम् ।

(इ) वागचिंषा स्पृशति कर्णविरेचनेन

(ई) रक्ता स वादयति वल्लकिमुल्मुकेन ॥

(१) सर्वथा दुष्करकारिणी खलु रक्षनावतिका, या भक्तमनेन कल्पयति । (२)
अथवा तु तस्याः शापः । (३) वयस्य दत्तकलशे श्रुतं श्रोत्ररसायनम् । (४) स्वस्ति
भवति । (५) साधयाम्यहम् । (६) (परिक्रम्य)

छू-छों किर्बकिच की जड़ है । अरे नादान, प्यार करती कामिनी को दुत्कार कर तूने
ठीक नहीं किया । कड़े शब्दों से निटुर बनी और व्याकरण की चिनगारियों से भरी
अपनी बातों से तू स्त्रियों को भी चिहुकाता है । क्या तूने पहले यह नहीं सुना—

१८—जो एकान्त में काम से भरी, सुकुमार नित्तवाली, सहज मीठे शब्दों से
प्यार करने योग्य, अनुरक्त स्त्री को कान फोड़ने वाली वाणी रूपी लपट से छूता है वह
मानों लुआठ (जलती लकड़ी) से वीणा बजाता है ।

जरूर रक्षनावतिका टेढ़ा काम साधने वाली है जो इस जैसे छूट से
यारी रखती है । अथवा यह उसके लिये पूरा शाप है । मित्र दत्तकलशि, तेरे
द्वारा कान में चुआया अमृत सुन लिया । तेरा भला हो । मैं जाता हूँ ।

(धूमकर)

१७ (१७) कामिनीसंपरिग्रह—स्त्री का अपगाना, स्वीकार करना । बिट का
आशय है कि रमणेच्छा से युक्त भी स्त्री का अपगाना नाशुक व्यवहार चाहता है ।

१७ (१८) उपचार—धार्मिक छूत छात । बिट का आशय है कि प्रेस के बीच
में छूत छात बरतने से मनमुटाव बढ़ जाता है ।

१८ (३) कर्णविरेचन—कान वहाने वाली । इतनी जोर से कड़ी हुई कि कान
फूटकर रहने लगे ।

१८ (६) रक्ता—स्त्री पक्ष में अनुरक्त; वल्लकी पक्ष में रागवती, जिसके तार राग
के अनुकूल हैं ।

१८ (१) या भक्तमनेन कल्पयति—भक्त कल्पयति मुहावरे के रूप में प्रयुक्त
हुआ है, अर्थात् जो हम जैसे हूँ के साथ भात-पानी (मेल जोल) या दोस्ती रखती है ।
भात पानी रखना आज भी भोजपुरी में बोला जाता है ।

(७) इदमपर मनुष्यकान्तारमुपस्थितम् । (८) एष हि धर्मासनिकपुत्र पवित्रकी नाम प्रच्छन्नपुश्चलीकी (९) ऽचौक्ष चौक्षवादितः (१०) राजमार्गेऽविदितजनसस्पर्श

यह दूसरा मनुष्यों का जमावड़ा हाजिर है। यह धर्मासनिक का पुत्र पवित्रक नामका छिपा छिपरा पवित्रताहीन क्रिन्तु वैष्णव कहलाने वाला, राजमार्ग

१८ (७) मनुष्यकान्तार—मनुष्यों का जगल, लोगों का जमावड़ा ।

१८ (८) धर्मासनिक—धर्मासन का अध्यक्ष, न्यायाध्यक्ष ।

१८ (९) प्रच्छन्नपुश्चलीकः—छिपकर पुश्चली रखने वाला ।

१८ (१०) अचौक्ष—चौक्ष शब्द के दो अर्थ हैं (१) चौखा, खुद, पवित्र, सत्त्वा । (२) भागवतो का एक सम्प्रदायविशेष जो बहुत दुभाट्ट बरतता था । भविष्यवक्त्र के अनुसार ये एकायन कहलाते थे—

चौक्ष भागवतनिरोधा ये एकायना इति प्रसिद्धा ।

भागवत में जिन्हें भगवत्प्रपन्न एकान्तिन् कहा है, वे ये ही एकायन जान पड़ते हैं (भा० पा० १३।२०) । भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में भी चौक्ष का उल्लेख है—

परिव्राण् मुनिशास्त्रेषु चौक्षेषु श्रोत्रियेषु च ।

शिष्टा ये चैव लिङ्गस्था सस्वित तेषु योजयेत् ॥

(नाट्यशास्त्र २७।३६ निर्णयसागर सत्करण)

श्री मनमोहन घोष ने नाट्यशास्त्र के अपने अंग्रेजी अनुवाद में चौक्षेषु पाठ माना है और एक प्रति का पाठ चौक्षेषु लिखा है । निर्णयसागर सत्करण में भी दिव्यना में एक प्रति का पाठ चौक्षेषु है, यद्यपि मूल में अशुद्ध पाठ वाक्येषु रक्ष्यता गया है ।

पावताडितक में भी चौक्ष का उल्लेख आया है—एष हि ॥ वेत्तदण्डकुण्डिकाभाण्ड सूचितो वृषलचौक्षामायो विष्णुदास (२४।५) । यहाँ वेत्तदण्ड और कुण्डिकाभाण्ड चौक्ष की पहचान बताई है ।

मृच्छकटिक में दण्ड और कुण्डिका पात्र वाले एक परिव्राजक का उल्लेख है जो विगड़े हुए हाथों के सामने बट गया था—

ततस्तेन दुष्टहस्तिना करचरणरदनै कुल्लवलिनीमिव नगरांमुजयिनीमवगाह मानेन समासादित परिव्राजकः । त च परिभ्रष्टदण्डकुण्डिकाभाजन शीररै सिक्त्वा दन्तान्तरे चिप्त प्रेक्ष्य पुनरप्युद्धुष्ट जनेन ।

अर्थात् वह बिगड़ा हुआ हाथा सूँढ़, पैर और दाँता से उज्जयिनी की सूँढ़ता हुआ परिव्राजक के पास आ गया । मुनिना कटो डंडा छुटकर एक ओर जा गिरा और वह हाथों के दाँता के बीच चला गया । इस प्रकार दण्डकुण्डिका वाला यह परिव्राजक चौक्ष भागवत ही ज्ञात होता है । चौक्ष सम्प्रदायी इन तान सूचनाओं के लिये मैं श्री चन्द्रवर्मा पाण्डेय का अनुगृहीत हूँ (दक्षिण उनका लेख, 'मृच्छकटिक का परिव्राजक' नई धारा, अक्टूबर १९५२, पृ० ३-४) । गुजरात में स्वामी नारायण सम्प्रदाय के लोग जो बहुत दुभाट्ट या छुँ छुँ मानते हैं चौखलिया कहलाते हैं । ज्ञात होता है कि प्राचीन चौक्ष शब्द की परम्परा उस नाम में बच गई है ।

परिहरन्निव संयुहीतार्द्रवसनः सकुंचितसर्वाङ्गो (११) नासिकाद्वयमंगुलीद्वयेन पिधाय चत्वरशिवपीठिकाभाश्रित्य रिशतः । (१२) हास्यः सल्लेप तपस्वी । (१३) यथा तावदयं मत्तकाशिन्या दुहितरं वारुणिकां नाम बन्धकीमनुरक्त इति श्रूयते । (१४) तदिदानीं किमयमाकुलो भवति । (१५) इदमस्या विनयप्रचारपुस्तकमुद्घाट्यते ।

(१६) अंधो पवित्रक, किमिदमुष्णस्थलीकूर्मलीलया स्वीयते । (१७) किं ब्रवीषि—“राजमार्गे सुलभमविदितजनसंस्पर्शं परिहरामि” इति । (१८) अंधो अविज्ञातजनसंस्पर्शो नाम परिह्रियते भवता । (१९) वारुणीजघनपात्रं जाह्नवीतीर्थमिव परमपवित्रं ननु । (२०) किं ब्रवीषि—“नैतदस्ति” इति । (२१) किमिदं गोपालकुले

में अनजाने लोगों की मानो छूत बचाता हुआ, गीले कपड़े समेट कर सारा बदन सिकोड़ता हुआ, उँगलियों से दोनों नक़्क़ दबाए हुए, चौराहे पर शिवपिंडी के सहारे खड़ा है। ज़रूर यह बेचारा हास्यपद है, क्योंकि यह मत्तकाशिनी की पुत्री वारुणिका नाम की टकहिया (बन्धकी) बेश्या पर आशिक है, ऐसा सुना जाता है। इस समय यह घबराया हुआ क्यों है? तो उसकी आबारागर्दी के पोथों की पिटारी खोलता हूँ।

अरे पवित्रक, क्यों तू धूप सेकते हुए कछुए की तरह गर्दन बाहर-भीतर करते हुए भ्रमड़ा है? क्या कहा—“राजमार्ग में आने-जानेवाले लोगों की सहज छूत बचा रहा हूँ।” ओ हो, तू अनजानों की छूत से छटकता है, पर क्या वारुणी

रामकृष्ण कृषि की मुद्रित प्रति में ‘आर्चवः चौचवारितः’ पाठ है जो ब्राह्मणकोर विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति (संख्या ५६९५ डी०) का पाठ भी है। शेष तीन प्रतियों में (मद्रास प्राच्य हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह प्रति R २७२५ और R २७२६ एवं त्रिवेन्द्रम महाराज के पोथीखाने की प्रति १४६१ B) ‘अर्चवः’ पाठ ही है जो मूलपाठ ज्ञात होता है। इसी प्रकार चौचवारितः पाठ केवल मद्रासप्राच्य पुस्तक संग्रह की R २७२६ प्रति में है। R ६७२५ प्रति में वह छुट है। शेष दो प्रतियों में चौचवादितः पाठ है। अतएव हमें ‘अर्चवः चौचवारितः’ यही पाठ शुद्ध ज्ञात होता है। इसका अर्थ हुआ अर्चव अर्थात् आचार अष्ट होने पर भी जो चौच रूप में प्रसिद्ध हो। आर्चवः चौचवारितः का अर्थ होगा चौचवक वैष्णव और चौचों की मण्डली से घिरा हुआ।

१८ (१३) बन्धकी—नौचो श्रेणी का बैरया जिसे बनारसी बोली में टकहिया कहते हैं।

१८ (१५) अविनयप्रचार—ज्ञात होता है कि बौद्ध और जैनो की भौति वैष्णवों के धार्मिक नियम भी ‘विनय’ कहलाते लगे थे। उन्हीं के उल्लंघन की ओर यहाँ व्यंग्य संकेत है। प्रचार = चर्चा, चाल-चलन।

१८ (१६) उष्णस्थलीकूर्मलीला—गम बाढ़ रेत में धूप सेकने के लिये पड़ा हुआ कयूभा जैसे गर्जन बाहर-भीतर निकालता और सिकोड़ता है उसी प्रकार पवित्रक भी कभी सुलभ पड़ा होता और कभी अपने अंगों को खींच लेता है।

तकविक्रयः क्रियते । (२२) कितवैष्यपि नाम कैतवमारभ्यते । (२३) किं बचीपि—
 (२४) “साधु मर्पयतु भवान् निपुणः सखु ते चारः” इति । (२५) कस्य चारः ?
 कुतश्चारः ? (२६) न सूर्या दीपनान्वकारं प्रविशति । नहि मे चारकृत्यमस्ति । (२७)
 सहस्रचक्षुषो हि वयमीदृशेषु प्रयोजनेषु । (२८) तदपनय शठप्रचारकञ्चुकम् । (२९)
 आकृतिमात्रभद्रको भवान् मिथ्याचारविनीतो ह्यसि । (३०) अंधो सज्जनसव्रह्मचारिन्
 विटपारशव, चौक्षपिशाचो वेश्याप्रसङ्गश्चेति (३१) आचारविरुद्धमेतद् विरुद्धाशर्नामिव
 मां प्रतिभाति । (३२) अपिच चौक्षोपचारयंत्रितः तामुपगृह्णन् संदर्शेन नवमालिका-
 मपचिनोपि । (३३) किं बचीपि—“सर्वथा निवृत्तोऽस्मि विभ्रमात्” इति । (३४)
 पायसोपवासमिव क एतन् श्रद्धास्यति । (३५) किं बचीपि—यधेवं सुप्रसन्नोऽसि
 शिष्यत्वे निष्पादयतु मा भवान्” इति । (३६) दिष्ट्वा भवान् सत्यमामूढः । (३७)

के जघनस्थल का पात्र गङ्गा के घाट की तरह बड़ा पवित्र है ? क्या कहता है—“ऐसी बात नहीं है ।” क्यों ग्वालों के घरों में छाँछ बेचता है ? (चवड़ों से छाकटेपन की बात करता है ?) । बदमाशों से भी बदमाशी दिखलाता है । क्या कहता है—“माफ़ कर बाबा, तेरी जासूसी चौकस है ।” किसकी जासूसी ? कहों की जासूसी ? सूरज दीपक लेकर अंधेरे में नहीं घुसता । मुझे जासूसों की जरूरत नहीं । मैं ऐसी बातों में हजार आँखों वाला हूँ । इसलिए बदमाशी का जामा दूर कर । केवल शकल से ही भलमानस तू ढोंगीपन से नम्र बना है । अरे, सज्जनों के सहपाठी और विद्यों के गुलाम, छुआछूत का भूत और वेश्याप्रसंग दोनों बातें एक दूसरे के खिलाफ हैं, जैसे विरुद्ध भोजन । और भी, छुआछूत के ढोंग से बंधा हुआ तू उससे लगता हुआ मानो सँझसी से नेवारी चुनता है । क्या कहता है—“अब मैंने लपकपना छोड़ दिया है ।” खीर खाकर उपवास करने जैसी बात का कौन विश्वास करेगा ? क्या कहता है—“अगर आप मुझ पर इतने मिहरबान हैं तो मुझे अपना आगिर्द बना लीजिए ।” बधाई है, तू सत्य पर आ गया । यदि

१८ (२१) गोपालकुले तर्कविक्रयः क्रियते—लोकोक्ति, ग्वालों के घर जानर मद्धा बेचना, यानी जो सुद भारी चमक है उससे छाकटेपन की बात करना ।

१८ (२४) निपुण—चौकस, होशियार ।

१८ (२८) शठप्रचारकञ्चुक—शठप्रचार = बदमाशी, वहाँ जिसे भरनिय प्रचार कहा है । कञ्चुक = जामा ।

१८ (२९) आकृतिमात्रभद्रक—देखने भर का भलमानस ।

१८ (३०) सज्जनसव्रह्मचारिन्—सज्जनों के साथ पड़ा हुआ । यहाँ व्यंग्य में प्रयुक्त है ।

१८ (३०) विटपारशव—एक गाली, मिट का हरामी पिछा ।

१८ (३०) चौक्षपिशाच—चौक्षपन या छुआछूत का भूत ।

१८ (३०) पायसोपवास—खीर भोजन करते जाना और उपवास करना ।

यदि च विटत्वे कृतो निश्चयः शीघ्रमेव वेशयुतिप्रणयपरिघभूतमिध्याचारकञ्चुक-
मुद्राव्यताम् । (३८) घुष्यता निटशब्दः । (३९) किमाह भगवान्—“प्रणतोऽस्मि”
इति । (४०) हन्तेदानीं दत्तः प्रदेयकः स्वैरमयन्त्रितश्चाचारः । (४१) अयमिदानी-
माशीर्वाद —

१९— (अ) आक्षिप्तसस्तवस्त्रा प्रशिथिलतरुणा मुक्तीर्वा विहस्ता
(आ) हस्तव्यत्यासगुप्तस्तनविवरवलीमध्यनाभिप्रदेशाम् ।
(इ) लज्जालीनांपविष्टा नहि नहि निस्जेत्येवमाक्रन्दमाना
(ई) शय्यामारोप्य कान्ता सुरतसमुदयस्याग्रसस्य गृहाण ॥

(१) किं वशीपि—“उपस्कारित श्रेयः, चित्रितोऽस्मि” इति । (२) यद्येव-
माचार्यदक्षिणेदानीमेष्टव्या । (३) किं वशीपि—“नन्यमञ्जलिः” इति । (४) भो
नन्यमतिव्ययम् । (५) भगवतु । (६) इदानीं निष्पन्नशिष्याः स्मो वयम् । (७)
भगवानिदानीमाचाया न शिष्यः । (८) सगर्वं स्वैरमयन्त्रितश्चर । (९) साधयाम्यहम् ।
(१०) (परिक्रम्य)

विट बनने का निश्चय ही कर लिया है तो वेश्याओं के प्रणय के लिये कीलदार
ढाँके के समान घातक झूठे आचार का बाना जल्दी से उतार कर फेंक और गुंडई
की छलकार लगा । तूने क्या कहा—“आपका ताबेदार हूँ ।” तो तुझे
मैं मनमाने ढंग से खुल खेलने का इनाम देता हूँ । अब यह मेरा आशीर्वाद ले—

१९—बिखरे और छूटे हुए बखौं वाली, ढीली करधनी वाली, छुटी नीवी
वाली, घबराई हुई, हाथ पर हाथ चढ़ाने से स्तन त्रिवली और नाभि प्रदेश छिपाकर
लजाते हुए बैठी हुई—“ना ना, मुझे छोड़” चिल्लाती हुई स्त्री को शय्या पर
ले जाकर सुरत सम्मिलन की पहली फसल काट ।

क्या कहता है—“आपने उपकार का ढेर लगा दिया । मैं भला बगा
हो गया ।” यदि ऐसा है तो अब मुझे आचार्य दक्षिण मिलनी चाहिए । क्या कहा—
“प्रणाम हाजिर है ।” अरे, ऐसी बड़ी फिजूलखर्ची । अच्छा, आजमे हम शिष्य वाले
तो बन गए । पर तू तो पूरा गुरु है, चेला नहीं । अक्रुद्धते हुए मनमानी मौज ले । मैं
चला—(घूमकर)

१८ (४०) प्रदेयक = इनाम, वस्तीर ।

१९ (ई) अग्रसस्य—पहली फसल । सुरत मिलन से पूर्व चुम्बनादि द्वारा जेठ
छाव की ओर यहाँ सकेत है । समुदय = सम्मिलन ।

१९ (१) उपस्कारित श्रेय—उपस्कारित = बड़ा दिया, ढेर लगा दिया ।
लोमान ने अपने सस्त्रण में उपधारित श्रेय पाठ रखा है और कोई पाठान्तर भी नहीं
दिया । उपधारित = विचारा, सोचा, अर्थात् आपने दित की बात सोची ।

(११) ही ही साधु भो नानाकुसुमसमनायसम्पिश्रितेन (१२) वसन्तमध्याह्न
स्वेदावतारस्पर्शसुभगेन प्रतिहारित इवाह (१३) माल्यापणप्रासादसन्निधिनि स्तनेन
विपणिनायुना नूनमुपस्थितोऽस्मि । (१४) (पुष्पपीथी मिलोस्य) (१५) मृतिमतीना
नानाकुसुमसमनायाङ्गप्रत्यङ्गा वसन्तम् । (१६) इयं हि—

२०— (अ) पद्मोत्फुल्लश्रीमद्वक्त्रा सितकुसुममुकुन्ददर्शना नवोत्पललोचना
(आ) रक्ताशोऽप्रस्पन्दोष्ठी भ्रमरस्तम्भधुरवधिता वरस्तम्भस्तनी ।
(इ) पुष्पपीडालङ्काराद्या ग्रथितशुभकुसुमवसना समुज्ज्वलमेखला
(ई) पुष्पन्यस्त नारीरूप वहति सलु कुसुमनिपशिर्षसन्तकटुभ्रिगी ॥

(१) भो सर्वथा नानाकुसुमसमनायगन्धहतहृदयोऽहं दुष्कर सलु करोमि
एनामतिनामन् । (२) (परिक्रम्य) (३) इदमपर परिहासपत्तनमुपस्थितम् । (४)

वाह, क्या खूब ? इस तरह फूलों के ढेरों के साथ टकराने से सुगन्धित,
वसन्त की ढोपहरी में घूमनेवाले के पसीने के स्पर्श से शीतल, मालाओं की दुकानों
और मकानों से रुक-रुककर चलती हुई बाजार की हवा मानो प्रतिहारी की भौंति आगे
बढ़कर मुझे भेंट रही है । (फूल बाजार को देखकर) तरह तरह के फूलों के ढेरों
से अग प्रत्यग सजाए हुए यह पुष्पपीथी वसन्तम्भी सी दीख पड़ती है । यह—

२०— फूले कमल रूपी सुन्दर मुखवाली, सफेद फूलों की कलियों जैसे दाँत
वाली, नये नीले कमल रूपी आँखों वाली, रक्ताशोक के झुगड़े जैसे फड़कते ओठ वाली,
भौंरो की गुज़ार रूपी मीठी बोली वाली, अच्छे फूलों के गुच्छे जैसे स्तनों वाली,
पुष्पा के सेहरे के गहने से सुशोभित, गूँथे हुए सफेद फूलों के कपड़े पहने, सफेद
मालारूपी मेखला से युक्त, फूलों की दुकान फूलों से सनी हुई स्त्री की शोभा दिखाती
हुई वसन्त की गृहिणी जैसी लगती है ।

आ, अनेकानेक पुष्पसमूहों की गन्ध में मेरा हृदय फँस गया है, अतः इस पुष्प-
पीथी को छोड़कर जाते हुए मुझे बड़ी रुठिनाई हो रही है, इसे छोड़ना एक कठिन
काम है । (घूमकर) यह दूसरा हँसी का बाजार हाजिर हो गया । यह मृदगनासुलक नामका

१६ (११) नानाकुसुमसमनाय, १६ (१२) वसन्तमध्याह्नस्वेदावतार, १६
(१३) माल्यापणप्रासादसन्निधि—इन तीनों पदा के द्वारा वायु को सुगन्धित, शीतल
और मन्द सूचित किया गया है । ये ताना विरापण प्रतिहार पद्य में भा लगते हैं ।

२० ये श्लोक में फूलों का दुकान का कल्पना वसन्तम्भी के रूप में का गई है,
अतएव वर्णन दाना पद्या में चरितार्थ होता है ।

२० (आ) रक्ताशोकप्रस्पन्दोष्ठी—फूलों का दुकान में अशोक के लाल फूलों में लदे
हुए लम्बे-लम्बे शुभ्र टोरा में बाँधकर बन्दनगौर का तरह सजाए रहते थे । उनके हवा
में हिलने का कारण उनका रूप पड़कते हुए ओंछ से खींचा गया है । निम्नोष्ठा का
तरह प्रस्पन्दोष्ठा रूप भा प्रयाग सम्मत है इसका पाठान्तर भा नही है ।

२० (३) परिहासपत्तन—हँसा का मझ । 'पत्तन पुग्भन्वम्—भ्रमर । पत्तन
विणपत्त पम् नगर को कहते थे जहाँ व्यापार का मझ होता था और निममें माल का

एष हि मृदङ्गनामुलको नाम पुराणनाटकविटः “भाजरदगः” इति (५) गणिका जनोपपादितद्वितीयनामधेय सुकुमारगायकस्य आर्यनागदत्तस्योदसितान्निर्गच्छति । (६) सुनु तावदेव नीलीर्मरुतानानुलेपनपरिस्पन्देन जराक्षीपीनप्रच्छादनमनुष्ठितम् । (७) सर्वसत्प्रेष घान्न (८) न शस्यमिममनभिमाध्यातिक्रमिषुम् । (९) परिहृष्याम्येनम् । (१०) (निदिश्य)

(११) भाजरदगः, अपि सुमिक्षमनया जरसा । (१२) विमाह भगवन्—
“एष भरतो निर्देदात् जरदभुजङ्ग इव जरात्वचमुत्सृजामि” इति । (१३) प्राणैः सहेति

पुराने नाटक का विट जिसका वेग्याओं द्वारा दिया हुआ दूसरा नाम ‘भाजरदग’ है, मुरीले गायक आर्य नागदत्त के घर से निकल रहा है । खिजाव, न्नान और अनुलेपन की चटक मटक से इसने अपना बुढ़ापा मानो लंगोट से छिपाया है । यह भला आदमी सच का मित्र है । इसमें निना बोले जाना सम्भव नहीं । इसमें हँसी ठिठोली कर्नेगा । (इशारा करके)

अरे भाजरदगव, क्या इस बुढ़ाई में भी तुझे सुकाल है ? क्या कहा तूने—“आपके सुध न लेने से बड़े सोंप की तरह कँचुल छोड़ रहा हूँ ।” मालूम

गाढ़े खुलती थी । घट का तात्पर्य है बन्द माल की मुहर । इस प्रकार गाढ़ों पर लगी हुई सैकड़। मुहरें काशी आदि पुराने नगरों की खुदाई में मिली हैं । चत्तन की ध्वनि यही है कि उसमें एक बड़े बाद हुआ है। हँसी की गहरी या विदारी खुलती जाती थी ।

२० (४) पुराण नाटक विट—पुराना नाटक विट । ध्वनि यह है कि मृदङ्ग घामुलक पहले वेश के नाटक में सक्रिय अभिनेता था, पर अब बुढ़ा होने के कारण केवल विट बन गया था ।

२० (४) भाजरदगव—भाव = एक आदरस्वक संबोधन, भा-वे भावोक्ति धन्य किञ्चिदनेषु मारिष—भरत । जरदगव = बुढ़ा सौँह ।

२० (५) उदससित = घर । गृह गेहोदयमित वेशम सप्त निदेशकम्—भरत ।

२० (६) नीलीर्म—प्रिजाव । पूर्व विट सवाद में इसे ही नीलालेप कहा है—

जलधरनीलालेपः तद्विस्मालमवचिह्नलदगाव ।

विकसितकुटजनिरसनी विटो यथा भाति घनसमय ॥ २ ॥

बादल सा बिजाव लगाए, जिसकी (सोन्दर्य से कँचती हुई विरोरी) के आलिंगन में रोमाञ्चित, मृदङ्ग जामदाना का धाना पहने विट मेघकाल सा सुहावना लगता है ।

२० (६) परिस्पन्द—तटक मटक ।

२० (६) जराक्षीपीनप्रच्छादन—खिजाव लगाकर बुढ़ापे को मानो लंगोट से छिपाना चाहता है जो छिप नहीं रहा है । प्रच्छादन = छिपाना ।

२० (१२) निर्दे—उपेक्षा, सुध न लेना, जिसा की ओर से बेफिकरी करना । धि ने जो ग्यय दिया था ठग का उच्च घामुलक ने यान की धार को सीसा करने हुए दिया है कि भावने जय सुना दिया तो म बड़े सोंप की तरह सुपचाव जाइ गुजारता रहा और अब चपगन में कँचुल छोड़ रहा हूँ ।

२० (१३) जरदभुजङ्ग—पुराना सोंप या बुढ़ा विट ।

पश्यामः । (१४) पुनर्युगेन भावः । (१५) सिद्ध हि ते मायया यौवनकर्म । (१६) तत्र हि—

- ११— (अ) रागोत्पादितयौवनप्रतिनिधिच्छिन्नव्यलीक शिरः
 (आ) सदशापचितोत्तरोष्ठपलित निर्मुग्धगण्ड मुसम् ।
 (इ) यत्नेनारचितामृजागुणवनेनानेन चाङ्गस्य ते
 (ई) लेपेन पुराणजर्जरहस्यायोजित यौवनम् ॥

(१) किं ब्रवीषि—‘मदनीय सल्लु पुराणमधु’ इति । (२) मनोरथ एष

पडता है तू अपने प्राण भी छोड़कर कायारूप कर रहा है । तभी तो फिर जवान हो गया है । बनाव चुनाव से जवानी साधने में तू सिद्ध है । तेरा—

२१— सिर खिजात्र से पैदा की गई नकली जवानी के सूचक बालों की ओलती से ढका हुआ (अर्थात् बीच में गजा) है, और मुँह मूँछों के पके बालों को चिमटी से कुपट कर सफाचट दाढ़ी वाला है । यत्नपूर्वक की हुई मरम्मत के बल से जैसे पुराना गिरहर मकान ठहरा होता है वैसे ही अगो की लीपापोती से सँवारी हुई तेरी जवानी है ।

क्या कहता है—“पुरानी घरान अधिक नशीली होती है ।” तेरी यही हिंसे

२० (१२) जरात्यचमुत्सृजामि—कंचुल छोड़ रहा हूँ । इसकी व्यजना यह भी है कि उद्वापे के कारण मेरे कुरियों पड़ रहा है, अर्थात् आपके घर न लेने से मैं सुखता जाता हूँ ।

२० (१३) प्राणै सह—विग्र मन्त्रों को और भी चुगल करते हुए कहता है कि तू कंचुल ही नहीं अपनी जान भी गँवाकर वायारूप कर रहा है, अर्थात् गया जन्म लेकर तू मुसट्टा हा गया है ।

२० (१५) मायया यौवनकर्म—उद्वापे की द्विपाकर बनाव-चुनाव से जवानी लाना ।

२१ (अ) व्यलीक—ओलती या नारी ।

२१ (आ) छत्र—छान या छप्पर । सच्चे यावन म तो पूरा सिर घाला ते ढका, रहता है, किन्तु रागोत्पादित यौवन में सिर के बीच का भाग गया हा जाता है और केवल चोंद के चारों ओर बनावटी यौवन के प्रतिनिधि कुछ थोड़े से बाल रह जाते हैं जिनका उपमा छप्पर के सिरे की ओलती से दा गई है ।

२१ (आ) सदशापचिन—सँदमी या तिमरा से मूँछों व पंख या मफेद बालों को कुपट या उग्राइ देते हैं, उसी की आर मकत है । शयकपान्ना व बालों को सफाचट कर दिया है ।

२१ (इ) आमृजा—लिपाई पोताई, निम्ने प्राचीन लया म मण्डस्तुतिन सस्कार कहा गया है ।

२१ (ई) लप = गिजात्र आदि का लगाना, पल्लवर ।

भावस्य । (३) सर्वथा त्रिपलगोचुरलोहचूर्णसमृद्धिरन्तु भवत । (४) साधयाम्यहम् । (५) (परिकल्प्य)

(६) अथे अयमिदानीं सहसोपस्थिते मयि धृतसमालिन्दत. शिलास्तम्भेनात्मानमावृत्य स्थित । (७) (विलोम्य) (८) भक्तु । (९) विज्ञातम् । (१०) शैविलकोऽयम् । (११) किं नु सत्यस्यास्मदर्शनपरिहारेण प्रयोजनम् । (१२) किं मालतिकादूतीस्त्रयग्रहाग्निष आत्मशङ्कामुत्पादयति । (१३) भवतु । (१४) परिहासप्लनेनेनमरगाहिष्ये ।

(१५) भो द्विजकुमारक किमिदमात्मप्रच्छादनेन सुहृत्समागम छत्रेण चन्द्रातप इव प्रतिविध्यते । (१७) एष नि सत्य प्रहसित । (१८) किं ब्रवीषि—“स्वागत सुहृत्कर्णधाराय” इति । (१९) भद्र कुतो मे सुहृत्कर्णधारता योऽहं तस्माद् द्वन्द्वरति-

है तो त्रिफण, गोखरू और लोहे के चूरे (से बने खिजार) से तेरी सन तरह बढती हो । मैं बला । (धूमकर)

अरे, सहसा मेरे आ पहुँचने पर कोई अभी जुआखाने की ब्योढी के खम्भे के पीछे अपने को छिपाकर खड़ा हो गया है । (देखकर) ठीक, पहचान लिया । यह शैविलक है । मुझसे छिपने का क्या कारण ? क्या मालतिका की दूती को पकड़ रखने की बेहदगी के बारे में वह शक पैदा करता है ? ठीक, हँसी के गोते से उसकी थाह लूँगा ।

अरे त्राक्षण के बेटे, क्यों मित्र के मिलने पर अपने को छिपाकर छतरी से चौदनी रोकने की तरह व्यर्थ काम करता है ? यह निरुद्ध कर हँसता है । क्या कहता है—“सुहृत्कर्णधार का स्वागत ।” भले आदमी, क्यों मेरी सुहृत्कर्णधारता जो तूने मुझे अपने दोहरे रतिप्रणय से विमुख रखा ?

११ (६) धृतसमालिन्द—ज्ञात होता है कि वेश के अन्दर धृतसभा का भयन अलग बना हाता था । उसके अलिन्द या द्वारकोष्ठ के बाहर का भोर के बरामदे में पराधर के रग्मे लगे रहते थे, उन्हीं की आर सजेत है ।

११ (११) स्वयग्रह—जरदस्ती पकड़ लेना, दूसरे वा सहमति के बिना अपनी ओर स बलपूर्वक वामुक्त भाव से किसी को रोक लेना । इसका साध में प्रयोग हुआ है—

प्रमत्तुपाराद्रिसुताससम्भ्रमस्वयग्रहाश्लेषसुरेन निष्कयम् ।

शिशुपाल वध ११५०

प्रियप्रार्थना निना उरठग्रहणम्—महितनाथ । स्वयग्रहाग्निषे आत्मशङ्का इस प्रकार पदचपद होगा ।

११ (१५) चन्द्रातप=चौदनी । छत्रेण चन्द्रातप प्रतिविध्यते—(लोकोक्ति) पागा लगाकर अन्ना टुट्टे चौदनी कटो रोका जाता है ।

११ (१८) सुहृत्कर्णधार—मित्रों की नाज पार छगाने वाला, उनका टेढ़ा काम साधने वाला ।

प्रणयसाहसात् वहिष्यत । (२०) किं नवीपि—“नैतदस्ति” इति । (२१) अग्नि सुरतोन्द्रवृत्ते, मा मेमम् । (२२) प्रमाश सल्लतद् यथा शैपिलवस्य गृहे शास्यमिक्षी प्रतिनसतीति । (२३) सा किल त्वयि उत्पन्नकामया मालाकारदारिण्या मालतिकया त्वत्संकाशं दात्येनानुप्रेषिता । (२४) तस्याश्च त्वया निरुपस्थितभद्रकं रूपयौवनलावण्यं मामिषभृतमुद्दिश्य (२५) तदात्ममेवाप्रेक्षितम्, नायातिकम् । (२६) किं वनापि—

क्या कहा ?—“नहा ऐसी बात नहीं है ।” अरे सुरत क टुकड़खोर, मुझसे ऐसा मत रह । सबको पता है कि शैपिलक के पड़ोस में बौद्ध भिक्षुणी बसती है । कामभाव उत्पन्न होने से मालिन की छोकरी मालतिका ने उसे तेरे पास दूती बनाकर भेजा । उस दूती के शृंगारविहीन रूप, यौवन और लावण्यमय शरीर पर मास की तरह ललक कर तुने सुरत उस पर ही आँख गड़ा दी, भविष्य

२१ (१६) साहसात् वहिष्यत—तापर्यं यह कि साहस के कामों में तो निजा मित्रा को अपरय साथ में लिया जाता है, तुने मुझे उसका पता भी नही दिया । द्वन्द्व = १. दो के साथ २. लड़ाई झगड़ का काम ।

२१ (१६) द्वन्द्वरति—१. दो के साथ रति, २. रहस्यरति (द्वन्द्व = रहस्य, सूत्र ८।१।१५, द्वन्द्व रहस्यमर्यादावचनं युज्यते मणयज्ञाप्रयागामिभ्यन्तिषु) ।

२१ (१६) प्रणय—१. प्रेम, २. बल पूर्वक ले लना ।

२१ (१६) प्रणय साहस = छान छप कर लन का साहस का कार्य । धूर्त विजय सबाद में श्रेष्ठिपुत्र कुण्डिलक के गुडई के कारनामा में मित्र के लिये किए हुए इस प्रकार के जानपर खलकर साथे जाने वाले कामों का भी उल्लेख है ।

२१ (२१) सुरता छृत्ति—सुरत का सिद्धा वागकर काम चलानेवाला एक नायिका से बड़ासुराग न होकर जिस तिसने लड़ मिलाने वाला पक्षित नायक ।

२१ (२४) निरुपस्थित भद्रक = बिना सजाया सँवारा हुआ रूप । यह शब्दात्रला शिल्पगत द्रवप्रासाद से ली गई है । मन्दिर के मंडोवर या गर्भगृह का बाहरी भाग भद्रक कहलाता था । चार दायारा के चार भद्रक हात थे । उन्हें रथ या मुल आदि के निर्गम निकाल कर सजाया जाता था जिससे मन्दिर व स्थल में अधिक सान्दर्भ्य उत्पन्न हो जाता था । एव निर्गम रथ, प्रतिरथ, कोणक रथ, या भद्रक, प्रातभद्रक, वाणक भद्रक कहलाते थे । यदि भद्रक में प्रतिभद्रक या प्रतिरथ आदि का सजावट न की जाय तो यह अनुपस्कृत या सादा रहता था ।

२१ (२५) तदात्त और आयतिर—य दाना लायायत दर्शन क पारिभाषिक शब्द थे । तदात्त = उसी समय का, नगद, प्रयत्न । आयतिर = आनवाला, उधार । तापर्यं है कि तुने नगद माल पसंद किया, उधार नहीं । इससे मिलत हुए लोभयतिकों के मत के दा पुरान सूत्र और उपलब्ध थे—वर साशयिकान्निष्कादमाशयिन् कायापण (ग्रन्थ में पडा मोन का मुहर से बन्धक मित्रन वाग चौंदा का रूपया अच्छा है) अथवा ‘वरमय कपोत श्वो मयूरान्’ (कल का मारना से आज का कतुरा अच्छा) । यहा प्रयत्नप्रादा चार्वाका का दृष्टिकोण था । उमा का उल्लेख अगले वाक्य में है—अनागतमुगाशया प्रयु पस्थितमुग्गयागा न पुरायार्थ । यह शब्दावली महाभारत शान्तिपर्व से ली गई है—

“सरो यत्सत्यमनागतसुखाशया प्रत्युपस्थितसुखत्यागो न पुरुषार्थः । (२७) न दीपेनाग्निमार्गेण क्रियते” इति । (२८) भो सुष्ठु वृत्तम् । (२९) वञ्चित खलु रहस्य यदीदं न विस्तरतो ब्रूया । (३०) विस्तरत इदानीं श्रोतव्यम् । (३१) किमाह भवान्—‘क इदानीमविनयप्रपञ्चमात्मनः प्रकाशयति । (३२) किन्तु समासत श्रूयताम् । (३३) तथा हि प्रसभमाक्रान्तयाऽमिहितोऽहम्—

२२—

(अ) सम्पातेनातिभूमि प्रतरसि शठ हे मान्या खलु वय

(आ) दोत्येनाभ्यागताया चपल न सदृश यत्ते व्यसितम् ।

(इ) कृच्छ्राद् रुद्धाऽस्मि जाता परगृहवसति सम्प्राप्य विजने

(ई) मा मेव हा प्रसीद प्रिय विमृज पुरा कश्चित् प्रविशति ॥

(१) इति । (२) साधु भो अमुदङ्गो नाटकाङ्गः सवृत्तः । (३) अनेन

मे मिलने वाली के लिए नहीं टहरा । क्या कहा—“मित्र, यह सच है कि अनागत सुख की आशा से आए हुए सुख को छोड़ना पुरुषार्थ नहीं, इसलिये मैंने वैसा किया । दीपक से आग नहीं खोजी जाती ।” अरे, तूने ठीक किया । अगर तूने इसे विस्तार से न बताया तो रहस्य बेमजा रहेगा । तो बात विस्तार से सुनने लायक है । तूने क्या कहा—“कौन मय्य अपनी बेहदगी का पचड़ा खोलता है ? किन्तु थोड़े में सुन ।

२२—उसने अपने ऊपर जर्जरस्ती होते देख मुझे कहा—“इतना भरोसा दिलाकर अरे बड़माश तू मुझे ठगता है, मे डज्जतगाली हूँ ।” अरे चपल, इस कार्य पर आई हुई के साथ ऐसा व्यवहार ठीक नहीं । दूसरे के सुने घर में पहुँच कर मुझे जर्जरस्ती रोक लिया गया । ऐसा मत कर । मुझ पर रूपा कर । मुझे छोड़ कोई आ रहा है ।

बाह बिना मृदग के नाटक का अरु समाप्त हो गया । यो सुरत के नियम

प्रत्युपस्थितकालस्य सुखस्य परिवर्जनम् ।

अनागतसुखाशया च नैव बुद्धिमता नयः ॥

शान्तिपर्व, पूना संस्करण १३२।३६

अर्थात् मिल हुए सुख को छोड़कर आनन्द या सुख का आशा करना समझदारी नहीं ।

२८ (२८) न दीपेनाग्निमार्गेण क्रियते—(लोकोक्ति) जितने हाथ में दीपक है वह उसी से अग्नि पैदा कर लेगा, दूसरी जगह आग जोजने क्यों जायगा ?

२९ (२९) वञ्चित खलु रहस्य—ता पर्यं यह कि रहस्य का मजा भी उससे यताने में है, यिना कहें रहस्य बेमजा रह जाता है ।

३२ (अ) संपातेन अतिभूमि—विश्राम की भूमि पर दूर तर पहुँचा घर, विश्राम का अति मात्रा उपभोग करना ।

३३ (३) अमुदङ्गो नाटकाङ्गः सवृत्तः—बाद का उपभोग सवृत्तार्थ विद्याभा क बिना ही पूर्णगन्धन व कारण समाप्त हो गया । अमुदङ्ग नाटक के नियम में पादनाट्यिक में भाषा है—अनेन हि नरन्ध्रमद्रुम विजिता पर्दमन्धरैर्वीणममृदङ्गमेकान्तरात् नाच्यते ॥ (शृङ्गार ३८) । इसमें मूँचिद होना है कि नाच्य व अरु व आरम्भ का मूँचना मृदङ्ग वीणा भादि वाद्यों से हो जाता था ।

सुरतसन्धिच्छेदेन स्थिरीकृतो वासिष्ठीपुत्रेण विटशब्दः । (४) वयस्य सुभगो भव । (५) साधयाम्यहम् । (६) (परिक्रम्य) (७) हन्त भोः सुरतसर्वातिथिसन्निवेशं वेशमनुप्राप्ताः । (८) योज्यम्—

२३—

(अ) कामावेशः कैतवस्योपदेशो

(आ) मायाकोशो वञ्चनासन्निवेशः ।

(इ) निर्द्रव्याणामप्रसिद्धप्रवेशो

(ई) रम्यमलेशः सुप्रवेशोऽस्तु वेशः ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) क एष मलिनप्रायागवगुण्डितशरीरः सङ्कचितसर्वाङ्गो वेश्या-

को तोड़ कर वणिष्ठ पुत्र तुने विट शब्द की जड़ जमा दी (तू पक्का विट है जो दूती के साथ ऐसा किया) । मित्र, तेरा मिलन हो, मैं चला । (घूमकर) लो सुरत के मेहमानों की बस्ती वेश आ गया । यह वेश—

२३—गणिकाओं का यह वेश काम का आवेश, बदमाशी का उपदेश, माया का कोश, ठगी का अड्डा, गरीबों को न पुसने देने के लिए वदनाम है । यहाँ के दुखड़े भी मज्जेदार होते हैं । इसका प्रवेश सबके लिये सुलभ हो ।

(घूमकर) गंदी चादर से अपना बदन ढक कर देह सिकोड़े हुए वेश्या के

२२ (३) सुरतसन्धिच्छेद—यह रति क्रीडा का पारिभाषिक शब्द था । सन्धि = सँध, विवर । सुरतसन्धि = योनिविवर । सुरतसन्धिच्छेद = वेश में नभर्बद गणिका दारिका या नौचा के साथ प्रथम सुरत करके उसे छूती करना । या उसकी जवनिका (अं० हाइमन) छिन्न करना । जिसे यह मीभाग्य प्राप्त हो वहाँ सच्चा विट माना जाता था । सुरतसन्धिच्छेद की दूसरी व्यंजना भी है, अर्थात् सुरत कर्म साधने के लिये किसी के घर में सँध लगाकर घुसना । इस पक्ष में 'स्थिरीकृतः विटशब्दः' का मंजैत यह है कि त्रिमने ऐसा साहस किया हो उने ही सच्चा विट समझना चाहिए ।

२२ (४) सुभगो भव—मेघदूत २।२१ (सीभाग्यं ते सुभगविरहावस्थया व्यञ्जयन्ती) में मङ्गिनाथ ने सुभग की व्याख्या की है—म खलु सुभगो यमद्वन्त इति, जिसे स्त्रियों का प्रणय प्राप्त हो वह सुभग है । बाण ने लिखा है कि उज्जयिनी के प्रत्येक भवन में मदनयष्टियों में लगे हुए चंदे दाग्यय जीवन के मीभाग्य की सूचना देते थे कि यहाँ पति-पत्नी का पारस्परिक प्रणयमात्र समरम और अधुण है (रणितमौभाग्यघण्टैः प्रतिभवनमुच्छ्रितैः मरुताः मदनयष्टिभुभिः प्रकाशित मरुत्पञ्जरा, काद० अनुच्छेद ४४) ।

२३ (१) प्राचार = ऊपर से ओढ़ने की चादर । दिव्यादान में सुरभे प्राचार था जहाँ के काम की चादर का उल्लेख आया है । (१० ३१६) ।

२३ (२) वेश्याङ्गण = वेश्या के बड़े भवन के सामने का अत्रि या मुग्धा स्थान जो मुख्यभवन और अन्तिम (या बाह्यप्रकोष्ठ) के बीच में होता था ।

ज्ञानं द्रततरमभिनिष्कामति । (३) अये सम्प्रमाद अष्ट कापायान्तमुपलक्ष्ये । (४) आ स ण्य धर्मारण्यनिगासी सधिलको नाम दुष्टशाक्यमित्र । (५) अहो सारिप्ता वद्धशामनस्य (६) यदेवनिवेरपि पृथामुण्डैरसदमिद्विभिरुपहन्यमाने प्रत्यह-ममिपुज्यत एव । (७) अथवा न वायसोच्छिष्ट तीर्थजलमुपहत भवेति । (८) एष निरम्भत्यैवात्मानं दृष्ट्वेवास्मानमिप्रस्थित । (९) भवतु । (१०) मम वायशरगो-चराश्रतो न यास्यति । (११) अभिभाष्ये तावत् । (१२) (निदिश्य)

(१३) विहारवतालं वदेदानीमुलूक इव दिवाशङ्कितश्चरति । (१४) किं प्रणीपि—“साम्प्रत विहारादागच्छामि” इति । (१५) भूतार्थं जाने निहारशीलता भदन्तस्य । (१६) धान्नं वदेदानीं वेशवीथीदीधिकागतो वरु इव शङ्कितश्चरति । (१७) ननु

आगत से जल्दी निकलना हुआ यह कौन है ? अरे मैं देखता हूँ कि हडबडी में गिरा हुआ गेरु वस्त्र या छोर दिखाई देता है । आ, वह यही बिहार (धर्मारण्य) में रहनेवाला दुष्ट बौद्ध भिक्षु सधिलक है । अहो, यह बुद्ध शासन भी कैसा पवित्र है जो इस तरह के व्यर्थ सिर मुँडाए हुए दुष्ट भिक्षुको की चोट सहता हुआ भी दिन दिन पूजा जा रहा है । अथवा, कौन से जूठा होने पर भी तीर्थ जल अशुद्ध नही होता । उसने मुझे देख लिया है, इसलिए अपने आपको छिपाकर भाग रहा है । टीक, यदि वह मेरी बातों के बाणों से छू गया तो बिना चोट खाए न निकल सकगा । तो उममें गत फर्केगा । (इशारा करके)

अरे विहार के भूत, क्यों उल्लू की तरह दिन में डर कर चलता है ? क्या कहता है—“अभी तो विहार से चला आ रहा हूँ ।” भदन्त की विहार-शीलता की मन्चाई तो मैं जानता हूँ ? बदमाश, वेशवीथी की वावडी से निकलते हुए

२३ (३) कापायान्त = भिक्षु के गेरु वस्त्र या चीर का पट्टा ।

२३ (४) धर्मारण्य = धर्माराम, यह शब्द विहार के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

२३ (५) सारिप्ता = स्वास्थ्य, वृद्धि, पवित्रता । अरिष्ट = अशुभ, परिपूर्ण, अविनाशक । अरिष्ट का अर्थ शत्रु का विद्रु, दुर्निमित्त भी है । उस वक्ता में सारिप्ता का व्यंग्यार्थ है कि बुद्ध शासन का अरिष्ट रण गया है और ये दुराचारी भिक्षु उसे अपने हुकमों से बीका-का रहे हैं ।

२३ (६) न वायसोच्छिष्ट तीर्थजलमुपहत भवति—(लोकोक्ति) कीभा के वायस में माथु बहा मरने ।

२३ (१४) विहारशीलता = १ विहार के शास्त्र का पालन करने का नियम, विहार का चारित्र्य २ घुमवहा शास्त्र । तेरे घुमने (विहार करने) का शास्त्र अर्थ में समझता हूँ कि तू अपना शरीर पूजा करने के लिये दूर-दूर भ्रमण रहा है ।

२३ (१६) धान्न = बदमाश ।

२३ (१६) दीधिका = पुच्छरिगा, बाण से कमलवन्दनाधिका का प्रायः उल्लेख किया है । वेशवीथी का वेग व सुदृष्टे में भी इस प्रकार का पुच्छरिगा होती था ।

सुरतपिण्डपातमनुष्ठीयते ? (१८) किं व्रीहिपि—‘मातृव्यापत्तिदुःखिता सधदासिका (१९) बुद्धवचने पर्यन्तस्थापयितुमागतोऽस्मि” इति । (२०) पिण्ड त्वन्मुखाद् बुद्धवचन मदभ्रमादिषोपस्पर्शं पश्याम । (२१) भो कष्टम्—

२४— (अ) वेश्याङ्गणं प्रविष्टो
(आ) मोहाद् भित्तुर्यदृच्छ्या वाऽपि ।
(इ) न प्राजते प्रयुक्तो
(ई) दत्तकसूत्रेऽपिरोङ्कारः ॥

(१) किं व्रीहिपि—‘मर्पयतु भवान् ननु सर्वसत्त्वेषु प्रसन्नचित्तेन भवितव्यम्” इति । (२) स्थाने नित्यप्रसन्नो भवन्त तृष्णा-द्वेदेन परिनिर्माणमयाप्यसि । (३)

बगले की तरह सहमा हुआ तू कहाँ जा रहा है ? क्या तू सुरत पिण्डपात (भिक्षा) की खोज में है ? क्या कहता है—“माता के मरने से दुखी सधदासिका को बुद्ध वचनों से सान्त्वना देने आया हूँ ।” तेरे मुँह से निकला हुआ बुद्ध वचन ऐसा लगता है जैसे शराब के धोखे में आचमन हो । अफसोस है—

२४—वेश्याङ्गणी अथवा सयोग से भी एक भिक्षु अगर वेश्या के आँगन में घुसता है तो दत्तक सूत्र में ओङ्कार की तरह वह शोभा नहीं पाता ।

क्या कहता है—“हमें सब प्राणियों पर दया दिखानी चाहिए ।” ठीक

२३ (१७) पिण्डपात—भिक्षा दो प्रकार की होती थी, एक उपनिमग्नप्रण से, दूसरी पिण्डपात से या जाकर भैक्ष्य भोजन ले आने से । पिण्ड = भोजन, पात = भिक्षा का पात्र में पड़ना । सुरत पिण्डपात = सुरत की भूल मिटाने के लिए भैक्ष्यार्थ ।

२३ (१८) मातृ—गणिका माता, वेश में बुद्धा गणिका । व्यापत्ति = मृत्यु ।

२३ (२०) मदभ्रम = शराब का धोखा, अर्थात् कोई शराब पीना चाहता हो, पर भूल से पानी का वृत्ता कर ले । तू चाहता है यदमाशी की बातें करना, धोखे में बुद्ध वचन तेरे मुँह से निकल गया ।

२४ (ई) दत्तकसूत्र—मथुरा के आचार्य दत्तक ने पाटलिपुत्र की वैरपाभो के लिए धैरिंक सङ्ग एक मृगग्रन्थ लिखा था जो कामशास्त्र का छुड़ा तन्त्र माना जाता था (६० कुटिलामतम् खल्लो ७७, कामसूत्र १११११) ।

२४ (२) नित्यप्रसन्न = सदा चित्त के प्रसाद गुण से युक्त । प्रसाद का परिभाषिक अर्थ ‘श्रद्धा’ था । जिसके मन में बुद्ध या धर्म के लिए श्रद्धा उत्पन्न हो गई हो उसे ‘प्रसादनात’ कहा जाता था । दिव्यावदान में बहुत बार यह शब्द आता है । प्रसन्ना = एक प्रकार की शराब जो अवदातिका भी कहलाती थी । दिव्यावदान में नीला पीला लोहिका अवदाता चार प्रकार की सुधा या शराब कहा है, तथा मधुमाषव, फादशरी, पारिपान ये तीन नाम और दिए हैं । उनमें अवदाता और पारिपान प्रसन्ना के ही नाम ज्ञात होते हैं (दिव्य० पृ० २१६) । नित्यप्रसन्न = प्रसन्ना नाम का मुरा से नित्य छुटने वाला ।

एषोऽजनिप्रग्रहं करोति । (४) किं वृषीषि—“साधु मुच्येयम्” इति । (५) भवतु । (६) अत्रं वृथा यमेण । (७) सर्वथा दुर्लभः रत्न ते मोक्षः । (८) किं वृषीषि—“गच्छाम्यहमकालभोजनमपि परिहार्यम्” इति । (९) ही ही सर्वं कृतम् । (१०) एतदवशाष्टमस्सलितपञ्चशिक्षापदस्य भिक्षोः कालभोजनमतिक्रामति । (११) ध्वंसस्व । (१२) वृथामुण्डनश्चित्रिद्वुष्पाणपत्रपते । (१३) गच्छ, बुद्धो ह्यसि । (१४) हन्त !

नित्य प्रसन्न रहने वाले भदन्त तृष्णा के नाश से परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे (नित्य प्रसन्ना नामक श्राव्य जमाने वाला तू व्यास मिटने से छकेगा) । वह हाथ जोड़ता है (वह अंजुरी भर कर पीता है) । क्या कहता है—“ठीक है जो मैं मुक्त हो जाऊँ ।” ठीक, अपनी मेहनत व्यर्थ मत कर । मोक्ष तैरे लिए एक दम दुर्लभ है । क्या कहता है—“मैं जाता हूँ । अकाल-भोजन से वचना चाहिए ।” बाह, बाह ! तू और सब नियम पूरे कर चुका । पंचशील को न छोड़ने वाले इस भिक्षु के लिये यही बच गया है कि समय पर भोजन करने का नियम भंग न हो । जा, लम्बा

२४ (२) तृष्णाच्छेद = १. व्यास का मिटना (प्रसन्ना पीकर व्यास दूर करना) ; २. तृष्णा या कामना का मिटाना (बौद्ध धर्म का परिभाषिक शब्द) ।

२४ (२) परिनिर्वाणमवाप्स्यसि = हर समय प्रसन्ना जमाने से तू एतद्वत् जायगा । दूसरा अर्थ तो स्पष्ट है ही कि तृष्णाव्यय के फल स्वरूप तू निर्वाण प्राप्त करेगा ।

२४ (३) अञ्जलिप्रग्रह = हाथ जोड़कर अंजलिमुद्रा । (दूसरा अर्थ) हाथ की अंजलि को ही पीने का पात्र बना रहा है, खुल्लू भर भर पीना चाहता है ।

२४ (४) साधु मुच्येयम् = (दूसरा अर्थ) भला हो यदि मैं तुम्हने पिंड धुवा पाऊँ ।

२४ (७) दुर्लभः रत्न ते मोक्षः = (दूसरा अर्थ) मेरे बाणों से तेरा बच निकलना मुशकिल है ।

२४ (१०) पंचशिक्षापद—गीर्वाणों में दो प्रकार के पंच शिक्षापद थे, एक सय उपासकों के लिये आश्रयक—१. प्राणातिपात-विरति, २. भक्ष्यादान-विरति, ३. भ्रमजल्प-विरति, ४. मृगवादा-विरति, ५. मद्यपान विरति । दूसरे पंच शिक्षापद केवल भिक्षुओं के लिये थे (भ्रमजल्प शिक्षापद) ये ही यहाँ अभिप्रेत हैं—१. गन्धमाद्यविलेपनयमोक्त-धारण विरति, २. उद्यमशयनमहाशयन-विरति, ३. निमलभोजन-विरति, ४. नृत्यगीत-पादित विरति, ५. जातरूपरजतप्रतिग्रहण विरति (द्रष्टव्य महाव्युत्पत्ति ८६६३-८७००, एवं पृष्ठतः बौद्धमंथनवीथ, पृ० ५२०) ।

२४ (१२) चित्रिद्वुष्पा—निर पर पड़ी हुई दाद की चिपों जिनसे माता में चार्ड शरं करते हैं । लोगान ने अपने संस्करण में तीन पाठान्तर दिए हैं—विप्रिद्वुष्पा, विप्रिद्वुष्पा, विप्रिद्वुष्पा । इनमें से चित्रिद्वुष्पा शब्द मूल ज्ञान होता है (= चिर्तादार दाद) । पिंड का आशय यह है कि तू ने स्वयं सिर धुटाया जो दाद की चिपों के प्रकट हो जाने से लगता है । स्वयं यह है कि तू बनिमसुद्ध है जो निर पर दाद या एगिन रोग निवृत्ति है ।

ध्वस्त एष दुरात्मा । (१५) तत् क नु सत्त्विदानीं दुष्टशाक्यभिच्छदर्शनोपहत चक्षु -
प्रक्षालयेयम् । (१६) (परिक्रम्य)

(१७) साधु भो इदं विटजननयनपावनमुपस्थितम् । (१८) एषा हि वसन्त-
वत्या दुहिता वनराजिका नाम वनराजिकेव (१९) रूपवती कुसुमसमाजमिव शरीरे
सन्निवेश्य (२०) यथोचितं पञ्चापुरस्कारमुपनीय कामदेवायतनादवतरति । (२१)
यदा सर्वादरगृहीतपुष्पमण्डनाटोपा (२२) शके प्रियजनसकाशं प्रस्थितयाऽनया
भवितव्यम् । (२३) यावदेना प्रियवचनोपन्यासेनोपसर्पामि । (२४) (निर्दिश्य) (२५)
वासु वनराजिके, किमिदं वसन्तकुसुमाग्रयणं कुर्वन्त्या भवत्या न सत्प्रतिधिलोप इति ।

पड । बाल मुँडाने के कारण सिर पर दाढ़ की चित्तियों से तू लजा रहा है ? जा, तू
पूरा बुद्ध है । अच्छा हुआ यह खल बिला गया । तो इस गधीले बौद्ध भिक्षु को
देखने से मैली हुई अपनी दृष्टि कहाँ धोऊँ ? (घूमकर)

अरे बाह ! गुण्डों की ओखें तर करने का साधन आ गया । यह वसन्तवती
की पुत्री वनराजिका वनराजि की तरह रूपवती मानो अपने शरीर पर ही फूलों की
समाज रचकर मनचाही देव पूजा और सम्मान करके कामदेव के मंदिर से उतर
रही है । यह पूरी सावधानी के साथ फूलों के सिंगार से शरीर को भव्य बनाए हुए
है । जात होता है, अपने प्रियजन के पास जा रही है । मीठी बातें करते हुए उसके
पास पहुँचूँ । (इशारा करते हुए) बाला वनराजिका, वसन्त के फूलों का पहला

२४ (१८) वनराजिके—रंग धिरंगे फूलों की विटपावली सी सुन्दर ।

२४ (१९) कुसुमसमाजमिव शरीरे सन्निवेश्य—अनेक वर्णों के पुष्पाभरणा से
मानो पुष्पा का समेलन या गोष्ठी उसने शरीर में ही विरचित कर ली है ।

२४ (२०) पुरस्कार = सम्मान ।

२४ (२०) कामदेवायतन—उम्रयिना में एक कामदेवायतन प्रसिद्ध था । मृच्छ
कणिक में और कादम्बरि में भी उसका उल्लेख आया है । ज्ञात होता है इसकी स्थिति वेश
बीभी के पास था ।

२४ (२१) सर्वादर = पूरी सावधानी ।

२४ (२१) पुष्पमण्डन = पुष्पा के आभूषण बनाकर किया हुआ शृङ्गार ।

२४ (२१) आटोप = भय स्वरूप ।

२४ (२५) वासु = बाला ।

२४ (२५) अग्रयण = नई उपज से किया जानेवाला एक यज्ञ विशेष । वसन्त
कुसुमाग्रयण = वसन्त ऋतु के पुष्पा से स्वशरीर का मार्मिक शृङ्गार । इसकी दूसरा व्यनना
यह है कि आयु के वसन्तकाल या बीमार अवस्था में जो कुसुम (आर्वाधर्म) का उद्गम
हुआ है, उसके उद्घास के कारण तू मुझ जैसे अतिथि की ओर ध्यान नहीं दे रही है ।
लौमान ने इसका पाठभेद यों दिया है—किमिदं वसन्तकुसुमाग्रयणं कुर्वन्त्या भवत्या न
सत्प्रतिधिलोप । इसकी अर्थ व्यनना इस प्रकार दी है—यह क्या ? अपने पुष्पोपहार

(२६) किमाह भवती—“स्वागतमार्याय, अयमजलि ” इति । (२७) प्रतिगृहीत एष दाक्षिण्यपल्लव । (२८) अपि च, अचिरादागतस्तावद् वसन्तस्तव शरीरे मन्त्रिविष्टा ननु । (२९) किमाह भवती—“कथमिव” इति । (३०) श्रूयता तावत्—

२४—

(अ) वासन्तीकुन्दमिश्रैः पुरवककुसुमैः पूरितः केशहस्तो

(आ) लग्नाशोक शिरान्तः स्तनतटरचितः सिन्दुवारोपहारः ।

(इ) प्रत्यग्रैश्चूतपुष्पैः प्रचलकिसलयैः कल्पितः कर्णपूरः ।

(ई) पुष्पव्याघ्राग्रहस्ते वहसि सुवदने मूर्तिमन्तः वसन्तम् ॥

(१) किं षोषि—“एष ते प्रदेयक ” इति । (२) भवतु । (३) त्वय्येव

उपहार लेती हुई तू कहीं पाहुन को तो नहा भूल गई ? तूने क्या कहा—“आर्य का स्वागत, प्रणाम ।” तेरे दाक्षिण्य का यह पल्लव मुझे स्वीकार है । निश्चय पूर्वक अभी हाल में आया वसन्त तेरे शरीर में पैठ गया है । तूने क्या कहा—“यह कैसे ?” तो सुन—

२५—वासन्ती और कुन्द के पुष्पों के साथ मिले हुए पुरवक के फूलों से तेरा जूड़ा सजा है, चोटी के छोर में अशोक लगा है, स्तनस्तः सिन्दुवार के उपहार से सजा है, नयी आम की मजरी और हिलती हुई कोपलो से कर्णपूर बना है । हे सुवदने, अजलि में फूल भरे हुए तू मूर्तिमान वसन्त को वहन कर रही है ।

क्या कहती है—“यह आपके लिए उपहार है ।” ठीक, तू ही इस धरोहर को

(भातंग पुष्प) के कारण क्या तू बेश में आनेवाले अतिथिवा के मन में लोभ या भमिलाना नहीं उपाय कर रहा है ? भर्मा तू तेरे इस टटके चौचन पर बेश न नया फेरा लगाने वाले लोग मनचले हो रहे हैं ।

२४ (२७) दाक्षिण्यपल्लव = शिष्टाचार का एक सुकुमार कर्म या हल्का नमूना ।

२५ (अ) वासन्ती = माधवी या अतिमुक्तक नामक श्वेत पुष्प ।

२५ (आ) पुरवक = कौलों या कर्मरैया का फूल । किरा के फूल नील, लाल, पाए पड़े रंगों के होते हैं । पीले फूल की पुरटक, लाल की पुरवक और नाल फूल को भातंग कहते हैं । (पाल रत्नीय नालश्च कुसुमेस्तः त्रिभाषयेत् । पातः पुरटकः श्रियो रत्नः पुरवकः स्मृतः । नीलः भातंगः दासाः ॥ शिवयोगः) ।

२५ (अ) वेराहरत = केशजलाप, केशपाश (पाशः पञ्चश्च दस्तश्च पलापायां कपालपरे, भ्रमरः ; माघ मा२७) ।

२५ (आ) सिन्दुवार = रत्न रंग का एक पुष्प, समान या निर्गुण का फूल ।

२५ (ई) अग्रहस्त = हाथों का अग्रभाग, उगलियों । पुष्पव्याघ्राग्रहस्त हाथों में पुष्पमाला लिप्ट हुआ ।

२५ (१) प्रदेयक = उपहार, बरसात, दान इनाम (उद्याग पर्व मा१०, भार्गवगीता समाचारः इन्द्रवार्हादि मे भगताः) ।

तानत्तिष्ठतु न्यासः । (४) कालेनोपपादयिष्याम । (५) सुरत भवत्ये । (६) प्रस्थितोऽस्मि । (७) (परिक्रम्य)

(८) अये इदमिरिमकामिन्यास्ताम्बूलसेनाया गृहम् । (९) नित्यसन्निहित-श्चात्र धान्त्रः । (१०) किं नु प्रविशामि । (११) (निचार्य) (१२) न शक्यमनभि-भाष्यातिरुमितुम् । (१३) यावत् प्रविशामि । (१४) (प्रविश्य) (१५) अस्ति कोऽपि गोः सुहृद्गृहे शश प्रतिपालयति ? (१६) अये इदं ताम्बूलसेना अस्मद् बहु-मानादविलम्बितत्वरितपदविन्यासा (१७) सम्प्रमाद् भ्रष्टमुत्तरीयमारुपन्ती प्रद्वार एव प्रत्युद्गता । (१८) अत्युपचार सत्वेप (१९) शङ्के न मा प्रविशन्तमिच्छतीति । (२०) तदेया बहिरेव प्रयोजयितु निर्गता । (२१) यथाऽस्या प्रत्यमसुरतचिह्नान्यु-पलक्ष्ये सद्य सुरतभुक्तमुक्त्याऽनया भवितव्यम् । (२२) नूनं दिवासुरतसमर्दमनुभूत-वानिरिम । (२३) अहो सरतलोलुपं सलु धान्त्र । (२४) भवतु । (२५) परि-हसिष्याम्येनाम् ।

(२६) ताम्बूलसेने ! किमिदं दाक्षिण्यातिव्ययं क्रियते । (२७) कथं सुरत परिश्रमश्वासनिच्छिन्नात्तर 'स्वागतं प्रियमयस्याय' इत्याह । (२८) अविरक्तिके ताल-वृन्तं तानदानम् । (२९) इत्यव्यायामा सलु ताम्बूलसेना । (३०) चौरि, अपि बल रस, समय पडने पर ले लूंगा । तेरा भला हो । मैं चला । (धूमकर)

अरे यह इरिम की रसैली ताम्बूलसेना का घर है । भला मानम रोज यहाँ जमता है । क्या मैं भीतर जाऊँ ? (सोचकर) गिना बातचीत किए जाना ठीक नहीं । तो अंदर चलूँ । (धुसकर) अरे दोस्त के घर में कोई है जो शश की आवभगत करे ? अरे यह ताम्बूलसेना मेरे मान के लिये जल्दी से टग भरती हुई, धनराष्ट्र में गिरी हुई चादर खाचती हुई बाहरी दरवाजे पर ही स्वागत के लिये पहुँची है । निश्चय यह इसके द्वारा अतिरिक्त आवभगत है । लगता है मेरा यहाँ प्रवेश इसे अच्छा नहीं लगा । इसीलिए वह बाहर से ही मुझे निपगने के लिये निकल आई है । इसके ताजे सुरत चिह्नो से जान पड़ता है कि वह अभी सुरत से छूटी है । अभी निश्चय इरिम ने दिवासुरत के मलजल का अनुभव किया है । जरूर यह भला आदमी सुरत का शलची है । होने दो, इसके साथ कुछ मजाक करूँ ।

अरी ताम्बूलसेना, क्यों अधिक आवभगत खरब रही है ? कैसे तूरति जनित थकान के कारण जम्बी हुई सास से टूटे अक्षरो में 'प्रिय मित्र का स्वागत'

२५ (८) इरिम—हिमी विदेशी पुरुष का नाम, सभ्यत हमिस का संस्कृत रूप (Hermes = यूनानी उच्चारण परमेश) ।

२५ (१७) प्रद्वार = बाह्यद्वार, यहिद्वार जो प्राकार में बनावया जाता था और जिसे द्वारप्रकोष्ठ भी कहने थे ।

२५ (२८) अविरगिता = कभी विरक्त न होनेवाली, मदा विषय रस में परमा रहने वाला ।

वर्धते ? (३१) किं ब्रवीषि—“न सल्लवगच्छामि” इति । (३२) एतत्प्रियजनपरिष्वङ्गसकान्तकालयत्नस्तनतटद्वयम् । (३३) पृच्छामि तान् । असन्तुष्टे अननरतनिशानिहारस्यरिमस्य (३४) दिवाऽपि नाम त्वया न-देयो विथम् । (३५) ननु सायंप्रातर्होमो वर्तते । (३६) किं ब्रवीषि—“सदापि नाम परपक्षपरिहासप्रियो भान इति ।” (३७) नैतदस्ति । (३८) अपि दुर्विदग्धे न त्वया श्रुतपूर्वं “आकारसवरणमप्याकार एव” इति । (३९) किं ब्रवीषि—“कथं जानीये” इति । (४०) चोरि, कथमिदं न ज्ञास्यामि । यथा—

- २६— (अ) निरखिडतत्रिशेषक मृदितरोचनामिन्दुक
 (आ) कपोलतलललनशमपयिद्धकण्ठोत्पलम् ।
 (इ) गुसं ब्रणितपाटलोष्ठमलसायमानेक्षण
 (ई) प्रकाशयति ते दिवासुरतलोत्पुष्य कामिनम् ॥

कर रही है ? अरी सदा प्रेम में पगी (अविरक्तिके), पहले एक पखा ला । सच, ताम्बूल-सेना व्यायाम (सुरतश्रम) कर चुकी है । अरी चोटी, तान्त भी बढ़ाती है या नहीं ? क्या कहती है—“मैं कुछ नहीं समझती ।” (मैं देख रहा हूँ कि) प्रिय-जन के साथ अलिंगन के कारण इसके स्तनतटों का चंदन मिट गया है । तो पूछूँ । अरी सुरत वृष्णा की सदा प्यासी, बरामर निशाविहार करने वाले हरिम को दिन में भी तू आराम नहा देने देती ? क्या सुबह शाम दोनों समय होम चलाता है ? क्या कहती है—“सदा दूसरे का मजाक उड़ाने की आपसी आदत है ।” यह बात नहीं है । अरी चट, क्या तूने नहा सुना कि आकार के छिपाने में भी आकार प्रकट हो ही जाता है । क्या कहती है—“आपने कैसे जाना ।” चोटी, मैं कैसे न जानूँगा ? यथा—

२६—मिठा हुआ विशेषक, पुठा हुआ रोली का टीका, कपोल तल पर मिखरी हुई लट्टे, मिठा हुआ कर्णोपग्र, विक्षत लाल ओठों वाला मुँह, अलसोटी ओंठें सूचित करती हैं कि तेरा प्रेमी दिवारति का लालची है ।

२५ (२६) व्यायाम = श्रम, रिवाज । यहाँ सुरतश्रम से तात्पर्य है जिसे बनारसी बोलों में ‘डठ’ कहते हैं ।

२५ (३२) कालेयक = एक प्रकार का सुगन्धित काष्ठ ऊद, या काला चन्दन । हर्षचरित में भी इसका उल्लेख आता है ।

२५ (३५) ननु सायंप्रातर्होमो वर्तते—बनारसी बोला—दूना जून होम होत हउवा ?

२६ (अ) विशेषक—चन्दन वस्त्रों आगुरु आदि से ललाट कपोल आदि पर शोभायै बनाई हुई विशेष अलंकरण वुक्त रचना ।

२६ (अ) अपविद्ध = परित्यक्त ।

(१) किं व्रवीषि—“सद्यः सुप्तोत्थिताऽहं, किमप्याशङ्कते” इति । (२) भवतु ।
(३) संज्ञताः स्मः । (४) न हि ते सूक्ष्ममपि किञ्चिदग्राह्यं पश्यामि । (५) किन्तु—

२७—

(अ) स्वप्नान्ते नखदन्तविक्षतमिदं शङ्के शरीरं तव

(आ) प्रीयन्तां पितरः स्वधाऽस्तु सुभगे वासोऽपसव्यं हि ते ।

(इ) किञ्चान्यत्त्वरया न लक्षितमिदं धिक् तस्य दुःशिल्यिनो

(ई) मोहाद् येन तयोमयोश्चरणयोः सव्ये कृते पादुके ॥

(१) चोरि सहोढाभिगृहीता कंदानी यास्यसि । (२) एषा हि प्रविश्यान्तर्गृह-
मुखैः प्रहसिता सह रमणेन । (३) (कर्णं दत्त्वा) (४) एष इरिमो व्याहरति—
“ननु भो धूर्ताचार्यं प्रविश्यताम्” इति । (५) सखे कः सुरतरथधुर्ययोयोंकतृच्छेदं
करिष्यति । (६) एवमेवाविरतसुरतोत्सवोऽस्तु । (७) गार्गीपुत्र, साधयाम्यहम् । (८)

क्या कहती है—“अभी मैं सोकर उठी हूँ । आप कुछ और शक करते हैं ।”
ठीक, मैं जान गया । अब मेरे लिये तेरा बारीक से बारीक भेद भी अनजाना
नहीं रहा । पर—

२७—जान पड़ता है कि तेरे शरीर में ये नख और दन्तक्षत स्वप्न के अन्त
में हो गए हैं । हे सुन्दरि, तेरे दाहिने कन्धे पर जो यह वस्त्र है, क्या वह पितरों
को स्वधा कहकर प्रसन्न करने के कारण हुआ है ? और भी, जल्दी में तू यह
देखना भूल गई कि उस गँवार फारीगर ने तेरे दोनों पैरों के लिये बायीं जूती
ही बना दी ।

चोटी, चुराए माल के साथ पकड़ी गई तू अब बचकर कहाँ
जायगी ? वह भीतरी घर में घुसकर अपने रमण के साथ जोर से हँस रही है ।
(कान लगाकर) यह इरिम कह रहा है—“हे धूर्ताचार्य, भीतर आइए ।” मित्र,
सुरतरथ में जुड़े हुए वेलों की जोत कौन काटे ? तेरा यह सुरत का टेहला बेरोक

२७ (अ) स्वप्नान्ते—विद व्यंग्य करता है कि तेरे शरीर में नखक्षत और
दन्तक्षत के चिह्न दिवाविहार से हुए हैं, या स्वप्न में प्राप्त पति समागम से हो गए हैं ।

२७ (आ) वासोऽपसव्यं—उत्तरीय वस्त्र बाएँ कन्धे पर होना चाहिए ; वह
दाहिने कन्धे पर कैसे आ गया ? या तो सुरतान्त में हड़बडी से ऐसा हो गया है, या तूने
अपसव्य होकर पितरों की पूजा की है ।

२७ (ई) सव्ये कृते पादुके—या तो सुरतान्त की शीघ्रता में तू ही दाहिने पैर में
नायक की बाईं जूती पहन आई है, या गँवार मोची से ऐसी भूल हुई ।

२७ (?) सहोढ = वह चोर जो चोरी के माल के साथ पकड़ा जाय । होढ =
चोरी का माल । अथवा सह + ऊढ = अपने कुँल के साथ (ऊढ = वह जिसमें तू गन्धर्व
व्याह रचा रही है ।

२७ (५) धुर्य = बैल ।

२७ (५) योयतृ = जोत ।

(परिक्रम्य) (६) अये केयमिदानीं बाह्यद्वारकोष्ठके देवताभ्यो बलिमुपहरति ?

- २८— (अ) निभृतवदना शोकग्लाना निरञ्जनलोचना
 (आ) मलिनवसना स्नेहत्यक्तप्रलम्बघनालका ।
 (इ) शिथिलवलया पुष्पोत्क्षेपैश्च्युतांगुलिवेष्टना
 (ई) तरुणयुवतिस्तन्वी भूयस्तनुत्वमुपागता ॥

(१) आ एषा भाण्डीरसेनाया द्रुहिता कुमुद्वती नाम । (२) भोः कष्टम् ।
 (३) अप्रत्यभिज्ञेया इयं तपस्विनी संवृत्ता । (४) तत् कस्येयं वेशवासविरुद्धं विरह-
 योग्यव्रतं चरति । (५) आ विज्ञातम् । (६) तमेषा मौर्यकुमारं चन्द्रोदयमनुरक्तेति
 श्रूयते । (७) स च सुभगः सामन्तप्रशमनार्थं दण्डेनोद्यतः । (८) हन्त भो उपपद्यते
 चन्द्रोदयविरहात् कुमुद्वती निःश्रीका संवृत्तेति । (९) भोः प्रत्यादेशः सत्त्वियं कुल-
 वधूनाम् । (१०) अपि चैव स्वभवनवलभीपुटस्थं विक्षिप्तबलिप्रणयोपस्थितं (११)
 स्वागतव्याहारैणाभिनन्दति वायसम्—

टोक चलता रहे । गार्गीपुत्र, मैं चला । (धूमकर) अरे यह कौन बाहरी दरवाजे की
 देहली पर देवताओं को बलि का उपहार दे रही है ?

निश्चल मुँह वाली, शोक के थकान से भरी हुई, बिना आँखें आँजे हुए, मैले
 वस्त्र पहने, बिना तेल के छटकते घने बालों वाली, ढीले कड़ों वाली, फूल
 फेंकने से गिरी हुई अंगूठी वाली, यह छरहरी तरुण स्त्री और भी दुबली हो गई है ।

यह भाण्डीर सेना की पुत्री कुमुद्वती है । हा अफसोस ! यह वैचारी मुश्किल
 से पहचान में आती है ? वह कौन है जिसके लिये यह वेश के रिवाज के विरुद्ध,
 विरह में पतिव्रताओं के जैसा व्रत कर रही है ? हाँ, याद आ गया । यह उस मौर्य-
 कुमार चन्द्रोदय में अनुरक्त है, ऐसा सुनने में आता है । वह भला आदमी सामन्तों
 को दबाने के लिये सेना के साथ गया है । हा, चन्द्रोदय के विरह में कुमुद्वती
 श्रीहीन हो गई है । इसने तो कुलवधुओं को भी मात कर दिया है । अपने घर
 की अटारी (वलभी पुट) पर बैठे हुए बलि के लालच से आए हुए कौए का वह
 स्वागत वचन से अभिनन्दन कर रही है—

२८ (ई) अंगुलिवेष्टन = अँगूठी । यह शब्द साहित्य में कम प्रयुक्त हुआ है,
 किन्तु अर्थ स्पष्ट है । कर्णवेष्टन या कर्णमुद्रिका की भाँति अँगुलि मुद्रिका के लिये अंगुलि-
 वेष्टन शब्द है ।

२८ (७) दण्ड = सेना ।

२८ (७) दण्डेनोद्यतः = दण्ड यात्रा पर गया है ।

२८ (१०) स्वभवनवलभीपुटस्थ = अपने घर की उपरी अटारी के पुट या गवाच
 भाग में बैठे हुए (तुलना कीजिए अगले श्लोक में वलभी गवाच तिलक) ।

२६—

(अ) भद्र ते चलभोगवाक्षतिलकश्राद्धोपहारातिथे

(आ) जानन्त्या मयि कञ्चिदप्यति स मे नित्यप्रनासी प्रिय ।

(इ) यद्यागच्छति गच्छ तावदितरद्वाराश्रित तोरण

(ई) नि शोका हि समेत्य मे प्रियतम दास्यामि दध्योदनम् ॥” इति

(१) अहो तु सलु निष्वेतगोऽनुराग । (२) अनपहासक्षममेतद् राजयौतकम् ।

(३) महिष्यावगुण्ठनभागिनी भनत्वेपा । (४) इतो वयमेका तेन गच्छाम । (५) (परिक्रम्य)—

(६) अये अयमिदानी दक्षिणेन वृक्षवाटिका भूषणप्रणादात् (७) सम्भ्रान्त विहगसकुल शब्द इव श्रूयते । (८) भवतु । (९) अपात्रतद्वारेण वृक्षवाटिका । (१०) यावदवलोक्यामि । (११) (विलास्य) (१२) ही ही नयनोत्सव सल्लिह वर्तते । (१३) तथाहि—पाञ्चालदास्या दुहिता प्रियगुण्डिका नाम (१४) जघनोत्सेकोत्पादिता-हकारेण यौवननराज्यकेन निलोभ्यमाना (१५) नानाविलासमानहानदाक्षिण्यसमु-

२९—हे अगरी (चलभी) की गोख के तिलक, हे श्राद्ध में प्रवृत्त बलि उपहार के खानेवाले अतिथि, तेरा भला हो । क्या मेरे जीते जी सदा प्रवास में रहने वाला मेरा वह प्रियतम लौटेगा ? यदि वह आता हो तो जा और दूसरे के द्वार तोरण पर बैठ । दुःख बीतने पर अपने प्रियतम से मिल कर मे तुझे दही भात खिलाऊँगी ।

वाह, इसका प्रेम निश्चय ही गिना छलछन्द का है । राजा के योग्य यह माल हँसी उड़ाने लायक नहा है । किसी राजमहिषी के हाथों से इसे वधु भाव का अवगुण्ठन प्राप्त हो । अब मैं अगरे जाऊँगा । (ब्रूमकर)—

अरे, दाहिनी ओर बगीचे में गहनो की झनकार से उड़े हुए पक्षियों की मुग्धरञ्जनि से मिला हुआ-सा शब्द सुन पड़ता है । ठीक, इस वृक्षवाटिका का द्वार खुला है । तो मैं देखूँ । (देखकर) हा-हा, क्या सूख ? यहाँ तो ओलों का जलूसा तैयार है । यह पाञ्चालदासी की पुत्री प्रियगुण्डिका है । इसके जघन भाग के

२६ (अ) चलभोगवाक्ष=भजन के ऊपरा भाग में बनी हुई चलभी या मड़पिका में बना हुआ जाल गवाच या झरोखा ।

२६ (२) राजयौतक=राजा के योग्य धन ।

२८ (३) महिष्यावगुण्ठनभागिनी=यह इस याग्य है कि किसी राजा के साथ व्याही जाय और राजा का पटराना इसे वधू भाव में स्वाकृत करके अवगुण्ठन ओढ़ावे । रोमान ने इसका अर्थ ठीक कहा किया ।

२६ (४) जघनोत्सक—यौवनादगम में जिसका जघन भाग भर गया है । उसने नायिका में अपने व्यक्तिगत प्रिय में एक अहंभाव या अभिमान उत्पन्न होता है । ऐसा नायिका अभिमानिना कहलाता है (काममूय, वयमगला २।२-३, रोमानवृत्त स्पिंगी) ।

दिता सस्तीजनपरिवृता कन्दुकक्रीडामनुभवति । (१६) यैषा—

- ३०— (अ) प्रनाललोलागुलिना करेण
 (आ) मान शिल कन्दुकमुद्वहन्ती ।
 (इ) स्वपल्लवाग्राभिहतैवपुष्पा
 (ई) नतोन्नता नीपलतेव भाति ॥

(१) काममस्या सदृशेनमेवानघां लाभ । (२) भवतु । (३) सन्तुष्टस्यापि जनस्य न त्वमृते पर्याप्तिरस्ति । (४) अतोऽपिमापिस्ये तावदेनाम् । (५) (उपगम्य) (६) वासु प्रियङ्गुयष्टिके किमिदं कन्दुकक्रीडाव्याजेन नृत्तकौशल प्रत्यादिश्यते सस्तीजनस्य । (७) कथं स्मितमानदत्तप्रतिषचना क्रीडत्येव । (८) आ यथा कन्दुकोत्पातान् गणयन्त्यस्या परिचारिका (९) शङ्के पणितमनया सस्तीभि सहोपनिबद्धमिति । (१०)

भर जाने से इसमें यौनोचित ठसक आ गई है । यौन का नया राज्य इसे लुभा रहा है । अनेक विलास, हाव, भाव और दाक्षिण्य से यह युक्त है और अपनी सखियों से घिरी हुई गेंद खेल रही है । यह—

३०—मूंगे की तरह लाल अगुलियों वाले हाथ से मैमसिली रंग की गेंद पकड़े हुए नीचे-ऊँचे लचकती हुई उस कदम रता की शोभा पा रही है, जो अपने पल्लवों की टोंक से किसी फूल के डोला मार रही हो ।

इसको देखना ही अनमोल लाभ है । ठीक, सन्तुष्ट जन भी अमृत से नहीं अघाता । तो इससे कुछ बातचीत करूँ । (पास जाकर)

प्रियगुणयष्टिके, क्यों तू गेंद खेलने के बहाने सखियों के नृत्य कौशल को भी मात कर रही है ? किंचित् मुसकराने मात्र से उत्तर देकर वह खेलती ही चली जा रही है । उसकी दासियों गेंद का उछलना गिन रही हैं । अनुमान होता है कि उसने सखियों के साथ बाजी लगाई है । वाह ! बाजी के कारण इसमें कितना उत्साह भर गया है । आज तो सयोग से ही मुझे यह दृश्य देखने को मिल गया है जिसमें इसका नीचे-ऊँचे होना, घूमना, उछलना, पीछे हटना, भागना आदि अनेक

३० (आ) मान शिल कन्दुकम्—मैमसिल के जैसे चट्कीले लाल रंग की गेंद ।

३० (३) सन्तुष्टस्यापि जनस्य न त्वमृते पर्याप्तिरस्ति—(लोकोक्ति) अमृत से भी कदा कोई अघाता है ?

३० (६) कन्दुकक्रीडा—युवति कन्या की कन्दुक काड़ा के वर्णन के लिये देखिए, दंडावृत दशकुमारचरित उच्छ्वास ६, दामोदरगुप्तकृतकृत्तिनीमतम् खल० ३६१, जे० खाडा, पद्म्या ओरिण्टेलिया, १६।३८५-८८ (रोमान कृत टिप्पणी) ।

३० (६) नृत्तकौशल प्रत्यादिश्यते सस्तीजनस्य—सखिया का जितना नृत्तकौशल है उससे अधिक तो तू क दुक काड़ा में अगमुद्धा में प्रदर्शित कर रहा है । तेरा वास्तविक नृत्तकौशल तो उसने कहीं अधिक होगा ।

अहो पणितप्रीतिः । (११) सर्वथा नतोन्नतार्तनोत्पतनापसर्पणप्रधावनचित्रप्रचार-
मनोहरं । (१२) यदृच्छया दृश्यमासादितं सत्वस्माभिः । (१३) किं बहुना । (१४)
शङ्के परिवर्तननिर्गतनोद्वर्तनपर्याध्यातसनान्तरप्रवेशकृतूलो (१५) वायुरप्येनाम-
भिकामोऽनुभ्रमतीति । (१६) यस्तत्त्वं स्वभावदुर्वलत्वादेकपाणिग्राहस्य यौवनपीठपयोधर-
भारनमितस्य (१७) विभेद्यहमस्या मध्यविमवादनस्य । (१८) न शङ्काम्येनामु-
पेक्षितुम् । (१९) अग्निगपिप्ये तावत् । (२०) अयि यौवनोन्मत्ते स्वसोक्तुमार्यविरुद्धः
सत्वयमारम्भः क्रियते । (२१) निरम विरम तावत् । (२२) अये त्वा सलु ममीमि ।
(२३) कथमुपारोहस्येनास्याः प्रहर्षः । (२४) हन्त इदानीमाशास्ये—

- ३१— (अ) प्रेङ्खोलत्कुण्डलाया बलवदनिभृते कन्दुकोन्मादितायाः
(आ) चञ्चद्वाहुद्वयायाः प्ररिक्चविस्तृतोदगीर्णपुष्पालकायाः ।
(इ) आवतौदभ्रान्तवेगप्रणयविलसितक्षुब्धकाञ्चीगुण्ठायाः
(ई) मध्यस्थावल्गमानस्तनभरनमितस्यास्य ते क्षेममस्तु ॥

प्रकार का अंग सचालन सब भोंति सुन्दर है । बहुत कहने से क्या ? धूमने, पीछे
हटने और कूदने के समय इसके फूले हुए वस्त्रों के भीतर प्रवेश के लिये उत्सुक
वायु भी कामुकता से इसके पीछे भाग रहा है । मुझे भय है कि मुझी में आ
जाने वाली और यौवन के भार से लदे हुए स्तनों से झुकी हुई स्वभाव से पतली
इसकी कमर कहीं उतर न जाय । अतएव इसकी उपेक्षा करना संभव नहीं । इससे
बातचीत करूँ—अरी यौवन में उन्मत्त तू अपनी सुकुमारता के विरुद्ध यह क्या
कर रही है ? ठहर, ठहर । मैं तुझी से कह रहा हूँ । इसका उल्लास तो बढ़ता ही
जाता है । अहो, अब मैं यही मनाता हूँ—

३१—अरी चपला, गेंद के पीछे तू बिलकुल पागल बन गई है । तेरे कानों के
कुण्डल जोर से हिल रहे हैं । दोनों मुजाएँ चमचमा रही हैं । बिखरी हुई अलकों से
खिले हुए फूल टपक रहे हैं । तेरी करधनी चक्कर लगाने से ऊपर उठलती और
फिर वेग के बढ़ने से चमकती और झुब्ध होती है । थलथलाते स्तनों के भार से झुकी
हुई तेरी कमर वस सज्जल बनी रहे ।

३० (१०) अहो पणितप्रीतिः—बाजी लगाने के कारण इसका उत्साह कितना
बढ़ गया है ?

३० (११) चित्रप्रचार = विचित्र ढंग से अंग सचालन ।

३० (१५) अभिकामः = कामुकता पूर्ण ।

३० (१६) यौवनपीठपयोधर—पयोधर क्या है, यौवन का भार लादने के
लिये पीठ है ।

३० (१७) मध्यविमवादन = बीच में उतर जाना, कटि भाग का बल खा जाना ।

३१ (अ) अनिमृता = चपला (अनिमृतरश्म्याश्चिपसु त्रिवेषु, मेघदूत २।५) ।

३१ (आ) विस्तृत = बिधुरे हुए ।

(१) एषा पूर्ण शतमिति व्यवस्थिता (२) वासु प्रियगुणष्टिके सस्त्रीजनपणित-
निजयेन दिष्टया वर्धते । (३) किं ब्रवीषि—“स्वागतमार्याय, हन्त विजयार्थं गृह्यताम्”
इति । (४) वासु त्वद्दर्शनमेवानघो लाभ । (५) स्मर्तव्या स्म । (६) साधयामो
वयम् । (७) (परिक्रम्य)

(८) अये इदमपर सुहृद्विनोदनायतनमुपस्थितम् । (९) इदं हि चन्द्रधर-
कामिन्या नागरिकाया दुहितु शोणदास्या गृहम् । (१०) एष प्रविशामि । (११)
न शस्यमनभिभाष्यातिरुमितम् । (१२) (प्रविष्टकेनावलोक्य) (१३) अये इय
शोणदासी किमपि चिन्तयन्ती द्वारकोष्ठक एवोपविष्टा । (१४) तत्किमिदानीं निर्मुक्तभूषण-
तया विविक्तशरीरलावण्या (१५) मलिनप्राचारार्थसमृतशरीरा रक्तचन्दनानुलितललाटा
(१६) सितदुःखलपट्टिकावेष्टितशीर्षाऽननतदनचन्द्रमण्डला (१७) ऽङ्गाधिरूढा वल्लकी-
र्मापत्तुरस्तरङ्गदृश्यन्ती (१८) कामलीमन्दमधुरेण स्वरेण केशिकाश्रयमाकृजन्ती
तिष्ठति । (१९) उत्सृष्टतयाऽनया भवितव्यम् । (२०) केशिकाश्रय हि गान पर्याय
शब्दो लुपितस्य । (२१) किन्तु सल्लिख्यम् अथतः पूर्व मया चन्द्रोदयादेव प्रणतकलहवृत्त

पूरे सौ हो गए, इसलिये यह रुक गई । वासु प्रियगुणष्टिका, सखियों से
बाजी जीतने पर बधाई । क्या कहती है—“आर्य का स्वागत निजय का अर्थ
हाजिर है, स्वीकार कीजिए ।” वासु, तुझे देख लेना ही मेरे लिये अमूल्य लाभ है ।
हमारा स्मरण रखना । मैं चला । (धूम कर) —

अरे अपने मित्र के दिलबहाल का यह दूसरा अङ्का आ पहुँचा । यह
चन्द्रधर की सुरैतिन नागरिका की बेटी शोणदासी का घर है । मैं इसमें प्रवेश करूँ ।
बिना बोले आगे नहीं बढ़ सकता । (प्रवेश करके देखते हुए) अरे यह शोणदासी
कुछ सोचती हुई बहिर्द्वार की देहली पर ही बैठी हुई है । क्या बात है कि वह
गहने एक ओर रखकर अपनी लुनाई से ही सुन्दर लगती हुई, मैली चादर से आधा
शरीर ढक कर, लगाट पर लाल चन्दन लगाए, सफेद दुकल की पट्टी सिर पर लपेट कर
अपना चन्द्रमुख नीचे लटकाए हुए, गोद में पड़ी घोणा की अँगुलियों से तनिक झनझरती
हुई धीमे और भीठे कारकी स्वर में कौशिक के सहारे टोप लगाती हुई बैठी है ।

३१ (३) आवाताद्भ्रान्त—चकर लगाने के कारण करघनों ऊपर उठ जाती है ।

३१ (६) वगप्रणयमिलसितसुख—वग बढने से चमकती और हिलती हुई ।

३१ (८) विनादनायतन = मनबहाल का स्थान, सम्भवन गृहोद्यान का
भीर मन्त है ।

३१ (१४) विविक्तशरीरलावण्या—जिसका शरीर मोन्दर्य भनलहान रूप में
भी भला लग रहा है ।

३१ (१८) कामली—मन्द मधुर स्वर में गुनगुनाता । कैशिके कादलिके च
निगदप्रियतु धुति, दामोदर संगीतदर्पण १११२, काशिके मरकरन (गोमाह १०) ।

व्याहरणमनयोः । (२२) प्रियनिरोधात् पश्चात्तापगृहीतयाऽनया भवितव्यम् । (२३) भवतु । (२४) परिहृसिष्याम्येनाम् ।

(२५) वासु शोणदासि, किमिदं वेपः परित्यज्यते ? (२६) वासु न सत्त्वयम्-पराङ्मुखश्चन्द्रधरः ? (२७) कथं तेऽश्रुमोक्षः प्रतिवचनम् ? (२८) निगृह्यतां वाप्य । (२९) कथ्यता तावत् । (३०) किं ववीषि—“मानैकप्राहकुशलेन व्यापादिताऽस्मि सखीजनेन” इति । (३१) ननु सर्जनाधिका ते सखी शोणदासि त्वामुत्थापयति ? (३२) किं ववीषि—“तस्या एव दुर्मन्त्रितैरापदमिमामुद्वहामि” इति । (३३) अपरिडिता सत्वसि । (३४) ननु सा त्वयैवं वक्तव्या—

३२— (अ) प्रायश्शीतापराद्धा क्षणमपि न पुनर्दूति मानक्षमाऽह
(आ) तुष्टेदानीमनार्ये भव मदनतुला मामिहारोप्य घोरात् ।

अवश्य यह उत्कण्ठिता है । कैशिक के सहारे- गाना रोने का दूसरा नाम है । क्या मैंने चन्द्रोदय से ही पहले वह किस्सा नहीं सुना कि इन दोनों का प्रणय कलह के रूप में झगडा हो गया है । प्रिय के साथ बरसेडा करके यह पठता रही होगी । ठीक, इसके साथ कुछ हँसी करूँ ।

अरे शोणदासी, क्यों तूने वेश में आकर रहनेवाली किमी तपस्विनी का स्वाग रचा है ? वासु, निश्चय ही कहीं चन्द्रधर से तो कोई अपराध नहीं हो गया ? क्या ओम्बू दारना ही तेरा उत्तर है ? ओम्बू रोक, मुझमें हाल न्ह । क्या कहती है ? “केवल मान कराने में ही कुशल मेरी सखी ने मेरा सत्यानाश कर डाला ।” अरी शोणदासी, जिस सखी को तू सजसे अधिक मानती है क्या उसी से तू विद्रोह पर आ गई ? क्या कहती है—“उसीकी बुरी सलाह से तो मैं यह आफत झेल रही हूँ ।” तू नादान है । उससे तुझे यों कहना चाहिए था—

३२—हे दूति, प्रियतम के प्रति प्रायः शीत रहना यही मेरा अपराध था, पर अब मैं क्षण भर भी उससे मान नहीं कर सकती । हे अनार्ये, मुझे नाम की कठिन तराजू

३१ (२०) कैशिक = काम राग से भरा हुआ मनोभाव ।

३१ (२१) व्याहरण = बयन, किस्सा ।

३१ (२२) प्रियनिरोध = प्रियतम की बात का विरोध, उसके मनोभाव को अवलोक करना ।

३१ (३१) उत्थापयति—तुम्हें विद्रोह के लिये उभार रही है ।

३२ (अ) प्रायश्शीतापराद्धा—हर समय मैं प्रियतम के प्रति शीत व्यवहार या उपेक्षावृत्ति धारण करने की अपराधिनी थी ।

३२ (आ) घोरमदनतुला—कामदेव अब मुझे तोल रहा है, मेरे धैर्य को कठिन परीक्षा दे रहा है । यदि मैं मान साधकर एति रत्न पाती तो मैं उसकी परग में पूरी उतरती, पर कामदेवना से मैं मान नहीं रत्न सकती ।

(६) मानेक्याहवाक्यैरनुनयविधुरैस्तावकैस्तत्कृतं मे

(६) पाणिभ्यां येन सम्प्रत्यनुचितशिथिलां मेसलामुद्वहामि ॥

(१) किं घवीपि—“पराजित इदानीं मदनं मानः । (२) किन्तु स एव तु सौभाग्यकृतावलोपस्ते वयस्यः स्तब्धः” इति । (३) ततः किमिदानीं नाभिसार्यते ? (४) सुन्दरि, अलमलं व्रीडया ।

३३—

(अ) निस्वस्याधोमुखी किं विचरति मनसा वाणपर्याकुलाक्षी

(आ) शैथिल्यं भूषणानां स्वयमपि सुभगे साध्ववेक्ष्य तावत् ।

(इ) हित्वा कूलस्थवाक्यान्यनुनय रमणं किं वृथा धीरहस्तिः

(ई) संरूढस्यातिभूढे प्रणयसमुदयस्यातिमानोऽयमानः ॥

पर चढ़ा कर तो अब तू प्रसन्न है ? केवल मान के लिये उकसाने वाली और मान-मनावन रहित तेरी बातों में आकर मैंने वह कर डाला जिससे मुझे ही अपने दोनों हाथों से अधिक ढीली बनी हुई अपनी करधनी संभालनी पड़ रही है ।

क्या कहती है—“काम ने मेरा सब मान ठंडा कर दिया । पर सौभाग्य के घमण्ड में तेरा वह ही मित्र अब हठीला पड़ रहा है ।” तो अब अभिसार क्यों नहीं करती ? सुन्दरी, ऐसी लज्जा छोड़ ।

३३—औखों में आँसू भरकर और नीचा मुँह करके लम्बी सोंस लेती हुई तू मन में क्या चिन्ता कर रही है ? यद्यपि तू सौभाग्यवती है, पर अब शिथिल हुए आनूपणों को तो तुझे स्वयं संभालना होगा । तटस्थ सखी के वचनों को छोड़ और प्यारे को अनुनय से मना । व्यर्थ कड़े बने रहने से क्या लाभ ? अरी मूर्ख, जब प्रणय अत्यन्त बढ़ गया हो उस समय अति मान करके बैठ रहना अपमान हो जाता है ।

३२ (६) अनुचितशिथिला—मेखला जितनी शिथिल रहती थी, अब काम संतापजनित क्रूरता के कारण उससे अधिक ढीली हो गई है । जब रति समय में मेखला घुटित हो जाती थी तो प्रियतम उसे आकृष्ट करता था, अब वियोग में नायिका को वह स्वयं संभालनी पड़ रही है ।

३२ (३) कूलस्थवाक्य—जो धार में न होकर किनारे पर हो उसको “वात । तात्पर्य यह कि मदनवेदना को धार में तो तू है, सखी तो किनारे पर है, उसकी सलाह मानने से क्या लाभ ?

३२ (३) वृथा धीरहस्ति = व्यर्थ को अकड़ । धीरहस्ति = वह भाव जिसमें हाथ चंचल न होकर कड़े कर लिए गए हों । कामियों को ‘अनिभृतकर’ चंचल हाथों से एक दूसरे का स्पर्श करनेवाला कहा गया है (अनिभृतकरेष्वाक्षिपसु प्रियेषु, मेघदूत २।५) ।

३२ (६) प्रणय समुदय = प्रेम का ज्वार या उमार ।

(१) किं ववीपि—“स्त्रिया नाम पुरुषोऽनुनेयो ननु शौर्यदीर्यम्” इति । (२) मा तावत् । (३) अतिमनस्विनि किं न गङ्गा सागरमभियाति ? (४) अलमलं ब्रौडया । (५) अथवा सकामाऽस्तु भवती । (६) अहमेव चन्द्रधरमनुनयामि । (७) किं बहुना । (८) अथैव ते चिरविरहसमारोपितस्य मदनाग्निहोत्रस्य पुनराधानं करोमि । (९) कथमनवसितचाप्ययैव स्मितमनया । (१०) इदं सलु वर्पित्व्योत्सनादर्शनम् । (११) सुन्दरि अलमलं रुदितेन । (१२) प्रत्युपस्थितं कल्याणम् । (१३) किं ववीपि—“सत्य-प्रतिज्ञेनेदानीं भावेन भवितव्यम्” इति । (१४) प्रभाते ज्ञास्यसि । (१५) कथमुपरतो वाप्यः । (१६) साधयाम्यहम् । (१७) (परिक्रम्य)

(१८) अहो इदमपरं शृङ्गारप्रकरणमुपस्थितम् । (१९) एषा हि नागरिका-
दुहिता गणिका भगधसुन्दरी नाम शरदमलशशिसदृशवदना (२०) असितमृदु-
कुञ्चितस्निग्धसुरभिशिरसिरुहा विकसितकुवलयदललोलोलोचनयुगला (२१) विद्रुमचारुतर-

क्या कहती है—“स्त्री पुरुष को मनावे, यही तो सच्ची मर्दुमी है ।” अरी, ऐसा मत सोच । अभिमानिनी, क्या गंगा समुद्र के पास नहीं जाती ? बस लज्जा से पीछा छुड़ा । अथवा तेरी इच्छा पूरी हो । चन्द्रधर को मैं ही मना लेता हूँ । अधिक कहने से क्या ? चिरविरह में बन्द पड़े हुए तेरे मदनाग्निहोत्र को मैं आज ही फिर से जगाता हूँ । आँसुओं के रुके बिना ही यह क्यों मुसकुरा दी ? यह तो बरसात में चोंदनी दिखाई दे गई । सुन्दरि, रोना बन्द कर । अब तो सुख का समय आ गया । क्या कहती है—“अब आपको अपनी बात सच्ची करनी चाहिए ।” सबेरे जानेगी । अच्छा, रोना रुक गया । मैं चला । (घूम कर)

अहो, यह दूसरा शृङ्गार का विषय उपस्थित हो गया । जिसका मुख शरद के अमल चन्द्र की तरह है ऐसी यह नागरिका की पुत्री भगधसुन्दरी नाम की गणिका है । इसके केश काले कोमल घुँघराले चिकने और सुगन्धियों से गमक रहे हैं एवं चञ्चल

३३ (१) शौर्यदीर्य = वीरता, बहादुरी ।

३३ (३) किं न गंगा सागरमभियाति—बिना डुलाए गंगा समुद्र से जा मिलती है ।

३३ (८) चिरविरह समारोपित अग्निहोत्र—अग्निहोत्रों जय प्रवास करता है तो अपना नित्याग्निहोत्र बन्द करके किमी दूसरे की अग्नि में उस कर्म को सौंप जाता है और लौटने पर उसे विधिपूर्वक लेकर पुनः अपने यहाँ आरम्भ करता है । हमी की ओर चिट को संवेत है ।

३३ (१०) इदं सलुवर्पित्व्योत्सनादर्शनम्—(लोकोक्ति) यहाँ कणु में उथोत्सना का दिखाई पड़ना कभी कभी या भाग्य से हो होता है ।

३३ (१८) प्रकरण = विषय । शृङ्गार प्रकरण = शृङ्गार का विषय । प्रकरण एक प्रकार का लौकिक रूपक भी होता था जिसका प्रधान रस शृङ्गार था (भवेत् प्रकरणे घृतं लौकिकं कविकल्पितं । शृङ्गारोऽर्था ... साहित्यदर्पण) । मृच्छकटिक साल्त्रमाधव प्रकरण है । कुमुद्वती नामक प्रकरण का उल्लेख हमी में आगे आया है ।

ताम्राधरसम्पर्कपरिपाटलदशनमयूखा (२२) कुन्दकुसुममुकुलघवलसमसहितशिसरदती (२३) पीनकपोलस्तगोरुजघनचक्रा बाह्यद्वारकवाटार्द्धसंवृतशरीरा (२४) दक्षिण-हस्ताङ्गलिद्वयेन तिरस्करिष्येकदेशमवलम्बमाना (२५) वामचरणकमलेकदेशेन भूतले तालमभिसंयोज्य (२६) रक्तधरमधुरतारसंयुक्तमसङ्कीर्णवर्णामवघुष्टालंकार-लङ्कता (२७) श्रोत्रमनोहरा पङ्कजग्रामाश्रयां वल्लभां नाम चतुष्पदां आकूजमाना (२८) नेत्रभ्रूक्षेपैः संकल्पितान् भावानमिनयन्ती (२९) कस्यापि सुभगस्यागमनं प्रतीक्षमाणा तिष्ठति । (३०) भोः को नु खल्वयं महेन्द्र इव सुरतयज्ञायाह्वयते । (३१) भवतु । (३२) पृच्छाम्येनाम् । (३३) भवति, वेशमेघविद्युल्लते पृच्छामस्तावत्—

नेत्र खिले नीलकमल की तरह सुन्दर हैं । इसके दाँतों की बाहर आती हुई रश्मियाँ मूंगे जैसे चटकीले लाल अधर के सम्पर्क से लाल हो रही हैं, एवं दाँत कुन्दकली के समान इवेत, बराबर और सटे हुए हैं । कपोल, स्तन, और जघन भाग भरा हुआ है । यह बाहरी दरवाजे की किबाड़ के पीछे अपना वदन छिपाकर दाहिने हाथ की दो अँगुलियों से परदे का छोर पकड़े हुए खड़ी है और बायें पैर के एक भाग से भूमि पर ताल देती हुई सुरीले मधुर तार स्वर में वल्लभा नामकी चौपदी गुनगुना रही है । वह गीति शुद्ध वर्ण वाली, अलंकारों से युक्त, कानों को सुख पहुँचाने वाली पङ्कज ग्राम पर आधारित है । नेत्र और भौहों से यह मन में उमड़ते हुए सकाम भावों को प्रकट करती हुई किसी रईस का आसरा जोहती हुई खड़ी है । अरे, इन्द्र के समान भाग्यशाली वह कौन है जिसका आवाहन सुरतयज्ञ के लिए हो रहा है ? ठीक, मैं इसीसे पूछता हूँ । अरे वेश के बादलों की बिजली, तुझसे कुछ पूछना चाहता हूँ—

३३ (२३-२४) बाह्यद्वारकवाटार्द्धसंवृतशरीरा दक्षिणहस्ताङ्गलिद्वयेन तिरस्करिष्येकदेशमवलम्बमाना—यह मुद्रा वासकसजिका नायिका की है जो प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा के लिये बाह्यद्वार तक आ जाती है ।

३३ (२६) असंकीर्णवर्णा—वर्ण = गान किया जिसके चार भेद हैं, स्थायी, संचारी, अतोद, अयरोह । अन्वकीर्ण = जिसमें दूसरे किसी गान विधि का संकर न हुआ हो, अपने स्वरूप में शुद्ध ।

३३ (२७) चतुष्पदा—लास्य के साथ गाई जानेवाली गीति जो शृंगाररस प्रधान होती थी । ताल की दृष्टि से दो, लय की दृष्टि से तीन, वाक्ययोजना की दृष्टि से तीन और भाषा भादि की दृष्टि से चतुष्पदा के अठारह भेद बड़े गण हैं (अथ लास्याश्रयीमृताः कथ्यन्ते तु चतुष्पदाः । शृंगाररससम्पन्ना रामकृष्ण कवि, भरतकोश, पृ० २००) ।

३३ (२७) वल्लभा—चतुष्पदा की गीति विशेष जो मण्डक नामक गीतालंकार के द्वादश भेदों में से एक होती थी (जयप्रियः कलापरच कमलमुन्दरस्तथा । मल्लभो मंगलरचेति पदेने मन्द्रकाः मृताः ॥ संगीतसार, भरतकोश, पृ० ४५३ पर उद्धृत) । लोमान की टिप्पणी के अनुसार दामोदर एत संगीत दर्पण ११४४ में भी वल्लभा चतुष्पदा का वर्णन है ।

३३ (३०) महेन्द्र इव सुरतयज्ञाय—महेन्द्र शब्द में श्लेष से इन्द्र और कुमार गुप्त महेन्द्रादिय दोनों का संज्ञेत सम्भव है जिसके लिये 'मगधमुन्दरी' प्रतीक्षा कर रही थी ।

३३ (३३) वेशविगुह्यता—रूपशालिनी । अवयविना गणिता विघुह्यता बहुलाभा

३४—

- (अ) शुक्लासितान्तरका
 (आ) सापाङ्गावेक्षिणी विकसितेयम् ।
 (इ) धन्यस्य कस्य हेतोश्
 (ई) चन्द्रमुखि बहिर्मुखी दृष्टिः ॥

(१) हा धिक् विव्रस्तमृगपोतिकेव संव्रस्तया दृष्ट्या मां निरीक्षते । (२) प्रत्यागतचित्तयाऽनया भवितव्यम् । (३) किं ब्रवीषि—“मा मेवम् । (४) ब्रह्मचारिणी सत्यहं वसन्तमुपवसामि” इति । (५) श्रद्धेयमेतत् । (६) अयमिदानीं सरसदन्तक्षतो-ऽधरोष्ठः किमिति वक्ष्यति ? (७) किं ब्रवीषि—“सावशेषतुपारपरूपस्य वसन्तवायोः पदान्येतानि” इति । (८) भवतु तावत् । (९) संज्ञताः स्मः ।

३५—

- (अ) दन्तपदजर्जरोष्ठी
 (आ) यथा च नियमं त्वमात्मनो वदसि ।
 (इ) सुव्यक्तमव्रतघ्नं
 (ई) चुम्बितचान्द्रायणं चरसि ॥

३४—सफेद, काली, कौनों में लाल, अपाङ्गयुक्त इस खुली दृष्टि से हे चन्द्रमुखी, किस भाग्यवान् के लिए तुम बाहर की ओर देख रही हो ?

हा ! डरी हुई मृगछौनी की तरह भयभीत आँखों से वह मेरी ओर देख रही है । जान पड़ता है इसके मन में फिर रंग आ गया है । क्या कहती है—“ऐसी बात नहीं है । मैं वसन्त में ब्रह्मचारिणी रहकर उपवास करती हूँ ।” यह मानने लायक है । पर तेरे आँठ का यह ताजा दन्तक्षत क्या कह रहा है ? क्या कहती है—“आखिरी पाले से कठोर वसन्ती हवा के ये चिह्न हैं ।” ऐसा ही सही । मैं समझ गया ।

३५—दन्तक्षत से जर्जर आँठ वाली भी तू जो अपना नियमाचार बतलाती है, उसमें प्रकट होता है कि तू अपने उस व्रत के अनुकूल ही चुम्बन का चान्द्रायण कर रही है (चान्द्रायण-व्रत के आहार की भाँति चुम्बन घटाती बढ़ाती रहती है)

धी । बाग ने उसे ‘तद्वि’ कहा है (तद्विपि जलदे स्थिरतां व्रजति, कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, अनुसूत्र १६२, पृ० १६१, इसमें बिजली की भाँति तड़पनेवाली बंधल नायिका और जलधर मेघ के समान गम्भीर नायक का उल्लेख है ।

३४ (१) मृगपोतिका = मृगणाविका, मृगछौनी ।

३४ (७) तुपारपरूप वसन्तवायु—वसन्तमें बहनेवाला फगुनहवा जो अतिशीत धर्मीली हवा लाता है और प्रायः जिसमें होठ चटक जाते हैं ।

३५ (अ) पद = चिह्न ।

३५ (ई) चुम्बितचान्द्रायण—जैसे चान्द्रायण व्रत में आहार के प्रासों की रग्या बढ़ती घटती रहनी है, वैसे ही तू सुरत का उपवास करके चुम्बन के चान्द्रायण से वाम घटाती है ।

(१) एषा संवृत्य कवाटेन मुखं प्रहसिता । (२) तपोवृद्धिरस्तु भवत्यै । (३) साधयाम्यहम् । (४) (परिक्रम्य)

(५) भोः एष कथञ्चिद् वेशयुवतिप्रलापशृङ्खलामुन्मुच्य प्राप्नोऽस्मि देवदत्ताया गृहम् । (६) अपीदानीं देवदत्ता गता स्यात् । (७) किं नु सल्लु पृच्छेयम् । (८) (विलोक्य) (९) आ अयं तावद् वृक्षवाटिकापक्षद्वारेणातिक्रामति (१०) भावगन्धर्व-दत्तस्य नाटकाचार्यस्यान्तेवासी दर्दुरको नाम नाटेरकः । (११) यावदेनं पृच्छामि । (१२) (निर्दिश्य)

(१३) अथो दर्दुरक कुतस्त्वमागच्छसि ? (१४) अपि जानीमि किं देवदत्ता करोतीति । (१५) किमाह भवान्—“गता सल्लु देवदत्ता सुखप्रसन्नार्थमार्यमूलदेवं द्रष्टुम् । (१६) अहं तु देवसेनां द्रष्टुमाचार्येण प्रेषितोऽस्मि” इति । (१७) अथ केन कारणेन ? (१८) किं ब्रवीषि—“कुमुदवतीभूमिकाप्रकरणमुपनयेति” इति । (१९) अथोपनीतं पत्रकं गृहीतं च तथा ? (२०) किं ब्रवीषि—“आचार्यगौरवात् प्रतिगृह्यतं तत्पत्रकं तथा । (२१) पार्श्वस्थायास्तु सत्या हस्ते न्यस्तम् । (२२) अपि च कुमुदवत्यै नमस्कृत्योक्तवती—“अस्वस्था तावदस्मि” इति” इति । (२३) हन्त प्रसिद्धतर्काः स्मः ।

वह । किवाड़ के पीछे मुँह छिपाकर हँसने लगी । तैरे इस तप की वृद्धि हो । मैं चला । (घूम कर)

वाह ! किसी तरह वेद्याओं के साथ बात-चीत की कड़ी तोड़कर मैं देवदत्ता के घर आ पहुँचा । देवदत्ता शायद बाहर गई है । किससे पूछना चाहिए ? (देखकर) वाह ! बगीचे के बगल के दरवाजे से प्रिय गन्धर्वदत्त नाटकाचार्य का शिष्य दर्दुरक नामका नटीपुत्र (नाटेरक) निकल रहा है । उसी से पूछता हूँ । (इशारा करके)

अरे दर्दुरक, तू कहाँ से आ रहा है ? तू जानता है कि देवदत्ता क्या कर रही है ? तूने क्या कहा—“देवदत्ता आर्य मूलदेव को देखने और कुशल-मंगल पूछने के लिये गई है । मेरे आचार्य ने मुझे देवसेना को देखने भेजा है ।” किस कारण से ? क्या कहता है—“आचार्य ने कहा है—नाटक (प्रकरण) में कुमुदवती को जो अभिनय करना है उसका लिपिपत्र उसे दे आ ।” क्या लाया हुआ पत्र उसने लिया ? क्या कहता है—“आचार्य के रोय से उसने पत्र तो ले लिया पर बगल में बैठौ सखी के हाथ में दे दिया । फिर कुमुदवती को प्रणाम करके उसने कहा—

३५ (१०) नाटेरक = नटी का पुत्र ।

३५ (१५) सुराग्रह—“क्या रात्रि में आप सुग से भोग”, इस प्रकार का कुशल-प्रश्न । उसका पृष्ठनेवाला गीग्यप्राधिक कहलाता था (= सौवरात्रिक, सोपरावत्रिक)

३५ (१८) कुमुदवती भूमिका प्रकरण—कुमुदवती नामक नाटक में अभिनय योग्य भूमिका का विषय । कुमुदवती प्रकरण नामक नाटक का उल्लेख और विवरण भागे (३८।२५) भाषा है ।

३५ (२२) कुमुदवत्यै नमस्कृत्य—हमने अभिनय का सिद्धाचार सूचित किया है ।

(२४) एतदस्या कायैस्तानता सूचयति । (२५) अघो दर्दुरक किमिदं पनकेऽभिलिखितम् ? (२६) किं व्रवीषि—“वाचयस्व” इति । (२७) (गृहीत्वा वाचयति)

३६—

(अ) कान्त वन्दर्षपुष्प स्तनतटशशिन रागवृक्षप्रवाल

(आ) शय्यायुद्धाभिघात सुरतरथरणथान्तर्धुयप्रतोदम् ।

(इ) उन्मेष विप्रमाणा करजपदमय गुह्यसम्भोगचिह्न

(ई) रागाक्रान्ता वहन्ता जघननिपतित कर्कशा स्त्रीक्रियार्थ ॥

(१) साधु भो कर्कशश्रींशोरीप्रतारणायाभिप्रस्थितस्य मे । (२) गृहीत्वा मङ्गलमर्थसिद्धि सूचयति । (३) अघो दर्दुरक, अपि जानापे कुनस्था देवसेनेति ? (४) किं व्रवीषि—“वृक्षवाटिका गता” इति । (५) मदनकर्मान्तभूमौ वर्तते । (६) साधु ।

“मैं इस समय स्वस्थ नहीं हूँ ।” अहो, हम भी अपने अनुमान के लिए प्रसिद्ध हैं । यह सूचित करता है कि वह काम में पूरी तरह डूबी हुई है । अरे दर्दुरक, इस पत्र में क्या लिखा है ? क्या कहता है—“स्वयं पद लीजिए ।” (पत्र लेकर पढ़ता है)

३६—रागवृक्ष कर्कश किशोरियों जघनस्थल पर लगे हुए नखक्षत रूपी गुह्य सम्भोग चिह्न को धारण करती रहें । वह चिह्न काम का मनोहर फूल है, स्तनो के समीप हार में झूलनी हुई चन्द्रलेखा के आकार का है, प्रेम के वृक्ष का नया पत्ता है, शय्या युद्ध में लगा हुआ घाव है, सुरतरूपी रथ युद्ध में अकेले हुए बैलों को हारने के लिये अकुश है, और बिलासों का जहरा है ।

वाह ! स्त्री रूपी उस दृढीली बड़ेड़ी को साधने के लिये निम्नले पर मुझे यह कार्यसिद्धि का सूचक शत्रुन दिखलाई पड़ा है । अरे दर्दुरक, क्या तू यह भी जानता है कि देवसेना कहाँ है ? क्या कहता है—“बगीचे में गई है ।” हाँ, तब

जितका अभिनय करना होता, अभिनेता उसके लिए मन में प्रणामभाव अवित करता था ।

३५ (२३) प्रसिद्धतर्क —तर्क = तर्कणा, अनुमान, विचार ।

सोमना ने इस श्लोक का अर्थ एक नहीं समझा । यहाँ दृष्टा दृष्टा प्रदत्त इस नखक्षत का वर्णन है जो जघन भाग में किया गया है (करजपदमय गुह्यसम्भोगचिह्न) । करज = नख । पद = चिह्न ।

३६ (अ) स्तनतटशशी—नखक्षत का आकृति का उपमा स्तना के समीप हार में गूँथा हुआ चन्द्रलेखिका नाम का शरिया से दा गई है । नखवि दास पाँच प्रकार का होता था—अर्धचन्द्र, मण्डल, मधुरपद, दशप्लुत, उत्पलपत्र (ज्यातिराश्वर ठक्कर कृत चणोरनाकर, ७० २८-२९) । यहाँ अर्धचन्द्र नामक नखक्षत का वर्णन है ।

३६ (आ) रथरण = रथयुद्ध । धुर्य = रैल, यहाँ नायक नायिका से तात्पर्य है ।

३६ (इ) क्रियारी = किशोर अवस्थावाला, नई बच्चा ।

३६ (ई) प्रतारण = नई उमर का बच्चा को साधना या निकालना, बरा में करना ।

३६ (५) मदनकर्मान्तभूमि—वृक्षवाटिका, भवनाद्यान या प्रमदवन का कामदय

गच्छतु भवान् । (७) प्रविशामस्तावत् । (८) (प्रविश्य) (९) अये, इयमिय देवसेना—

३७— (अ) कुशा त्रिवर्णा परिपारदुनिप्रभा
(आ) प्रभातदोपोपहतेव चन्द्रिका ।
(इ) वहत्यसाधारणगूढवेदन
(ई) मनोमय व्याधिमदारणोपधम् ॥

(१) आ यथैव सर्वगुह्यचारिण्या स्नेहातिसृष्टसखीभाषया (२) प्रियवादिनिकया नाम परिचारिकया सह परिवर्जितान्यजना वायु पर्युपास्ते । (३) भवतु । (४) एतदप्यस्या एकतानता सूचयति । (५) सर्वोऽपि त्रिविक्राम कामी भवति । (६) अस्मद्विषयगतेयम् । (७) यावदेनामुपसर्पामि । (८) (उपेत्य)

(९) वासु देवसेने विस्त्रम्भालापविच्छेदकारिणो न सलु वयमसूयितव्या । (१०) किं ब्रवीषि—“स्वागत भावाय । (११) अमिवादयामि” इति । (१२) भवतु । (१३) प्रतिगृहीत समुदाचार । (१४) अलमल प्रत्युत्थानयन्त्रणया । (१५) किमाह भवती—“उपनिश, इदमासनम्” इति । (१६) बाढमुपविष्टोऽस्मि । (१७) वासु

तो काम के कारखाने में है । ठीक, तू जा । तो मैं भीतर प्रवेश करूँ । (प्रविष्ट हो कर) अरे, यही देवसेना है—

३७—दुबली, फीकी, पीली, फान्तिहीन, प्रातःकालीन क्षीण चन्द्रिका की तरह वह काम रोग की असाधारण गुप्त वेदना झेल रही है जो केवल मधुर उपचार से ही दूर की जा सकती है ।

अहो, यह कारण है कि सब गुप्त रहस्य जानने वाली और अतिशय स्नेह से समी रूप में अगीकृत प्रियवादिनिका नामक अपनी दासी के साथ वह सगो हटाकर एकान्त में हवा खा रही है । ठीक, इससे भी उमका एक्कम्पापन (एक में आसक्ति) सूचित होता है । सभी कामी एकान्त पसन्द करते हैं । अब तो वह मेरी पहुँच में है । तो मैं इसके पास जाऊँ । (जाकर)

वाला देवसेना, निजों गुह्य बातचीत में दखन देने वाले हमसे तू नाराज मन होना । क्या कहती है—“आपका तो स्वागत करती हूँ ।” मैंने तेरा यह शिष्टाचार स्वीकार किया । अरे, उठने की तत्कालीन मत कर । तूने क्या रूपा—“बैठिए, यह आसन है ।” अच्छा, बैठना हूँ । वासु, प्रेमी के लिए सन्नाप करने से क्या ?

की कर्माग्न भूमि, या कार्यालय कहा गया है, जहाँ मोक्ष पर्यंत, कमलवादादिभिः एवं हिमगृह के भोक्ता शिष्टरापचारों का प्रबन्ध रहता था, (देगिप, कादम्बरा, एक सारहतिथि अष्टम्यन, हिमगृह वर्णन, अनु० २०३) ।

३७ (५) विनिष् = एकान्त ।

किमिदं बन्धुजनसन्तापः कियते ? (१८) को नामायमचक्षुर्ग्राहो गृहनेदन स्वयग्राह्यं प्राक् केनलो व्याधिः । (१९) किं ब्रवीषि—“न सलु किञ्चिद्” इति । (२०) अयि परिडतमानिनि अलमस्मान् विक्षिप्य । (२१) सदाऽपि नाम त्वमस्माकं वालकीडन-कान्धेपणादिषु प्रणययती । (२२) अपि च, स एवायं मूलदेवससः शशः । तदुच्यता सदभावः । (२३) किमाश्रयोऽयं सन्तापः ? (२४) तत्र हि—

३८—

(अ) अव्याधिग्लानमङ्गं करतलकमलापाश्रितं गरुडपार्श्वं

(आ) दृष्टिर्ध्यानिस्ताना जडमिव हृदयं जृम्भणा वर्णभेदः ।

(इ) निश्वासायासमूर्ता न च न रतिकरस्तापनश्चेन्द्रियाणां—

(ई) मेकद्रव्याभिलाषी प्रतिनव इव ते चोरि कोय विकारः ॥

(१) कथं निश्वासितमनया । (२) हन्त सन्धुक्षितो मदनाग्निः । (३) भवतु । (४) इदानीमात्मगतं भाग्यमस्यां ज्ञास्यामः । (५) यदि वषमपानीभूता निस्समाना-मरोगाऽस्तु भवती । (६) साधयाम्यहम् । (७) किं ब्रवीषि—“चपलं सलु भावः” इति । (८) हन्त प्रतिज्ञातम् । (९) एषाऽपि मर्मं वक्ष्यति । (१०) वासु कुतो मे धृतिस्तदेवशेन शरीरोदन्तेन । (११) अपि च दीर्घमूर्खता नाम कार्यान्तरमुत्पादयति ।

आँख से दिखाई न देनेवाली, डिपी कसर वाली, खुद लगाई हुई, शुरू में अकेली आने वाली, यह कौन-सी बीमारी है ? क्या रहा—“कुठ नहीं ।” अरी सुघड़, मुझे ठरकाने से बाज आ । तू सदा मेरे लिये प्यारी बन्ची थी जो खिलौने आदि लाने को मुझसे कहा करती थी । मैं वही मूलदेव का मित्र शश हूँ । मन की बात कह । यह दुसड़ा किसके कारण है ?—

३८—जिना रोग के भी तू रोगी है । तेरी कनपट्टी कमल सी हथेली पर टिकी है । पुतली ध्यान से एम्बरु है । हृदय जड हो गया है । जभाई आ रही है । रंग बदला हुआ है । अरी चोटी, बता यह कौन-सी नई बीमारी तुझे लगी है जिसके कारण सोंस लेने में भी रुठिनाई हो रही है, कहीं शान्ति नहा है, इन्द्रियों को तपन हो रही है और वम एक ही वस्तु को तुझे इच्छा हो रही है ।

इसने ऐसी सोंस क्यों ली ? इसकी कामान्ति धधक उठी है । टीक, अरु मैं इसके मन की बात जान सँगा । अगर मैं तेरे विश्वास का पात्र नहीं हूँ तो सुखी रह, मैं अपने काम पर चला । क्या कहती है—“आप ऐसे चपल हैं ।” हाँ जान गया । (मन में) यह मरम की बात कहना चाहती है । (प्रष्ट में) तेरी ऐसी हालत देव्यरर मुझे धैर्य क्यों ? और भी, देरी करने से दमरा कार्य आ उपस्थित होता है ?

३८ (९) एषाऽपि मर्मं वक्ष्यति—इसका लोमान में पाठांतर है—एषा विमर्दं वक्ष्यति (= यह भव अपने प्रणय-कलह के विषय में बताएगा ।

(१२) तदुच्यतां सन्तापकारणम् । (१३) किं ब्रवीषि—“न खलु मे भावं प्रति गुह्य-
गस्ति । (१४) अयं तु वसन्तस्वभावः यन्मे गुरुजनयन्त्रणया निभृतस्यापि मनसः किमप्य-
कारणेनोत्पन्नमुत्पादयति” इति । (१५) साधु भो नायं व्याधिव्यपदेशः । (१६)
चोरि, एतदपि जानीषे साधु युवती खलु देवसेना संवृत्तेति । (१७) वासु यद्येवं अलमल-
मनुपपन्नेन । (१८) ऋतुपरिणामेन स्वस्था भविष्यति । (१९) कथं ब्रीहितमनया ।
(२०) प्रियवादिनिके, किमिदं तालपत्रेऽभिलिखितम् ? (२१) किं ब्रवीषि—“नाटक-
भूमिका” इति । (२२) पश्यामस्तावत् । (२३) (गृहीत्वा वाचयति)—

(२४) कुमुदवती प्रकरणे शूर्पकस्तर्का राजदारिकां धात्री रहस्युपालभते ।

इसलिए शीघ्र अपने सन्ताप का कारण कह । क्या कहती है—“आपसे मेरा कुछ छिपाव नहीं है । यह वसन्त का स्वभाव है कि बड़ों की कड़ी शिक्षा से वश में किए गए मन को भी बिना कारण उखाड़ कर देता है ।” ठीक, यह बीमारी से इन्कार नहीं करती । अरी चोष्टी, क्या तू जानती है कि देवसेना सचमुच युवती हो गई है ? हे धाला, यदि यह बात है तो इस बीमारी को आगे न बढ़ा । मौसिम बदलने से तू ठीक हो जायगी । यह लजा क्यों गई ? प्रियवादिनिके, तालपत्र पर क्या लिखा है ? क्या कहती है—“नाटक में पात्र की भूमिका है ।” देखूँ तो सही । (लेकर पढ़ता है) कुमुदवती प्रकरण में शूर्पक पर आसक्त राजपुत्री को उसकी धाय अकेले में उलाहना देती है—

३८ (१६) युवती खलु देवसेनासंवृत्तेति—किं यह भ्रमनात्मक वाक्य देवसेना से हो यह रहा है ।

३८ (१७) अनुवण्ड = मूल बात का पुछना; यहाँ जीवन के कलत्वरूप आने वाली कामव्याधि से तात्पर्य है ।

३८ (२४) कुमुदवती प्रकरण—इस नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ उस समय था जिसमें राजपुत्री कुमुदवती का शूर्पक नाम के मधुप के साथ प्रेम का वर्णन था । शूर्पक के मन में राग न था, पर कुमुदवती उसे बहुत चाहती थी । अन्त में कामदेव ने शूर्पक के हृदय में राग उत्पन्न करके उसे परास्त किया । अश्वघोष ने इस लोक कथा का उल्लेख किया है—

इवपचं किल सेनजित्सुता चक्रमे मीनरिपुं कुमुद्वती । (सौन्दरनन्द ८॥४४)

सेनजित् राजा की पुत्री ने चण्डाल से और कुमुदवती ने क्रिपे मधुप से प्रेम किया । सौन्दरनन्द १०॥५२ में भी इस कथा का उल्लेख है जिसमें मधुप को भय और शूर्पक को भयरागु कहा गया है । उसी कवि ने बुद्धचरित में मधुप का नाम शूर्पक दिया है—

भयोपतां त्येप शरः स एव यः शूर्पके मीनरिपो विमुक्तः । (बुद्धचरित १३॥११)

इसी लोक कहानी का एक रूप राजकुमारी मायावती और मधुप सुमहार के प्रेम को क्या था (कथासरित्सागर ४० ११२) ।

३६—

(अ) उन्मत्ते नैव तावत्स्तननिपममुरो नोदगता रोमराजि

(आ) न व्युत्पन्नाऽसि च त्व व्यपनय युगतीदोहल दुविदग्धे ।

(इ) व्युत्पन्नामि सरसीमि सततमविनयग्रन्थमध्याप्यसे त्व

(ई) केनेद बालपन्ने मनसिजन्दन कर्तुमभ्युद्यताऽसि ॥

(?) निमाह देवसेना—“एतत्तारमयैव न श्रुतमस्ति” इति । (२) हन्त एष उदगीर्ण स्वभाव । (३) इत्थमहमपि कामयामीत्युक्त भवति । (४) निमाह देवसेना—“छलग्राही भाव ” इति । (५) बासु अलमलमस्मान् निक्षिप्य । (६) मेघा षगूढमपि चद्रमस कुमुदवतीप्रबोध सूचयति । (७) गच्छ पुरुषद्वेषिणि । (८) आपन्नेदानीमसि ।

४०—

(अ) नैवाह कामयामीत्यसदृढमिहित यत्नया गूढभावे

(आ) सा त्व तन्वीस्त्रभावात् कथय तनुतरा चोरि केनासि जाता ।

(इ) हस्तप्रत्यस्तगण्ड प्रशिथिलवलये भिन्ननिश्वासचरने

३९—अरी नासमझ, अभी तो तेरी छाती भी नहीं उभरी, न रोमावलि ही फूली है । अनाड़ी, अभी तेरी कच्ची समझ है । तू जवान स्त्रियों जैसी पति से मिलने की यह साध छोड़ । तेरी चट सखियों तुझे हमेशा अविनय का पोधा पढ़ाती रहती है । अरी, तू बालापन ही में पक गई । क्यों तू कामसग्राम के लिये तुली है ?

देवसेना ने क्या कहा—“यह तो मैंने भी पहले नहीं सुना ।” अहो, अब इसका अपना भाव खुला है । इसका तो यह मतलब हुआ कि मैं भी ऐसा ही करना चाहती हूँ । देवसेना ने क्या कहा—“आप मेरे चरके समझते हैं ।” बासु, मुझे टरकाने से राज आ । बादलो में छिप चन्द्रमा को भी कुमुदिनी का गिलना बता देता है । अरी भरद-भडकनी, चल । तेरे ऊपर यह बला आई है ।

४०—अरी गुमसुम (भाव छिपाने वाली) ‘मैं प्रेम नहीं करती’ ऐसा अनेक बार तूने कहा । अरी चोट्टी, फिर बता कि स्वभाव से छत्रहरी, तू और दुनली क्यों हो गई है ? तेरे फगन ढीले क्यों पड़ गए हैं ? कपोल हाथों पर क्यों रखे हैं ? रूनी सोंसों से तेरे मुख का रंग क्यों पीका पड़ गया है ?

३६ (आ) दुविदग्धा = अनाड़ा, अनसमझ ।

३६ (इ) अविनय ग्रन्थ = युवति स्त्रियों के समान एका काम व्यवहार करने की शिक्षा ।

३६ (ई) कन्दन = युद्ध । मनसिजकन्दन = रतिसमर । मुरत की युद्ध के रूप में कन्दना एक साहित्यिक अभिप्राय था । (द्रष्टव्य जायसाकृत पदमावत ३१८।१६ कहीं जूफ नग राजन रामा । सज विधसि विरह मग्रामा) ।

३६ (४) छलग्राहा—छल कथ की बात साद देने वाला ।

४० (अ) गूढभावा = भावमगोपन करनेवाला, मन का भाव छिपा रखनेवाला नायिका ।

४० (इ) भिन्न = विवर्ण ।

(ई) व्याधिक्षिप्तो जनोऽयं किमिदमतिशये बाह्यते धीरहस्तः ॥ .

(१) किमाह प्रियवादिनिका—“सति प्रवृत्ते कामतन्त्रप्रकरणे (२) दिष्ट्वेदानी-
मस्मत्स्वामिनी पुरुषविशेषमनुरक्ता, न पृथग्जनम्” इति । (३) तत्कस्यायमवन्तिनगर्या
पुरुषविशेषशब्दः प्रचरति ? (४) किमाह भवती—“कस्य तावत्त्वयाऽभ्युपगम्यते” इति ।
(५) कस्यान्यस्य, ननु कर्णापुत्रस्य । (६) स हि ।

४१—

(अ) कुले प्रसूतः श्रुतवानविस्मितः

(आ) स्मिताभिभाषी चतुरो विमत्सरः ।

(इ) प्रियंवदो रूपवयोगुणान्वितः

(ई) शरीरवान् काम इवाधनुर्धरः ॥

(१) कि अधोमुखी देवसेना संवृत्ता । अलमलमनिभृते दुकूलदशान्तोद्वेष्टनेन ।

अरी शठताभरी, बता जब यह जन यों मदनव्याधि से पीड़ित है, तो फिर
इतनी धीरता क्यों बरत रही है ?

प्रियवादिनिका, तू क्या कहती है—“कामतन्त्र प्रकरण में प्रवृत्त मेरी स्वामिनी
विशेष पुरुष में अनुरक्त है, किसी मामूली आदमी में नहीं ।” तो इस अवन्ति नगरी
में पुरुषविशेष शब्द किसके लिए लागू है ? तू ने क्या कहा—“आपका क्या अन्दाजा
है ।” दूसरा कौन हो सकता है ? कर्णापुत्र ही होगा । वह—

४१—अच्छे कुल में उत्पन्न, विद्वान्, किसी बात से विस्मित न होने वाला, हँसकर
बोलने वाला, चतुर, ईर्ष्यारहित, प्रियभाषी, रूप और यौवन से युक्त, बिना धनुष के
साक्षात् कामदेव है ।

देवसेना सिर नीचा करके क्यों रह गई ? अरी चपला, दुकूल के आंचल

४० (ई) व्याधिक्षिप्तजन—मदनव्याधि से पीड़ित, स्वयं देवसेना की ओर
संकेत है ।

४० (ई) बाह्यते—धीरता क्यों बरती जा रही है; धीर भाव क्यों पकड़े हुए हैं ।

४० (ई) धीरहस्त (पद्म० ३३३)—नायिका द्वारा राग को दबा कर विजडित
भाव का आश्रय लेना ।

४० (१) कामतन्त्र प्रकरण—१. कामशास्त्र का एक अध्याय, २. काम की
लीला का प्रसंग ।

४० (२) पृथग्जन—साधारण व्यक्ति । संस्कृत साहित्य में पुरुष विशेष और
पृथग्जन ये दो शब्द प्रायः प्रयुक्त हुए हैं । पाली में सामान्यजन के लिए ‘पुथुज्जन’
शब्द था ।

४१ (२) दुकूलदशान्तोद्वेष्टन—चादर की किनारी के अन्त भाग को मोड़कर
गोलियाना, ध्यर्थ की चेष्टा करना ।

(३) कथ्यता तानत् । (४) अपि च यदि वयं भाजनीमविष्याम (५) समीनमेवास्ते । (६) अथवा लज्जा नाम नितासयौतक प्रमदाजनस्य, विशेषतश्चाप्रौढकामिनी नाम् । (७) तदेवा कथमिव स्वयं वक्ष्यति । (८) तत्काम पुस्पविशेष इत्यसाधारण एव शब्द कर्णोपुत्रे प्रतिपसति । (९) तथापि नाम त्वलब्धगाम्भीर्यो धृतिमुपयात एना व्याहारयामि ।

(१०) वासु देवसेने किमस्माक पररहस्यश्रवणेन ? (११) उदासीना खलु वयम् । (१२) तदामन्त्रये भवतीम् । (१३) कर्णोपुत्रोऽपि पाटलीपुत्रविरहात् स्वजन दर्शनोत्सुको भृशमस्वस्थ । (१४) स एषोऽद्य शो वा प्रस्थास्यते । (१५) पुनर्द्रष्टाऽस्मि भवतीम् । (१६) किन्तु स्वस्वरूपया त्वया भग्नितव्यम् । (१७) स्मर्तव्या स्मो वयम् । (१८) (उत्थाय प्रस्थित । सत्वर निवृत्त्य ।) (१९) अये केनैतदुक्त—“हन्त व्यापन्नेदानीम्” इति । (२०) आ देवसेना रोदिति । (२१) वासु किमिदम्, अलमल रुदितेन । (२२) भवतु । (२३) गृहीतम् । (२४) दिष्ट्या पात्रगतो मनोरथ । (२५) कर्णोपुत्रस्यापि त्वन्मय एव व्याधि । (२६) तदितरेतरस्योपधत्वेन कल्पयितव्यम् । (२७)

का गूँथना बन्द कर । कह तो सही । यदि यह मुझे अपना विश्वास पात्र समझती हो तो भी चुप ही है । लज्जा स्त्रियों के, विशेष कर मुग्धा स्त्रियों के, बिलास की दहेज है । फिर वह स्वयं कैसे कहे ? अतएव यद्यपि ‘पुरुष विशेष’ यह असाधारण शब्द कर्णोपुत्र पर ही लागू होता है, तो भी जब तब इसकी थाह न पा लूँ धीरज धर कर इसी से इसका भेद कहलाऊँगा ।

वासु देवसेना, दूसरे का भेद सुनने से मुझे क्या मतलब ? मैं तबस्थ हूँ, सिर्फ़ तुझे सलाह देता हूँ । कर्णोपुत्र भी पाटलीपुत्र से दूर रहने के कारण अपने स्वप्नो से मिलने के लिए उत्सुक हो कर अधिक अस्वस्थ है । वह आज या कल चल देगा । तुझसे मैं फिर मिलूँगा । पर मुझे आशा है कि तू स्वस्थ हो जायगी । मेरा स्मरण रखना । (उठकर चलता है । फिर जल्दी से लौटकर) अरे किसने कहा—“हा, अन मैं मर गई ।” अरे, देवसेना क्यों रोती है ? वासु, क्या बात है । रोना बन्द कर । अच्छा समझ गया । तुझे बधाई । तेरा मनोरथयोग्य पात्र मे गया है । कर्णोपुत्र

४१ (३) ययोगुण = बीबन ।

४१ (४) अपि च यदि वयं भाजनीमविष्याम — यह लोमान का पाठ है । रामहृण्य कवि में विमभाजनानविष्याम ? कथं समीनमास्ते पाठ है और दो पृथक् वाक्य हैं ।

४१ (९) अलब्धगाम्भीर्य = इसका गहराई या थाह जिना लिए । लोमान ने इसका अर्थ किया है—यद्यपि मुझे तुच्छ जन समझा जाता है, पर यह अर्थ ठाक नहीं है ।

४१ (१३) पाटलिपुत्रविरहात्—कि यह कह कर कि कर्णोपुत्र उज्जयिनी से शाग्र पाटलिपुत्र चला जायगा, देवसेना का धारता छुड़ाने का युक्ति करता है ।

किं ववीषि—“किमुच्चैः कथयसि । दुःखशीलः खलु भावः” इति । (२८) अलमलं यन्त्रणाया—

४२—

(अ) दक्षात्मजाः सुन्दरि योगताराः

(आ) किं नैकजाताः शशिनं भजन्ते ।

(इ) आरुह्यते वा सहकारवृक्षः

(ई) किं नैकमूलेन लताद्वयेन ॥

(१) किं ववीषि—“तयेदानीं सम्प्रधार्यतां यथोभयं रक्षयते” इति । (२) अथ किम् । (३) सम्प्रधारितामेवैतत् । (४) इवः किल ते भगिनी यथोचितमाचार्यगृहं नृत्तवारेण यास्यति । (५) ततो लब्धान्तरविसम्भा सुभगे सुखप्रश्नव्याहारव्याजेन । (६) त्वं वा तत्र यास्यसि स वेहागमिष्यति । (७) किमियं विमर्शदोला वाह्यते ?

को भी तेरी ही बीमारी है । तब तुम दोनों एक दूसरे का इलाज करो । क्या कहती है—“आप इतने भरोसे से कैसे कह रहे हैं ? आप दूसरे के दुःख से पिघलने वाले हैं ।” बस, अब कष्ट उठाने से क्या लाभ ?

४२—हे सुन्दरि, दक्ष की पुत्री तारिकाएँ मिलकर क्या अकेले चन्द्रमा को नहीं भोगती ? अथवा, क्या दो लताएँ एक ही जड़से फूटकर एक सहकार वृक्ष पर नहीं चढ़ जाती ?

क्या कहती है—“तो फिर ऐसी युक्ति करिए कि दोनों की रक्षा हो ।” अरे, यह तो किया-फराया है । कल तेरी बहन सदा की भाँति आचार्य के यहाँ अपने नृत्य की बारी निवाहने जायगी । तो हे सुभगे, अब जब कि तेरा अन्तःकरण विश्वस्त हो गया है तू कर्णापुत्र का कुशल प्रश्न पूछने के बहाने वहाँ चली जाना, अथवा वह यहाँ आ जायगा । अरे, सोच-विचार के झूले पर क्या झूलने लगी ?

४१ (२७) उच्चैः कथयसि—इन्हें उच्चस्वर में, विश्वास के साथ ।

४१ (२७) दुःखशीलः खलु भावः—देवसेना स्वयं ही समाधान करती है कि आप मेरे दुःख से पिघल कर मुझे ढाढस देने के लिये कर्णापुत्र के प्रेम की बात इन्हें विश्वास के साथ कह रहे हैं । लोमान ने इस वाक्य का अर्थ नहीं समझा (निश्चय ही बाला का हृदय दुःख का अनुभव करने वाला होता है ।

४२ (अ) योगताराः—किसी तारक समूह की मुख्य तारिकाएँ ।

४२ (१) सम्प्रधार्यतां—निश्चित योजना बनाना ।

४२ (४) ते भगिनी—देवदत्ता से तात्पर्य है ।

४२ (५) लब्धान्तरविसम्भा—जब देवसेना के मन में कर्णापुत्र के प्रेम के विषय में विश्वास उत्पन्न हो गया है, तो कुशल प्रश्न के लिये उसके यहाँ जाना उचित ही है ।

४२ (७) विमर्शदोला वाह्यते—मैं वहाँ जाऊँ या कर्णापुत्र यहाँ आवे, इस विषय में सोचने विचारने क्या लगी ?

(८) किमाह प्रियवादिनिका—“न ममेहार्यपुत्रस्यागमनं रोचते । (९) यथाऽत्रभवत्या-
स्तत्र गमनम् । (१०) गणिकाजनो नाम पेशुन्यप्राभृतेषा जातिः ।

(११) तस्मादहमेवास्या यथोचितं योजयिष्यामि (१२) यथा नृत्तवारात् प्रस्थिताऽद्य
देवदत्ता स्वयम् । (१३) एव मम स्वामिनीं सुरप्रश्नाभिगमनेनार्यमूलदेवसकाशमनुने-
ष्यति ।” (१४) साधु प्रियवादिनिके इदानीं सलु यथार्थनामता । (१५) उचितं चास्या-
स्तत्रगमनम् । (१६) किन्तु स्वस्वरूपयाऽनया भवितव्यम् । (१७) किमाह देवसेना—
“ननु भावदर्शनात् स्वस्थैवाहम्” इति । (१८) प्रियं मे । (१९) कृतं मदनकर्म ।
(२०) कर्णापुत्रप्राणधारणार्यं किञ्चित् स्मरणीयं दातुमर्हसि । (२१) किं प्रवीपि—
“किं दास्यामि” इति । (२२) किं नाम विचार्यते । (२३) इदं सलु—

४३—

- (अ) ईपल्लीलाभिदणं स्तनतटमृदितं पत्रलेखानुविद्धं
(आ) सिचं निश्वासयानैर्मलयतरुसक्लिष्टाकजलकवर्णम् ।
(इ) प्रातर्निर्माल्यभूतं सुरतसमुदयप्राभृतं प्रेषयास्मै
(ई) पद्मं पद्मावदाते करतलयुगलभ्रामणक्लिष्टनालम् ॥

प्रियवादिनिका ने क्या कहा—“मुझे आर्य पुत्र का यहाँ आना उचित नहीं जान पड़ता । स्वामिनी को वहाँ जाना चाहिए । गणिका की जाति ऐसी है कि वे एक दूसरे की चुगली का तोहफा लिए तैयार रहती हैं ।

इसलिये मैं ही ठीक मामला बैठा लूंगी जिससे नृत्य की घारी निवाहने के लिये जाती हुई देवदत्ता स्वयं मेरी स्वामिनी को भी कुशलप्रश्न पूछने के लिये आर्य मूलदेव के पास ले जायगी ।” वह प्रियवादिनिके, सचमुच तेरा नाम सार्थक हुआ । वहाँ ही इसका जाना उचित है । पर इसे भली चञ्ची दिखाई पड़ना चाहिए । देवसेना ने क्या कहा—“अरे मैं तो आपको देखते से ही भली चञ्ची हो गई ।” मैं प्रसन्न हुआ । मैंने कामदेव का यह काम पूरा कर दिया । कर्णापुत्र के प्राण बचाने के लिये कुछ स्मरण चिह्न दे । क्या कहती है—“क्या दूँ ।” इसमें विचारना क्या है ? यह है तो—

४३—हे रक्त पद्म के समान शुभ्र, तू उसके लिये अपने सुरत प्रयत्नों का उपहार एक रक्त कमल मेज । वह तेरे दातों से किञ्चित् कुतरा हुआ हो, स्तनों से रगड़कर मीठा हुआ हो, शरीर की पत्रलेखा की छाप से अंकित हो, नाक के पास ले जाने से गहरी उसासों से कुछ ग्लान हो गया हो, उसका केसर शरीर के चंदन रस की रगड़ से फीका हो गया हो, और उसकी नाल दोनों हाथों में पकड़ कर घुमाने से मसल गई हो, रात्रि भर तू उसके साथ रमण कर चुकी हो, अतएव प्रातःकाल में सर्वथा वह तेरा निर्माल्य बन गया हो ।

४२ (१०) पेशुन्यप्राभृता एषा जातिः = गणिकाओं की जाति एक दूसरे को पिशुनता का उपहार बाँटने वाली या स्वभाव से ही परस्पर निन्दा करनेवाली होती है ।

(१) कथं कटाक्षापातेनैतदनुज्ञातमनया । (२) हन्त प्रतिगृहीतं प्रामृतं
सुरतसत्यद्वारस्य । (३) यावदनेनीषधेन कर्णपुत्रं सजीवयामि ; (४) (गृहीत्वोत्थाय
स्थिता) (५) प्रस्थितोऽस्मि । (६) सुखं भवत्यै । (७) सुभगे गृह्यतामाशी :—

मानों उसने अपनी ओखें नीची करके इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया ।
अहो, यह उपहार क्या, सुरत के सौंदे का बयाना मिल गया । अब इस औषध से
कर्णपुत्र में नई शक्ति का संचार कर सकूँगा । (लेकर, उठकर और फिर ठहर कर)
में चला । तेरा कल्याण हो । साम्यशालिनी, मेरा यह आशीर्वाद ले—

४२ (अ) पत्रलेखा—कपोलों पर अगुरु आदि से विरचित पत्रावली का मलंकरण ।
अनुविद्ध = पत्रावली की जैसी भाकृति (विद्ध) है, ठाँक वैसी छाप से अंकित ।

४२ (इ) सुरतसमुदयप्राभृतं = सुरत कीड़ा के निष्पन्न होने का उपहार । पद्म-
प्राभृतक नाम की बड़ी चरितार्थता है । पद्म यहाँ नायक का प्रतीक है । रात्रि की सब
रमण क्रियाओं का भोग उसकी शय्या के रक्तपद्म में लक्षित है । विरहिणी नायिका की
शान्ति के लिये रक्त पंकज का शयन रचा जाता था । देवसेना के रात्रि शयन के फलस्वरूप
पद्म भी नायक की ओर उसकी सब सुरत क्रियाओं का भुक्तभोगी बन गया है । देवसेना ने
कर्णपुत्र के विवाह में पंकज शय्या पर बेकली से लोढ़ते हुए मानो पद्म के साथ ही सुरत के
विविध अंगों का अनुभव किया ।

४२ (इ) प्रातर्निर्माल्यभूत—रात्रि में जिस पंकज शयन पर नायिका विहार कर
शुकी है वह प्रातःकाल उसका निर्माल्य हो जाता है ।

४२ (ई) पद्म—रक्त कमल । कवि समय के अनुसार विरहिणी नायिका के शिशि-
रोपचार के लिये छाल कमलों से ही शय्या बनाई जाती थी । बाण ने कादम्बरी के हिमगृह
में रक्तपंकजों के गृधुशयन का उल्लेख किया है (कादम्बरी, एक सांस्कृतिक अध्ययन, अनु०
२०१, पृ० २१३, ३०६) । रक्त पंकज शयन की परम्परा बहुत बाद तक राजस्थानी और
हिमाचल शैली के चित्रों में अंकित मिलती है ।

२ (४ई) पद्माब्दाता—अर्थात् यह है कि वृ रक्त पद्म से शुभ पद्मिनी थी ।
पद्म ही तेरा उपहार उचित है ।

४२ (२) सुरतसत्यद्वार—सत्यंकार = सौंदे की साईं या बयाना । देवसेना ने
कर्णपुत्र के साथ जो सुरत का व्यापार निश्चित किया, मानो पद्मप्राभृत उसकी साईं थी ।
रोमान में इसका अर्थ ठीक नहीं हुआ ।

४४—

(अ) भयद्रुतमसूचितप्रचलमेखलानूपुरं

(आ) सशकशिथिलोपगूहमवमुक्तनीवीपथम् ।

(इ) स्वयं सममिवाहयत्वयमुदात्तरागायुध—

(ई) स्तव प्रथमचोरिकासुरतसाहसं मन्यथः ॥

(१) (इति निष्क्रान्तो विटः)

(२) इति श्रीशूद्रकविरचितः पद्मप्राभृतकं नाम भाणः समाप्तः

४४—हाथ में प्रवृद्ध विषयाभिलाष का हथियार लिए हुए कामदेव स्वयं साथ होकर तुझे चोरी से सुरत करने के लिये उस अभिसार पर ले चले, जिसमें भय के कारण जल्दी पैर रखने पर भी करधनी और पायल को शंकार न सुनाई पड़े, नीवी मार्ग में ही उच्छ्वसित होकर छूट गई हो और शंका से आलिंगन शीघ्र शिथिल हो गया हो ।

(विट का जाना)

श्री शूद्रकविरचित पद्मप्राभृतक नाम भाण समाप्त

४४ (अ) भयद्रुत—भय के कारण शीघ्र चाल ।

४४ (आ) असूचित प्रचल मेखला नूपुरं—कवि समग्र है कि अभिसारिका नायिका की मेखला गतिसंभ्रमवश टूट जाने से उसके मनके पद-पद पर बिगलित होते हुए गिरते जाते हैं । इसी कारण उसकी रङ्गक नर्तन सुनाई पड़ती ।

४४ (इ) अवमुक्तनीवीपथम्—अभिसार के मार्ग में ही उल्लासवश नायिका का नीवी बंध छूट गया हो ।

४४ (ई) चोरिकासुरत साहस—रात्रि में अभिसार द्वारा गुप्त सुरत का साहस ।

॥ श्री ॥

२. ईश्वरदत्तप्रणीतो धूर्तविटसंवादः

[नान्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

(अ) विद्याया रयापिता रयातिः

(आ) सज्जनाराधनं धनम् ।

(इ) तेषा प्रीत्या भवेद् धर्म

(ई) इत्यस्माकमुपक्रमः ।

(१) तस्मादार्यजनप्रीत्यर्थं किञ्चिन्नाटकमारभामहे । (२) आर्ये, सधनजन-
प्रीतिरूपायाम् (३) अधनाना यौवनोत्पीडितमन्दभाग्याना शौर्यार्थनरूपाया (४) कुमुद-
कुवलयकल्हारकमलनिचुलवेतकीरुकुम्भकन्दलीपण्डमण्डितायाम् (५) अस्या प्रायुपि
हृदयप्रीतिजननं किञ्चिद् गीतं गीयताम् । (६) अथ सलु तावत्काल —

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

१—विद्या से फौली रयाति, सज्जनों के आराधन के लिये धन, और उनकी
प्रसन्नता से धर्म—इसीलिए हमारा यह आरम्भ है ।

तो आर्य जनों की प्रीति के लिये हमें कोई नाटक खेलना चाहिए ।
आर्ये, धनिकों की प्रीति बढ़ाने वाली, जवानी से पीडित अमागे बिना पैसे वालों
का शोक बढ़ाने वाली, और कुमुद, कुवलय, कल्हार, कमल, निचुल, केतकी,
कुटज, 'कंदली की वनखडियों से' सुशोभित इस वर्षाऋतु में हृदय हुलसाने वाला
कोई गीत गाओ । यह ऐसा समय है—

१ (ई) उपक्रम = उपधा पूर्वक आरम्भ, 'जान वृक्कर प्रवक्षः । उपायपूर्व आरम्भ
उपधा चाप्युपक्रम' (अमर) । उपक्रमस्तूपधायां ज्ञा-वारम्भे च विक्रमे (मेदिनी) ।

१ (२) ककुम्भ = कुटज या कुँरैया का श्वेत पुष्प जो वर्षा में फूलता है (कालक्षेप
ककुम्भसुरभी पर्वते पर्वते ते, मेघदूत ११२२)

१ (३) कन्दली = भूकदली, केलियाँ (आविर्भूतप्रथममुत्तलः कन्दलीश्चातुकच्छम,
मेघदूत ११११) ।

१ (४) कुवलय = नील कमल, उत्पल । कल्हार = श्वेतकमल, पुढरीक । कमल =
रक्त कमल ।

- २— (अ) जलधरनीलालेपः
 (आ) तद्वित्समालभनविह्वलद्गात्रः ।
 (इ) विकसितकुटजनिवसनी
 (ई) विटो यथा भाति घनसमयः ॥
 (१) (निष्क्रान्तः)
 (२) स्थापना
 (३) (ततः प्रविशति विटः)
 विटः— (४) साञ्चमिहितमेतत्—
 ३— (अ) श्रीमद्वेश्ममृदङ्गवाद्यकुशला घाराः सृजन्यम्बुदाः
 (आ) कुङ्कुमीप्रकुटीतरङ्गकुटिला विद्युल्लता द्योतते ।
 (इ) गाढालिङ्गनहेतवः प्रचलिताः शीताः पयोदानिलाः
 (ई) कामः कामिमनस्सु मुञ्चति दृढानाकर्णपूर्णाणिपून् ॥

बादलों का सिजाव (नीलालेप) लगाने वाला, बिजली के चमकने से थरथराते शरीर वाला, फूले कुटज के वस्त्र पहनने वाला बरसाती मौसम विट के समान सुहावना लग रहा है ।

(बाहर जाता है)

स्थापना

(विट का प्रवेश)

विट—यह ठीक कहा है ।

बादल धनिकों के घरों में कुशल मृदङ्ग बजाने वालों की तरह मूसलाधार पानी का रेला बहा रहे है । बिजली रोपमरी स्त्री की कुटिल भौह की तरह चमक रही है । ठंडी बरसाती हवाएँ गाढ़ आलिङ्गन देती हुई चल रही है । कामदेव स्पर्शिये, न्दे, न्दृश्ये, न्म, स्पर्शतत्क, भङ्गु, न्मत्तत्क, न्मन्ते, न्द, न्मप, न्मर, न्दृ, न्दे ।

२ (अ) नीलालेप = वालों का सिजाव । बुद्धे विट प्रायः सिजाव लगाते थे । पद्मप्रामृतक में इसे ही नीली कर्म कहा है (२० (६)) ।

२ (आ) तद्वित् = बिजली सी कौधती हुई नवेली । पद्मप्रामृतक (३३ (३३)) में इसे वेशरूपी मेघ की विद्युल्लता कहा है । याण ने भी इस प्रकार की टटकी नायिका का उल्लेख किया है—चन्द्रिषि जलदे स्थिरतां भजति (कादम्बरी, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १६६१) ।

तद्वित्समालभनविह्वलद्गात्र—(विटपक्ष में) बिजली (सौन्दर्य और वीर्य से वीर्यती हुई किशोरी) के आलिङ्गन से कंपित शरीर वाला । विह्वलद्गात्र = कामोद्देग के कारण शरीर के कण की ओर सनेत है ।

२ (इ) विकसित कुटज निवसनः—विट कुटज की भाँति हृदय जामदानी पर

(१) अपि च—

४—

(अ) ते दग्धाः प्रससन्ति ये समदना नायान्ति वा प्रोषिता
(आ) मुग्धास्तेऽनुनयन्ति ये न कुपिताः कुप्यन्ति वाऽत्यायतम् ।

(इ) धन्यास्ते खलु ये प्रियावशगता येषां प्रिया वा वशे

(ई) कालः कारयतीव मेघपटहैरेवं जगद्घोषणाम् ॥

(१) अहो नु खलु जलदकालस्य ललितजनमनोमाहिषी बहुतृत्तान्तता ।

(२) सप्रति हि—सजलजलदानरुद्धदिनकरकराः सोपस्नेहा भूमिभागा (३) बहुदिबस-

और भी—

४—वे बुझे हैं जो विदेश जाते हैं, या विदेश जाकर वर्षाऋतु में काम से प्रेरित फिर नहीं लौट आते। वे भोले हैं जो मानिनी को मनाते नहीं, या जो बहुत देर तक क्रोध किए रहते हैं। धन्य हैं वे जो अपनी प्रिया के वश में हैं, या प्रिया जिनके वश में हैं। यह वर्षा का समय मेघरूपी नगाड़ों से मानो ससार में ऐसी मुनादी कर रहा है।

वाह ! बरसात में शौकीन (दिलफेंक) लोगों के दिल पकड़ने वाली तरह-तरह की बातों का क्या कहना है ? अभी तो—पानी भरे बादलों से छिपी सूर्य की

का धाना पहनता था, उसी की ओर सकेत है। विकसित कुटज = खिला हुआ कुरैया का फूल जिसकी चौकुटिया तरह या भौंति महीन गलमली बत्तों पर काढ़ी जाती थी।

वितपच में इस श्लोक का अर्थ पृ० २६ पर पाद टिप्पणी में दिया है।

३ (अ) श्रीमद्देशम = रहस्यों के महल। गुप्तयुग में धनिक लोग कुशल मृदग वादकों को नित्य प्रति बुलाकर नियत समय पर उनसे मृदग सुनते थे (दिन्यावदान)।

३ (अ) धारा = वह रव, नाद या प्राण जो घीणा बजाते हुए अनुस्वन के रूप में विशेष सर्पों बाँधकर उत्पन्न किया जाता है (रामकृष्ण कवि, भरतकोश, पृ० २६६, ४०५)। हिन्दी में इसे भोला कहते हैं।

वैसे ही नाद की झरी मृदग वाद्य बजाते हुए उत्पन्न की जाती है। हिन्दी में इसे 'रेला' कहते हैं। घोटों के समूह को कायदा कहते हैं। वही कायदा जब तेज़ रूप में अर्थात् चोगुन अठगुन में फँका जाता है तब रेला कहलाता है। उसी के लिये प्राचीन पारिभाषिक शब्द 'धारा' था।

४ (अ) दग्धा—जिनका कामी हृदय कुलस चुका है, उनमें काम के अकुरित होने की आशा नहीं।

४ (आ) मुग्धाः—वे इतने भोले हैं कि काम की वेदना का उन्हें भय तक अनुभव ही नहीं हुआ।

४ (१) ललितजन = शौकीन व्यक्ति, श्रगारी वस्तुओं में रुचि रखनेवाले मनुष्य।

४ (१) बहुतृत्तान्तता = बहुत भौंति की विशेषताएँ।

४ (२) उपस्नेह = तरी, आर्द्रता।

सदृशवृत्तान्तनया सौकुमार्यमिवोपगता दिवसा । (४) कुटजगन्धावतितमधुराणि
प्रवृत्तनूतबहिष्णानि शीताम्बुवन्ति विहारक्षमास्थरस्थानि । (५) प्रचलितेन्द्रगोपका नवहरित-
तृणाकुरा सालचक्रयुतिचरणविन्यासयोग्या वनभूमय । (६) कलुपसलिलवाहिन्योऽ-
विभाजनीयतीर्था (७) शठा इव नायो दुरवगाहा नद्य । (८) अपि च—

५—

(अ) वदम्यगन्धमादाय

(आ) वनान्तरगिनि सृत ।

(इ) आयाति धाराशिशिर

(ई) सप्राभृत इयानिल ॥

(१) तद् रमणीयोऽय काल । (२) नचास्मिन्ननीत्सुक्य न भवति ।

(३) कृत —

फिर जे, गीले मैदान तथा बहुत दिनों पहले की बीती बातों की तरह फीके पड़े हुए
दिन दिखाई दे रहे हैं। कुटज पुष्पों की गंध से खिंचे हुए भौरे मँडराने लगे हैं,
मोर नाचने लगे हैं, और ठंडे पानी से तर मैदान घूमने लायक हो गए हैं।
रेंगती हुई बीरबहदरियों और नई हरी दूध के अकुरों से भरी वनभूमियों पेड़ों में
आलता लगाए युवतियों के घूमने योग्य हो गई हैं। गदले पानी से भरी हुई और
घाट न देने वाली नदियों पार करने में कठिन हो गई हैं, जैसे रजस्वला होने पर
गुप्त घाटवाली धूर्त स्त्रियों का मर्म पाना कठिन हो जाता है। और भी—

५—रुद्रव की गंध लेकर वन के भीतर से निकलती हुई, मेह से ठंडी हवा
मानो सौगात लेकर आ रही है।

यह समय बड़ा मुहावना है। इसमें काम की उत्सुकता अवश्य होती ही
है। क्योंकि—

४ (६) कलुपसलिलवाहिनी—(१) मटमैला बरसाती पानी बहानेवाली नदी,
(२) रजस्वला स्त्री। वस्तुतः बरसाती नदी भी हिन्दी में रीसली (स० रजस्वला)
कही जाती है।

४ (६) अविभाजनीय = जो दिखाई न पड़े, जो पहचान में न आये। धूर्त नारी
मलिनवसना होने पर भी उसे प्रकट नहीं होने देती और काम सम्बन्धी प्रसंग से भी
भागता है।

४ (६) तीर्थ = (नदी पथ में) पार करने के घाट, (धूर्त स्त्री पथ में) रजोधर्म।

५ (ई) सप्राभृत इयानिल — यहाँ वायु की तुलना वदम्य की गन्ध से सुगन्धित
और धारागृह में न नतील नायक से की गई है जो नायिका को वनान्तर या हिमगृह
में आने के लिए निमन्त्रण देता है।

- ६— (अ) भ्रान्तपवनेषु सम्प्रति
 (आ) सुखिनोऽपि कदम्बवासितवनेषु ।
 (इ) औत्सुक्यं वहति मनो
 (ई) जलधरमुलिनेषु दिवसेषु ॥

(१) तच्च द्विविधमौत्सुक्यं भवति—कारणादकारणाच्च । (२) तत्र कारणो-
 दभूतस्यौत्सुक्यस्य शम्या प्रतिक्रिया कर्तुम् । (३) यच्चकारणादुत्पद्यते तत् कुम्भदासी-
 कृतकरुदितमिव दुर्दिचकित्सं भवति (४) वयं चकानिचिदिमान्यहानि दुर्दिनदोषादल्पपद-
 प्रचारत्वाच्च भूरातरमुन्मनसः संवृत्ताः । (५) कुटुम्बिन्याश्च नः कण्ठमाधुर्येण तेनाप्या-
 यितमनसोऽप्यपयानमेव बहु मन्यामहे । (६) (विलोक्य)

- ७— (अ) निवृत्तसङ्गीतमृदङ्गसन्निभाः
 (आ) मृशान्तनादा विगता वनाश्च ।
 (इ) प्रासादमारुह्य पितृत्य पक्षी
 (ई) विरीत्यथं गेहशिखी प्रहृष्टः ॥

(१) संदष्टोपवीणावियुक्तविरलतन्त्री शतितवातवेपितेव कामिनी बालातपमासेवते

६—जब हवाएँ चलती हों, कदंब की गन्ध से वन महमहाते हों और बादलों
 के छाए रहने से दिन अधियारे हों, ऐसे समय सुखियों का मन भी कामके लिये
 उत्सुक हो उठता है ।

उत्सुकता दो तरह की होती है—कारण से और बिना कारण । कारण से
 पैदा हुई उत्सुकता का तो इलाज हो सकता है, पर बिना कारण की उत्सुकता जब
 पैदा होती है तब वह खवासिन (कुम्भदासी) के बनावटी रोने की तरह ला-इलाज
 है । मैं भी इन दिनों बरसात के कारण इधर-उधर न जा सकने से बहुत अनमना
 हो गया हूँ । अपनी गृहिणी के उस मीठे गले की तान से छुके होने पर भी आजकल
 मुझे सैल-सपाटा पसन्द है । (देखकर)

७—गाना रुकने पर मृदंग की तरह बादलों की गरज बन्द हो गई है ।
 बरसात से घबराया हुआ घर का मोर अब प्रसन्नता से दोनों पंख फैलाये हुए महल
 की चोटी पर चढ़कर शोर मचा रहा है ।

तूँबी की घुड़च के खाचों को छोड़ देने से जिसके तार चिलम हो गए हैं

६ (अ) भ्रान्तपवनेषु—जब हवा एक दिशा से न चलकर चौबाई चल रही हो;
 यह वर्षा होने का लक्षण है ।

६ (३) कुम्भदासी = खवासिन । कृतकरुदित = दिखावटी स्यापा ।

७ (१) संदष्ट = तूँबी की घुड़च में तारों के लिये बनाए हुए खाँचे ।

७ (२) उपवीणा = बीणा का निचला भाग, तूँबी ।

७ (३) तन्त्री = तार ।

वीणा । (२) निष्ठीवन्तीव विमलमुक्तादामसचिभान् प्रणालीमुखैस्तोयावशेषान् हर्म्य-
स्थलानि । (३) दुर्दिनदोषाचिष्पमाः संप्रमृज्यन्ते दर्पणाः (४) अपि च—

- ८— (अ) प्रवरगृहनिरोधलेदालसा यान्ति वातायनान्यङ्गना
(आ) जलदसमयदोषगाढार्पणा हेमकाञ्ची पुनर्योज्यते ।
(इ) उपवनगमनाय सञ्चार्यते वारमुत्थो जनः कामिभिः
(ई) तरुणतृणसखेषु लाक्षारसः पात्यते पादपद्मेष्वनङ्गावहः ॥

(१) तत् क नु सत्त्विदमौत्सुम्यं विनोदयेयम् । (२) कि नु दूतसभायामाहो-
स्वित् देशवाटे । (३) (विचार्य) (४) नमोऽस्तु द्यूताय । (५) एकेशाटिकामात्रा-
वशिष्टो हि नः प्रच्छदपटः । (६) अक्षारच नामानभिजातेश्वरा इव न सर्वकालसुमुखा
भवन्ति । (७) ततो वेशमेव यास्यामः । (८) तत्र हि—

- ९— (अ) कान्तान्यर्धनिरीक्षितानि मधुरा हासोपदंशाः कथाः
(आ) पीनश्रोणिनिरुद्धशेषमतुलस्पर्शं तदर्भासनम् ।

ऐसी वीणा बर्फीली हवा से सताई हुई कामिनी की भोंति धूप सेक रही है । महलों
की छतें बचे हुए बरसाती पानी की फनालियों के मुँहों से ऐसे उगल रही हैं मानों
भोंतियों की मालाएँ हों । बरसात के कारण धूमिल पड़े हुए दर्पणों को पोंछ कर साफ
किया जा रहा है । और भी—

८—बड़े घरों में बन्द रहने के खेद से अलसाई स्त्रियों खिड़कियों से झाँक
रही हैं । बरसात की सील से कड़ी गोंठ वाली सोने की करधनी खोल कर फिर से
बाँधी जा रही है । कामी लोग वेश्याओं को उपवनों में ले जाने के लिये घुमा रहे
हैं । कामिनियों नई घास पर घूमने के लिये काम जगाने वाला आलता पैरों में
लगा रही है ।

फिर कहाँ मैं यह उत्सुकता भरा मन बहलाऊँ ? जूए खाने (द्यूतसभा)
में या चकले (वेश) में ? (सोचकर) जूए को नमस्कार । एक धोती के सिवाय दूसरा
कपड़ा तक मेरे पास नहीं बचा । पासे नीच कुल में पैदा हुए रईसों की तरह सब
समय सीधे मुँह नहीं रहते । तो फिर मैं वेश में ही चलूँ । वहाँ तो—

९—सुन्दर अयमुंदी आखें, हँसी से चटपटी मीठी बातचीत, सट कर बैठो हुई

७ (२) निष्ठीवन्तीव विमलमुक्तादामसचिभान्—सिंहमुख, भरूरमुख आदि से
निष्ठूत मुक्तादाम गुत्तफालीन अलंकरणों की विशेषता थी ।

७ (२) प्रणालीमुख—यहाँ नाहरमुखी (सिंहमुख या कीर्तिमुख), गहामुखी
(मकरमुख) प्रणालों से तात्पर्य है जो द्रामादीर्श दृश्यों में पानी बहने के लिये लगाये जाते थे ।

८ (६) अनभिजातेश्वर—जो गानदानी रईस नहीं है, जिनके पास नया नया
भा गया है और इस कारण सदा घुँटभरा मुँह रहता है ।

९ (अ) हासोपदंश—मिष्टान्न के साथ जैसे बीच-बीच में उपदंश या चटपटे
मूर्खी आदि पदार्थ खाए जाते हैं, वैसे ही प्रेम भरी बातों के बीच सुहलवाती ।

- (३) स्नेहव्यक्तिकारान् करव्यक्तिकारस्तास्ताश्च रम्यान् गुणान्
(४) वेश्याभ्यः प्रणयादभ्युत्थितेऽपि लभते ज्ञातोपचारो जनः ॥

(१) (निरीक्ष्य) सन्नियता द्वारम् । (२) किमाह भगवती—“वल्मीक-
मिव बहुद्वारं ते गृहम्” इति । (३) यद्यप्यन्योऽस्ति नगरघट्टकानां प्रवेशाय मार्गः
(४) तथापि तैरन्यगृहपरिचयाद् द्वार एव लक्ष्यं गृह्यते । (५) अपि च अलमल-
मुत्तरोत्तरेण । (६) हा ध्वस्तोऽस्मि । (७) (परिक्रम्य) (८) स्थाने सल्लु कुसुम-
पुरस्यानन्यनगरसदृशी नगरमित्यविशेषग्राहिणी पृथिव्या स्थिता कीर्ति । (९) वहनि
सत्यस्य पुरस्य गृहाण्युद्धायवन्ति । (१०) पश्यसमुदायाज्जननाहुल्याच्च तास्तान्
समृद्धिनिशेपान् दृष्ट्वा निस्मरन्ते जनः । (११) तत्र को विस्मयः ? सन्ति ह्यन्यान्यपि

स्थूल नितम्बवती स्त्री के साथ गुठगुदा अर्धासन, स्नेह व्यक्त करने वाली हाथ की
मटक—वेश की उन-उन रमणीय बातों को वहाँ का शिष्टाचार जानने वाला व्यक्ति
वेश्याओं के प्रेम में कैसे निना भी प्राप्त कर लेता है ।

(कुछ देखकर विट अपनी स्त्री से कहता है—) घर का द्वार बन्द कर ले ।
तूने क्या कहा—“तेरे घर में बानी की तरह खिन्ने ही तो द्वार है ।” यद्यपि नगर
के अधिकारियों (नगर घट्टक) के आने के लिए रास्ता और ही है, फिर भी दूसरे
के घर में घुस पैठ के आदी होने के कारण वे अपने दरवाजे को ही लक्ष्य बना रहे
हैं । सवाल-जवाब रहने दे । हाय ! मुझी पर मुसीबत आई दीखती है । (घूमकर)
कुसुमपुर की बेजोड़ कीर्ति पृथिवी भर में फैली हुई है । तभी तो यह उचित है कि सिर्फ
‘नगर’ कहने से सामान्यतः इसका ही बोध होता है । इस नगर में बहुत से ऊँचे-
ऊँचे भवन हैं । विप्री के सामानों की बहुतायत तथा उनके लिये लोगों की भीड़-
भाड़ के कारण इसकी नाना समृद्धियों को देखकर लोग अचरज करने लगते हैं ।

६ (आ) निरुद्धशेष अर्धासन—जिस आसन पर वेश्या स्वयं बैठती है, उसी के
अर्धभाग में प्रेमा का बैठना । किसी के साथ अर्धासन प्राप्त करना अति सम्मान समझा जाता
था । समुद्र ६।०३, अर्धासन गोत्रभिदोऽधितर्ह्य ।

६ (३) करव्यक्तिकर = हाथ का मटकभरा मुद्राएँ ।

६ (३) नगरघट्टक—नगर के अधिकारियों विशेष, सम्भवतः शुल्कशाला के निराहक ।

६ (८) नगर—यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि उस काल में केवल ‘नगर’ कहने
से पाटलिपुत्र का ही बोध होता था । नगर का सीधा अर्थ था पाटलिपुत्र । इस कारण
‘नागरी’ इस शब्द का अर्थ हो गया पाटलिपुत्र सम्बन्धी । पाटले पाल युग में नागरी का
अर्थ हुआ उत्तर भारत की ।

६ (८) अविशेषग्राहिणी—‘नगर’ के पहले विशेष नाम लगाए बिना ।

समृद्धिमन्ति पुराणि । (१२) ये त्वस्य निःसाधारणा गुणास्तान् वक्ष्यामः । (१३)
तथा हि—

- १०— (अ) दातारः सुलभाः कला बहुमता दाक्षिण्यभोग्याः स्त्रियो
(आ) नोन्मत्ता धनिनो न मत्सरयुता विद्याविहीना नराः ।
(इ) सर्वः शिष्टकथः परस्परगुणग्राही कृतज्ञो जनः
(ई) शक्य भोः नगरैः सुरैरपि दिव सन्त्यज्य लब्धु सुखम् ॥
(१) (परिक्रम्य)

(२) अये श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलकः सत्त्वसौ वेशप्रसङ्गात् सफलीकृतयौवनोऽस्मद्
निधजनप्रणयभाजनीभूतः (३) कुटुम्बात्ययभीरुणा पित्रा प्रयत्नाद् रक्ष्यमाणः (४)
कथमपि वेश गत्वा प्रियोपभुक्तशोभिना वपुषा द्रुततरमित एवाभिवर्तते । (५) अवश्य
मभिनन्दयितव्यः । (६) उपगमिष्यामस्तावदेनम् । (७) (उपगम्य) (८) भोः
कृष्णिलक एवमेव सफलीकृतयौवनो भवतु भवान् । (९) ननु खलु माधवसेनाया गृहा-
दागम्यते ? (१०) किं वरीपि—“कथं विज्ञातवान् ।” इति । (११) किमत्र विज्ञेयम् ।
(१२) सदृशसयोगी हि भगवान् मदनः । (१३) न चाह भवद्व्यापारान्निवृत्तः (१४)

लेकिन इसमें अचरज करने की क्या बात है ? दूसरे भी बहुत से ऐसे समृद्ध नगर
हैं । पर इसके जो असाधारण गुण हैं उनके बारे में कहता हूँ । जैसे—

१०—यहाँ दान देने वाले बहुत हैं । कलाओं का आदर है । स्त्रियो से लोग
अनुकूल भाव से मिलने हैं । यहाँ के धनी मतवाले ईर्ष्यालु नहीं हैं । पुरुष यहाँ
विद्याविनीत हैं । सब लोग बातचीत में शिष्ट; परस्पर गुणग्राही और कृतज्ञ हैं । अपना
स्वर्ग छोड़कर देवता भी यहाँ पाटलिपुत्र में सुख से रह सकते हैं ।

(धूमकर)

अरे, जरूर यह श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलक है जो वेश के ससर्ग से अपनी जवानी
सफल करके हमारे जैसों का प्रियपात्र बना है । यह अपने कुटुम्ब के सत्यानाश के
डर से पिता द्वारा यत्नपूर्वक बचाने पर भी किसी प्रकार वेश में जाकर अपनी प्रिया
के उपभोग से शरीर को सुन्दर बनाए शीघ्र इधर ही आ रहा है । अवश्य इसका
अभिनन्दन करना चाहिए । तो इसके पाम चलो । (पास जाकर) अरे कृष्णिलक,
तू ऐसे ही अपनी जवानी का पूरा भजा लिया कर । जरूर तू माधवसेना के घर से
आ रहा है । क्या कहता है—“आपने कैसे जाना ?” इसमें जानने की क्या बात
है ? भगवान् कामदेव एक जैसों की जोड़ी मिलते हैं । मैं आप लोगों के कामों से

१० (ई) नगरैः = पाटलिपुत्र में, जैसा ऊपर कहा है केवल ‘नगर’ कहने से
पाटलिपुत्र का बोध होता था ।

१० (४) प्रियोपभुक्तशोभिना वपुषा—प्रिया के उपभोग से उसका ओष्ठका भालता,
माथे पर तिलचिन्दु, स्तना का चन्दन आदि इसके शरीर में लग गए हैं ।

अथवा अविरतसुरततृष्णा कामिनीमुत्सृज्य कासि प्रस्थितः ? (१५) किमाह भवान्—
“एतस्मिन्मदानीं कथं विज्ञातवान् ।” इति । (१६) एतदपि नातिमूढमम् । (१७) कुत -
११—

(अ) हस्ते ते परिमृज्य (ए) साश्रुवदन (ने) नेत्रांजन लक्ष्यते

(आ) केशान्तो विपमश्च पादपतनादघ्राप्य तिष्ठति ।

(इ) व्यक्तं तत्र मनो निधाय भवता मुक्ता शरीरेण सा

(ई) मार्गं पोत इग्नानिलप्रतिहतं वृच्छात्तथा गाहसे ॥

(१) किं वचीपि—“तात तावदवलोकयिष्यामि” इति । (२) कथमनेनैव
वेपेण ? (३) अवस्कन्द दास्यति । (४) किं वचीपि—“यदीदृशीमवस्था तातो मे
पश्येत् जीवितपरित्यागमपि कुर्यात्” इति । (५) अनवरतसुरततृष्णा कामिनीं त्यज्यता
किं तेन न हृतम् । (६) पिता नाम सल्लु सयौवनस्य पुत्रस्य मृतिमान् शिरारोग ।
(७) न च किल भो पितृमता शक्य परस्परामर्पविवधितपणरागस्य साधिक्षेपवचना
लङ्घतस्य (८) तेजस्विपुरुषनिकपोपलस्य घृतस्य दर्शनमात्रमप्युपलब्धम् । (९) न
च किल शक्य समुपहितोत्पलस्यडकाना सहकारतैलोदगतचन्द्रकाणा (१०) कामिनी-

अलग थोड़े ही हूँ । अथवा, निरन्तर सुरत की प्यासी कामिनी को छोड़कर तू कहाँ
चला ? तूने क्या कहा—“यह सब भो आपको कैसे पता लगा ?” इसमें कोई
बड़ी बारीकियत नहीं है । कैसे,

११—तेरे हाथ में मुख को पोंछने से आँख का काजल लगा दिखाई देता है,
पैरो पर गिरने से माथे की केशरचना बिम्बर कर ऊँची-नीची हो गई है । ऐसा
लगता है कि तू उसमें मन रखकर शरीर छुड़ा लाया है । इसलिए तू हवा के थपेड़ों से
डगमगाते जहाज की तरह मुश्किल से रास्ता तय कर रहा है ।

तू क्या कहता है—“अब मैं पिताजी से अवश्य मिलना चाहता हूँ ।”
क्या इस पोशाक में ? वे तुझ पर दृष्ट पड़ेंगे । क्या कहता है—“अगर मेरे पिता
मुझे इस हालत में देखें तो संभव है अपनी जान ही दे डालें ।” बेरोक रति की प्यासी
कामिनी को छुड़ाने के लिये उसने तेरे साथ क्या नहीं किया । पिता जबान आदमी
के लिये मृतिमान् सिर दर्द है । पिता वाले आदमी को उस जूए की शलक कभी
नहीं मिलती जिसमें आपसी लग-झट से बाजी का रंग बढ़ता है, जिसमें गाली-
गुफ्ते का समो बैधता है और जो दिलेर मर्दों को परखता है । वह कमल की

११ (६) पितानाम शिरारोग —पिताओं पर यह कर्त्ता संस्कृत - साहित्य
में बेजोड़ है ।

११ (९) उत्पलस्यडक—कमल की पखुवियों के टुकड़े शराब के प्याले में
ढालने की प्रथा थी ।

११ (९) सहकारतैलोदगतचन्द्रक—सहकार तैल का बूँदा के तिलमिले शराब
के प्याले में तैरते हुए उसकी नफासत समझी जाती थी ।

निःश्वासविक्षोभिततरङ्गाणां प्रवृत्तवर्हिणाकाराणां वारुणीचपकाणां गन्धमात्रमपि विज्ञातुम् ।

(११) न च किल शक्यं द्विधाभूतगोष्ठोजनेषु वयस्यार्धासनोपविष्टगणिकानेपु (१२) कामिनोसान्निध्यादमीमांसितपण्येष्वसकमण्डलेषु पक्षियुद्धेषु प्राश्निकत्वमपि कर्तुम् । (१३) न च किल शक्यं वातायनाभोगविनिष्पतितपीनपयोधराभिः ससम्प्रो-
द्धूतललिताग्रहस्ताभिः (१४) पौरवधूभिः सबहुमानमवेक्षमाणस्य मदरभसस्य गजपतेः
पन्थानमनुसर्तुम् । (१५) न च किल शक्यं अघोरकपरिहितेनाकुप्यखड्गमात्रसहायेना-
कृपणां वृत्तिमाकांक्षता (१६) मित्रार्थे बन्धनच्छेदोद्यतेन प्रज्वलितोल्कापिञ्जलासु वीर-
रात्रिषु नरपतिमार्गमवगाहितुम् । (१७) न च किल शक्यं प्रत्युपकारचिन्तोपहतचित्तेन
सन्निवृत्तश्लाघादोषेण (१८) प्रत्युपकारपीडितेन मित्रार्थं सर्वस्वत्यागं कर्तुम् ।

पंखुड़ियों वाली, आम का तेल मिलाने से पड़ी चित्तियों वाली, कामिनी की साँस से उठती लहरों वाली शराब के नाचते मोरों की आकृति वाले प्यालों की गन्ध मात्र भी नहीं पा सकता ।

पक्षियुद्धों में जब गोष्ठी दो दलों में बँटकर अपने-अपने गोल बाँध लेती हैं, जब गणिकाएँ अपने मित्रों की बगलगीर होती हैं और जब स्त्रियों का साथ होने से बढ़ते दावों की फोई परबाह नहीं करता, ऐसे सन्त के समय पिता वाले व्यक्ति को खेल की तो बात क्या, मध्यस्थ (प्राश्निक) तक बगने का मौका नहीं मिल सकता । उसके लिये मतवाले हाथी के पीछे भागने का, जब लड़नाएँ खिड़कियों से अपने भारी स्तन निकाल कर और जोश से अपनी अंगुलियाँ नचकर आदर पूर्वक देख रही हों, सवाल ही नहीं उठता । जाँघिया पहन कर हाथ में नंगी तलवार लेकर दिलावरी से मित्र के बंधन (कारागृह तोड़कर) काटने की तैयारी में जलती मशालों से पीली पड़ी रात्रियों में राजमार्ग में धँस पड़ना उसके भाग्य में नहीं । उपकार का बदला चुकाने की भावना से पागल बनकर, डींग न हांक कर कुछ कर दिखाने की हिम्मत लेकर एवं प्रत्युपकार की बात से ही खिन्न उसके लिये अपने मित्र के हेतु सब कुछ त्याग करना सम्भव नहीं ।

११ (१०) प्रवृत्त वर्हिणाकार वारुणीचपक—वशव, हकीक आदि के घने हुए बढ़िया छोटे प्याले भिन्न भिन्न सुन्दर आकृतियों के बनाए जाते थे । नाचते हुए मोर की आकृति के चपकों का यह उल्लेख सांस्कृतिक महत्त्व का है ।

११ (१२) पक्षियुद्ध—चीतर, बटेर, मुर्गों की यात्रियों का यह सटोक वर्णन है ।

११ (१३) प्राश्निक—खेलों में हार जीत का निर्णायक मध्यस्थ ।

११ (१६) वीररात्रि—यह रात्रि जिसमें गुंडे जान पर खेलकर कुछ कर गुजरने थे ।

११ (१८) प्रत्युपकार पीडित—इसी बात से दुःखी कि मित्र ने पहले अपना हितकर दिया भीरु अथ केवल उसके उपकार का ऋण चुकाना ही अपने लिए सम्भव है, स्वयं कुछ उपकार करना नहीं ।

(१६) सर्वं चैतत्सह्यम् । (२०) यत्तु दासी(स्याः)पुत्राः पितरः स्वयमप्यननु-
भूतयोवना इव धनकुप्याथे वैश्वधूम्यः पुत्रान् धारयन्ति । (२१) अत्र मे गृहीतपरशो-
र्जानदन्यस्य रामस्य क्षत्रियबोधतस्येव लोकमपैतृकं कर्तुं मतिर्जायते । (२२) अथवा
योवनमतिलङ्घितं तु कुट्टयेः । (२३) न चैतद्विजानन्ति तपस्विनः—(२४) यथा
विकचक्रमलान्तर्गतसलिलसुरभिरमृतससदृशास्वादो मृतमपि पुरुषं सजीवयेद् देश्या-
मुखरस इति । (२५) अपि च—

- १२— (अ) काञ्चीतूर्यमसक्तपीनजघनं विसम्भदत्ताभरं
(आ) श्वासोत्कम्पितनर्तितस्तनतटं ब्रूभेदजिलेक्षणम् ।
(इ) सीत्कारानुविपक्षरोमपुलकं कालेन कोपाश्रितं
(ई) देश्यानां क इहास्ति भोः मदवशादाह्वारतं विस्मरेत् ॥

(१) किं व्रीषि—“अन्यच्च कष्टं भावाय निवेदयामि” इति । (२) किं
तत् । (३) किं व्रीषि—“तातः किल मां दारकर्मणि नियुङ्क्ते” इति । (४) धिङ्-
गामस्तु । (५) मा तावद् भोः ईदृशं कष्टम् । (६) ईदृशमपि नाय मया श्रोतव्यम् ।

यह सब तो सहा जा सकता है । पर जैसे बाँदी के जाए पिताओं ने खुद कभी
जवानी का मजा न लिया हो, वे अब अपना माल-मत्ता बचाने के लिये देश्याओं से अपने
लड़कों को अलग रखना चाहते हैं । उनके लिये मेरा मन करता है कि जैसे कुठार
लेकर क्षत्रियों को काटने वाले परशुराम ने साका किया, मैं भी इस लोक को पिताओं
से गून्थ बना डालूँ । अथवा, ये बुढ़ांची जवानी में भूखे रह गए । ये बेचारे
नहीं जानते कि खिले कमल से सुरभित जल की तरह सुगन्धित और अमृत
की तरह सुस्वादु देश्या का मुखरस भरे आदमी को भी जिला सकता है । और भी—

१२—करधनी की झंकार, खुली हुई भरी जंघाएँ, विश्वास के साथ चुम्बन, सांस
लेने से थरहराते और हिलते स्तन-तट, भौंहें सिकोड़ने से तिरछी नजर, सीत्कारों से
विपम रोमांचित भाव और समय-समय पर क्रोध-इनसे संयुक्त देश्याओं की मनचाही
रति को ऐसा कौन है जो मदवश होकर कभी भूल सकता है ?

क्या कहता है—“आपसे अपनी दूसरी तकलीफ बताता हूँ ।” यह
क्या ? क्या कहता है—“मेरे पिता ने मेरा ब्याह रचा देने का निश्चय कर लिया

११ (२०) धारयन्ति—= रोक्ते हैं, बचाकर रखते हैं ।

११ (२२) अतिलङ्घित = भूखा रक्खा हुआ, विषयो का उपवास करके
बिताया हुआ ।

११ (२२) कुट्टये—बुढ़ांची, व्यर्थ ही जो वृद्धे हुए ।

१२ (अ) असक्त—जो रति के समय वस्त्रादि के बन्धन से रहित है, ऐसा रथूल
जघन भाग ।

(७) रात्रि निमोर्नोहमेनावन्ति वेदनामहाभयमुन्मथ कृमयधृक्कारेण माम्यति ।
(८) पश्यतु भवान्—

१३— (अ) जात्यन्धो सुरतेषु दीनयदनामन्तर्भुगाभातिर्णी
(आ) हृष्ट्यापि जनस्य शोकजननी सज्जापट्टेनातृताम् ।
(इ) निष्ठां रयमप्यरहजपना शोभयवदां परं
(ई) कर्षणं रात्रि नैव भोः कृमयधृक्कारं प्रोष्टुं मनः ॥

(१) किं प्रवीणि—“एष एव मे निदचयः” इति । (२) यन्नेव भवतो निदचयः प्रीताः स्मः । (३) मत्स्यमस्मत्संगमस्य । (४) गच्छ (५) इदानीं शृहमेवमस्य पुनरपि ररा संशामुपलम्भयामि । (६) (परिक्रम्य) (७) अयं हि तापदत्याकीर्णजन- तया प्रसोर्णीयीवीर्यस्य इव गमिलनिधिः सुभीमदर्शनीः सुगीः प्रगाहितु कुमुमपुराजमार्गः ।
(८) इह हि—

है ।” धिक्कार है मुझे । अरे, किसीपर ऐसी सुगीवन न पड़े । हा ! ऐसी भी बात मुझे सुननी पड़ी । यह तो हाथ उठाकर रोने की बात है कि बेइया का चौड़ा रास्ता छोड़कर तू अब कुलधू की तंग गली में जायगा । देम—

१३—सुरत में निपट अंधी बन जाने वाली, दीनयदना, मुँह फैलाकर ही बात रखने वाली, सुद आदमी को भी दुःखी करनेवाली, लज्जाके घूँघट से ढकी, भोलेपन से नय भी कभी अपनी जाय न देखनेवाली, ऐसी पशुतुल्य मूढ़ से बंधी हुई गोरी कुलधू की सेवा-पूजा में कभी भी मन नहीं लगाना चाहिए ।

क्या कहा—“यही मेरा निदचय है ।” अगर तेरा यही निदचय है तो मुझे सुगी है । यह हमारी सगत के अनुरूप ही है । अब जा । पर पहुँचकर फिर तुझे समझाऊँगा । (घूमकर) यह भारी भीड़ से भरा कुमुमपुर का राजमार्ग निभरती हुई लहरों के मड़लाले उम समुद्र की तरह है जो डेरने में बड़ा डरावना और पार करने में मुश्किल होता है । यहाँ—

१३ (अ) जात्यन्ध = जन्म की अन्धी, अति लज्जा के कारण सुरत में अंध बनने वाली ।

१३ (आ) लज्जापट्ट = घूँघट ।

१३ (ई) कारा = सेवा पूजा । यह बीड़ संस्कृत का शब्द था, जो मॉनिषर विलियम के संस्कृत कोश में इस अर्थ में नहीं है । दिव्यावदान में बुद्ध या रूप भादि की पूजा के लिये इस शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है—कारा कृता (दिव्य० पृ० १३३; पुनर्दन, बीड़ संस्कृत कोश, पृ० १०८) ।

१३ (ई) कुलधूकारा—पूजना यह है कि कुलधू पूजा की वस्तु है, लीला की नहीं ।

- १४— (अ) यो मां पश्यति सत्त्वरोऽपि न कथां क्षित्वा प्रयात्यन्यतः
 (आ) संवाधेऽपि ददाति चान्तरमसी सर्वः प्रहृष्टो जनः ।
 (इ) कश्चिन्नातिचिरं विलम्बयति मां कार्यात्ययाशङ्कया
 (ई) लोकज्ञैः पुरुषैरहो पुरवरस्याप्तं यशो लक्ष्यते ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) अये विटमतिरिव वेशगामिनीयं रथ्या । (३) इतो यास्यामः । (४) गया हि—

- १५— (अ) कृत इह कलहो हतेह वेश्या
 (आ) चकितमिह द्रुतमीक्षणं निर्मात्य ।
 (इ) इति वयसि नये यदत्र मुक्तं
 (ई) तदनु विचिन्त्य समुत्सुको ब्रजामि ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) हन्त ! लब्धाः प्राणाः । (३) एष वेशमेवास्मि प्रविष्टः । (४) (स्पर्शं रूपयित्वा)

- १६— (अ) निषेव्य संलोलितमूर्धजानि
 (आ) वेश्यामुरान्यर्धनिरीक्षितानि ।

१४—जो मुझे देखता है वह बिना मुझसे बात चीत किए, चाहे उसे कैसी ही जल्दी हो, नहीं जाता। भीड़-भाड़ में भी हँसी-खुशी से सब लोग मुझे रास्ता दे देते हैं। काम में बिज होने के डर से कोई भी मुझे देर तक नहीं रोकता। यहाँ के आदमियों की दुनियादारी देखकर हम समझ सकते हैं कि इस श्रेष्ठ नगर का यश कितना भाएदार है।

(धूमकर) अरे, विट की बुद्धि की तरह यह वेश को जानेवाली गली है। इसी पर मैं चले—

१५—यहाँ मैंने मारा-मारी की, यहाँ वेश्या को उठा ले गया, यहाँ डर कर ऑल मीच कर भागा—उठती जवानी में जो मज़ा मैंने यहाँ लिया उसे याद करके मैं उत्सुकता से वेश में जा रहा हूँ।

(धूमकर) वाह, जान आ गई। मैं वेश में आ गया। (छूने की नकल करके)—

१६—अधर्मुंद्री दृष्टि वाले तथा लहराती लटों वाले वेश्याओं के मुखों का

१४ (ई) लोकज्ञ = सांसारिक व्यवहारों में चतुर ।

१४ (ई) आस्यश = विश्वासयोग्य, स्थिर, सुप्रतिष्ठित यश ।

१५ (आ) द्रुत = भागा ।

१६ (अ) संलोलितमूर्धज = जिसने सजे हुए बालों को बन्धेर दिया है ।

(३) आयाति माल्यासवगन्धविद्धो

(६) वेशस्य निश्वास इवैव वायुः ।

(१) अहो नु खलु कैलासशिखराकारप्रासाद (प्राकार) शिखरस्य वेश-
वधूस्तनतटोपमर्धमानगवाक्षस्य (२) सञ्चारितागरूपपदुर्दिनस्य पुष्पोपहारप्रहसित-
ग्रहोपहारस्य (३) यस्यादिकाञ्चीतूयौक्तकामिजनस्य नूपुरस्वनगदगदभाषिणः काम-
कर्मन्तभूतस्य वेशस्य परालक्ष्मीः । (४) इह हि समुद्यतकटाक्षप्रहरणाः स्फुटहसितो-
न्मीलितदशनपङ्क्तयो (५) निभृतभूलतानुवृत्तवचनविन्यासाः पीनपयोधरत्वादनवस्थित-
लघुप्रावरणा विभ्रमादप्रावरणाश्च (६) विभ्रमविलसितललितचपलगतयः कामविजय-
पताका इव इतस्ततः सञ्चरन्ति गणिकापरिचारिकाः । (७) नित्यस्मितालङ्कृतमुत्ताना-
मविस्मयविस्मिताक्षीणा (८) स्निग्धसुकुमारकुटिलतनुदीर्घकृष्णकेशीनां श्रोणीचक्रोदवहन-
मन्दपरिक्रमाणा मत्तद्विरदपरिभावगामिनीनां (९) सुरतप्रपाणागिव तत्र तत्र विचरन्ती-
नामनिभृतमधुरचेष्टिताना गणिकादारिकाणा दृश्यन्ते विलासनिधयो रूपविशेषाः ।

सेवन करके, माल तथा आसव के गंध से भरी यह हवा चली आ रही है मानों
वेश की श्वास वायु हो ।

अहा ! कैलास शिखर की तरह ऊँची चोटी के महलों वाले, वेश्याओं के
स्तनतटों से रगड़ खाने वाली लिङ्गक्रियों वाले, अगर और धूप के धुएँ से बरसात की
घटा वाले, फूलों के उपहार से हँसते पाद्यों द्वारा (उपहार) वाले, काँची की
झनकार से कामियों में उत्कंठा पैदा करने वाले, नूपुर की झनकार से मानों गद्गद
स्वर में बोलने वाले, काम के दफ्तर रूपी इस वेश की अपूर्व शोभा है । यहाँ बाकी
चित्तवर्नें चलाने के लिये तैयार, खिली हँसी से खुली दंत-यंक्तियों वाली, भौंहे
मटका कर बातें सजाने वाली, पीनस्तनों पर इधर-उधर लहराती छोटी चादरों वाली,
जल्दी के कारण चादर उधड़ जाने से इठलाती हुई, सुन्दर और चपल गति वाली,
काम की विजय पताका की तरह वेश्याओं की परिचारिकाएँ इधर-उधर आ-जा
रही है । हमेशा हँसी से सुशोभित मुखों वाली, बिना विस्मय के विस्मित आँखों
वाली, स्निग्ध सुकुमार, घुँघुराले, महीन, लंबे तथा काले बालों वाली, नितम्बों के
भार से धीमे चलने वाली, मतवाले हाथी के समान गति वाली, सुरत रूपी जल से
प्यास बुझाने वाली प्याउओं की तरह यहाँ-वहाँ थिरकती हुई नौचिया (गणिकादारिका)
नखरे करती हुई विशेष रूप से दिखाई दे रही है ।

१६ (१) प्रासादशिखर = यही पाठ अधिक समीचीन है ।

१६ (२) उपहार = पारवहार । वेश में आने जाने का एक मुख्य द्वार या सदर
दरवाजा होता था और जब वह बन्द रहता था तो उसी के बराबर बने हुए उपहार या
छोटे द्वार से आना जाना होता है ।

(१०) अपि च, अनवरतमृदङ्गनिरम्बना सम्भ्रान्तपारावतमिथुना गर्जन्तीना
प्रासादमाला । (११) आज्ञाप्यमानशिल्पजनानि सम्भ्रान्तप्रेष्यगर्गलुलितपुष्पोपहाराणि
सयोज्यन्ते गन्धतैलानि । (१२) पीनस्तनतटत्रिसर्पिणः पिब्यन्ते वर्णका । (१३)
मनस्विनीजनहृदयसुकुमारा आर्दीयन्ते माल्याभियोगा । (१४) प्रियावचनमित्र श्रोत्रा-
धानर श्रयते वल्लवीनाद्यम् । (१५) प्रियजनाधरोपदशप्रणयी प्रचरति शीघ्र ।
(१६) अपि च—

१७—

(अ) नेत्रैर्धनिमीलितैः स्तनतटैः सव्याजसन्दर्शितैः ।

(आ) हामैत्राडविभूषितैः श्रुतिमुत्तरेल्याक्षरैर्भाषितैः ।

(इ) मन्दैर्निश्रसितैः स्वभावमधुरैर्गीतैश्च तालान्वितैः ।

(ई) नित्यादृष्टशरासन मनमित्र कुर्वन्ति वेश्याङ्गना ॥

और भी, निरन्तर टनरुते मृदङ्गों की ध्वनियों से तथा घमराए हुए कबूतरों
के जोड़ों से भरी हुई प्रासाद पक्षियों मानो गाज रही है । मशहूर शिल्पियों की
भीड़-भाड़ से सुशोभित, इज्जतदार नौकरों द्वारा फेंके गए पुष्पोपहारों से भरे
हुए गृहद्वार मानों एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे हैं । रतियुद्ध की थकावट मिटाने के
लिये सुगन्धित तेल सँजोए जा रहे हैं । पीन-स्तनों पर लगाए जाने वाले उनटन
(वर्णक) पीसे जा रहे हैं । मनस्विनी जनों के हृदय की तरह सुकुमार मालाएँ
लगा जा रही हैं । प्रिया वचन की तरह कानों को सुख पहुँचाने वाली वीणा की
झनकार सुनाई दे रही है । प्रियजनों के अधर पान की गजरु चम्बने की अभिलाषिणी
गराज चल रही है ।

१७—अधखुरी ओँखों से, बहाने से उधाड़े हुए स्तननगरे से, लजीरी हँसी से,
कानों को सुख देने वाली बातों की चुटकियों से, घीमी साँसों से, स्वभाव मधुर
ताल युक्त गीतों से, वेश्याएँ काम को हमेशा धनुष चढ़ाए रखने पर बाध्य
करती हैं ।

१६ (१०) सम्भ्रान्तपारावत मिथुन—जोड़ा खाने वाले कबूतरों के पक्ष पङ्कटाने
और गुरगुरी करने से महल माना गाज रह है ।

१६ (११) आज्ञाप्यमान शिल्पजन—वेश्याओं के गृहद्वार या गृहालम्बों पर
एकत्र हुण सुनार, रंगरेज आदि शिल्पियों को काम बताया जा रहा है ।

१६ (१२) गन्ध तैल का सजोना—वेश के आवासामें रात्रि का दीप मालाओं में
सुगन्धित तेल डाला जा रहा है ।

१६ (१३) माल्याभियोग = माल्याभोग से तात्पर्य है ।

१६ (१५) उपदशप्रणयी शीघ्र — देखिए पञ्चमामृतम् [६।०] जहाँ मधुपान
के साथ उपदश चलनेका उल्लेख है ।

१७ (ई) नित्यादृष्टशरासन—वेश वधूजना के ये नखरे नया नया काम जगाने
रहते हैं ।

(१) (परिक्रम्य) (२) अये इयं सलु तावद् यौवनमदानैक्षितस्तनप्रावरणा
पेलवाशुकृतपरिधाना घनाभरणहतनीरी (३) निभ्रमावमुपतैककर्णपाशेन विनस्तहरिण
चञ्चलाक्षेण निभुक्तपिण्डितोष्ठेन मुनीनामपि मन कम्पनसमर्थेन सुलभहसितेन मुखेन
(४) मदनसेनाया परिचारिका वारुणिका नाम वामहस्ताङ्गुलिसदशेन कर्णोत्पल
कलयन्ती किञ्चिदुद्यतैरङ्गुलता मामनैक्ष्य प्रहस्यातिक्रामति । (५) अस्या हि—

१८—

(अ) रोमाञ्च दर्शयता

(आ) कपोलदेशे विशालजघनाया ।

(इ) कर्णोत्पलेन हत इव

(ई) निरक्षर चुम्बनोदघात ॥

(१) का शक्तिरनभिमाप्यातिक्रामितुम् । (२) अभिमापिष्ये तावदेनाम् ।
(३) वामु वारुणिके निगृह्यतामात्मा । (४) कथमस्मद्वचनं स्वलीकृत्य गच्छत्येव ।
(५) सुन्दरि अनेन स्वलीकरणेन ग्रीता स्म । (६) कथं प्रहस्य स्थिता । (७)
(उपेत्य) (८) हतमङ्गलिना । (९) पृच्छामस्तावत् किञ्चित्—(१०) केनास्य
शरत्कमलरजपुञ्जपिञ्जरस्य गगनतलोन्मुखस्येव चक्रगुरुभयुनस्य स्तनयुगलस्य ते

(रूमकर) अरे, जरूर यह जोवन के मद से स्तनपट्ट (स्नन प्रावरण) की परवाह न करती हुई, क्षीने मलमल के कपड़े पहन कर, जघनाभरण या मेखला की नीची बनाकर, नखरे से एक कान का गहना उतार कर डरे मृगछीने की तरह चचल आँखों से, खूब भोगे हुए फूले जाँठ से, मुनियों का भी मन कपाने में समर्थ, सुलभ हँसोड़ मुख से मदनसेना की परिचारिका वारुणिका बाएँ हाथ की उँगलियों की फैवी बनाकर कर्णोत्पल का स्पर्श करती हुई जरा एक भोंह तानकर मुझे देखकर हँसती हुई आगे बढ़ी जा रही है ।

१८—इस विशालजघना के कपोल देश पर रोमाच हो आया है, मानों कर्णोत्पल ने चुपचाप चुम्बन की चोट कर दी हो ।

उसकी क्या मनाल कि वह बिना बात किए चली जाय ? उसमें बात-चीत क्यों ? वामु वारुणिका, जरा अपने को रोक, क्यों मेरी बात व्यर्थ करके चली ही जा रही है ? सुन्दरि, मैं तेरी लापरवाही से भी प्रसन्न हूँ । क्यों हँसकर खड़ी हो गई ? (पाम पहुँचकर) हाथ मत जोड़ । क्या मैं पृष्ठ सरुना हूँ कि शरद् कमर

१७ (२) स्ननप्रावरण = स्ननपट्ट ।

१७ (२) पेलवाशुकृत = मुकुमार या मुन्यायम रेशमी उत्तराव ।

१७ (३) अभ्रमुत्त = उतारा हुआ ।

१७ (३) कर्णपाश = कान का गहना ।

१७ (४) कलयन्ती = स्पर्श करती हुई ।

१८ (४) स्वलीकृत्य = व्यर्थ करके, लापरवाही से उपेक्षा करके ।

प्रथमावतारः सुतमुपभुज्यते ? (११) कथ “ही” इत्येकाध्वरमुत्वा सत्रीलमनेक्ष मा
व्रजति तूर्णमनवसितार्थभाषिणी । (१२) तत्सलु कामस्य सर्वस्वम् ।

(१३) (परिक्रम्य) (१४) अथे बन्धुमतिक्रा सल्लेपा स्वगृहद्वारकोष्ठगता
पाशोपनिष्टेया चतुरिक्रिया प्रदीयमानप्रतिवचना (१५) मूलतासञ्चारितचिकुरा सायाह-
नलिनमुकुमारा दृष्टि कृत्वा स्वयमेव मेखला संयोजयति । (१६) अहो, यौनानुरूपो
प्यापारः । (१७) अहो, मुकुमार कर्मानुष्ठितम् । (१८) अहो, ललितोऽमिनिवेशः ।
(१९) अहो, कार्कश्यं प्रकाशयते यत्नः । (२०) अहो, दर्पाद् रशनादामसंयोजय-
न्त्या किमिधानया नोक्त भवति ? (२१) अत्रश्यमस्या विहारकालचतुरता पूजयितव्या ।
(२२) इदमुपगम्यते । (२३) (उपेत्य) (२४) वासु कर्मेतिद्विरस्तु ते । (२५)
भवति व्रतमासनेन । (२६) पृच्छामस्तावत् किञ्चित्—

१६— (अ) एषा कामिकराङ्गुलिप्रियसखी नामिहदाम्भःसुतिः

(आ) निधुत्सोमचलाहकस्य रुचिरा कार्कश्ययोग्यारणिः ।

की रज से पीले और आकाश की ओर उन्मुख चरवा चरुवी के जोड़े की तरह
तेरे इन स्तनों का पहला मुख किसने उठाया ? क्यों बस “ही” कह कर तू मेरी
ओर लजाकर देखती हुई आधी ही बात कहकर जल्दी से भागी जा रही है ?
यह सन काम का जहूरा है ।

(धूमकर) अरे, अपने घर के दरवाजे पर बैठी हुई बन्धुमतिका बगल में बैठी
चतुरिका से बातचीत करती हुई, भोंह पर से बाल हटाकर, सख्या के कमल की
तरह अलसौही ओंखें करके, स्वयं अपनी मेखला पिरो रही है । अहा, जवानी
के अनुरूप ही यह काम है । अहा, कैसा मुकुमार कार्य उसने उठाया है ? अहा,
उसकी एकाग्रता कैसी लुभावनी है ? उसका मेखला सँजोने का यह यत्न उसकी
देह का कसाव प्रकट कर रहा है । दर्प से रशनादाम सँजोती हुई उसने क्या नहीं
कह दिया ? अवश्य ही विहार काल में इसकी चतुराई पूजनीय है । इसके पास
चलना चाहिए । (पहुँचकर) वासु, तेरा काम पूरा हो । मेरे लिये आसन रहने
दे । मैं तुझमें कुछ पूछना चाहता हूँ ।

१९—हे मानिनी, तेरी यह मेखला टूट कैसे गई ? यह कामीजनों की उंगलियों
की प्यारी सखी है, नामिरूपी सरोवर से बहने वाली पानी की श्वेत धारा है, नीले

१८ (१८) ललित = सुन्दर ।

१८ (१८) अमिनिवेश = काम की एकतानता ।

१८ (१९) कार्कश्य = शरीर का कसाव । मेखला गूँथते हुए इसका अग सचालन
इसके बसे हुए शरीरावयवों को प्रकट कर रहा है ।

१९ (अ) नामिहदाम्भः सुति = श्वेत मोतियों की लड़ियों से गूँथी हुई करधनी की
श्वेत जलधारा से तुलना की गई है ।

१९ (आ) स्त्रीमचलाहक—मेघ के समान नीली साड़ी पर बिजली सी चिलकने
वाली श्वेत मुक्ता मेखला ।

(३) मूर्त्ती कामशरासनस्य ललिता वाक् श्रोणिविम्बस्य ते
(३) छिन्ना मानिनि मेखला रतिमुखाभ्यासाक्षमाला कथम् ॥

रेगमी वस्त्र रूपी बादल के छोर पर चमकने वाली विजली है, पुरुषरूपी मलखम के साथ व्यायाम या पुरुषायित रति की जननी है, कामदेव के धनुष की प्रेत्यब्जा है, क्षुद्र घंटिका युक्त नितम्बों की ललित वाणी है, एवं पुनः पुनः प्राप्त रतिमुख के परिगणन की मानों अक्षमाला है ।

१६ (आ) कार्कश्य = शरीर का कसाव; वष, भुजा और जंघाओं का पूर पुष्ट और कसे हुए होना ।

१६ (आ) योग्या = व्यायाम । संस्कृत साहित्य में योग्या शब्द का यह अर्थ प्रसिद्ध है । व्यायाम भूमि को योग्याभूमि कहा गया है (विराट पर्व ४।३६, विशेषवेत्त राजानं योग्याभूमिषु सर्वदा) ।

१६ (आ) कार्कश्ययोग्या = वह व्यायाम जिससे शरीर में कार्कश्य या कसाव उत्पन्न हो, अथवा वह व्यायाम जो पहलवान के कर्कश और पुष्ट शरीर का दर्प मिटाने के लिये किया जाय । यह मलखम का व्यायाम होता है । उसी के लिये कार्कश्ययोग्या शब्द संगत और समीचीन था । दृढ़ लकड़ी के धग्गे को प्रतिमह्न मानकर उल्लूक कर उस पर चढ़ जाना और छाती, भुजा एवं जांघों को धक्के के साथ दृढ़ता से रगड़ना और ऊपर नीचे घुमा-फिरा कर शरीर का भ्रम करना यही मलखम का व्यायाम था (मान-सोल्लास भाग २, पृष्ठ २३५) । यद्यपि कोशों में कार्कश्ययोग्या शब्द अभी तक ललितविष्ट नहीं हुआ, किन्तु इसका यही अर्थ यहाँ संगत है ।

१६ (आ) अरणि = जननी । अरणि शब्द का यह अर्थ विशिष्ट था । दार्ढिक और भाट्टे के कोशों में यह अर्थ नहीं है, किन्तु मोनियर विलियम्स ने इस अर्थ का उल्लेख किया है जो हरिबंश पुराण के पाण्डवारणि (= पाण्डवजननी) और मुरारणि (= देवमाता) इन प्रयोगों में आया है । वही अर्थ यहाँ अभिप्रेत है । मेखला को कार्कश्यव्यायाम की जननी कहने का अभिप्राय है कि पुरुषायित या विपरीत रति में स्त्री मलखम रूपी पुरुष के साथ अपने शरीर का दर्प मिटाती है । स्त्री द्वारा पुरुषायित रति रचानेका संवेत मेखलाबंधन से सूचित किया जाता था । स्त्री द्वारा अपनी मेखला पुरुष के शरीर में बांधने का तात्पर्य यह था कि पुरुषायित रति में वह स्वयं पुरुष बनकर पुरुष को स्त्री की भांति मेखलालंकृत कर लेती थी । गुप्तयुग में यह संवेत और व्यञ्जना सुविदित थीं । कालिदास ने कुमारसम्भव में धनि से इसी रतबंध का उल्लेख किया है—

स्मरसि स्मर मेखलागुणैरुत गोत्रस्खलितेषु वन्धनम् ।

च्युतमेसरदूषितेक्ष्णान्यवतंसोत्पलताडनानि वा ॥

(कुमार० ४।८)

गोत्रस्खलित के अपराधी पति को स्त्री पुरुषायित बन्ध के लिये मेखला से बाँधकर अपने वेशों में गूँथे हुए पुष्पों को रज से उसके नेत्रों को दूषित करती थी और कान में

(?) अथवा किमत्र विज्ञेयम्—

२०—

(अ) तिस्रम्भाच्च हृताशुकस्य शयने प्रीत्येक्षितस्य प्रिये—

(आ) शोन्मत्त (न्मुक्त) द्विरदेन्द्रमस्तरुवपुर्लालोदयालम्बिनः ।

(इ) स्पर्शान्ति कुतूहलस्य जघनस्यावल्गातस्ते घ्रुवं

(ई) तन्नीछेद इवाकरोद्विरसता ताम्राक्षि काञ्चीपथः ॥

(?) कथमधोमुखी स्थिता । (२) कथं नास्ति प्रतिवचनम् । (३) इदं

गम्यते । (४) किं ब्रवीषि—“न गन्तव्यम्” इति । (५) हन्त ! एपोऽस्मि मन्त्रावरुद्ध

इन भुजङ्गमोऽजङ्गमः संवृत्तः । (६) कथं ब्रजामि । (७) एष ध्वस्तोऽस्मि । (८)

(परिरुम्य कर्णं दत्त्वा) (९) अये रामदासीगृहे स्त्रीप्रलुदितमिव । (१०) इह सलु

बहुभिः कारयोरुपपद्यते । (११) तत्र केन सलु कारयेनैवा रोदिति । (१२) कुतः

अथवा इसमें जानने की क्या बात है ?

२०—हे ललछौही आँखों वाली, सेज पर विश्वास के साथ प्रियतम ने जिसका अंशुक हर लिया है, जिसे उसने प्रेमपूर्वक देखा है, जो मतवाले हाथी के मस्तक और शरीर की वपलोल के समान चोट्या करता है, ऐसा स्पर्श के लिये व्याकुल एवं प्लुतगतियुक्त जो तेरा जघन भाग है उसे इस दृष्टी करधनी ने टूटे तार वाली वीणा की तरह वेमजे कर दिया होगा ।

नीचा सिर करके क्यों बैठ गई ? जवाब क्यों नहीं देती ? मैं जाता हूँ । क्या कहती है—“जाना नहीं चाहिए ।” तो ले, मैं मंत्र से कीले गए सोंप की तरह रुक गया । क्यों, जाऊँ ? ले मैं चला । (घूमकर और कान देकर) अरे, रामदासी के घर में स्त्री के रोने की आवाज जैसी है । ऐसा अनेक कारणों से हो सकता है । तो फिर किस कारण से बह रो रही है ?—

पाँसे हुए कमल ने ताडित करती थी । पादताडित के बारहवें श्लोक के पहले दो चरणों में पुरुषायित का ही वर्णन है (कि कामो न कश्चग्रे ..) । स्त्री द्वारा पुरुष का मेजलानेवन इस रति का सूचक था । मेजला के लिये कार्कश्ययोग्यारणि विशेषण का यही गूढ़ अभिप्राय है ।

२० (इ) आगल्गातः—उछलता हुआ, धक्के मारता हुआ ।

२० (ई) तन्नीछेद = वीणा के तारों का टूट जाना ।

२० (ई) काञ्चीपथ—सम्भवतः मूलपाठ काञ्चाश्लेषः था, ‘करधनी का शिथिल हो जाना ।’

२० (५) हन्त—एक अव्यय, जो हर्ष, अनुकम्पा, विषाद, खेद, वाद, सभ्रम आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है । किसी काम के करने के निर्देशन में भी आता है, जहाँ उसका अर्थ होता है ‘लो’, ‘देखो’, ‘आओ’, ‘अच्छा तो’ ।

- २१— (अ) स्यात् कोपाद् रुदितस्वरः सरभसो दैन्यात्तथा शीघ्रो
 (आ) विच्छिन्नः प्रणयाद् भयेन विरसो हर्षोदयाद् गद्गदः ।
 (इ) मन्ये क्रोधवशंगता प्रणयिनी लोपा सदैव्या तथा
 (ई) प्रारम्भे रभसं विरामबहुलं मन्दं तथा रोदिति ॥
 (१) आशङ्कते रामदासीमेव मे हृदयम् । (२) प्रविशामस्तावत् । (३)
 (प्रविष्टकेन) (४) सेवेयम् । (५) सेपा मा दृष्ट्वा भृशतरं प्ररुदिता ।

- २२— (अ) अस्या नेत्रान्तविग्रहाः
 (आ) कोपसर्वस्वसम्भृताः ।
 (इ) प्रियापराधगणना
 (ई) कुर्वन्तीवाश्रुबिन्दवः ।

(१) (उपेत्य) (२) मानिनि, किमिदम्—

- २३— (अ) आपूर्यामिनवाम्बुजद्युतिहरे नेत्रे प्रयातोऽधरं,
 (आ) तद्भ्रष्टः कठिनो गतः स्तनतटो तन्नाप्यलम्भास्पदः ।
 (इ) बाष्पस्ते तनुरोगराजिलुलितः शोकप्रसङ्गोज्झितः
 (ई) नामि पूरयति प्रियाङ्गुलिमुखप्रक्षेपलीलोचिताम् ॥

२१—क्रोध से रोने की आवाज तेज, दैन्य से कोमल, प्रणय से रुक-रुक कर, भय से विरस और खुशी से गद्गद होती है। ऐसा लगता है कि यह प्रणयिनी क्रोध तथा दीनता से भरी है क्योंकि आरम्भ में वह गला फाड़कर और फिर रुक-रुक कर धीरे-धीरे रोती है।

मेरा जी कहता है कि रामदासी ही है। तो फिर मैं भीतर जाऊँ। (प्रवेश करके) वही है। वह मुझे देखकर और जोरों से रोने लगी।

२२—आँखों के कोनों से क्रोध के ढेर की तरह गिरते हुए इसके आँसुओं की बूँदें मानों प्रिय के अपराधों की गिनती कर रही है। (जाकर) मानिनि, क्या बात है ?—

२३—वे आँसू पहले नए कमल की शोभा हरनेवाले नेत्रों में भर कर फिर अधर पर गिरते हैं। फिर वहाँ से खिमक कर कठिन स्तन तटों पर आते हैं। पर

२१ (अ) शीघ्र = सुन्दर, लुभावनी, आनन्दायक ।

२३ (अ-ई) —इस श्लोक का भाव वर्षा बिन्दुओं के सम्बन्ध में कालिदास के इस वर्णन से मिलता है—

स्थिताः क्षणं पद्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः ।

प्लुतिपु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नामि प्रथमोदविन्दवः ॥ (कुमार० ५।२४)

अर्थात् वर्षा के प्रथम जलबिन्दु क्षण भर उसकी घनी धरौनियों पर रुके। फिर उन्होंने कोमल अधर को ताडित किया। फिर कठिन उरोजों पर गिर कर स्वयं चूर-चूर हो गए। वहाँ से बिखर कर गहरी शिथली में बहते हुए विश्रम्य से नामि में जाकर मिलीन हुए।

(१) न खलु इतमात्मन सदृश कुञ्जरधेय । (२) किं ब्रवीषि—“एव पर-
युतिचिहितोद्यो मामभिगत , (३) उपालम्ब्यमानश्च मया रोपच्छलेन निर्गत , (४)
अथ बहून्यहानि नापतत” इति । (५) ह ह ह ! अहो अपराधसम्मर्द । (६) सर्वथा
एवेनाप्यपराधकारणेन तीक्ष्ण कुलोत्सादनकर दण्डमर्हति, किं पुनरेतेषां सन्निपातेन ।
(७) तदेवमपि तु गते वद्धमेघयूथ कालमनेक्ष्य सहामहे दुर्जनस्यावलेपम् । (८)
सम्प्रति पाथियानामपि तावदन्योन्यवद्धनेराणा प्रतिनिवृत्ता. कलहा । (९) किं पुन
शिरीषकुसुमगुक्कुमारचित्तस्य कामिनीजनस्य । (१०) यदि नै मद्वचन प्रमाण भवति
कालमखलोक्य अद्यैव प्रियोऽभिसारयितव्य ।

- २४— (अ) शर्वर्यामवगाह्य हर्म्यशिलरा लम्बावलम्बाम्बुदा-
(आ) न्मार्गं मीरु गृहप्रणालिसलिलोदगारस्वनापूरितम् ।
(इ) कान्त प्राप्य तत. पयोदपनैरुद्वेपितान्नया त्वया
(ई) वननोप्यापहतोद्यकम्पविशद रत्यन्तरे ‘कथ्यताम् ॥

वहाँ भी जगह न पाकर शोक से आगे बहते हुए और रोमराजि में बिधुरते हुए वे
उस गहरी नाभि में भर जाते हैं जिसमें प्रियतम अपनी अगुली का अग्रभाग प्रक्षिप्त
करके कभी-कभी आनन्द लेता है ।

कुञ्जर ने अपने अनुरूप बात नहीं की । क्या कहती है—“दूसरी युवति से
चिहित जोठ लेकर वह मेरे पास आया । मेरे उलाहना देने पर रूठने के बहाने वह
निकल गया और बहुत दिन बीत जाने पर भी आज तक नहीं आया ।” ह, ह,
ह ! बाह रे अपराधों का रगड़ा । अवश्य ही एक अपराध से भी आदमी घर से
निकालने लायक कठोर दण्ड का भागी हो जाता है, फिर इन सभके जमाबडे की तो
बात ही क्या है ? मामला ऐसा होने पर भी बादलों से घिरे बरसाती मौसम
को देखकर ही मैं उस बदमाश की शेखी सह रहा हूँ, क्योंकि इस समय तो आपस में
बैर साधने वाले राजा भी कलह छोड़ बैठते हैं, फिर शिरीष के फूल की तरह कोमल
चित्त वाली कामिनियों की तो बात ही क्या ? अगर तू मेरी बात माने तो समय की
ओर देखकर आज ही अपने प्रिय के पास अभिसार कर ।

२४—लुप्त होते बादल जिनकी चोटियों को छू रहे हैं, ऐसे महलों के ऊपरी
भाग से तू रात में नीचे उतर कर उस मार्ग में प्रवेश करना जहाँ महल की पनालियों
से बहते पानी की छरछराती ध्वनि गूँज रही होगी । फिर अपने प्रियतम के पास
पहुँचकर बरसात की शीतल हवा से कॉपती हुई तू उस कान्त का आलिंगन करना
और उसके मुख का चुम्बन लेकर जब अपने ओष्ठ का शीत मिठा चुके तब रति के
बीच में स्पष्ट स्वर में उससे अपनी बात कहना ।

२३ (५) समर्द = रगड़ा, नमका ।

२४ (६) पयोदपनैरुद्वेपितांगी—वर्षा की रात्रि में अभिसार के कारण भागने से
भीर उन्नी बायु के ओका से बापता हुई ।

(१) कथमुदमिन्नरोमाञ्चौ कपोलतलो वचनस्य न प्रतिग्रह निवेदयत ।
 (२) साधयामस्तावत् । (३) (परिक्रम्य) (४) एषा स्त्रु सा रतिसेना गर्भगृहा-
 वरोधजनितस्येदन्निन्दुमेकेनाधोन्मीलितचारुनयनविश्रेक्षितेन कपोलपार्श्वलग्नमूर्धजेन मुत्सेन
 (५) नून साशेषमदा साम्प्रतमेव प्रतिबुद्धा । (६) तथा हि गवाक्ष मारुतस्यात्मानमुप
 नयति । (७) रमणीयाया सत्त्ववस्याया वर्तते । (८) अभिभाषिष्ये तावदेनाम् ।
 (९) (अभिगम्य) (१०) वासु सुभगा भव । (११) त्वा ह्यल्पावशेषमदा
 सावशेषसन्ध्यारागामिव प्रतीची दृष्ट्वा दिश (१२) प्रस्रस्तशरासन कुसुमायुधोऽपि
 तावद् व्याकुलता गच्छेत् । (१३) किमङ्ग पुनरन्यम् ।

२५— (अ) प्रणष्टा न व्यकिर्मवति वचस सैन मृदुता
 (आ) न रागो नेत्राब्जे त्यजति न च लज्जा व्यपगता ।
 (इ) स्मृति प्रत्यायाता परिहृपितमद्यापि च मुत्स
 (ई) मदो दोषास्त्यक्त्वा त्ययि परिणतस्तिष्ठति गुण्ये ॥

(१) रतिसेने विसर्नयितुमर्हति भवतीं माम् । (२) नाह प्रारम्भस्त्वा मोक्षमु-
 त्महे । (३) क्व ग्रहस्यावघाटितो गवाक्ष । (४) हन्त । विसृष्टा स्म । (५)

तो, रोमाञ्चित कपोल ही मेरी बात की स्वीकृति की सूचना किम प्रकार दे रहे हैं ? अन मैं चला । (घूमकर) अरे यह रतिसेना है जो गर्भगृह में रहने के कारण उत्पन्न पसीना से भरी, आभी मुँदी हुई सुन्दर आँखों को घुमाती हुई, गाल पर कैले बालों वाले मुख पर फुठ सन्नर लिए हुए अभी जागी है । यह खिडकी खोलकर हवा ग्वा रही है । इसकी यह अवस्था बड़ी सुहावनी है । इससे बात कहूँ (पास जाकर) वासु, सौभाग्यवती हो । कुछ अग्रशिष्ट मद की अवस्था में तू सोंश की लगाई लिए पश्चिम दिशा की तरफ सुहावनी लग रही है । जो अपना धनुष उतार चुका है ऐसा कामदेव भी तुझे देखकर पुन व्याकुल हो जाय, दमरे की बात ही क्या है ?

२५—तेरा होन नष्ट नहीं हुआ है, तेरी बाणी में बही कोमलता है, फमल ग्वापी नेत्रों से लगाई नहीं गई है, लज्जा भी दूर नहीं हुई है, बीती बात याद आने पर अन भी तेरा मुख गुप्तो से भरा हुआ है—इस प्रकार मद अपने दोषों को छोड़कर तुझ में गुण होकर टहरा है ।

रतिसेना, तू मुझे मने ही दरसना चाहे, मैं तुझमें बात शुरु करके छोड़ना नही चाहता । अरे हँसकर झिड़की क्यों चन्द कर ली ? लो, मुझे बिदा कर दिया ।

२४ (ई) यत्राप्यापहत—प्रियतम क मुझ का गर्भो मे सुखद्वारा भवने भाव का वीर्यपा मिश्रण ।

२४ (४) गर्भगृह—मद का आशान गृह का वह भाग जहाँ स्त्रियों रदगो दे ।

२५ (अ) व्ययि = दास, चमना ।

(परिक्रम्य) (६) हन्त विमनाः सत्वस्मि अतिक्रान्तः । (७) इयं हि प्रद्युम्नदासी प्रसक्तसुरतश्लानिरुपगलेनात्यायतनयनसञ्चारेण तिलकावभेदपिजरीदृतललाटोद्देशेन त्रिलुलितालरुशोभिना लग्नमिव रतिपरिश्रममुद्वहता वदनेन (८) जघनविम्बाशुक्रान्तर-दृश्यमानाभिरभिनयनसक्षतराजिभिर्विमलसलिलान्तर्गताभिरिव फुल्लशोकच्छायाभिः सुर-तामर्दमृदितमण्डना (९) असितसमरशिथिलाकल्पेन नागनधूः (१०) प्रवातदीपमिव पाणिना प्रच्छाद्याधरोष्ठ अनुयातकिशोरीव पदात्पदशत गच्छन्ती वेशमार्गमलङ्कृते । (११) इष्टा न. कामिनी । (१२) परिहसिष्यामस्तावदेनाम् ।

(१३) (उपेत्य) (१४) वासु किमिदं प्रियदर्शनपदाधिष्ठितस्य दर्शनयसनस्य सत्रणस्यैव योधस्य श्लाघ्य वपुश्छाद्यते । (१५) कथं प्रहसिता । (१६) हा धिक्कृत एव नः पौरोगाव्येन दोषः । (१७) अस्या हि मन्दारम्भेषां प्रहसितेन विद्वत्तमेव दन्त क्षतेषु । (१८) कुतः—

(घूम कर) यो धता किए जाने पर मैं अवश्य कुछ अनमना हो रहा हूँ । तो यह प्रद्युम्नदासी है । इसके कपोल सुरत से मुरझा गए हैं । यह आँखें फाड़कर देख रही है । विशेष प्रकार के तिलक से इसका ललाट पीला हो गया है । बिथुरी लट्टे शोभा दे रही है । मुँह पर मानो रति की थक्रान भर गई है । झीने अशुक्र के भीतर से झाकते हुए जघन पर नये नखक्षत दिखाई दे रहे हैं, मानो निर्मल पानी में खिले अशोक पुष्पों की छाया दिखाई दे रही हो । सुरत की रगड़ से इसका शृंगार मिट गया है, जैसे लड़ाई के अन्त में हथिनी का शृंगार अस्तव्यस्त हो गया हो । जैसे आँधी के दीपक को झझरी से ढक लेते हैं, ऐसे ही यह हाथ से होठ ढके हुए है । टहलाई जाती हुई बड़ेडी की तरह चहल-चरमी करती हुई यह वेशमार्ग की शोभा बढ़ा रही है । मुझे यह रुचती है । तो इससे कुछ मजाक करूँ ।

(पास जाकर) वासु, क्यों प्रिया के द्वारा दाँत काटे ओठ के सुन्दर रूप को घायल योद्धा के सुन्दर शरीर की भाँति व्यर्थ छिपाती है ? यह क्यों हँसी ? हा, मेरी लुब्धकियों ने इसको भूल का मजाक बना दिया । पर मन्द हँसी से भी इसके दंतक्षतो की शोभा बढ़ गई । कैने—

२५ (९) आरूप्य = शृंगार, मदन ।

२५ (९) नागनधू = हथिनी ।

२५ (१०) अनुयातकिशोरी = वह नई बड़की जिसे निकालने के लिये व्यायाम कराने के बाद धीरे धीरे टहलाते हैं ।

२५ (१४) प्रियदर्शनपद = प्रियतम के दन्त से प्रिया हुआ चिह्न ।

२५ (१४) दर्शनयसन = दाँत का आवरण अर्थात् ओष्ठ ।

२५ (१६) पौरोगाव्य = दोषदर्शन ।

२५ (१७) विद्वत् = भलवृत्त । विद्वत् शब्द के कई अर्थों में एक यह भी है ।

- २६— (अ) सीत्कारोत्पतितस्तनी स्तनतटोत्क्षेपातिनिम्नोदरी
 (आ) भ्रूमेदाञ्चितलोचना • क्षतरुजाधृताग्रहस्ताम्बुजा ।
 (इ) यद्यन्यानि समाक्षिपेज्जनमनास्येवं ग्रहस्याङ्गना
 (ई) कामिन्या हसितव्यमेव तु भवेद् दष्टाधरोष्ठे मुखे ॥
 (१) किं ब्रवीषि—“चिरस्य खलु भावो दृश्यते” इति । (२) अग्नेन दुर्दिन-
 मातकेन गृहवन्धनेऽस्मिन्निरुद्धः कृतः । (३) अथ भवत्या कोऽनुगृहीतः ? (४) किमाह
 भवती—“रामिलकस्योदयसितादागच्छामि” इति । (५) सदृशः संयोगः स्थावरोऽस्तु ।
 (६) अहो ! एकेन खलु रामिलकेन मदनाग्रहारी कृतः । (७) कृतः—
 २७— (अ) सफलं तस्य कृशोदरि
 (आ) युवत्वमसमस्तविहसितं यस्ते ।
 (इ) सार्धशशाङ्कच्छायं
 (ई) चपकमिव मुखं समापिबति ॥

२६—सीत्कार करने से इसके स्तन ऊपर थलक गए । स्तनों के प्रान्त भाग ऊपर उठ जाने से उदर और भीतर दब गया । भौंह तानने से चितवन बाँकी हो गई । दन्तक्षतों की पीड़ा के कारण कमलरूपी हाथों की उंगलियाँ उन्हें सहलाने के लिए चञ्चल हो उठी हैं । यदि इस प्रकार से स्त्री हँसकर दूसरों के दिल को चञ्चल कर सकती है, तब तो दन्तक्षत से पीडित अधर युक्त मुखवाली कामिनी को अवश्य हँसना चाहिए ।

क्या कहती है—“बहुत दिनों के बाद आप दिखाई दिए हैं ।” इस बरसात के पाप ने मुझे घर पर ही बोंध रखा था । अब कह किस पर रीझी है । तूने क्या कहा—“रामिलक के घर से आ रही हैं ।” एक जैसों की यह जोड़ी बनी रहे । बाह, रामिलक ने अकेले ही मदन की माफ़ी (अग्रहार) लूट ली । कहाँ—

२७—हे कृशोदरी, उसकी जवानी और विस्तृत हँसी सफल हैं जो तेरे अर्धचन्द्राकार दन्तक्षत की शोभा से युक्त मुख का अर्ध चन्द्र की आकृति वाले चपक के समान पान करता है ।

२६ (आ) अञ्चित = भाकुञ्चित, बक ।

२६ (आ) अग्रहस्त = अंगुलियाँ ।

२६ (इ) समाक्षिप् = चञ्चल करना, धुमिल करना ।

२६ (४) उदयसित = गृह । गृहं गेहोदयसितम् (अमर) ।

२६ (६) अग्रहार = वह भूमि या जायदाद जो किर्ना की सेवा या गुणों के लिये माफ़ी दी जाती है ।

२७ (इ) सार्धशशाङ्कच्छायं = (१) मुख पर में, अर्ध चन्द्राकृति दन्तक्षत से तात्पर्य है । (२) चपक पर में, अर्धचन्द्र की आकृति का छोटा पानपात्र । इस प्रकार के सुन्दर पत्र हकीक वराह आदि रंगों के बनाए जाते थे । अद्विष्टा की मुराई में मिट्टी के बने हुए थोटे प्याले भी इस आकृति के मिटे हैं ।

(१) वासु दुर्विहगेभ्यो रक्षितव्योऽधरः । (२) गम्यताम् । (३) साधयामो वयमपि । (४) (परिक्रम्य) (५) अये, इदं तदध्वनीनभयात् कुम्भकर्णवदनमिव नित्य-निमीलितभवनद्वारं यत्र धूर्तद्वयं प्रतिवसति विश्वलकः सुनन्दा च । (६) विश्वलको हि भक्षितसर्वस्यो नग्नश्रमणक इव शरीरमात्रवशिष्टः (७) केवलं प्रियगणिकत्वादागत-कोशोपद्रवामपि सुनन्दां वायस इव ग्रामोपान्तं न मुञ्चति । (८) साऽपि चात्र प्रीपित-यौवना कान्तारशुष्कनदीव कस्यचिदनभिगम्या विश्वलकं किं नानुवर्तते । (९) तन्न युक्तमेतद् द्वन्द्वमनभिभाष्यातिरुमितम् । ;

“(१०) अयमाक्रन्दः कियते । (११) कोऽत्र धरते ? (१२) (कर्णं दत्वा) (१३) भोः प्रयातस्येवाश्चस्य रुरपुटनिपातध्वनिः पादोत्क्षेपसमये काष्ठपादुकाशब्दः श्रूयते । (१४) सन्निहितेनात्र विश्वलकेन भवितव्यम् । (१५) हन्त ! स एवैव विरोति । (१६) भोः किं व्रवीषि—“क एष गर्दभव्रतमनुतिष्ठति” इति । (१७) अहं यमदूतः सुनन्दार्थमागतः । (१८) कयमस्मत्स्वरमभिज्ञाय तूष्णींभूतः । (१९) अथो न प्रयच्छसि द्वारम् । (२०) तेन हि स्थिरीकियतामात्मा । (२१) एष शापाग्नि-मुत्सृजामि ।

वासु, तुझे दुष्ट पक्षियों से अधर की रक्षा करनी चाहिए । जा, मैं भी चला । (घूमकर) अरे यहाँ बटोहियों के भय से कुम्भकर्ण के मुख की तरह अपने घर का दरवाजा हमेशा बन्द करके धूर्त विश्वलक और सुनन्दा रहते हैं । विश्वलक अपना सग कुठ खा-पीकर नंगे श्रमणक की तरह शरीरमात्र से बचकर गणिका प्रिय होने से पैसा न रहने पर भी सुनन्दा को नहीं छोड़ता, जैसे गाँव के सिवान को कौया नहीं छोड़ता । वह भी जवानी चले जाने के कारण अब दूसरे के लिये अनचाही घन में सूखी नदी की तरह, विश्वलक के पीछे लगी रहती है । इस जोड़े से बातचीत किए बिना जाना ठीक नहीं ।

तो शोर मचाकर कहना चाहिए । यहाँ कौन रहता है ? (कान देकर) अरे, दौड़ते घोड़े की टाप की आवाज की तरह पैर रसते हुए खड़ाऊँ की धमक उगताई देती है । तो, विश्वलक अपना दोषा । हॉ, नहीं, किला रहा है । अरे, क्या कहता है—“कौन गदहे की तरह रेंक रहा है ?” अरे मैं सुनन्दा के लिये आया यमदूत हूँ । क्यों, मेरी आवाज पहचान कर चुप हो गया । अरे, क्यों नहीं दरवाजा खोलता ? तो अपने को सँभाल । मैं यह शापाग्नि छोड़ता हूँ ।

२७ (१) दुर्विहग = तोता जो अधर को विस्वाफल जानकर उसपर चोंच मारता है ।

२७ (५) अध्वनीन = बटोही, पथिक । अध्वानं गच्छति अध्वनीनः, अध्वनो यसी (५।२।१६) अध्वनीनोऽध्वनोऽध्वन्यः पान्यः पथिक इत्यपि (अमरः) ॥

२७ (७) आगतकोशोपद्रवा = जिमका कोश (धन या रत्नस्राव) घट गया है ।

२७ (१०) आक्रन्द = शोर, जोर का आवाज़ ।

२७ (११) धरते = च धातु, बटना है, जमकर रहता है ।

- २८— (अ) लीलीयतस्य कलहे
 (आ) नूपुरसंक्षोभनिनदमुखरस्य ।
 (इ) दूरीभवतु शिरस्ते
 (ई) विलासिनीवामपादस्य ॥

(१) एतदभावृतद्वारम् । (२) प्रविशामस्तावत् । (३) (प्रविष्टकेन)
 (४) किमाह भवान्—“किं न दयिताः स्मो भावस्य; युक्तं नामेदं शापोत्सर्गं कर्तुम्”
 इति । (५) सम्यगभिहितम् । (६) ईदृशो हि शापो ब्रह्मलोकमपि कम्पयेत् किम्पु-
 नर्भवन्तम् । (७) तदिदानीमस्य शापस्य प्रतीकारार्थं प्रायश्चित्तम् । (८) कुतः—
 २९—

- (अ) विकचनवोत्पलतिलका
 (आ) ससम्भ्रोतक्षेपचञ्चलतरङ्गा ।
 (इ) तस्यै देया मदिरा
 (ई) या हृदयकुटुम्बिनी भवतः ॥

२८—कलह होने पर लीला से उठे हुए और नूपुर की झंकार से मुखर विलासिनी के बाएँ पैर को तेरा सिर कभी न पा सके ।

दरवाजा खुल गया । तो मैं अन्दर चले । (प्रविष्ट होकर) क्या कहा—
 “क्या हम आपके प्यारे नहीं है ? क्या ऐसा शाप देना ठीक है ?” ठीक कहा । ऐसा शाप ब्रह्मलोक को भी कँपा देता है, फिर तेरी क्या बात ? इस शाप के प्रतिकार के लिये यह प्रायश्चित्त है । क्या—

२९—खिले हुए नये कमल की आकृति के तिलकवाली और ठमक कर चलने से चंचल गतियुक्त उस अपनी हृदयकुटुम्बिनी को तू ऐसी मदिरा पिला जिसमें नए विकसित कमल के पत्ते तैर रहे हों और जिसके साथ तिल की गजक का मज़ा हो, एवं हृदयड़ी में ढालने से जिसमें चञ्चल तरंगें उठ रही हों ।

२८ (इ) दूरीभवतु शिरः=तेरे मस्तक को कामिनी के चरणस्पर्श का सीभाग्य न प्राप्त हो ।

२९ (अ) विकचनवोत्पलतिलका—(१) खी पक्ष में; कमल की आकृति का तिलक या विशेषक, (२) मदिरा पक्ष में, कमल की टटकी पंखुड़ियाँ जो मदिरा में डाली जाती थी और तिल का बना ग्राह जो साथ में चखवा जाता था । तिलक—तिल की गजक ।

२९ (आ) ससम्भ्रोतक्षेप—खी पक्ष में, रष्ट होकर सम्भ्रम के साथ जाने के लिये उद्यत होने पर झिमरी गति चञ्चल हो । मदिरा पक्ष में, शीघ्रता में ढालने से जिसमें तरंगें उठ रही हों ।

२९ (आ) तरंग=गतिविगेय, लहरियागति ।

२९ (इ) देया मदिरा—विष्ट का भाव यह है कि रष्ट पद्यों की मदिरा पान से मनाता यही प्रणय मन्द का उचित प्रायश्चित्त है ।

(१) एवमुपविशामः । (२) उपविश्य । (३) कृतं पाद्येन । (४) कुसुम-
पुरराजमार्गो निष्पङ्क्तया हर्म्यतलान्यध्यतिशेते । (५) न खलु मे पादौ दुर्लक्षितौ
कर्तव्यौ । (६) किमाह भवान्—“विष्णुदासप्रभृतीनां गोष्ठीकानां रामिलगोष्ठके समाग-
तानां परस्परविवादम्याः केचित् प्रशंसायाः प्रवृत्ताः कामतन्त्रे । (७) ताश्च यदा कात्स्न्येन
न शक्नुवन्ति वक्तुं ततोऽस्म्यहं नैरात्मदर्शनं श्रावयितुमभ्यर्थितः । (८) तत्र मयाऽपि
स्वदर्शनमुक्तम् । (९) इच्छेयं तावद् देविलकभावमपि तमेवार्थं श्रावयितुम् । (१०)
तत्र यद् भावो वक्ष्यति तन्नः प्रमाणं भविष्यति । (११) एतमर्थं भवन्तं श्रावयितुं गृह-
मेवागन्तुमनाः । (१२) अथ भावेन स्वयमेवात्मा दर्शितः । (१३) यदि तावद् भावः
क्षणिकः ततः प्रवक्ष्यामि” इति ।

(१४) आज्ञापयतु भवान् । (१५) अवहितोऽस्मि । (१६) शक्तितो वक्ष्यामः ।
(१७) अयं तु दुर्लक्षित इव दारकः कुटीप्रदेशं न मुञ्चति वायुः । (१८) अतश्चिरा-
ध्यासं न शक्नोमि कर्तुम् । (१९) यद्यभिरुचितं भवते परिक्रान्तावेव सम्भाषिष्यावहे ।
(२०) विस्तीर्ण्य गोष्ठीशाला । (२१) किं वशीपि—“एवं नास्ति दोषः” इति ।
(२२) (उत्थाय) (२३) वशीतु भवान् । (२४) किं वशीपि—“यद्यर्थमेव वैश्यानां

तो कुछ बैठें । (बैठकर) अरे पैर धोना हो चुका । कुसुमपुर का राजमार्ग
सफाई में महल की छत से बढ़कर है । गेरे पैरों का व्यर्थ लाड मत कर । तूने क्या
कहा—“रामिलक की गोष्ठी में विष्णुदास आदि गोष्ठीके सदस्यों को आपस में मजेदार
वहस करते हुए कामतन्त्र के बारे में कुछ गढ़ाएँ हुईं । जब वे उनका ठीक समाधान
न कर सके तो उन्होंने मुझसे अपना मत सुनाने की प्रार्थना की । मैंने भी उनसे
अपना मत कहा । मैं वही बात भाव देविलक को भी सुनाना चाहता हूँ । फिर आप
जो कहेंगे वही प्रमाण माना जायगा । अपनी बात सुनाने के लिये मेरी आपके घर
जाने की इच्छा थी, पर आपने स्वयं दर्शन देने की कृपा की । आपको समय हो
तो कहें ।

आज्ञा कीजिए । मैं सावधान हूँ । शक्तिभर उत्तर दूँगा । दुलार से विगड़े हुए
लड़के की तरह वायु दम कुटी को नहीं छोड़ रहा है । इसलिए देर तक नहीं बैठ
सकूँगा । अगर तुझे पसन्द हो तो हम चलते-चलते बात-चीत कर लेंगे । गोष्ठीशाला
काफी लम्बी-चौड़ी है । क्या कहता है—“इसमें कोई हर्ज नहीं ।” (उठकर)
जब कह, क्या कहता है—“वैश्याओं का अगर पैमे के लिये ही पुरुषों से सम्बन्ध

२६ (६) गोष्ठीक = गोष्ठी के सदस्य । यहाँ विदोंकी सभा को गोष्ठी या गोष्ठक
कहा गया है । इस निटगोष्ठी की सदस्यता और बैठक के केंधे हुए नियम थे जिनका कुछ
उल्लेख पादतादितक में आया है । भूमिका में उनकी विराट् पचाई है ।

२६ (९) देविलकभाव—निट का नाम देविलक था ।

२८ (१३) क्षणिक—सावकाश, फुरमतवाला ।

पुरुषैः सह सम्बन्धः कथं तासामुत्तमाधममध्यमत्वं विज्ञेयम्” इति । (२५) भोः दानं नाम सर्वसामान्य वशीकरणं लोकस्थ, विशेषतस्तु वेशवधूनाम् । (२६) तथापि विद्यते विशेषः । (२७) कुतः ? अपि चोक्तं परापरज्ञैः—

- ३०— (अ) दानाद् रागमुपैति वेशयुवतिनिष्कारणाद् वाऽधमा
 (आ) मध्या रूपमवेक्ष्य यौवनयुतं दानेन वा हृष्यति ।
 (इ) दातारं विगतस्पृहं सुवयसं रूपाधिकं चैव भो
 (ई) दाक्षिण्येन विमृषितं रसु नरं नार्युत्तमा सेवते ॥

(१) किं ब्रवीषि—“कामयमाना वेश्या कथं विज्ञायेत” इति । (२) तद्-
 वक्ष्यामः, श्रूयताम्—

- ३१— (अ) कान्ता नेत्रार्धपाता वदनरुचिकराः सस्मिता भ्रूषिलासाः
 (आ) साकारा वाक्यलेशाः सहतलनिनदा दृष्टनष्टाश्च हासाः ।
 (इ) नाभीकक्षस्तनाना विवरणमसकृत्स्पर्शनं मेखलाना
 (ई) श्वासायासाश्च दीर्घा मदनशरहता कामिनी सूचयन्ति ॥

होता है, फिर कैसे उनमें उत्तम, मध्यम और अधम का भेद जाना जाय ?” अरे, दान तो लोक में सभी को वश में करने वाला है और विशेष कर वेश्याओं को । फिर भी उनमें भेद है, जैसा ऊँच-नीच जानने वाले कहते हैं—

३०—अधम वेशयुवति दानसे प्रेम करती है, या बिना कारण ही प्रेम करती है । मध्या जवानी भरे रूप को देखकर अथवा दान से खुश होती है । पर उत्तम नारी दाता, विगतस्पृह, युवा, रूपवान्, अनुकूल और सजे-धजे नर की सेवा करती है ।

क्या कहता है—“कामवती वेश्या कैसे जानी जा सकती है ?” कहता हूँ, सुन—

३१—सुन्दर अधखुली चितवनें, मुख की शोभा बढ़ाने वाली हँसती हुई भौंहें, इशारे और भावभंगिमाओं से भरी छोटी बातें, बीच-बीच में ताली बजाकर बोलना, प्रकट होने के साथ ही लुप्त हो जाने वाली मुस्कराहट, नाभि, बगल और स्तनों का उपाड़ देना, मेखला का बार-बार स्पर्श करना, तथा हाँफते हुए मुष्टिकल से मौस लेना, आदि लक्षण काम बाण से पीड़ित कामिनी की सूचना देते हैं ।

२६ (२७) परापरज्ञ—यह वैदिक शब्द था । पर ब्रह्म और अवर (अपर) ब्रह्म अर्थात् अव्यय ब्रह्म और चर ब्रह्म के विषय में सब कुछ जानने वाले परावरज्ञ कहलाते थे । विदों की भाषा की यह प्रवृत्ति थी कि वे धर्म और दर्शन के शब्दों का प्रयोग करते थे, पर भयं की स्पष्टता उनकी अपनी होती थी । इसका अच्छा उदाहरण ‘सायं प्रातः होमः त्रियते’ वाक्य है । यहाँ अनुभवी विदों की परापरज्ञ कहा गया है ।

३१ (आ) साकाराः—आकार अर्थात् मुख, भौंह, हाथों आदि से इशारा करते हुए छोटे-छोटे वाक्यों में कहा जाने वाली बातें ।

३१ (आ) सहतलनिनदाः—ताल की बजाकर कुछ बोल कह देना ।

३१ (आ) दृष्टनष्टाश्च हासाः—दोहों के भीतर ही चिन्तित हो जानेवाली मन्द मुस्कराहट ।

(१) किं व्रीषि—“तत्र कामलिङ्गानि बहूनि ब्रुवते (२) शठप्रायत्वाद् वैश्या-
जनस्य निष्ठोचितत्वात् ? क एतच्छ्रद्धास्यन्तीति’ तत्कामयमाना कथं विज्ञेया” इति ।

(३) श्रूयताम्—

३२— (अ) सास्त्रा निश्वासा स्नेहयुक्ता च दृष्टिः

(आ) कार्श्यं पाण्डुत्वं स्वेदबिन्दूद्गमश्च ।

(इ) क्षीणं द्रव्येऽपि प्रार्थना कामिनीना

(ई) भावासक्तानां भावशुद्धिं वदन्ति ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं व्रीषि—प्रथमः समागमः तेन कारणेन समोह-
मुत्पादयति” इति । (३) श्रूयताम्—(४) प्रथमसमागमः खलु कामिनीनामनियोग-
स्थानम् । (५) तत्स्थाने खलु मुह्यन्ति तपस्विनः । (६) कुतः—

३३— (अ) दुःखा श्लेषयितुं कथा प्रतिवचो लब्धुं च दुःखं ततो

(आ) जातेऽपि प्रचुरे कथाव्यतिकरे विस्रम्भेण दुष्परम् ।

(इ) विस्रम्भेऽपि सति स्वभासदृशी दुःखा विधातुं रतिः

(ई) सम्यक्प्राप्तरताऽपि वैशयुज्यं रज्येत वा नैव वा ॥

अपि च—

३४— राजनि विद्वन्मध्ये वा युवतीनाञ्च सगमे प्रथमे ।

साधसदृषितहृदयः पदुरपि वागातुरीभवति ॥

क्या कहता है—“वैश्याजनो की धोखे धड़ी अथवा निष्ठा से कामचिह्न
बहुत से कहे जाते हैं । इन पर कैसे विश्वास किया जाय ? कामवती कैसे जानी
जाय ?” सुन—

३२—ऑसू भरी सोंसों, स्नेहसे भरी दृष्टि, दुबलापन, पसीने की बूँदें, द्रव्य
नष्ट हो जाने पर भी प्रार्थना—इनसे प्रेम भरी कामिनियोकी भावशुद्धि जानी जाती है ।

(धूमकर) क्या कहता है—“प्रथम समागम किस कारण से हिचक उत्पन्न
करता है !” सुन, प्रथम समागम कामिनियोके लिये शिक्षक से भरा होता है । उसके
समय अनुभवी घाघ भी गडबडा जाते हैं । फिर—

३३—पहले तो बातचीत का तार ही जोड़ना मुश्किल है । बात चल पड़ी
तो जमान पाना मुश्किल है । मिलजुल कर बहुत बातचीत होने लगी तो एक दूसरे
पर विश्वास होना कठिन है । विश्वास होने पर अपने मन माफिक रति मिलना
मुश्किल है । और सम्यक् रति प्राप्त होने पर भी वैश्या प्रेम करे या न करे ।

३४—राजा के सामने, विद्वानोंकी सभामें, युक्तियोंके साथ प्रथम सगम में,
हृदय भय से घमरा जाता है और तेज बातचीत की शक्ति भी गडबडा जाती है ।

३१ (१) निष्ठोचितत्व = श्रद्धाभक्ति, शुद्ध प्रेम ।

३२ (४) अनियोग = काम में न लगाना या क्रिकर के साथ प्रवृत्त होना ।

३३ (अ) कथा श्लेषयितुं = बात मिलाना ।

(१) किं ब्रवीषि—“येन कारणेन निर्गुणास्वपि दर्शनमात्रकेणैव स्नेहो भवति ।
(२) तासु च व्यलीकमुत्पादयन्तीषु किं प्रतिपत्तव्यम्” इति । (३) प्रत्यक्षे हेतुवचन
निरर्थकम् । (४) अस्त्येतन्महदवकाशमनङ्गस्य (५) यासु तु निर्गुणास्वपि रज्यन्ते
मनुष्यास्तासु व्यलीकमुत्पादयन्त्य शीघ्रमेव परित्याज्या । (६) कुत —

- ३५— (अ) प्रियविरहे यद् दुःख
(आ) सत्यं तदभवति सच्चयुक्तस्य ।
(इ) प्रियजननिमानिताना
(ई) न रोहति परिक्षित हृदयम् ॥

किमाह भगवान्—“यस्तु नार्या प्रियो भवति तस्य सा नातिबहुमान्या प्रिया भवति
(२) साऽपि किं परित्याज्या” इति । (३) न न न । (४) अन्यास्वपि कामिनीष्व-
यति रक्षता स्वयं दाक्षिण्यमदूपयता तस्यामपि तस्मिन्स्मिन् काले रक्तम् विवेष्टितव्यम् ।
(५) कुत —

- ३६— (अ) ये कामिनीं गुणवतीं च सयावना च
(आ) नारी नरा प्रणयिनीं च निमानयन्ति ।
(इ) ते भो वृषीश्वरपच परिदग्धचित्तै-
(ई) गोमि सम पृथुमुनेषु हलेषु योज्या ॥

क्या कहता है—“किस कारण गुण रहित में भी देखने से ही स्नेह हो जाता है । शक्षी स्त्री के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?” प्रत्यक्ष में कारण की बहस करना निरर्थक है । यह काम के क्षेत्र में बड़ी गुजायश है कि निर्गुण होने पर भी जिनमें प्रेम जिया जाय उनमें से जो अलसेट करनेवाली हों उन्हें पौरन छोड़ दिया जा सकता है । क्यों—

३५—प्रिय विरह का जो दुःख है वह सात्त्विक प्रियतमका तो सह लिया जाता है । पर प्रियजन जिनका अनादर कर दें उनका टूटा दिल फिर नहीं जुड़ता ।

तूने क्या कहा—“स्त्री पुरुष को चाहती हो, पर वह उस स्त्री की बहुत परमाट न करता हो, तो क्या ऐसी स्त्री को छोड़ देना चाहिए ?” ना, ना, ना, दूसरी स्त्रियों में प्रेम की रक्षा करते हुए और अपने दाक्षिण्यमें सम्भारते हुए, उसके प्रति भी कभी कभी प्रेम भाव दिखलाना चाहिए । कैसे—

३६—जो मनुष्य गुणवती, यौवनवती और प्रणयिनी स्त्री का अनादर करते हैं, उन्हें किसानों की गालियों से जले बैलों की तरह भारी फालो वाले हलों में जोत देना चाहिए ।

(१) (परिक्रम्य) (२) किं वरीपि—“यस्तु वृतापराधस्तेन कथं कामिनी समनुनेया” इति । (३) स्थाने सल्लु संशयः । (४) प्रणयिनीनां हि कोपो विषमज्वर इव दुश्चिकित्सः । (५) तथाप्यनश्यमस्याः कोपप्रत्यावर्तकेन भवितव्यम् । (६) साम्प्रत-
कालिकाश्च कामारकाः पादपतनमेवात्रोपधं पश्यन्ति । (७) तन्मया नातिबहुमन्यते ।
(८) यदा च वृद्धश्रोत्रियाणामपि तत्तान् कठिनकृण्णितवृद्धकर्कटादृतयः पादुकाकिण्-
कर्कशाः पुराणवृताभ्यङ्गदुर्गन्धाः पादा गृह्यन्ते, (९) कोऽनाभिमानः पल्लवसुकुमारैषु
कामिनीनां पादेषु । (१०) अपि च तत्तु दोषम् ।

(११) कुतः—

३७— पादग्रहणेऽनश्य बाष्पः सजायते प्रणयिनाम् ।

अथ विमोक्षे दैन्यं दैन्योत्पत्तौ कुतः कामः ॥

(१) अन्ये तु भुजते—“शपथकरणैरनुनेया” इति । (२) तदप्यश्लिष्टम् ।
(३) कुलान्धोऽपि तावत् कामुकानां शपथं न श्रद्दधति, किं पुनरेश्या (४) या वा
श्रद्दध्यात् तथा किमनुनेतव्यया भवितव्यम् । (५) उक्तं च—

३८— (अ) ग्रामे वासः श्रोत्रिय—

(आ) कथं परतन्त्रता वृण्वामाः ।

(इ) आर्जयुता च नारी

(ई) पुसा मदनान्तकारिणः केचित् ॥

(धूमकर) क्या कहता है—“जिसने स्त्री के साथ सचमुच कमूर किया हो वह उसे कैसे मनावे ?” इस विषय में सन्देह ठीक ही है । विषम ज्वर की तरह प्रणयिनियों के कोप का डलाज मुश्किल है । फिर भी उसका गुम्सा हटाना चाहिए । आजकल के छोकरे पैर पडना उसकी दवा मानते हैं । पर मैं इसे बहुत अच्छा नहीं समझता । वैसे तो जब नठोर सिकुड़े हुए पुराने कैंकरे की आकृति वाले, खडाऊँ के घट्टे से कड़े, और पुराने घी की मालिश से गधाते हुए वृद्ध श्रोत्रियों के पैर भी छुए जाते हैं, तो पल्लवों की तरह सुकुमार कामिनियों के पैर पडने में देखी क्या ? पर ऐसा करने में भी दोष है ।

३७—पैर पकड़ने से अब वहेगे, प्रेमिकाओं के आँसू बहाने पर दैन्य उत्पन्न होगा, और दैन्य उत्पन्न होने पर काम कहाँ ?

दूसरे कहते हैं—“कमम दिलाकर मनाना चाहिए ।” इसमें भी मेल नहीं होता । कुल्लवुएँ भी कामियों में शपथ नहीं मानतीं फिर वेश्याओं की बात ही क्या ? अगर विश्वास कर ले तो उनके मनाने की ही क्या जरूरत ? कहा भी है—

३८—गाँव का रहना, श्रोत्रिय का उपदेश, परतन्त्रता, कजूसी, भोली-भाली नारी, ये सब पुरुष के काम का अन्त कर देते हैं ।

३९ (६) कामारकाः = छोकरे, लँटे । इसका पाठान्तर ‘कामुका’ भी है ।

(१) केचिद् वृषते—“येन केनचिदुपायेन हासयितव्या । (२) हासान्तरित-
धैर्याऽभिज्ञानगाधेन नदी सुतागगाहा भवति” इति । (३) अत्र वृमः । (४) यद्यप्य
स्येतत् तथापि कोपफल नावास्य भवति । (५) कुतः—

३३— (अ) उत्कृष्ट्यालम्बनीपत् प्रतनुनिनसने नर्तयित्वाऽधरोष्ठ
(आ) तत्कालश्रोत्रम्य परुपमपरुपरक्षरः श्रावयित्वा ।
(इ) यत्कोपाद् वामपाद नवनलिननिग निक्षिप्त्युत्तमाङ्गे
(ई) तच्छृङ्गलाप्य यौनार्थं रतिकलहफल प्राप्तकामा वदन्ति ॥

(१) तस्माद् हास्यप्रयोगेणापि मानयितव्यः श्रीकोप । (२) एवमस्तु ।
(३) निमृश्यमानेषु स्त्रीणां कोपप्रसादनोपायेषु सद्यो दृष्टकलत्वादवमृद्य चुम्बनमैवास्माकं
पक्षः । (४) कुतः—

४०— (अ) केशोपूकटधूपनाससुरमिप्यासज्य वामं कर
(आ) हस्तौ द्वापपि दक्षिणेन सहितौ सगृह्य नात्यायतम् ।
(इ) यो हर्षः पित्तो बलात् पियतमावस्त्रेन्दुमुत्पद्यते
(ई) तेनाप्यायितमन्यथो हि पुरुषो जीर्णोऽपि न क्षीयते ॥

(१) किं वयिपि—“यस्तु प्रमाददोषात्प्रियायाः समक्षमेव गोत्र स्तनयति तत्र
भावः किं प्रतीकारं पश्यति” इति । भोः अन्वसौगोत्रग्रहणं हि महानुपपन्नः कामुकानाम्

कोई कहते हैं—“उसे किसी भी उपाय से हँसा देना चाहिए । हँसी से
उसके धैर्य की थाह लग जाने पर नदी की तरह बह सुखपूर्वक पार की जा
सकेगी ।” इस पर मेरा कहना है कि यदि ऐसा हो भी, तो भी प्रिया के रूठ कर
मान करने का मजा नहीं मिलता । कैसे—

३९—लटकते हुए महीन वस्त्र को जरा खींचकर, अधरोष्ठ को नचा कर, उस
कालमें अच्छी लगनेवाली और कड़वी बातें मधुर ढंग से सुनाकर, नव पद्मों की तरह
कोमल धारों पैर को जब प्रियतमा सिर पर लगाती है, तो चमकड़ लोग उसे रतिकरुह
का फल और जयानी का मजेदार अर्घ्य मानते हैं ।

इसलिए हँसी मजाक के प्रयोग से भी स्त्री का कोप हटाना चाहिए । बहुत
ठीक । स्त्रियों के क्रोध हटाने के उपाय सोचने पर मुझे लगता है कि जयर्दस्ती लिया
हुआ चुम्बन तुरन्त फल देने वाला है । कैसे—

४०—बाएँ हाथ से उत्कट धूप गन्ध से सुगन्धित वाले को पकड़ कर,
उसके दोनों हाथ अपने दाहिने हाथ में कुछ देर रख कर प्रिया का चन्द्रमुख पीने से
जो हर्ष उत्पन्न होता है उससे तृप्त कामी पुरुष बूढ़ी आयु होने पर भी नहीं छोड़ता ।

क्या कहता है—“जो प्रमाद दोष से प्रिया के सामने ही भूल से दूसरी का
नाम ले लेता है, उसका आप क्या इलज बताते हैं ।” कामियों के लिए दूसरी स्त्री

४० (आ) नात्यायतम् = बहुत रम्ये समय तक नहीं, कुछ देर तक ही ।

(३) आशीविषदष्टस्येनास्य दुःखा प्रतिक्रिया कर्तुम् । (४) मुहूर्तं नाम ध्यान प्रवे-
द्यामः । (५) (ध्यात्वा) (६) आ । दृष्टम्—

४१— (अ) घाटर्चात् सर्वापहारः परिशुभमथवा अस्तान्निष्क्रियत्वं
(आ) नार्या वान्यप्रशसा त्वरिततरमयो हास्यपक्षक्रिया वा ।
(इ) अन्यस्मिन् वा प्रयोगो वचसि यदि भवेत्तस्य चान्येन योगो
(ई) नानागोत्रग्रहो वा भवति हि शरणं गोत्रवाक्यक्षतस्य ॥

(?) किं वरीपि—“नरदशननिपाताः केन कारणेन सनेदना अपि प्रीति
मुत्पादयन्ति” इति । ह ह ह । अतिपुष्पमभिहितम् । (३) पश्यतु भगन्—नरदशन
निपाताः सनेदना अपि प्रीतिमदभ्या सुरमुत्पादयन्ति । (४) कुतः—

४२— (अ) यथा प्रतोदोऽचहितं करोति
(आ) जवे हय सारथिसम्प्रयुक्तः ।
(इ) तथा रत्नी दन्तनसाम्पातः
(ई) स्पर्शकतान हृदयं करोति ॥

(?) (परिक्रम्य) (२) किं वरीपि—“कथं वेश्या विरक्ता रक्तेन चेष्टमाना
विज्ञेया” इति । (३) अथ भो । कोऽन संशयः । (४) एष एवोपदेशः—अनुरक्ताया
रागो भावितव्यः । (५) यथा चोपदिष्टम् । (६) पश्यतु भगन् । (७) आकार

का नाम ले लेना बड़ी आफत है । सर्प काटने के इलाज की तरह इसका इलाज
मुश्किल है । एक क्षण के लिये मुझे ध्यान करने दे । (सोचकर) ठीक, मैंने
जान लिया—

४१—ठिठ्ठाई से सारी बात को एक दम सफेद झूठ के साथ मुकुर जाना,
या डरे हुए की तरह सब हो जाना, या खी की बड़ाई के पुल बाँध देना, या हँसी
ठिठोली में उतार ले जाना, या किसी दूसरी तरफ बात का रुख फेर देना और :
उममे से फिर दूसरी बात निकाल देना, या एक नाम के साथ अनेक नाम ले लेना—
ये नाम ले लेने की बीमारी के इलाज है ।

क्या कहता हूँ—नखक्षत और दन्तक्षत किस कारण से पीडा देते हुए भी
मजा देते हैं ।” हा, हा, हा, तूने बड़ी भोली बात कही । तू देख, नखक्षत और
दन्तक्षत पीडा पहुँचाने वाले होकर भी प्रेमियों में सुख पैदा करते हैं । कैसे—

४२—जैसे सारथि से चाबुक द्वारा चलाने पर घोड़े में तेजी आती है उसी
तरह रति में दन्तक्षत और नखक्षत हृदय को एकरस बनाते हैं ।

(घूमकर) क्या कहता है—वेश्या विरक्त है या अनुरक्त, उसकी चेष्टा से
कैसे पता चले ?” अरे, इसमें अक भी क्या बात ? इस विषय में यह उपदेश है ।

४१ (अ) सर्वापहार = एकदम सारी बात से इन्कार कर जाना ।

४१ (अ) परिशुभम् = एकदम सफेद झूठ या बेईमानी के साथ ।

संवरणं हि महात्मानो न शक्नुवन्ति कर्तुम् ; (८) कि पुनरकठिनहृदयाः स्वल्पावगताः स्त्रियः । (९) कुनः—(१०) आकार एतदेक्षितव्यः । (११) कि मयीपि—“कथम्” इति ।

४३—

(अ) व्यर्थ प्रस्रवते वदत्यकथिते सानेगमुत्तिष्ठति

(आ) प्रोक्तं न प्रतिबुद्ध्यते न कुरुते स्त्रीलोचिता वामताम् ।

(इ) गाढं प्रत्युपगूह्य मुञ्चति मुहुः सिन्ना नियुक्ते रती

(ई) रागान्ते निपुणाऽपि वच्यकुसुमा ज्ञेया लतेगद्गना ॥

(१) कि मयीपि—“विरागं समुत्पन्नं कथं चिकित्सितुं शक्यं उताहो अप्रतीकार एवैव भावा” इति । (२) गृणोतु भवान्—रागोत्पत्तिः रालु द्विविधैव भवति कारणाद-कारणाद् वा । (३) तत्र कारणोत्पन्नस्य रागस्य कारणादेव विरागो भवति । (४) एवमकारणोत्पन्नस्याकारणादेव । (५) एवं रागविरागयोर्वैषम्ये किमिव शक्या प्रतिक्रिया कर्तुम् । (६) मन्दीभूते तु रागे या प्रतिक्रिया तां वक्ष्यामः—

४४—

(अ) अन्यस्त्रीसेवनं या रतिविकृतिरथो धीरता विग्रहो वा

(आ) क्षान्तिः काले सहास्या वचननिपुणता बन्धुपूजा स्तुतिषां ।

अनुरक्त स्त्री में प्रेम भोपा जा सकता है । जैसा कहा गया है । तू देख, महात्मा भी अपना आकार छिपा नहीं सकते ; फिर कोमल हृदय वाली नासमझ स्त्रियों की तो बात ही क्या है ? उनके आकार की ओर गौर करना चाहिए । क्या कहता है—“कैसे” ।

४३—व्यर्थ में ठठाकर हँसती है, बिना बात के बोलती है, वेग से उठ जाती है, कहने पर नहीं समझती, स्त्रियोचित टेढ़ापन नहीं दिखाती, गाढ़ालिंगन फरके झट से छोड़ देती है, पुरुष के रति में नियुक्त होने पर खिन्नता दिखलाती है, ऐसी स्त्री राग के अन्त में चाहे जितनी चतुराई प्रकट करे, पर वह उस बोझ लता की तरह है जिसमें फूल आते हैं पर फल नहीं लगते ।

क्या कहता है—“विराग उत्पन्न हो जाय, तो क्या उसका उपाय संभव है, या उसका प्रतीकार हो ही नहीं सकता ?” मुन । प्रेम दो तरह से पैदा होता है सकारण और अकारण । कारण से उत्पन्न प्रेम कारण से ही विराग में परिणत होता है, और बिना कारण होने वाला प्रेम बिना कारण ही विराग में बदल सकता है । यों राग-विराग की कठिनाई में क्या इलाज करना चाहिए ? प्रेम कम हो जाने पर जो इलाज उचित है, उसे कहता हूँ—

४४—अन्य स्त्री का सेवन, किसी वजह से रति का गड़बड़ा जाना, धीरता (काम में अप्रवृत्ति) या लड़ाई, रति के समय टाल मटोल, साथ बैठक, बातों में

४२ (८) स्वल्पावगताः = थोड़ी समझ वाली ।

४४ (अ) रतिविकृति = रति का बिगड़ जाना, किसी कारणवश संभव न हो पाना ।

४४ (आ) सहास्या = सह + आस्था = साथ बैठक । इसके लिये महाभारत में

(३) वेश्याव्याजप्रवास पुरस्सरगमन साहसोपक्रमो वा
(४) दान वा कामिनीना परिचयशिथिल रागमुदीपयति ॥

(१) अपि च, शृणोतु भवान्—

४१— (अ) बाला बालत्वाद् द्रव्यलुब्धा प्रदाने
(आ) प्राज्ञा प्राज्ञत्वात् क्रोपना सान्त्वनाभि ।
(इ) स्तब्धा सेनागिर्दक्षिणा दक्षिणत्वात्
(ई) नारी ससेव्या या यथा सा तथैव ॥

(१) परिक्रम्य (२) किं वधीषि—

४६— (अ) “दर्शयति कामलिङ्ग
(आ) न बदत्यलमिति न गच्छति समीपम् ।
(इ) या न्ना निहरति काल
(ई) सा कर्तव्या न न वश्या ॥” इति ।

(१) साध्यभिहितमेतत् । (२) प्रथम तानत् कामिना चैव श्रीस्वभान ।
(३) एष एव श्रीस्वभान स्यात् । (४) कितु यावज्जीवितमपि शयिता निरुपाय न
शान्त्या वशमुपनतुम् । (५) यत्तु लोणा रहस्य तदिदमुद्घातते ।

निपुणता, उमके बन्धुआ की पूजा या स्तुति, वेश्या के उठाने से प्रवास, बड़े शहर में
जाना, जान जोसिम का काम (साहस), और दान, इतनी बातें मंत्रियों के शिथिल
राग को उभाड़ देती है ।

और भी सुन—

४२—बाला बालपन से, रुपये की लोभी दान से, चतुर चतुराई से, क्रोधी
सान्त्वना से, गन्धर मरी सेना से, अनुकूल अनुकूलता से वगैरे आती है । जैसी स्त्री
हो उसके साथ वैसा ही बरतना चाहिए ।

(घूमकर) क्या कहता है—

४६—“जो एक ओर तो काम बिह्व दिग्गजती है, पर बात नहीं करती,
और ‘बम यम’ करके पाम नहीं आती, ठीक समय पर सफ़ा जाती है, उसे धैर्य
वश म करना चाहिए ?”

तू ने ठीक कहा । पहले कामी को स्त्री का स्वभाव जानना चाहिए । हो
सकता है ऐसा ही कुछ स्त्री का स्वभाव हो । लेकिन जो गरजाली है वह निन्दगी भर
भी जिना तरसीन वगैरे नहीं आ सकती । स्त्रियाँ का तो रहस्य है उमरा उद्घाटन
करता हूँ ।

समाख्या (सम + भाषा) शब्द भाषाया है । आम उपदेशने धातु म ‘भाषा’ (=
बैठक) बनता है ।

- ४७— (अ) शून्ये वा सम्प्रगर्धे द्विरद इव लतां यो हरत्याशु नारी
 (आ) मत्ता वा यो विदिस्वा ह्यभिभवति शनै रञ्जयन् वाक्यलेखीः ।
 (इ) अन्यं कृतोपधिं वा छलयति कुरुते भावसंगूहनं वा
 (ई) तस्यैतच्चेष्टितं भो न भवति विफलं वामशीला हि नार्यः ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं ब्रवीषि—

- ४८— (अ) “गते तु कोपे प्रथमे समागमे
 (आ) प्रवासकाले पुनरागमे तथा ।
 (इ) यदन्ति चत्वारि रतानि कामुकाः
 (ई) ततो मवान् किञ्चन्यधिकं व्यवस्यति” ॥ इति ।

(१) अत्र धूमः—यत्तावत्प्रथमसमागमे रतं तदप्यलब्धवित्तम्भायां कामिन्याम-
 ज्ञातगाधमिव सरः शङ्कावगाहं भवति । (२) यदपि प्रवासकाले रतं तदपि तच्छ्रोकामि-
 भूतत्वान्मन्दरागायाः साक्षाविलाक्षमुपोल्लमानहृदयोद्वेगक(का)रणं रम्यं (अरम्यं)
 करुणं ग्रहोपसृष्टं चन्द्रमण्डलमिव न सां प्रीणयति । (३) यदपि प्रवासादागते रतं
 तदप्यकृतप्रतिकर्मतया प्रियया प्रीडितयान्वयजितं दुर्दिनगान्धर्वमिव मन्दरागं भवति ।

४७—हाथी जैसे लता को मलता है उसी तरह स्त्री को एकान्त में पाकर
 जो उसे ले जाता है, अथवा जो उसे मतवाली जानकर मीठी बातों से उस पर हावी
 हो जाता है, अथवा दूसरा आल-जाल फैलाकर जो उसे छल लेता है; अथवा अपने
 मन की बातें जो छिपा लेता है, उसकी ये चेष्टाएँ विफल नहीं होतीं, क्योंकि स्त्रियाँ
 औधी चाल की होती हैं ।

(धूमकर) क्या कहता है—

४८—क्रोध चले जाने पर, पहली भेंट में, प्रवास पर जाते समय, फिर
 लौटने पर, ऐसे चार सुरत कामुक कहते हैं । आप इनमें से किसे सबसे अधिक
 महत्त्व देते हैं ?

मेरा कहना है कि प्रथम समागम की रति स्त्री के विश्वास की थाह पाएबिना
 अगाध तालाब की तरह खतरे से भरी है ; प्रवास काल के समय का संग भी सुख
 नहीं भाता क्योंकि तब शोक से अभिभूत कामिनी का राग कम हो जाता है, आँखों
 में आँसू भर आने और हृदय उद्वेग से भरा होने के कारण सुरत बेमज्ञा और
 करुण रहता है, मानों चन्द्रमा को ग्रहण लगा हो । जो प्रवास से लौटने के बाद
 की रति है वह प्रिया के शृंगार विहीन होने और लज्जा के कारण कुछ कम राग

४८ (३) प्रतिकर्म = शृङ्गार, सजावट ।

४८ (३) प्रीडितयान्वयजितं—प्रीडा या संकोच के कारण जो मली प्रकार प्रकट
 नहीं किया गया । इसका पदच्छेद प्रीडितया + अन्वयजितं करना ठीक होगा ।

४८ (३) दुर्दिनगान्धर्व—दुष्टिवाले दिन किया हुआ संगीत का उत्पन्न ।

(४) यत्पुन कोपापगमादागत तत् सुरासुराविद्वन्मन्दरपीडिते सर्वोपधिप्रक्षेपाप्यायितनीये भगवति सलिलनिधौ यदुत्पन्नममृतसन्नक किमपि श्रूयते आयुर्नयोऽनस्थापन रसायन तदप्यतिवर्तते । (५) कुत —

- ४६— (अ) कोपापगमे नार्था—
 (आ) स्तमेव हृदयेन भावमजहन्त्या ।
 (इ) सुरतमतिरभसमनिमृत—
 (ई) कररुहदशनपदजर्जर भवति ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं नरीपि—“वेश्यावञ्चित पुरूप परिहसति धूर्ता ।
 (३) कथं वेश्यावञ्चनं न प्राप्नुयात् कामुक ” इति । (४) भो वेश्या लिपिकारश्च
 छिद्रप्रहारित्वात्तुल्यमुभयम् । (५) तत्र लिपिकारोऽप्यास्ते हस्तगतकल्प इत्या मुहूर्त
 मनस्थानं प्रापयति । (६) वेश्या पुनर्गतारोग इवात्यर्थव्ययमुत्पादयति । (७) यदि
 मच्चरितानुगामी भवेत् तेन वेश प्रोष्टव्य । (८) मया हि—

प्रकृत करने के कारण उससे म महफिल की तरह होती है । वह सुरत जो मान
 गनावन के बाद होता है, वह देवता और असुरों द्वारा घुमाई हुई मन्दराचल की
 मथानी से क्षुभित और अनेक ओपधियों का रस मिल जाने से ओनहरी भगवान्
 समुद्र के भीतर से निकले हुए अमृत नामक रसायन से भी बढ़कर होता है और
 आयुष्य एवं शक्ति को स्थिर करता है ।

४९—शोध चले जाने पर भी उसी भाव को हृदय से न छोड़ने वाली स्त्री के
 साथ का सुरत शीघ्रता से मिट्टि हुए नखक्षत और दन्तक्षत से अति प्रचण्ड होता है ।

(धूमकर) क्या कहता है—“वेश्याओं से उगे गए व्यक्ति पर धूर्त हँसते
 हैं । कामुक कैसे वेश्या द्वारा उगे जाने से बचे ?” अरे वेश्या और लिपिकर्ता दोनों
 छिद्र देखकर प्रहार करने में एक समान हैं । उनमें लिपिकार भी वेश्या की तरह ही
 मुट्ठी गरम करके रहता है पर कुछ देर आराम से बैठने देता है । पर वेश्या चात रोग
 की तरह बहुत खर्च करा देती है और चैन से भी नहीं बैठने देती । जो हमारे ऐसी
 चाल चलनेवाला हा उसे ही वेश म पैर रखना चाहिए । मैंने—

४६ (४) लिपिकार = लिपिकर्ता लेखक, सरकारी दफ्तरों में काम करनेवाले भ्रमले
 का भोर सकेत है जो कागज पत्तर में कुछ का कुछ लिख देते हैं ।

४६ (४) छिद्रप्रहारित्वा—छिद्र = (लिपिकपत्र में) मामले का कमचोरा वरथा
 पक्ष में) भाचार दोष ।

४६ (५) लिपिकारोऽप्यास्ते हस्तगतकल्प—‘अपि’ शब्द का व्युत्पत्ति है कि
 वेश्या की भाँति लेखक भी माल हाथ में करके हा बैठता है । हस्तगतकल्प—यहाँ कल्प शब्द
 का अर्थ पूँजा, माल, रक्खा जैसा, पुडिया होना चाहिए । कोश में यह अर्थ नहीं है ।

५०—

(अ) विस्रम्भो गतयोवनासु न कृतो वालाः परीक्ष्य स्थितं

(आ) दूरादेव समावृत्ताः परिहृता नद्यः ससत्त्वा इव ।

(इ) मन्युर्नास्ति विमानितस्य न पुनः सम्प्रार्थितस्यादरो

(ई) वेशे चास्मि जरागतो न च कृतः स्वल्पोऽपि मिथ्याव्ययः ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं ब्रवीषि—“नायोर्युगपदागमे का प्रतिपत्तव्या का परित्याज्या कालवधितप्रणयिनी उताहो नवप्रणयिनी ? (३) एनं प्रश्नं वदतु भावः” इति । (४) कष्टः सत्सम्ये प्रश्नः । (५) दुर्वचो मा प्रतिभाति । (६) किमत्र भवान् पश्यति ? (७) किमाह भवान्—“न किञ्चिदप्यत्र पश्यामि । (८) महत्स्वेतत् संकटम् । (९) भाव एव वक्तुमर्हति” इति । (१०) तेन श्रूयताम्—

५१—

(अ) रूढस्नेहान्न युक्तं नवयुनितकृते स्वा प्रिया विप्रमोक्तुं

(आ) तत्प्रीत्यर्थं न हेया स्वयमभिपतिता कामिनी जातकामा ।

(इ) तत्रोपेक्षैव कार्या व्रजति परिचिता यावदुद्भूतकोपा

(ई) शून्ये प्राप्य द्वितीयामथ तदनुमते सम्प्रसादा प्रियैव ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं ब्रवीषि—“वेशे सञ्चरता दर्शनमात्रकैरैव कथं शक्यं ज्ञातुं लीला रहोनैपुणम्” इति । (३) नास्ति किञ्चिन्निपुणस्याज्ञेयम् । (४) त्रियं खलु दृष्ट्वा पुरुषैरैव दृष्टिरैव प्रथमं परीक्ष्या भवति । (५) चक्षुषि हि सर्वे भावा नियताः । (६) पश्यतु भवान्—

५०—जिनका यौवन दल चुका है उनमें मैंने विश्वास नहीं किया । वालाओं की खूब परख करके फिर उनके साथ रहा । खालाओं के अधीन रहने वाली वेश्याओं से दूर से ही अलग रहा जैसे मगर मच्छों से भरी नदी से । अपमानित होने पर मुझे क्रोध नहीं आया और न प्रार्थना किए जाने पर आदर का ही बोध हुआ । वेश में ही मैं बुझा हुआ, पर जरा सी भी फिजूल खर्ची नहीं की ।

(घूमकर) क्या कहता है—“किसी की दो प्रेमिकाएँ हों और दोनों आ जाएँ तो किसे समादर देना चाहिए, किसे छोड़ना चाहिए । पुरानी प्रेमिका को या नई को ? आप इस प्रश्न का उत्तर नज़िए ।” और, यह सवाल टेढ़ा है । इसका जवाब मुश्किल लगता है । तेरी क्या राय है ? तूने क्या कहा—“मैं कुछ भी नहीं समझता, बड़ा पेचीदा सवाल है । आप ही जवाब दें ।” तो सुन—

५१—नव युवती के लिये अधिक प्रेमवश होकर अपनी पहली प्रिया को छोड़ना उचित नहीं । उसकी प्रसन्नता के लिये स्वयं आई हुई सफ़ाया नई कामिनी को छोड़ना भी नहीं चाहिए । उपेक्षा करने से जब बोधित होकर पुरानी चल दे तो अनेक में दूसरी को पाकर उमकी राय से पहली को मनाना चाहिए ।

(घूमकर) क्या कहता है—“वैय में घूमते हुए केवल देखने से ही नियों की काम-भाव में निपुणता कैसे भोंपी जा सकती है ?” चतुर के लिये कुछ अन-जाना नहीं रहता है । पुरुष मी को देखते ही उमकी निगाह को पहले भोंप ले, क्योंकि ओंख में ही सब भाव भरे रहते हैं । तू देख—

५२—

(अ) सकेकरा मन्दनिमेषयुक्ता

(आ) तिर्यग्गता स्नेहवती विशाला ।

(इ) दैन्येन हीना चलतारका च

(ई) स्त्रीणां रहोनैपुणमाह दृष्टिः ॥

(१) अपि च, यस्याश्चाभुग्नमीपत्प्रतनुकपोलं भ्रूसञ्चारि तिर्यक्कटाक्षमाननं तस्या रतिकार्कश्यं, (२) यस्यावाश्यानमूलोऽधरः सदन्तनखपदं शरीरं मविरलहसितं च मुखं तस्या निर्विशङ्कमेव रतिशौण्डीर्यमवगन्तव्यम् । (३) या वा भवान् पश्यति कटिप्रदेशविन्यस्तवामहस्तां प्रलम्बदक्षिणकरामेकापाश्विन्नतजघनां तस्यामप्यास्था कार्या । (४) नहोवमगर्हिता तिष्ठति । (५) याञ्च निवसनान्तावृत्तैकपयोधरां स्वयहृदेहली-

५२—औखें ऐंची करना, हल्की पलक मारना, तिरछे देखना, चितवन में राग भरना, नेत्र फैलाकर देखना, देखने में प्रगल्भता होना, दृष्टि में पुतली की चंचलता होना—इतने प्रकार की दृष्टि सूचित करती है कि स्त्री कामभाव में निपुण है ।

जिसका कपोल कुछ घुमाया हुआ और पतला हो, भौहें चंचल हों, तिरछी चितवन हो, ऐसे मुखवाली की रति कठिन होती है । जिसके अधर के कोने सिकुड़े हुए हों, जिसका शरीर नख और दन्तक्षतों से भरा हो, जो धीमे-धीमे हँसती हो, उसके साथ निबड़क रति जाननी चाहिए । जिसका बायाँ हाथ कटि पर रक्खा हो और दाहिना बराबर में लताहस्त मुद्रा में लटकता हो और जिसका जघन भाग एक ओर को खींचकर ऊपर उभार लिया गया हो, ऐसी स्त्री पर भी तुझे भरोसा करना चाहिए । पर ऐसी स्त्री बिना गल्लर की नहीं होती । जो अंचल के छोर से एक स्तन ढक कर,

५२ (अ) सकेकरा = वह दृष्टि जिसमें औख का कोना एक ओर को खींच लिया जाय, ऐंची हुई औख ।

५२ (आ) मन्दनिमेष—पलकें टिमटिमाना ।

५२ (आ) तिर्यग्गता—अपाङ्ग दृष्टि ।

५२ (आ) विशाला—नेत्रों को पूरा फैलाकर देखना ।

५२ (इ) दैन्यहीना = प्रगल्भता युक्त दृष्टि ।

५२ (ई) रहोनैपुण = काम चातुरी । रहः = कामभाव, राग । नैपुण = विदग्धता, चातुरी ।

५२ (१) अवाश्यानमूलः अधरः—अधर के कोने खींचकर सिकुड़े हुए हों । अवारयान = सिकुड़ा हुआ । अंग्रेजी में होठ की इस मुद्रा को 'पाउटिंग' कहते हैं । अवाश्यान ही शुद्ध पाउट है ।

५२ (२) कटिप्रदेशविन्यस्तवामहस्ता—बायाँ हाथ कट्यबलस्थित मुद्रा में, दाहिना लताहस्त मुद्रा में, और एक ओर का जघन भाग ऊपर खींचा हुआ हो, तो इसे शालभंजिका मुद्रा या चित्रलिम्बित मुद्रा कहते थे ।

विलम्बेकरुचिरचरणा द्वारपाश्चात्तरुद्धशरीरां पश्यति स खलु स्त्रीमयः पाशः । (६) चारुलीलात्वमेवास्याः सर्वं कथयति । (७) या वा कवाटगोस्तनकतटमालम्ब्य प्रकटीकृतबाहुपाशा शिथिलीकृतनीवीबन्धना सन्दर्शितनाभिहृदा दृश्यते (८) तस्यामाकृतिरतिपूर्वैरङ्गायामनुमेयं न विद्यते । (९) शक्यमत्र बहुपि वक्तुम् । (१०) संक्षेपस्तु ब्रूयताम्—

५२—

(अ) यस्यास्ताम्रतलाङ्गलिः शुचिनखो गण्डान्तसेवी करो

(आ) वाणी साभिनया गतिः सललिता प्रसन्दितोष्ठं स्मितम् ।

(इ) लोलादृष्टिरशङ्कितं मुखमधो नाभेश्च नीवीक्रिया

(ई) तां विद्याच्चरबायुरां रतिरणो माताग्र्यशौर्या स्त्रियम् ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं ब्रवीषि—“द्विविधमेव स्त्रीणां कामितं भवति प्रकाशं मच्छन्नं च । (३) तयोः कतरद् व्यतिरिच्यते” इति । (४) गोः यत्प्रकाशं तद्वैश्वधूप्वेयोपपद्यते । (५) कृतकमपि चेत्तद्भवति । (६) यत्किं प्रच्छन्नं तत्कुलवधूपु वैश्वधूपु च । (७) तत्केवलमनुरागादुत्पद्यते विशेषतश्चैतदल्पदोषत्वाद् वैश्यावधूप्वेव रम्यं भवति ।

अपने घर की देहली पर एक पैर अदा से रखकर द्वार के पार्श्व भाग में शरीर छिपा कर देखती हो, वह स्त्री नहीं पूरा फन्दा है । उसके नखरों से ही उसका हाल प्रकट होता है । जो किवाड़ की ऊपरी बिलैया (गोस्तन) का किनारा पकड़ कर अपनी दोनों भुजाओं को अंगड़ाई की मुद्रा में नीची बन्ध डीला करके नाभि प्रकट करती हुई खड़ी होती है, उसकी चेष्टा से ही रति का पूर्व रंग प्रकट हो जाता है, अनुमान के लिये कुछ शेष नहीं रहता । इस सम्बन्ध में बहुत कहा जा सकता है, पर मैं संक्षेप में कहता हूँ ।

५३—लाल हथेली और अंगुलियाँ, साफ नाखून, गाल पर रक्सा हुआ हाथ, हाथ मटका कर बाँते, सुन्दर चाल, फड़कते ओठोंवाली मुस्कान, चंचल चितवन, आश्रस्त मुख मुद्रा, नाभि के नीचे नीची बन्धन—ये लक्षण जिसमें हों उसे आदमी कँसाने का जाल या रति युद्ध में चोटी की दूरमा समझो ।

(घूमकर) क्या कहता है—“स्त्रियों का काम भाव दो तरह का होता है, प्रकट और छिपा । उनमें कौन बढ़कर है ?” अरे, जो प्रकट है वह वैश्वधुओं के ही योग्य होता है । वह बनावटी भी होता है । जो प्रच्छन्न है वह वैद्या और युल्यधू दोनों में होता है । जो केवल अनुराग से उत्पन्न होता है वह विशेषकर

५२ (५) द्वारपाश्चात्तरुद्धशरीरा—इमं पाठान्तरं द्वारपाश्चात्तरुद्धशरीरा भां ई, अर्थात् जिसके शरीर का कुछ भाग द्वार के बाहर निकला हुआ हो ।

५२ (७) कवाटगोस्तनः—किवाड़ों को बन्द करने के लिये कवाट के ऊपरी भाग में लगाई हुई लकड़ी की छोटी बिलैया ।

५२ (८) अनुमेयं—अनुमेयं भी पाठान्तर ई । अर्थात् ऐसी दोहरी चीजें हैं जिनमें कुछ अनुमेय ई, वह जो न बरे सोदा ई ।

(८) दुर्लभत्वादपि पुरुषाणां कुलवध्वस्तु यः ऋञ्चित् कामयन्ते । (९) वेश्याया तु न सर्वः काम्यते । (१०) स्यान्मत कस्यचित्—‘निदोषमदनत्वाद् वेश्यानां प्रच्छन्नकामितेन किं प्रयोजनम्’ इति । (११) अत्र ब्रूमः—पूर्वसस्तुतो राजनल्लभः वृत्तोपकारो भक्तिमान् नृशस इत्येते वेश्याजननीसेयकाः । (१२) एतेषामवश्यमकामयमानाऽपि वेश्याऽनुविधेया भवति । (१३) किं निमित्तं ? प्रयोजनार्थमिति । (१४) तस्माद् वेश्याया प्रच्छन्नमदना धिन्या यः काम्यते तेन जन्मजीवितयोः फलमवाप्तं भवति ।

(१५) किञ्चान्यत्, यत्तावद् निरहमासाद्य स्वयदूतीनां प्राञ्जलिपुरस्तराणि सवाप्यगद्गदानि वाक्यानि श्रूयन्ते ननु तान्येव तस्य पर्याप्तानि भवन्ति । (१६) या वा तद्धान्यपरा रोगन्यपदेशेन गता पाण्डुमान् चन्द्रोदये रोदिति (१७) प्रजागरामिताग्रनयना

अल्प दोष होने के कारण वेश्याओं में ही अच्छा लगता है । पुरुषों के दुर्लभ होने से कुलवधुर् जिस किमी को चाहने लगती है । लेकिन वेश्या तो सबको नहीं चाहती । कुछ का मत है ‘वेश्याओं को किमी के साथ रति करने से दोष नहीं लगता, अतएव उन्हें प्रच्छन्नकाम होने की क्या जरूरत है ?’ मैं कहता हूँ—पुरानी जान पहचान वाला, राजा का साला, जिसने कुछ पैसा दिया है, भक्त (रीझा हुआ) और खीसनिपौर व्यक्ति ये खालाओं (वेश्याजननी) की खुशामद में रहते हैं । वेश्या अगर इन्हें न भी चाहे तो भी वे इनके लिये साध्य होती हैं, अर्थात् अनिच्छा से भी वेश वधू को ऊपर कहे हुए व्यक्तियों के साथ प्रेम का दिखावा करना पड़ता है । क्यों ? मतलब के लिये । इसलिए प्रच्छन्न काम वाली वेश्या अगर सचमुच किमी को चाहती हो तो उस व्यक्ति को जन्म और जीवन का पूरा फल मिल जाता है ।

कुछ और भी,

जब वेश्या किसी के विरह में स्वयं दूती बनकर पहुँचती है और गद्गद वचन कहती है तो उस व्यक्ति के लिये यह क्या कुछ कम सौभाग्य है ? इसके अतिरिक्त उस स्थिति की कल्पना कीजिए जहाँ वेश्या प्रेमी के ध्यान में तल्लीन होने से रोगी बनकर पीली पड़ जाती है, चन्द्रोदय के समय उसके लिये आँसू बहाती

५३ (९) निदोषमदनत्वात्—वेश्याओं का कामभाव चाहे जिसके प्रति हो, उसे दोष नहीं ।

५३ (११) पूर्वसस्तुत = पहले जिसके साथ अच्छा सम्बन्ध रहा है ।

५३ (१२) वृत्तोपकार = जिसने पैसा दिया है, उसे अपना शरीर देने के लिये वेश्या को उसकी खाला मजबूर करता है ।

५३ (१३) भक्तिमान् = ऐसा व्यक्ति जो दूरदुराने पर भी वेश्या के घर का ध्वज मारता ही रहे, गिरदभमा (बनारसा बोला) ।

५३ (१४) अनृशस = वह जो दस्त निपौर कर खुशामद में पड़ा रहे । इतने लोग वेश्याजननी या खाला की खुशामद करने में लगे रहते हैं कि वेश्या तक उनकी पहुँच हो जाय ।

कामिनी शिथिलीकृतभूषणा (१८) 'दिष्ट्वा तदर्थमेव निर्धृणशरीरस्येयमवस्था, भद्रं तवास्तु' इति स्वयमुपालभमानायाः, (१९) कान्त, याचे त्वा दयस्व मे शरीरस्येति सीत्कारानुबद्धाक्षराणि श्रुण्वतः, (२०) 'तरस्व मा मेवं' इति दशनकररुहैविचोद्य रदमानायाः अहंमेवंविधा श्रद्धातु भवान् मया च शापित इत्येवं चोक्तानि रसायनप्रयोगातिवर्तकानि वचांसि चिन्तयतो (२१) मदर्थमेवेयमीदृशी संवृतेति कारणतो दूतीवचनाच्चोपलभ्य पुरुषस्य कारुण्यमिथा या भीतिरुत्पाद्यते (२२) तत्सदृशी यदन्यां वृथात् विटभावमिमं परित्यज्य श्रोत्रियैः समता गच्छेयम् । (२३) अपि च—

५४—

(अ) हस्तालग्नितमेलला मृदुपदन्यासावर्धुग्नोदरी

(आ) लब्ध्वाऽपि क्षणमागतां समदनां संकेतमेकां निशि ।

(इ) यो नारी स्थित एव चुम्बति मुखे भीतां चलाक्षी प्रिया

(ई) तस्येदं स्वमुजापपङ्कजमयं छत्रं मया धार्यते ॥

हे, रात-रात भर जागकर आँखें खल कर लेती है, उसके कारण काग से क्रुद्ध होकर अभूषण उतार कर रख देती है और इस प्रकार के उपालम्भ भरे वचन कहती रहती है—'हे निष्ठुर, तेरा भला हो, तेरे ही कारण मेरे शरीर की यह दशा हो गई है।' अथवा उस स्थिति की कल्पना कीजिए जिसमें पुरुष को इस प्रकार के सीरकार भरे वचन सुनने को मिलते हैं—'हे कान्त, तुझसे बस इतना-माँगती हूँ कि मेरे शरीर पर दया दिखा।' अथवा उस स्थिति की कल्पना कीजिए जब इससे भी आगे बढ़कर वेदया अपने प्रियतम का आलिंगन करके कभी तो कहती है—'हे नाथ, जल्दी करे', और कभी कहती है—'बस करो, ऐसा मत करो', और उभर-उभरकर दन्तक्षत और नखक्षत करती है, उस स्थिति में रसायन के प्रयोग को भी मात करने वाले इस प्रकार के वचन सुनने का सौभाग्य पुरुष को प्राप्त होता है—'हे प्रियतम, मैं तो तेरे लिये ऐसी हो गई हूँ, मेरी बात का विश्वास मान, तुझे मेरी सौगन्ध है।'—इस प्रकार के वचन दूती के मुख से सुनकर या प्रत्यक्ष कारणों से उसके हालचाल जानकर जब पुरुष सोचने लगता है कि सचमुच मेरे लिये इसकी ऐसी दशा हो गई है और तब उसके चित्त में करुणा से भरी हुई जो प्रसन्नता होती है, उसके सदृश अगर आनन्द की कोई दूसरी बात तू बता सके तो मैं अपनी गुंडई छोड़कर वेदपाठी प्राक्षिण बन जाऊँ। और भी,

५४—मेखला पर हाथ रखकर धीमी गति से चलती हुई पुतली कमर वाली, सक्रामा भयभीत और चंचलाक्षी प्रिया को रात्रि में संकेत के अनुसार क्षण भर के लिये अकेली पाकर जो खड़ी मुद्रा में चूमता है, उम बड़भागी के सिर पर मैं अपने हाथ से कमल का छत्र लगाने को तैयार हूँ।

५३ (२०) रदमानायाः—स्वयं धनका मारकर दाँत और नखों में खरोंखती हुई।
रद धातु = खरोंखना।

(१) अपि च—

५५—

(अ) त्वस्व कान्तेति मयाद् ब्रवीति

(आ) यं कामिनी चोदितसम्प्रयोगा ।

(इ) कीतास्तया तस्य भवन्ति पुंसः

(ई) प्राणा यथेष्टं परिकल्प्य मूल्यम् ॥

(१) (परिकल्प्य) (२) किं ब्रवीति—“रूपवती च स्त्री दक्षिणा चेति तयोः कस्यां प्रीतिविशेषं भावः पश्यति” इति । (३) उभयमेतत् स्त्रियं भूयति । (४) यत्तावद् विरूपायां दाक्षिण्यं तदन्धकारनृत्तमिव व्यर्थं भवति । (५) रूपमपि दाक्षिण्य-हीनमटवीचन्द्रोदय इव कां प्रीतिं करिष्यति ? (६) मा प्रति-रूपाद् दाक्षिण्यं भवति प्रधानम् । (७) कुतः ? दाक्षिण्यं विरूपामपि स्त्रियं भूयति सुरूपामप्यदाक्षिण्यं दूयति । (८) दृश्यन्ते हि पुरुषाः सुरूपा अपि स्त्रियः परित्यज्य विरूपास्त्रयः दाक्षिणासु रज्यमानाः । (९) रूपवत्या चावश्यं स्तब्धया मञ्जितव्यम् । (१०) स्तब्धता च कामस्य महान् शत्रुः । (११) अनुवृत्तिर्हि कामे मूलम् । (१२) सा च दाक्षिण्यात् सम्भवति । (१३) यदि रूपमात्रं कारणं स्यात् चित्रनार्यामपि प्रयोजनं निर्वर्तयेत् । (१४) दाक्षिण्य एव रूपगुणं हित्वा सर्व एव गुणसमुदायोऽन्तर्भूतः । (१५) कुतः—

५५—और भी, जो स्त्री सकपकाती हुई ‘हे कान्त, जल्दी कर’ इस प्रकार आत्म निवेदन करती है, उसके लिये प्राण का मूल्य चुका कर भी पुरुष जड़खरीद गुलाम हो जाता है ।

(घूमकर) क्या कहती है—“रूपवती और अनुकूल इन दोनों में से आप किसको अधिक मानते हैं ?” ये दोनों ही स्त्रियों का सिंगार हैं । अगर कुरूपा में अनुकूलता है तो वह अंधेरे में नाचने की तरह व्यर्थ ही है । रूप भी बिना अनुकूलता के घन में चाँदनी की तरह क्या सुख देगा ? मुझे तो रूप से अनुकूलता अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है । कैसे ? बदमूरत स्त्री को भी अनुकूलता सजाती है, पर रूपवती को भी बेहदगी दूषित कर देती है । यह देखा गया है कि पुरुष सुन्दरी भी स्त्रियों को छोड़कर बदमूरत किन्तु अनुकूल स्त्रियों में रम जाते हैं । रूपवती में अकड़ रहती है और अकड़ काम का दुश्मन है । काम की जड़ में अनुगमन है, और वह अनुकूल भाव (दाक्षिण्य) से सम्भव होता है । यदि रूपमात्र ही वृत्ति का कारण हो तो चित्रलिखित स्त्री से भी मतलब सधना चाहिए । अनुकूलता में रूप के सिवाय सारे गुण समाए हुए हैं । केमे—

५५ (६) स्तब्धता = मानिनी, गर्वशालिनी, अकड़ से भरी हुई ।

५५ (११) अनुवृत्ति = इच्छानुकूल प्रवृत्ति ।

५६—

(अ) सुवाक् सुवेपा निभृता कृतज्ञा

(आ) भावान्विता नापि च दीर्घकोपा ।

(इ) अलोलुपा छन्दकरी च नित्य

(ई) दाक्षिण्ययुक्ता भवतीह नारी ॥

(१) किमाह भवान्—“वेश्याः कृतकोपचारित्वात्सतामर्नभिगम्या भवन्तीति भवन्ति । (२) तत्कथम्” इति । (३) इह खलु काम्यविशेषैरुपचरणमुपचारः । (४) एतच्च स्वभावतो नार्या द्वे च लभ्येते । (५) वेश्यायां क्रियानिष्पत्तेः (?) । (६) स्यान्मत—यच्छाठ्यादुपचर्यते तत्कृतकमिति तदप्यदोषः । (७) कृतः ? शाठ्यादप्युपचारः प्रयुक्तः प्रीतिमुत्पादयति । (८) आर्जवादप्युपचारः स्तलीकृतः कस्य प्रीति जनयति ? । (९) शाठ्यं नामार्थनिर्वर्तको बुद्धिविशेषः । (१०) आत्मार्थप्रधानया च क्रिया पुरुषविशेषोऽवश्यं मृगयितव्यः । (११) या च पुरुषविशेषज्ञा स्त्री तस्यां गच्छन्ते पुरुषाः । (१२) अपि च—

५७—

(अ) नीचैर्भाषः प्रियवचनता

(आ) क्षमा नित्यमप्रमादश्च ।

(इ) शाठ्यादुत्पद्यन्ते

(ई) केनैतद् दृष्यते लोके ॥

५६—दाक्षिण्य युक्त स्त्री हमेशा अच्छी बोलने वाली, सुवेपा, संयत, कृतज्ञा भावुक, देर तक न रुठने वाली, लालचरहित और आज्ञाकारिणी होती है ।

तूने क्या कहा—“वेठ्याएँ बनावटी शिष्टाचार के कारण अच्छे लोगों से मिलने लायक नहीं होती, ऐसा कहा जाता है । ऐसा क्यों ? मतलब के लिये विशेष व्यवहार उपचार कहलाता है । स्त्री में स्वभाविक और बनावटी दोनों प्रकार के उपचार पाए जाते हैं । अपना प्रयोजन साधना ही वेश्या में उपचार का हेतु है । किसी का मत है—जहाँ शठता से व्यवहार किया जाता है वह बनावटी उपचार है, लेकिन वह भी दोष रहित हो सकता है । कैसे ? शठता से भी खातिर का अच्छा प्रयोग तबियत खुश कर देता है । सिघाई से फी गई खातिर यदि गलत तरीके से फी जाय तो उससे कौन प्रसन्न होगा ? काम बनाने की विशेष चातुरी का नाम शठता है । अपना मतलब साधने वाली स्त्री को चाहिए कि अपने लिये विशेष पुरुष अवश्य खोज ले । जो स्त्री पुरुष विशेष को पहचानती है उसीसे पुरुष खुश रहते हैं । और भी—

५७—आजिज़ी, मीठे बोल, क्षमा, रातदिन की मेहनत—ये सब गुण शठता के साथ रह सकते हों, तो ऐसी शठता को भी कौन बुरा कहेगा ?

५६ (अ) कृतज्ञा—पाठान्तर गुणज्ञा ।

५६ (८) उपचारः स्तलीकृतः—सीधेपन के कारण जिस खातिरदारी या शिष्टाचार के व्यवहार में चूक आ जाय, वह किस काम का ?

५७ (अ) नीचैर्भाषः = नम्रता, आजिज़ी ।

(१) किं वशीपि—“विसर्वादित हि शठताया सारम् ? (२) विसर्वादितस्य कामिनः प्रियया दुःखमुत्पद्यते । (३) नास्ति तस्य प्रतिक्रिया” इति । (४) भो सर्वं सत्त्वं कारणमभिसर्माक्ष्यं विसर्वाद्यते । (५) यस्तु न शम्नोति तत्कारणं परिहर्तुं ननु तस्यैव सोऽपराधः (६) अनेकान्तिकश्च विसर्वादाने दोषः (७) दृश्यन्ते यद्वा विसर्वादिता भृशतरमनुरज्यमाना ।

५८—

(अ) आवलितस्तनतटानि च वाष्पमिश्रा

(आ) भावाभिधानपटवश्च कटाक्षपाता ।

(इ) अव्यक्तशामितपदाश्च भवन्ति वाच

(ई) शान्वात् सतोऽपि गुणरत् परिहृत्यन्ति ॥

(१) किं वशीपि—“यस्याभ्यो यद् दीयते तन्नष्ट इति यद्वा वृत्तन्ति । (२) दत्तेनाप्युक्तं ‘कामोऽर्थनाशः पुताम्’ इति । (३) तत्र भावः किं पश्यति” इति । (४) भावः अर्थस्य नय एव विषयः—दानमुपभोगो निधानमिति (५) तत्र दानोपभोगौ प्रधानौ निधानं तु गहितम् । (६) कुत—

क्या कहता है—मरजी के खिलाफ होना ही शठता का निचोड़ है । मरजी के खिलाफ हुए कामी को मिया से दुःख मिलता है । उसका इलाज नहीं है ।” अरे सभी लोग कारण पाकर के खिलाफ हो सकते हैं । जो उस कारण का परिहार न कर सके उसी का अपराध है । परम्पर की प्रतिकूलता वहाँ ऐन है जहाँ उनका एक उद्देश्य के लिये मेल ही न हो सके । बहुत से जोड़े ऐसे देखे जाते हैं जो किन्हीं बातों में प्रतिकूलता होने पर भी और बातों में खूब मिल जुलकर खुश रहते हैं ।

५८—थलकूते हुए स्तन, ओसू भरी और मनरा भेद बताने वाली चितवन, सुन्दर शब्दों से भरी गुपचुप बातें, यदि ये शठता से भी की जाय, तो भी इन्हें गुण ही माना जाता है ।

क्या कहता है—“बहुत से लोग कहते हैं कि वेश्या को जो दिया जाय सत्र नष्ट ही समझिए । उक्त ने भी कहा है—‘काम पुरुष के धन का सत्रस नाश है ।’ आपकी इममें क्या राय है ?” अर्थ को तीन ही तरह से बगता जाता है—दान, उपभोग और गाड़ न रखना । इनमें दान और उपभोग श्रेष्ठ हैं, गाड़ना निन्दनीय है । केमे—

५७ (१) विसर्वादित—एक दूसरे की मर्जी के खिलाफ हाना या करना ।

५७ (८) अनेकान्तिक—किन्हीं एक सिद्धांत या उद्देश्य पर मनमिलाव न होकर सत्ता । ऐसा रिपति में हाँ हाँ पुरुष का परस्पर ‘विमवादन’ वाप माना जायगा । यदि कुछ बातों में अनमिल स्वभाव रखकर भी काम के विषय में व मिल सकते हैं तो विसर्वादी या अनमिल स्वभाव का ऐव घट जाता है ।

- ५६— (अ) निर्धो ज्ञतेऽर्थे नहि निघते फल
 (आ) भवत्यतुष्टिर्विफलीकृते पुन ।
 (इ) ततो निधान हि न युक्तमागत
 (ई) स्फुरत्तुरङ्गस्य जवोपम धनम् ॥

(१) अर्थधर्मो शरीरसुखमुत्पादयत । (२) तत्रेष्टानां शब्दादीनामनासि
 गुप्तमित्युच्यते । (३) तच्च वेश्याजनमुपसेवमानो यथावत्प्राप्नोति । (४) सर्वशब्देषु
 तावद् विशेषतः प्रियवचन निवृत्तिकर भवति । (५) तच्च वेश्याजनो वधीति । (६) न
 तथाऽय । (७) कथमिव—

- ६०— (अ) प्रिय प्रियार्थं कटु वा प्रियार्थं
 (आ) वदन्ति काले च मितं च वेश्या ।
 (इ) वदन्ति दाक्षिण्यधना कदाचि—
 (ई) नैवाप्रिय न प्रियमप्रियार्थम् ॥

(१) यस्यामनिभूतमपि पमोरुनितम्बमुदधृताशुरुमाविद्धमेतलाकलाप वेश्याजघन-
 मभिधाहयत स्पर्शां सम्भवन्ति, (२) किं न तच्छृते प्राणानपि परित्यजन्ति, किम्पु-
 नर्धनम् । (३) सर्वशब्द रसेभ्यः पान गहितमिव लक्ष्यते । (४) तस्यापि वेश्याविशिष्ट-
 त्वादुपभोगो रम्यो भवति । (५) परयत्तु भवान्—

- ६१— (आ) ससम्भ्रमोदधृतविघृणिता वा
 (आ) पीतावशेषा मुखविच्युता वा ।

५९—गाडकर रमसे हुए धन का कुछ फल नहीं होता । उसके विफल
 रहने पर असन्तोष होता है । फडकते हुए घोड़े की चाल की तरह स्थान बदलने वाला
 धन सग्रह के लिये नहीं होता ।

अर्थ और धर्म शरीर को सुख देते हैं । मनवाञ्छित शब्द, रूप, स्पर्श आदि
 विषयो की प्राप्ति को सुख कहते हैं । वह वेश्या का सग करने से भरपूर मिलता है ।
 सब शब्दों में मीठे वचन विशद सुखकर होते हैं । मधुर वचन कहना तो वेश्याएँ
 ही जानती हैं, दूसरे वैसा नहीं जानते । कैमे—

६०—प्यारी बातों की प्यारे ढंग से या कड़वी बातों को भी प्रिय ढंग से
 अगसर पर थोड़े में कहना वेश्याएँ ही जानती हैं । दाक्षिण्य से भरी वे कभी भी
 कड़वी बात नहीं कह पाता और न प्रिय को अप्रिय रूप से ही कह पाती हैं ।

भरे हुए गोल उरुओं और नितम्बों से युक्त, तथा उघड़े हुए अशुक और
 बँधी हुई मेखला से युक्त वेश्या के जघन प्रदेश का स्पर्श जिसे अच्छा लगता है,
 वह उसके लिये जान तर्क दे देता है, धन की तो बात ही क्या है ? सब रसों में
 सुरापान अत्यन्त निन्दित है, पर वेश्या के साथ उसका भी उपयोग मजा देता है ।
 तू देख—

६१—बत्ती में ढालने के कारण जो चपक में उपन रही है, जो पीने से

(३) ओष्ठोपदशा मदिरा निपीतो

(३) यो वेशमध्ये स रस विवेद ॥

(१) येन वार्धनिमीलिताक्षीणि प्रस्पन्दिताधराणि आयतभ्रूलतानि स्विन्नकपोलान्याननानि वेश्याजनस्यावलोकितानि (२) तस्य चक्षुषः फलमवाप्त भवति । (३) अपि च—

६२—

(अ) केशान्तः स्नानरुद्धो विरचितकुसुम. केशहस्तः पृथुर्वा

(आ) वलं वा मुक्तमुक्त परिमलसुरभिः पद्मतामोऽधरो वा ।

(इ) वेश्यायास्ताम्रनेत्र मुसमुदितमद चन्दनाद्रां तनुर्वा

(ई) येनाप्राप्तानि तस्य ध्रुवमभिपततो प्राणमार्गेण कामः ।

(१) न त्वस्माक धर्मेऽधिकारः । (२) तथापि तु यथा धर्मावाप्तिर्भवति तथा वक्ष्याम । (३) इह कृतघ्नता सर्गपापीयसी । (४) स च तत. कृतघ्नतर' यो वेश्या-वधूभ्यः सुखमीप्सितमनुपममवाप्य ताभ्यो न प्रत्युपकुरुते । (५) यदि कृतज्ञो भवति तस्य हस्ते स्वर्गः । (६) तस्मात् स्वर्गसुभावाप्त्यर्थं निविशङ्केन वेश्याभ्योऽपश्य तित दातव्यम् ।

बच गई है, या पीकर जिसका कुल्हाकर दिया गया है, जिसे पीते हुए बीच बीच में अधर पान रूपी गजरु का मजा मिलता है, ऐसी मदिरा को जो पीता है वही वेश का मजा पाता है ।

जो वेश्या के अधखुले नेत्र, फडकते आँठ, लम्बी तनी भोंहें, और पसीने से भरे कपोले वाला मुख देख चुका है, उसको आँख का पूरा फल मिल गया । और भी—

६२—वेश्या का नहाने के बाद रुखा केशान्त, फूलों से सजा भारी जूड़ा, पहन कर छोड़ा गया वस्त्र, निश्वासकी सुगन्धि से सुरभित लाल अधर, मधुपान से खिला हुआ चेहरा, अथवा चन्दन से गीला शरीर जिसने सुँघा उसकी नाक के रन्ध्रे से कामदेव निश्चय उमके भीतर घुस जाता है ।

मुझे धर्म में कोई दखल नहीं है । फिर भी जैसे धर्म की प्राप्ति होती है वह कहता हूँ । इस ससार में कृतघ्नता सब पापों से भारी है । कृतघ्न से भी अधिक कृतघ्न वह है जो वेश्याओं से अनुपम और मनचाहा सुख पाकर बदले में उनकी मलाई नहीं करता । यदि वह कृतज्ञ होता है तो स्वर्ग उसकी मुट्ठी में है । इसलिए स्वर्ग सुख पाने के लिये निडर होकर वेश्याओं को धन देना चाहिए । क्या कहता

६२ (अ) केशान्तः—बालों का वह भाग जो एलाइट पर रहता है । उसमें लगाया हुआ सुरभित तेल स्नान से धुल जाता है ।

६२ (अ) केशहस्तः = जूड़ा ।

(७) किं प्रवीणि—“दाक्षिण्ययुक्तायामपि कुलवध्या केन कारणेन तादृशो न भवति यादृशो वेश्याया” इति ।

(८) श्रूयता—दाक्षिण्यविषयस्तावदन्यः कुलवध्यामन्य एव वेश्याया” इति ।
 (९) ऋतुस्तु कुलवधूर्यदि तावत् प्रिय वदति अकाले वा वदति अतीव प्रियमिति वा विप्रिय वदति । (१०) एव सर्वत्र । (११) कामश्चेच्छाविशेषः । (१२) प्रार्थना चेच्छा । (१३) प्रार्थना चासम्प्राप्तेरुत्पद्यते । (१४) सा च वेश्याया स्वाधीनप्राप्ताया-
 मपि मात्सर्यादुत्पद्यते । (१५) बहुसाधारणत्वात् । (१६) मात्सर्यं च लोभं जनयति ।
 (१७) तस्माल्लब्धान्कारणो वेश्याया कामो न व्यपैति । (१८) काममूलश्च रागः ।
 (१९) अपि च—

६३—

(अ) वेश्याजघनरथस्थः

(आ) कुलनारी कं सचेतनो गच्छेत् ।

(इ) नहि रथमतीत्य कश्चिद्

(ई) गोयानेन व्रजेत् पुरुषः ॥

(१) किं प्रवीणि—“लोकस्य वेश्या प्रति सक्तो मनुष्यः पूज्यो न भवति । (२) सम्मतिश्च तस्य नेष्टा । (३) यत्र गुणा दृश्यन्ते तत्किमर्थं नानुष्ठेयम् ” इति । (४) अति चिटत्वमनिहितम् । (५) मूहर्तमवधान दीयताम् । (६) (ध्यात्वा) (७) इह हि द्विविधा पूजा भवति, फलवत्यफला च । (८) तत्र याऽफला नग्नस्येव चेटित भवति

है—“कुलवधू अनुकूल हो तो भी क्यों उसमें वैसा सुख नहा होता जैसे वेश्या में ?”

सुन । अनुकूलता कुलवधू में एक तरह की और वेश्या में दूसरी तरह की होती है । कुलवधू यदि सीधी है तो पहले तो वह जो प्रिय भी बोलती है कुसमय में बोलती है । फिर वह पति को अतीव प्रिय मानकर विप्रिय भी कह देती है । यही बात सर्वत्र देखने में आती है । काम एक इच्छा विशेष है, और प्रार्थना भी इच्छा है । न मिलने से प्रार्थना पैदा होती है । वह प्रार्थना वेश्या के वश में आ जाने पर भी ईर्ष्या से भरी होती है, क्योंकि वेश्या में सबका हिम्सा है । ईर्ष्या से लोभ होता है । इसलिए वेश्या के प्रति काम हटता नहीं । काम राग का मूल है । और भी —

६३—वेश्या के जघन रूपी रथ पर चढ़ा ऐसा कौन चेतन प्राणी है जो कुलनारी की परवाह करे ? कोई ऐसा पुरुष नहीं जो रथ को छोड़कर बैरगाड़ी की सवारी चाहेगा ।

क्या कहता है—“वेश्या में अनुरक्त पुरुष लोगों के आदर का पात्र नहीं होता । उसकी राय भी लोगों को प्रिय नहीं होती । यदि वेश्यागमन में गुण है तो उसे फिर क्यों न अपनाया जाय ?” तूने बड़ी गुडई की बात पढ़ी । मुझे एक क्षण का अक्सर दे । (सोचकर) यहाँ पूजा दो तरह की होती है, एक जिसका फल मिले

हास्यम् । (६) वेश्यायामप्रसक्तस्य किं फलमिति । (१०) स्थान्तम् 'अयशस्यो वेश-
प्रसङ्गः' इति । (११) तन्न ग्राह्यम् । (१२) सगो हि सुग्निं द्वेष्टि लोकः । (१३) यथा
च परस्त्रियो न गम्या इति प्रतिकूलमभिहितं न तथा वेश्या । (१४) स्थान्तम्—'स्त्रीषु
प्रसङ्गो न श्रेयान् वेश्याश्च स्त्रियः' इति । (१५) अत्र ब्रूमः । (१६) न तु स्त्रीप्रायत्तो
लोको दूषयितुमर्हति । (१७) अपि च—

- ६४— (अ) प्रागलभ्य स्थानशौर्यं वचननिपुणता सौष्ठवं सत्त्वदीप्ति
(आ) चित्तज्ञान प्रमोद सुरतगुण(वि)धि रक्तनारीनिवृत्तिम् ।
(इ) चित्रादीनां कलानामधिगमनमयो सौन्दर्यमयं च कामी
(ई) प्राप्नोत्याश्रित्य वेश यदि कथमयशस्तस्य लोको व्रणीति ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) किं व्रणीपि—“यदेतद् बृहस्पत्युशान् प्रभृतिभिर-
न्यैश्च शास्त्रप्रयोनतृभिरुपदिश्यते—‘स्त्रीषु प्रसङ्गो न वर्तव्यः’ इति अत्र भागः किं पश्यति”
इति । (३) भो उपदेशमात्रं सत्त्वेतत् । (४) तमहं न पश्यामि यः स्त्रीषु प्रसङ्गं न
गच्छेत् । (५) श्रूयन्ते हि—‘महेन्द्रादयोऽप्यहल्याद्यासु निवृत्तिमापन्नाः’ । (६) धर्मार्थं

और दूसरी जिसका फल न मिले । जो अफला है वह नगे की चेष्टा की तरह हास्य-
जनक होती है । वेश्या में जो नहीं लगा उसको क्या फल मिला ? किमी की राय
‘हो सकती है—‘वेश्या प्रसङ्ग वेङ्गजती का कारण है ।’ यह बात मानने लायक
नहीं । सब लोग सुखी पुरुष से द्वेष करते हैं । जिस तरह ‘पर स्त्री अगम्या है’ ऐसा
हर एक कहता है, उस तरह वेश्या के लिये नहीं कहा जाता । किमी की राय हो
सकती है—‘स्त्री प्रसङ्ग श्रेय नहीं है और वेश्याएँ स्त्री हैं ।’ इस पर मेरा कथन है—
‘स्त्रियों में मग्न लोगों को दूसरों को दोष न देना चाहिए ।’ और भी—

६४—ढीठ स्वभाव, अपनी जगह की बहादुरी, हाजिर जनारी, नफासत,
स्वभाव की तेजस्विता, मन की बात भाँप लेना, हँसी खुशी, सुरत की उत्तम विधियों
का परिचय, अनुरक्त स्त्री का सुख, चित्रादि कलाओं की प्राप्ति, बढ़िया आराम—
अगर कामी को वेश में यह सब मिलना है तो फिर लोग उस वेश की बुराई
क्यों करते हैं ?

(धूमर) क्या कहता है—“जो बृहस्पति, उशान् एव धूमरे स्मृतिकार
कहते हैं कि स्त्री प्रसङ्ग न करना चाहिए, इसमें आपसी क्या राय है ? ” अरे, कोरा
उपदेश है । मुझे तो ऐसा कोई नहीं दिखाई पड़ता जो स्त्री प्रसङ्ग न करता हो ।
सुना गया है कि इन्द्र आदि ने भी अहरया आदि में हरमन की । धर्म और

६४ (अ) स्थानशौर्यं—वेश की मूर्त्ति कहलाने का गौरव ।

योरपि श्रेष्ठो विषयः । (७) इष्टविषयप्रादुर्भावफलत्वात् । (८) विषयप्रधानाश्च स्त्रियः । (९) यो हि वेश्या परित्यज्य कामोपभोगान् दिव्यान् कामयते तमप्यहं वञ्चित इत्य-
वगच्छामि ।

(१०) इहापि तावत्तदात्वायत्योस्तदात्वमेव गरीयः मत्यक्षफलत्वात् । (११)
किं पुनरन्यस्मिन् देहग्रहणे संशयिते तपश्चरणदुरवापे रमणीयम् ? । (१२) पर्यवृत्त
भवान्—जलधरनिर्वापितचन्द्रदीपासु द्विगुणतरेतिमिरभीमदर्शनासु शिशिरतरपथनासु
सलिलपवनदुःसञ्चारासु जलदकालनीलासु रजनीषु (१३) मदनशरसन्तसयैकाकिन्या
कामिन्याऽभिसारितस्य पुंसो नूपुरस्वनबोधितस्य जन्मजीवितयोः फलमवाप्तं भवति ।
(१४) किमाह भवान्—“नूपुरधारणं हि महदुपकुरुतेऽभिसारिकाभ्यः” इति । (१५)
एवमेतत् । (१६) कृतः—

- ६५— (अ) प्रथमसमागमनिवृत्तः
(आ) कथमात्मनिवेदनं जनः कुर्यात् ।
(इ) पादस्पन्दनरभसो
(ई) यदि न स्यान्नूपुरनिनादः ॥

अर्थ से भी विषय भोग श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें मन की इच्छा पूरी होती है । विषय
स्त्रियों की विशेषता ही है । जो वेश्या को छोड़ कर स्वर्ग के दिव्य कामोपभोगों की
इच्छा करता है उसे मैं ठगा हुआ मानता हूँ ।

इस जन्म और आने वाले जन्म दोनों में यही जन्म श्रेष्ठ है क्योंकि इसका
फल सामने है । फिर दूसरे शरीर में, जिसका मिलना संदिग्ध है और जो
तपस्या के बाद बड़ी मुश्किल से मिलता है, उसमें तुझको क्या मजा दीखता है ? तू
देख—बादलों के कारण जिनमें चन्द्रमा रूपी दीपक का प्रकाश मन्द हो जाता है,
जो दुगुने अँधेरे के कारण डरावनी लगती है, जिनमें अति शीत बयार बहती
है, पानी और हवा से जिनमें चलना मुश्किल हो जाता है, ऐसी बरसात की
अँधेरी रातों में काम चाण से सन्तप्त अकेली अभिसार करती हुई कामिनी के
नूपुरों की शनकार से जागे हुए पुरुष को अपने जीवन और जन्म का भरपूर
फल मिल जाता है । तूने क्या कहा—“नूपुर धारण करना अभिसारिकाओं का बड़ा
उपकार करता है ।” हाँ, ठीक है । क्योंकि—

६५—प्रथम समागम में सकपकाया हुआ आदमी कैसे आत्मनिवेदन कर
पाता, यदि पैरों के स्पन्दन से उठी हुई नूपुर की शनकार न होती ?

(१) एव नृपुरशब्दनिरोधितोऽय - जलधरधाराघौतविशेषरुमाप्नुताजनाक्ष
मनवस्थितोष्ठमानन समद पीत्वा (२) यद्यनूद्धिरा नहनि कल्यान्तराणि नरकदु खान्यनु-
भवति (३) तथापि तस्य युगतिजनप्रणयप्रतिग्राहिणस्तानि श्लाघ्यानि भवन्ति । (४)
विगतजलदानकुण्ठनाया विरचितविमलप्रहपतितिलकाया विगतमारुतायामसनकुसुम
वासितदिग तराया शरदि (५) सारसरुतसनादितमेखलास्नानाभिर्न्यधूककुसुमोज्ज्वल
विशेषकाभिश्चक्राकोपदिष्टानुरागाभि प्रियामि सह (६) येन प्रतिबुद्धपङ्कजदीपिका-
सलिलमनगाढ तस्य किं स्वर्गण ?

(७) अथवा कुन्दकुसुममिश्रिते फुलबलोभ्रगन्धानिद्धमारुते प्रियङ्गुमजरीपल्लव
केशहस्ते प्राप्ते हेमन्तकाले (८) हिमापराधकातरौष्ठीनामधरोष्ठरक्षणीनामपि चुम्बन-
निनादिनीना प्रियाणा (९) प्रणयबलान्मुसान्यापिबतो या प्रीतिरुत्पद्यते तस्या
नास्त्योपम्यम् ।

(१०) अथवा कालागुरुधूपदुदिनेषु गर्भगृहेषु प्रकीर्णातिमुक्तकुसुमेषु तुपारभुक्ता-
वपिणीषु परपपननासु शिशिरकालरानिषु (११) प्रिययाऽनुरक्तया पीनाभ्या स्तनाभ्या

यो नृपुर की झनकार से जागकर यदि ऐसा मुँह चूमने को मिले जिसका
विशेषरु मेघ की जलधार से धुल गया हो, जिसकी आँखों का अजन फैल गया हो,
जिमका अधर फड़क रहा हो और जिसमें मधुपान की सुगन्धि आ रही है, तो उल्टे
मिर टँग कर अनेक कल्पों तक नरक के दुःख भोगना भी युगतियों के साथ
मन मिलाने वाले उस व्यक्ति को अच्छा लगेगा । जिसका बावले का घूघट हट
गया है, जिमके माथे पर चन्द्रमा का तिरुङ लगा है, जिसमें आँधिया का चलना
रुका गया है, जिममें असन वृक्ष के टपकते फूलों से दिशाएँ महमहा उठी हैं, ऐसी
शरद्ऋतु में सारस की बोली का अनुकरण करती हुई मेखला की झनकार से पथ
बन्धूक के लाल फूलों की तरह दमकते विशेषकों से युक्त, चक्काक से प्रेम का
रहस्य सीखी हुई प्रेयसियों के साथ जो खिले कमल वाली बाघडी के जलमें बिहार
करता है, उसे स्वर्ग से क्या मतलब ?

अथवा जब कुन्दपुष्पों से मिश्रित फूलों लोभ्र पुष्पों की गन्ध से भरी हवा
बहती है, और जन जूड़ों में प्रियगु मजरियाँ लगा कर कामिनियों इटलाती हैं, ऐसे
हेमन्तकाल में ठंड के कोप से जिनके आँठ तड़क जाते हैं, और जो अधर की रक्षा
चाहती हुई भी चुम्बन के लिये ललकारती हैं, ऐसी प्रियाओं का स्नेह के आग्रह में
मुखपान करने जानेको जो सुख मिलता है, उमकी उपमा नहा दी जा सँती ।

अथवा जहाँ काला अगर जलाने से धूँ के बादल छाए हों और मोतिया के
फूल फर्श पर निगरे हों, ऐसे गर्भगृहों में जन पाले की नूँद बरसाती हुई तीखी

६५ (८) हिमापराधकातरौष्ठी—पाले का ठंड में जिमका हाट चक्का गण है ।

गवपीछगाननक्षा वरशयनतलोपगतो गाढोपगूहनजनितसौदबिन्दुसुरभिगात्रो (१२)
यः सुरतान्तरेषु निद्रामुपसेवते तेन किं नाम नावाप्त भवति । (१३) अपि च—

६६—

(अ) अधरोष्ठरक्षणीना

(आ) कचप्रहोत्नेपचञ्चलाक्षीणाम् ।

(इ) पातव्यानि च तृपिते-

(ई) मूर्खानि सीत्कारसहितानि ॥

(१) निद्राविरहिते स्वप्ने किमप्यन्ते । (२) अथवा सौदमिन्दुलङ्घनावरुद्ध-
तिलकमार्गेण प्रवृत्तमदनदूतीसम्पातेषु सयोज्यमानमणिरशनेषु दृष्टसहकाराङ्कुरेषु सुरभि-
पवनेषु वसन्तदिवसेषु (३) अविदितागतया स्वयमेव मुक्तमानया यः प्रिययाऽनुरक्त-
याऽनुनेतव्ययाऽनुनीयते तेन नान्येषु स्पृहा कर्तव्या । (४) अथापि यो वा शिरीषकुण्ड-
श्यामलीकृतक्रीकपोले सलिलमणिमुकाहारचन्दनोशीरव्यजनपत्रनोपभोगरमणीये
मचण्डसूर्यकिरणे निदायकाले (५) कुतुमशयनशायिन्या नवमालिकोन्मीलितकेशहस्त

वायु चलनी है, तब शिशिर की अधेरी रातों में, प्यार में पगी प्रिया के पीन स्तनों
से अपना वक्षस्थल पीडित करता हुआ जो सुन्दर शय्या पर लेटता है और गाढ़े
आलिंगन से उत्पन्न पसीने की बूँदों से महमहाते शरीर से जो सुरत के अंत में मीठी
झपकी होता है, उसने सचमुच क्या नहीं पा लिया ? और भी—

६६—चटके अधरोष्ठ को चुम्बन से बचाने की इच्छुक और केश पकड़कर
ऊपर खींचने से बाक्री चितवन चलाने वाली प्रिया के सिसकारी भरे मुख को अवश्य
प्यासे होकर पीना चाहिए ।

जहाँ नींद ही नहीं ऐसे स्वर्ग में क्या वह मिलेगा ? अथवा, वसन्त
के उन दिनों में जब पसीने की बूँदों से तिलक मिट जाता है, कोयलें जा-
आकर बागों में भरने लगती हैं, खियों मणिमेखलाएँ गूँथने लगती हैं, आमों
में और दिग्वाई देने लगते हैं, और पवन सुगन्धि से भर जाती है, तब मान छोड़ कर
प्रीतिवश स्वयं आई हुई प्रिया अपना मान मनावन भूलकर जिसे मनाने लगती है,
उसे दूसरे सुखोंकी इच्छा नहीं करनी चाहिए । अथवा, जब शिरीष पुष्पो को प्रिया
के कानों में सजाकर उसके कपोलों को श्यामल किया जाता है, जब जलपात्र,
मोतियों के हार, चन्दन और खस के पखोंकी हवा का मज़ा मिलता है, जब सूर्य
अपनी किरणें प्रचण्ड कर लेता है, ऐसे ग्रीष्म काल में फूलों की सेज पर लेटी हुई,

६६ (२) मदनदूती = कोयल ।

६६ (३) अनुनेतव्या—जो प्रिया मनाने योग्य थी वह मान छोड़कर वसन्त के
प्रभाव से स्वयं पति को मनाने लगती है ।

६६ (४) सलिलमणि = जलपात्र । इसका पर्याय उदकमणि शब्द इसी अर्थ में
कई बार दियावदान में प्रयुक्त हुआ है (दिव्य० पृ० ६४, उदकमणोज् प्रतिष्ठाप्य) ।

हस्तया च दनाद्रपयोधरया तालवृन्तामारुतेनोपसेव्यमानो मारुतग्राहिण्युदवसिते प्रियया सह मन्याहमतिग्राहयति, (६) अथवा गघसलिलासक्तभूमिमागेषु प्रकीर्णकुलमल्लिकोत्पलदनेषु मारुतग्राहिषु गृहमध्येषु (७) यो निरुध्यते प्रियया तेनातिपाति यौवनमनुभूत भवति । (८) अपि च—

६७—

(अ) आदपस्फुरिताधरे भवति यो वन्यारवि दे रस

(आ) भीतिर्या च हृताशुके च जम्बने काञ्चीप्रभोद्योतिते ।

(इ) लक्ष्मीर्या च नयनताडकुरधरे पीने कपोल श्रियो

(ई) रक्त तेन विरज्यते न हृदय जात्यतरेऽपि ध्रुवम् ॥

(?) अथ तु तपस्वी लोक पिपीलिकाधर्मोऽन्योन्यानुचरितानुगामी प्राणापाय हेतुमि स्वयमपरीक्ष्य स्वर्ग स्वर्ग इति मृगतृष्णिकासदृशेन तेनाप्यसद्वादेन निरूप्यमाण हृदयो (२) मरुत्प्रपाताग्निप्रवेशनादिमिरन्त्यैश्च धारिर्जपहोमव्रतनियमपै स्वर्गमभिकाङ्क्षते । (३) परीक्षितु नच्छति परमाथम् । (४) स्वर्गे सन्निहिता प्रमदा श्रूयते ।

नमालिना से सने जूड़े पर हाथ रखकर चन्दन के अनुलेपन से आर्द्र पयोधर वाली प्रिया के साथ जो ताड़ के पखे की हवा खाता हुआ हवा महल में दोपन्नी बिताता है, अथवा जो उन हवादार घरों के भीतर जहाँ फर्श पर सुगन्धित जल साच कर मौलमिरी, मल्लिका और नील कमल के पुष्प सजाए गए हैं, प्रिया से रोकर लिया जाता है, उसने अपनी जगानी का भगपूर मचा उठा लिया । और भी—

६७—दन्तक्षत द्वारा अधर के फड़फड़ने से जो रस प्रिया के कगल से सुन्दर सुग में मिलता है, जो आनन्द काची की प्रभा से चमकते हुए जवन भाग का वस्त्र हटाने में आता है, अथवा पीन कपोल पर नखक्षत से जो शोभा होती है, इन मय मुखों में फँसा हुआ मन जन्मान्तर में भी उनसे विरक्त नहीं होना चाहता ।

ये त्रेचारे लोग चीन्टियों की तरह प्राण गँजाने के मार्ग में एक दूसरे के पीछे चलते हुए, निना अपने देखे हुए 'स्वर्ग है', 'स्वर्ग है', इस प्रकार की झूठी रट लगाकर मृगतृष्णा में मन लगाए हुए वायुमक्षण, पर्यतपतन, अमिप्रवेश आदि से एव घोर जप, होम, व्रत, नियमादि के ढोंग से स्वर्ग पाने की कामना करते रहते हैं ।

६६ (५) मारुतग्राही उदवसित = हवा महल, झँझरा झराखों से युक्त घर का विशेष भाग ।

६७ (?) तपस्वीलोक = भोला भोला, बेचारा लोक जो सुग भोग के अनुभव से कोरा रहने से 'तपस्वी' बना हुआ है ।

६७ (?) पिपीलिका धर्म—चीन्टियों का भौंति एक दूसरे के पाँव चलते जाना ।

६७ (२) पर्यत प्रपात = पर्वत शिखर से बूदकर प्राण खो देना जिस भृगुपतन भा कहत थे ।

६७ (४) सन्निहिता प्रमदा = बे अप्पराण जा मवा के लिये सदा नियत रहना है, पामस हृता हा नहा ।

(५) तस्य तस्या मनुष्यत्वाच्च परस्परविरोधित्वाच्च सुखोत्पत्तिर्न विद्यते । (६) नित्य-
सन्निहितत्वाच्चाविरहिताः कां प्रीतिं करिष्यन्ति । (७) अन्योन्यान्मभिज्ञत्वाच्च व्यक्तगुणोप-
भोगोऽप्यसमर्थाश्च भवन्ति ।

(८) यदपि चात्र सौवर्ण्यगृहाणि सौवर्णास्तरवः श्रूयन्ते तद्विविधानामदाक्षिण्य-
सर्वस्वम् । (९) यदि तावत् सौवर्णानि गृहाणि सौवर्णास्तरवः केनालंकियन्ते त्रियः ।
(१०) कोऽत्र विशेषः । (११) कथं भवनविनियोगादुपनीतं कनकं श्रीणां शोभामुत्पादयति ।
(१२) यश्च कामिनीभिः स्वयमेव पुत्रवत्संवर्धितसम्मानितानां युवतिरेशहस्तसंकान्त-

सच क्या है, ये इस बात की परीक्षा भी नहीं करना चाहते । सुना जाता है कि स्वर्ग में हर एक के लिये नियत स्त्री तैयार मिलती है । ऐसा हो तो मनुष्य के लिये उसे उस अप्सरा के साथ जहाँ एक दूसरे से विरोध की अनेक बातें हैं क्या मज़ा मिलता होगा ? हमेशा पास में सटी रहने से, जिनका वियोग होता ही नहीं, वे कैसे आनन्द दे सकती हैं ? एक दूसरे के साथ परिचय न होने से सुरत के जो प्रकट सुख हैं उनका भी तो मज़ा उन स्त्रियों के साथ नहीं मिलता ।

जो वहाँ सोने के घर और सोने के पेड़ सुने जाते हैं, वह देवताओं की पूँजी उनके स्वभाव की कंजूसी से जमा हुई है । यदि स्वर्ग में सोने के घर और सोने के पेड़ हैं तो स्त्रियाँ किससे सजाई जाती हैं ? इसमें विशेषता क्या हुई ? मकानों में लगे हुए सोने का कुछ भाग तोड़ कर उससे क्या स्त्रियों की शोभा बढ़ाई जायगी ? स्वयं अपने हाथ से पुत्र की तरह संवर्धित और सम्मानित

६७ (५) गनुष्यत्वाच्च—यह मर्त्यलोक का प्राणी, वह देवलोक की स्त्री, दोनों में मैं क्या जान-पहचान ?

६७ (५) परस्परविरोधित्वात्—दोनों में गुण और स्वभाव का आकाश पाताल का अन्तर है, जैसे इसे स्वादिष्ट भोजन चाहिए, उसे देवयोनि होने से भूख ही नहीं लगती, इसे निद्रा का सुख चाहिए, उसका पलक ही नहीं ऊपती, इत्यादि मनुष्यों में और स्वर्ग की अप्सराओं में बड़ा विरोध है ।

६७ (८) अदाक्षिण्यसर्वस्व—ऐसा मालमता जिसमें दाक्षिण्य या उदारतापूर्वक किसी को कुछ देने की आदत नहीं धरती गई । सोने के घर और सोने के वृक्षों में से एक कग भी तोड़कर उन्होंने कभी किसी को नहीं दिया ।

६७ (११) 'कनकं' का पाठ० जुहक भी है । धरों में जो ईंट पत्थर की तरह सोना लगा है उसका एक टुकड़ा लेकर स्त्रियों को सजाया जाय तो उनकी क्या सुन्दरता होगी ?

कुसुमसमुदायानां गृहोपवनबालवृक्षाणाम् (१३) उपभोगो रम्यो भविष्यति कुतः स जाति कठिनानां जनकतरूणाम् ? (१४) तारुण्यवद्भक्तमतन्त्रस्य परस्परदर्शनोत्सुकस्य मदन-दूतीवचनाभिवृत्तितस्यान्योन्यमुपालभ्यमानस्य प्रीतिफलेप्सोः कामिजनस्य (१५) या प्रीति रूतयते कुतः सा शापभयोद्विग्नश्रीजेने स्वर्गे ? (१६) ये च प्रणयकुपितासु कामिनीषु तत्कालोत्कण्ठानुरूपान् रम्यान् प्रसादनोपायान् गिनैः सह चिन्तयतः (१७) सायामा इव दिवसा व्रजन्ति कुतस्त ईर्ष्याविरहिते स्वर्गे ?

(१८) यस्य (च) भावविनिविष्टाग्नौ वक्षःस्थलशायिन्यो वकुलकुसुमनिश्नास मारुतैर्ग्राणमात्रायन्यः स्त्रियो निद्रासुखमुत्पादयन्ति कुतस्तन्निद्राविरहिते स्वर्गे ? (१९) यानि वारुणीमदविबुलितताक्षराणि किमपि किमपि लज्जावन्ति प्रियाणि प्रिया र्थानि वचासि (२०) स्त्रीणां कुतस्तानि पानविरहिते स्वर्गे ? (२१) भोः मां प्रति वर श्रोत्रियै र्वृद्धैः सहासितुं नाप्सरोभिः । (२२) तास्तु दीर्घायुष्मत्यः सस्कृतभाषिण्यो महामभावाश्च

गृहोपवन के उन बाल वृक्षों के साथ जो युवतियों के जूड़ों में सजाने के लिये फूल प्रदान करते हैं, स्त्रियों को जो रम्य उपभोग मिलता है, वह सुख कठोर भाव रखने वाले सोने के वृक्षों में कहाँ ? जवानी से भरे हुए काम के वशीभूत, पर दूसरे के दर्शन के लिये उत्कण्ठित, कोयल की कूक सुनने के लिये प्यासे, परस्पर उपालम्भ देनेवाले और प्रीति का फल पाने के लिये इच्छुक कामिजनों को जो सुख मिलता है, वह उस स्वर्ग में कहाँ जहाँ स्त्रियाँ सदा शाप के भय से डरी हुई रहती हैं ? प्रेम में कामिनियों के रूठ जाने पर तत्काल उनकी इच्छा के अनुरूप सुन्दर सुन्दर प्रियाप्रसादन या मान मनावन के उपाय मित्रों के साथ सोचते हुए जिसके लम्बे दिन बीतते हैं उसके जैसा सुख ईर्ष्या रहित स्वर्ग में कहाँ ?

जिनके अंग भावों से भरे हैं, जो वक्षस्थल पर लेटकर मौलसिरीके पुष्पों जैसी गंध से सुवासित निश्वास वायु से घ्राणेन्द्रिय को तृप्त करती हैं, वे प्रियाएँ जिस निद्रा सुख में निमग्न कर देती हैं, वह सुख निद्रारहित स्वर्ग में कहाँ ? वारुणी के नदों में चूर स्त्रियों के टूटे फूटे लज्जा भरे जो मोठे वचन प्रियतमों से कहे जाते हैं, वे मदपान से रहित स्वर्ग में कहाँ ? मजेदार सिसकारियों से और साँस की तीव्र गति में युक्त नववधू के साथ जो आलिंगन से प्राप्त होने वाले रति सुख हैं, वे स्वर्ग में कहाँ धरे हैं ? अरे, मेरे लिये तो बड़े श्रोत्रियों के साथ बैठना अच्छा, पर अप्सराओं के

६७ (१३) स्वजातिकठिन—इस पाठान्तर का भाव है कि सोनेके पेड़ दूयों को अपने पुष्प आदि का उपहार क्या देंगे, अपनी जाति उत्पन्न करने के लिये गुटली भी नहीं दे सकने ।

६७ (१८) भावविनिविष्टाग्नौ—चक्षु, सुख, अधर, स्तन आदि जिनके एक एक अंग काम के विविध भाव भरे हैं ।

धूयन्ते । (२३) यामु वसिष्ठागस्त्यप्रभृतयो महर्षयः समुत्पन्नास्तासु को विलम्बः । (२४) पश्यतु भवान्—

६८—

(अ) शाठ्यमनृत मदो

(आ) मात्सर्यमवगतं तथा मण्यप्रकोपः ।

(इ) मदनस्य योनयः किल

(ई) विद्यन्ते नैव ताः स्वर्गे ॥

(१) तस्माद् यद्यस्ति काममव्याहृतमनुभूतितु स्पृहा (२) मोस्तेनेहैव रगत्यम् । (३) विशेषेण वेश्वधूमिः सह । (४) इह हि—

६९—

(अ) आद्वारादनुगम्य साधुवदनं यः प्रेक्षते शम्भली

(आ) वस्त्रान्ते परिलम्बते यमनृतकोधप्रयातः प्रियम् ।

(इ) क्रुद्धश्चाप्यनुनीयमानकठिनो यः क्रुध्यते कान्तया

(ई) कामस्तेन समुद्रतथ्वजरथः सञ्चूर्य समदितः ॥

साथ नहीं । सुना है कि वे बुढ़ी ठेरी अप्सराएँ बड़े रोच से सस्कृत बघारती है । जिनसे वसिष्ठ, अगस्त्य प्रभृति महर्षि पैदा हुए, उनका क्या भरोसा ? तू देख—

६८—शठता, झूठ, मद, मात्सर्य, अपमान, प्रेम में रूठना—ये जिस प्रकार काम भाव उत्पन्न करते हैं, इनमें से एक भी स्वर्ग में नहीं है ।

इसलिए यदि किसी को बिना रोक-टोक के काम का अनुभव करने की इच्छा है, तो यहाँ ही मजा लेना चाहिए, विशेषकर वेश्वधुओं के साथ ।

६९—जिसे मनाने के लिये आँखों में आँसू गरकर कुट्टिनी को दूर तक पीछे पीछे आना पड़े, अथवा झूठे क्रोध से भागते हुए जिस का पल्ला पकड़ कर प्रिया को खाचना पड़े, अथवा सचमुच क्रोध में भरे हुए जिसे कान्ता मुश्किल से मना पावे, अतएव जो प्रिया से क्रुद्ध ही रहे, ऐसा दुर्भागी व्यक्ति काम का झडा फहराते हुए अपने रथ को स्वयं अपने हाथों से तोड़ फोड़ कर मसल डालता है ।

६७ (२३) वसिष्ठागस्त्य—व्यजना यह है कि जिन अप्सराओं ने पुष्पली भाव से इन ऋषियों को जन्म दिया, उनका क्या विश्वास ? मित्रावरुण का रत्न पहले उर्वशी में ओर फिर घट में गिरा तो अगस्त्य की उत्पत्ति हुई । उसी का जो भाग घट के बाहर रहा उससे मित्रावरुण वसिष्ठ का जन्म हुआ । मित्रावरुण, उर्वशी, आकाश मण्डल रूपी द्रौण कश्यप, ये सब सृष्टि विशाल के प्रतीक थे जिन्हें उपात्तान का रूप दिया गया ।

६८ (अ) शम्भली—कुट्टिनी ।

६८ (आ) वस्त्रान्ते परिलम्बते—पल्ला पकड़ कर खींचती है । परिलम्बते का कर्ता 'कान्ता' है ।

६८ (इ) अनृतकोधप्रयात—क्रुद्ध झूठ प्रेम में मान करके या रूठ कर जो चल देता है और प्रिया उसका पल्ला पकड़ कर खाचती है ।

६८ (ई) समुद्रतथ्वजरथ—जिस रथ के ऊपर ध्वजा फड़फड़ा रही हो । (काम पक्ष में) ध्वज = कामेन्द्रिय ।

(१) अये सुनन्दा । (२) कि वचीपि—“सर्वं मया श्रुतम्” इति । (३) हन्त ! विक्रीतपण्याः स्मः । (४) वासु न सलु विप्रलम्बितम् । (५) कि वचीपि - न सलु चन्द्रादन्धकारो निष्पतति” इति । (६) सुनन्दे, तत्रैव सदृशमेतद् वाक्यम् । (७) अतएव त्वयैतदुच्यते । (=) एवमभ्यन्तर प्रविशानः (मः) । (८) (प्रविश्य) (१०) भवति, विसर्जयितुमिच्छामि । (११) सम्प्रति हि—

७०—

(अ) वद्धा मानिनि मेखला प्रशिथिला पीत्वा सदृद् धारुणी

(आ) कृत्वा कान्तकरग्रहप्रणयिनः पुष्पोत्कटान् मूधेजान् ।

(इ) हस्तालग्नितमेखलामिरसदृत् स्त्रीभिः कटाक्षाहतो

(ई) हैमः कूर्म इवावसीदति शनैः सक्षिप्तपादो रविः ॥

(१) कि वचीपि—“न शक्यमद्य त्वयाऽर्धपादमपीतो गन्तुम्” इति । (२) भोः गन्तव्यमेव । (३) मे भार्या कलेवरमन्यथा ग्रहीष्यति । (४) किमाह भवती—

अरे, सुनन्दा हे । क्या कहती है—“मैंने सब सुन लिया ।” देव, मैं सौदा बेच चुका हूँ । वासु, तुझे घोखा नहीं देना चाहिए । क्या कहती है—“बोध से अधियारा नहीं टपकता ।” सुनन्दा, तेरे योग्य यही बात है । इसलिए तूने यह कहा । अब हम भीतर चलें । (प्रवेश करके) अब मैं बिदा लेना चाहता हूँ । अभी तो—

७० हे मानिनि, प्रशिथिल मेखला को बोंध कर, एक बार वारुणी पीकर, कान्त के कर स्पर्श के लिये उत्सुक वालों को धूलोंसे सजाकर न्त्रियों पद्मबलम्बित मुद्रा में मेखला पर हाथ रखकर जिसे अपनी चित्तनो से देखती है, ऐसा यह सूर्य सुनहले कटुण की तरह धीरे-धीरे अपने पेर सिकोड़ कर अस्तभाव को प्राप्त हो रहा है ।

क्या कहती है—“तू यहाँ से आधा कदम भी नहीं जा सकता ।” अरे,

६६ (ई) समदित —व्यञ्जना यह है कि प्रिया को कह करनेवाला व्यञ्ज के उच्छ्रित भाव को नष्ट कर लेगा । उसके भाग्य में सरका नूटना ही रहेगा ।

७० (इ) स्त्रीभिः—यहाँ अभिसारिकाओं में तापर्य है जो मेखला बन्धन, वारुणी पान, केशालकरण से तैयार होकर सायकालीन सूर्य के सामने पड़ी हाकर उसने अस्त होने की प्रतीक्षा करती हैं । वेश की भाषा में ‘हैम कूर्म’ सटाक शब्द था ।

७० (ई) हैम कूर्मः = सोने का कटुआ । उस प्रकार के धनो नायक से तापर्य है जो मालामाल होते हुए भी काम भाग में रमिक नहीं है, अतएव जिसे छोड़कर उमरी पत्नी अभिसार करता है ।

७० (ई) सक्षिप्तपादो रवि —निर्णयदोर कर अस्त होने हुए सूर्य में व्यञ्जना उम नायक की है जो लेन देन के मामले में अपना हाथ सिटुका हुआ रखता है, या धन होने पर भी कर्तूम है । ऐसे गोलमटोल बने हुए धनो व्यक्ति के लिये ‘सोने का कटुआ’ यह गुप्तकाल का व्यंग्य था ।

“अहं तामनुनेप्यामि” इति । (५) राजवदगुह्यादप्रतिगृहीतानुनय इव दुर्जनो न शक्यो-
ऽनुनेतुम् इदं गम्यते । (६) कथं पादयोर्लैंगना सह विश्वलकेन । (७) हन्त !
पङ्गुवृत्ताः स्मृताः । (८) सुनन्दे—

७१—

(अ) न त्वाहमेतिवर्तिष्ये

(आ) वैलामिव महोदधिः ।

(इ) इमामपि मेही यातु

(ई) राजा सागरमेखलाम् ॥

(?) (निष्क्रान्तो विटः)

इति श्रीईश्वरदत्तस्य इति धूर्तविटसंवादो नाम भाणः समाप्तः

जाना ही पड़ेगा । नहीं तो मेरी स्त्री इस चोलों का कुछ और तरह स्वागत करेगी । नूने
क्या कहा—“मैं उसको मना लूँगी ।” राजा का गुह्य-रसनेवाले अतएव अनुनय
को न मानने वाले दुर्जन को तरह उसे मनाना सम्भव नहीं । अरे विश्वलक के
साथ तू मेरे पैरों में क्यों लिपट रही है ? हाय ! मुझे तो इन दोनों ने, पगु फर
दिया । सुनन्दा,—

७१—महोदधि जैसे वेला को नहीं छोड़ता, ऐसे मैं तुझे छोड़कर नहीं
जाऊँगा । सागर की मेखला से अलकृत इस पृथ्वी की रक्षा राजा करें ।

(विट जाता है)

ईश्वर दत्त कृत धूर्त विट नामक भाण समाप्त

७० (?) कनेवरमन्यथा ग्रहीष्यति—मेरे शरीर को दूसरे द्रव्य से लेगी, अर्थात्
कुछ झगड़ा करने या शरीर को नोचेगी ।

७० (५) राजवदगुह्य—राजा का कोई रहस्य जिसके पास है, उसे दुर्जन का
मनाना जैसे कठिन है ।

श्रीरस्तु
वररुचिकृता
उभयाभिसारिका

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधार —

- १— (अ) कोऽसि त्व मे ना नाऽह ते निस्तुज शठ मग निनसन मुरा किमपेक्षसे
(आ) न व्यमाऽह जाने ही ही तव सुभग दशनवसन प्रियादशनाङ्कितम् ।
(इ) या ते रथा सा ते नाऽह नञ् अपल हृदयनिलया प्रसादय कामिनी
(ई) मित्येरे व कन्दर्पातां प्रणयः सतः सहकुपिता वेदन्तु वरस्त्रिय ॥
(१) एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । (२) अये । किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यमे
शब्द इव श्रूयते । (३) अङ्ग पश्यामि । (४) (नेपथ्ये)—

- २— (अ) असन्तप्रमुखे काले
(आ) लोभप्रवृत्ती गतप्रभ ।
(इ) मित्रायेण सम्भ्रान्तो
(ई) दीनो निट इव स्थित ॥

(नान्दी क नादं सूत्रधार का प्रवेश)

१—तू मेरा कौन है? मैं तेरी कौन हूँ? अरे शठ; तू मेरा पल्ला छोड़। मेरा मुँह क्या देखता है? हे सुभग! मैं तेरे लिये त्र्यम्ब नहीं हूँ। (ठठाकर) प्रिया के दन्तच्छत्र से अस्त्रित तेरे ओष्ठ को मैं पहचाननी हूँ। अरे चपल, हट। जो रुठने वाली है वही तेरी है, मैं नहा हूँ। जा अपने मन में बसो कामिनी को मना। कामपीडित और प्रणयरुद्ध से उपनि वरम्बिर्वा आप लोगो से ऐसा कहें।

य—मैं आप महानुभावों से रहता हूँ। अरे कहने के लिये उत्सुक होने पर मुझे क्या शब्द-मा सुन पड़ रहा है? बाह! मैं देखता हूँ। (नेपथ्य में)—

२—वमन के आरम्भ में उन्मत्ता हुआ लोभप्रवृत्ति मित्र कार्य में घनझाए हुए दान निट की तरह खड़ा है।

(१) (निष्क्रान्तः)

(२) स्थापना

(३) (ततः प्रविशति विटः)

:—(४) अहो ! वसन्तसमुद्भिः कुतः !

(अ) परशुतचृताशोका

(आ) डोला चरवास्थी शशाङ्कश्च ।

(इ) मधुगुणविगुणितशोभा

:—(ई) मदनमपि सविभ्रमं कुरुः ॥

(१) अहो ! परस्परव्यलीकं सहते कामिजनः । (२) अहो ! अप्रतिहत-
शासनो भ्रमति दूतिजनः । (३) अहो ! ऋतुजालप्राधान्यम् । (४) बवालमुक्तान्शि-
रशनादुकूलपेलवांशुकहारहरिचन्दनादीनां वर्धते सीमागम्यम् । (५) सर्वजनमदनजनने
लोककान्ते वसन्त एवं विजृम्भमाणे (६) सागरदत्तश्रेष्ठिपुत्रस्य कुबेरदत्तस्य नारायण-
दत्तामाश्च कश्चित् कलहाभिनिवेशः संवृत्तः । (७) एतत्कारणात् कुबेरदत्तेनात्मनः
परिचारकः सहकारको नाम गां प्रति प्रेषितः । (८) "भगवतो नारायणस्य भवने मदनसेनया

(बाहर जाता है)

स्थापना

(उसके बाद विटका प्रवेश)

विट—अहो, वसन्त का कैसा ठांट है—

३—कोयल, आम्र, अनोफ, झूला, बड़िया शराब, चन्द्रमा, और वसन्त की
विशेषताओं से विरचित शोभा, ये काम का मन भी विचलित कर सकती हैं ।

अहो ! कामीजन एक दूसरे की त्रुटियों को भी सह रहे हैं । अहो ! दूतियाँ
इस समय अप्रतिहत शासन होकर आ जा रही हैं । अहो ! यह वसन्त की ऋतु अपने
पूरे वैभव पर है । प्रवाल, मुक्ता और मणियों से गूँथी हुई रेशना, दुकूल, हलके
रेशमी धूल, हार, हरिचन्दन आदि का मंजा बढ़ रहा है । सब लोगोंमें काम पैदा
करनेवाले, लोगों को रुचिकर, खिलते हुए वसन्त में सागरदत्त सेठ के पुत्र कुबेरदत्त
की नारायणदत्ता से कुछ अनबन हो गई है । इस कारण कुबेरदत्त ने अपना
सहकारक नाम का सेवक मेरे पास भेज कर कहलाया है— "भगवान् नारायण विष्णु

२ (आ) वसन्तकाल में गतप्रभ सोम वृत्त—धूर्त विट संवाद (१५ (७))
में लोभारच को हेमन्त ऋतु में फूलने वाला वृत्त कहा है ।

२ (१) व्यलीक = अपराध; दोष, अतिक्रमण ।

३ (२) अप्रतिहतशासनः = दूतियाँ इस समय प्रेमी-प्रेमिका में से जिसको
जो भाग दे रही हैं वही उसे मान ले रहा है ।

३ (८) भगवतो नारायणस्य भवने—भगवान् विष्णु के मन्दिर में । आरम्भिक

मदनाराधने संगीतके यथारसमभिनीयमाने. (६) ततो मायतीत्य सा त्वया प्रशस्तेति तत्संक्रान्तमदनानुरागशङ्कया परिकुपिता (१०) नारायणदत्ता चरणपतनमप्यनवेक्ष्य स्थ-
भवनमेव गता । (११) तद्गतमदनानुरागतसंहृदयस्य यथा ममेयं रजनी रजनीसहस्रवत् व्यतिगच्छेत् (१२) तथा चास्य नगरस्य सर्वकालवसन्तभूतेन भाववैशिकाचलेन कृतां सन्धिभिच्छ्यामि” इति ।

(१३) श्रुत्वा तद्वचनमभिज्ञाततया मदनदुःखस्याप्यसहत्वात् प्रदीप एवाभिप्रस्थितः सन्नस्मद्वयः प्रमाणमगणयन्त्याऽऽत्मयौवनावस्थामेव चिन्तयन्त्याऽऽस्मदगेहिन्याऽन्यथा-
शङ्कमानया निवारितोऽस्मि । (१४) तदेष इदानीं तस्याः कोपविनाशने कृतप्रतिज्ञो गगिष्यामि । (१५) अथवा किमत्र मया प्रतिज्ञातव्यम् । (१६) कुतः—

के मन्दिर में मदनसेना द्वारा मदनाराधन नामक संगीतक का उसके अनुसार जय अभिनय हो रहा था, तब मुझे छोड़कर तुने उसकी प्रशंसा की। इससे मदनसेना में प्रेम की आशङ्का से नाराज होकर नारायणदत्ता मेरे द्वारा पैरों पर गिरने की भी परवाह न करके अपने घर चली गई। उसके लिए कामातुर हृदय से मुझे यह रात्रि हजार रातों की तरह न बितानी पड़े, इसलिए चाहता हूँ कि इस नगर के लिये सदा बसन्त की तरह बने हुए वैशिकाचल (पर्वत की तरह वेश में अटल) आप मेरा उससे मेल करा दें ।

उसकी बात सुनते ही कुछ जान पहचान और कुछ मदन दुःख को असह्य मानकर मैं आज शाम को ही निकल पड़ा। किन्तु मेरी ढलती उमर का भरोसा न करती हुई और अपनी जवानी की ही बात सोचती हुई मेरी घरनी ने कुछ दूसरा शक किया और मुझे जाने से रोकना चाहा। पर मैं नारायणदत्ता का क्रोध हटाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, इसलिए अवश्य जाऊँगा। अथवा, यहाँ मेरी प्रतिज्ञा की क्या जरूरत है ? कैसे—

गुप्तकाल में भागवतधर्म का अत्यधिक प्रचार था और गुप्त सम्राटों ने परमभागवत विरह धारण किया था। उस समय विष्णु के अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ था ।

३ (८) मदनाराधन संगीतक—इस नामका संगीतक। संगीतक = एक विशेष प्रकार का संगीतप्रधान अभिनय (अं० औपेरा)। इसी भाग में आगे अप्रतिहतशासन कुसुमपुर गुरन्दर अर्थात् कुमार गुप्त महेन्द्रादित्य के भवन में गुरन्दरविजय नामक संगीतक का उल्लेख है (२८।०)। कादम्बरी के अनुसार धीणा वेणु मृदंग वाद्यो का संगीतक में प्रयोग होता था (का० अनु० ५०)। राजभवनों में संगीतकों के लिये संगीतकगृह नामक अलग स्थान ही होता था (का० अनु० २३८) जहाँ मृदुस्वनि से टनकते हुए मृदंगों का शब्द सुनाई पड़ता था ।

३ (१२) सर्वकालवसन्तभूत = हर समय या दृष्टो ऋतुओं में एक समान जियमें वसन्त की मस्तो छाई रहे ।

(अ) मधुरेः कोकिलालापै—

(आ) श्रुताङ्कुरनिबोधितैः ।

(इ) वसन्तः कलहावस्था

(ई) कामिनीमनुनेप्यति ॥

(१) अपि च—

५—

(अ) कान्तं रूपं यौवनं चारुलीलं

(आ) दानं दाक्षिण्यं वाक् च सामोपपन्ना ।

(इ) यं प्राप्यैते सद्गुणा भान्ति सर्वे

(ई) लोके कामिन्यः केन तस्य प्रसादाः ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) अहो ! कुसुमपुरराजमार्गस्य परां श्रीः । (३) इह हि—सुसिक्तसंमृष्टेष्वावचकुसुमोपहारा अन्यगृहाणां वासगृहायन्ते रथ्याः । (४) नाना-विधाना पश्यसमुदायाना कयविक्रयव्यापृतजनेन शोभन्तेऽन्तरापणमुखानि । (५) बह्वी-दाहरणसंगीतधनुर्ज्याघोषैरन्योन्यमभिव्याहरन्तीव दशमुखवदनानीव प्रासादपङ्क्तयः । (६) कचिदुद्धाटितगवाक्षेषु प्रासादमेघेषु रथ्याचलोकनकुतूहलाः शोभन्ते प्रमदाविधुतः

४—आमों के बौरने-से बौराई कोयल के मधुर आलापों से वसंत कलहकुपित कामिनी को स्वयं मना लेगा ।

और भी—

५—सुन्दर रूप, अठखेलियां करता यौवन, दान, अनुकूल स्वभाव, शान्ति और मेल की बातें—ये सब सद्गुण जिसमें हों, उसको कामिनियों के प्रसन्न करने के लिये दूसरे की क्या आवश्यकता ?

(धूमकर) अहो ! कुसुमपुर के राजमार्ग की कैसी अपूर्व शोभा है ? यहाँ की गलियाँ सुगन्धित छिड़काव, झाड़-पौछ और सब ओर फूलों के सजे ढेरों से ऐसी लगा रही हैं मानों दूसरे घरों के सामने वासगृह हों । तरह-तरह के सामान की खरीद-फरोख्त करनेवाले गाहकों की भीड़ से दुकानों के अगले भाग सुन्दर लग रहे हैं । वेदाध्ययन, संगीत तथा धनुष की टंकारों से भरे हुए महल जैसे आपस में बातचीत कर रहे हैं, मानों रावण के मुख हों । कहीं मेघरूपी प्रासादों की खुली हुई सिड़कियों (गवाक्ष) में

भाष्यवैशिकाचल—भाव = बिटकी उपाधि । वैशिक = चेरयाभो से सम्बन्धित तन्त्र । उसका अचल या पर्वत के तुल्य दृढ़ आधार, वैशिकतन्त्र को धारण करने वाला जैसे पर्वत पृथिवी को धारण करता है ।

५ (आ) चारुलीलं—पाठ० चारुलीलं ।

५ (१) कुसुमपुरराजमार्ग—पहले पद्मप्राशृतक भाग और चौथे पौदतादितक का स्थान उलझिना है, दूसरे धूर्त विट संवाद और तीसरे उभयामिसारिका का पाठलिपुत्र है ।

५ (६) प्रमदाविधुतः—तु० प्रेममेषविधुतता (पद्मप्राशृतकं ३३ (३३) ।

कैलासपर्वतान्तर्गता इवाप्सरसः । (७) अपि च, प्रवेरहयगजरथगता इतस्ततः परिचलन्तः शोभन्ते महामात्रमुख्याः । (८) तरुणजननयनमनोहरणसमर्थाश्चारुलीलाः स्थानविन्यस्तभूषणाः सुरनगरवुरयुवतिश्रियमपहसन्त्यः परिचरन्ति प्रेव्ययुवतयः । (९) सर्वजननयनभ्रमरैरापीयमानमुखकमलशोभा रथानुग्रहार्थमिव पादप्रचारलीलामनुभवन्ति गणिकादारिकाः । (१०) किं बहुना—

- ६— (अ) सर्वैर्वीतमयैः प्रहृष्टवदनैर्नित्योत्सवव्यापृतेः
 (आ) श्रीमदरत्नविभूषणाङ्गरचनैः स्रग्गन्धवस्त्रोज्ज्वलैः ।
 (इ) कीडासौख्यपरायणैर्विरचितप्रस्त्यातनानागुणै—
 (ई) भूमिः पाटलिपुत्रचारुतिलका स्वर्गायते साभ्रतम् ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) अये ! इयं खलु चरणदास्या दुहिता अनङ्गदत्ता नाम
 (३) सुरतपरिश्रमखेदालसा चतुरपदविन्यासा सर्वजननयनामृतायमानरूपा इत एवाभि-
 वर्तते । (४) अवश्यमनया प्रियजननिर्दयोपभुक्तया भवितव्यम् । (५) कुतः—

कैलास पर्वत की अप्सराओं की तरह गली देखने के कुतूहल से बिजली सी कौंधती हुई नवेली प्रमदाएँ शोभा पा रही हैं । और भी, बड़े हाँथी घोड़ों और रथों पर सवार इधर-उधर जाते हुए महामात्रों के प्रधान कैसे भले लग रहे हैं । युवकों की आँखें चुराने में समर्थ, नखरों से भरी, यथास्थान आभूषण पहने हुई जवान दासियाँ स्वर्ग की युवतियों के सौन्दर्य की हँसी करती हुई आ-जा रही हैं । सब लोगों के नयन-रूपी-भौरे जिनके मुख कमल की शोभा पीने लगते हैं, ऐसी नौचियाँ मानो सड़कों पर दया करके चहलकदमी कर रही हैं ।

बहुत क्या—

६—निर्भय होकर खुशी मन से नित्य उत्सव में लगे हुए, कीमती रत्नों और आमूषणों से सजे हुए, मालाओं की गन्ध और बखों से लकड़क, खेलकूद की मौज में मगन, नाना गुणों से प्रख्यात नागरिकों से पाटलिपुत्र की यह भूमि इस समय मर्दा बन रही है ।

(घूमकर) अरे, यह चरणदासी की पुत्री अनङ्गदत्ता सुरत परिश्रम की थकान के आलस्य से नप-नुले नजाकत भरे पैर रखती हुई मानों सब लोगों की आँखों का अमृत बनी इधर ही आ रही है । अवश्य ही इसके यार ने निर्दयता से इसका आनन्द लूटा है । कैने—

५ (६) गणिकादारिकाः—गणिकाओं की पुत्रियाँ जिन्हें पेशा शुरू करने से पहले बनारसी घोंडा में 'नीचा' कहा जाता है ।

७—

(अ) दर्शनपदचिह्नितोऽ

(आ) निद्रालसलोललोचन वदनम् ।

(इ) जघन च सुरतविभ्रम—

(ई) विलुलितरशनायुष्मपरीतम् ।

(१) ओ अस्या दर्शनमेव च न कार्यसिद्धिनिमित्तम् । (२) अये मामनवेक्ष्यैव गता । (३) अभिभाषिष्ये तावदेनाम् । (४) हत ! स्वयमेव प्रतिनिवृत्ता । (५) (उपगम्य) (६) तामु किं नाभिवादयसि । (७) किं वशीपि—“चिरेण विज्ञातास्मि भवतमभिवादयामि” इति । (८) श्रूयतामियमाशी —

८—

(अ) प्रथमवयस स्वतन्त्र

(आ) दातार चारुरूपमर्थाढ्यम् ।

(इ) भद्रे लभस्व भद्र

(ई) कुशल कात रतिपर च ॥

(१) तामु, सर्वं तावत् तिष्ठतु ।

९—

(अ) विधेयो ममयस्तस्य

(आ) सफल तस्य जीवितम् ।

(इ) वेशलक्ष्म्या त्वया सार्ध

(ई) यत्सेव्य रजनी गता ॥

(१) किं वशीपि—“महामात्रपुत्रस्य नागदत्तस्योदयसितादागच्छामि” इति । (२) भद्रे, भूतपूर्वमिभन सत्त्वप । (३) व्यक्त मातुरप्रियमुपपादितम् । (४) वधे

७—इसके मुख में दन्तक्षत चिह्नित ओष्ठ है । चंचल आँखें नींद से अलमोही हो रही हैं । सुरत के खेल से अलग निम्न हुई ऊरधनी की लड़ों से इसका जघनस्थल भरा है ।

अरे, इसके दर्शन से ही हमारा काम बनने वाला है । ऐं, मेरी ओर देखे बिना ही वह चला गई । तब तौ इसमें बात करूँगा । अहा, खुद लौट आई । तामु, प्रणाम क्यों नहीं करती ? क्या कहती है—“आपने देर में पहचाना । मैं अभिवादन कर रही हूँ ।” तो मुन मेरा आशीर्वाद—

८—भद्रे, नीलगान, स्वतन्त्र, दानी, सुन्दर, धनी, भद्र, उगल, रतिपरायण प्रियतम तुझे मित्र ।

तामु, यह सब रहने दें—

९—कामदेव उमका अनुचर है और उमका जीवन सफल है, निम्नने तुझ घेन-लक्ष्मी का साथ एक रान बिनाटे हो ।

क्या कहती है—“महामात्र-पुत्र नागदत्त के घर से आ रही हैं ।” भद्रे, उमका समय तो पाने की पगाली है । यह माफ है कि नूने अपनी ग का गर्ज

ग्रीडावततदनयाऽनया हसितम् । (५) हन्त । सफलो न प्रतर्क । (६) मा मैवम् ।
(७) कुत —

१०— (अ) मातुल्लोभमपास्य यदरतिसुनेप्यासक्तचित्ता सती
(आ) त्यक्त्वा वैशिक्षशासन बहुफल वेद्याङ्गनादुस्त्यजम् ।
(इ) गत्वा कातनिवेशन बहुरस प्राप्ताऽसि कामात्सन
(ई) तेनाथ गणिकाजनस्तव गुणैर्निक्षिपद इत ॥

(१) अहो स्थाने खलु ते ग्रीडा । (२) किं शपथेन । (३) स्वप्नहमागत्यानु
नयामि ते मातरम् । (४) त्वया तु वेश्योपचारविरुद्ध इतम् । (५) गच्छतु भवती ।
(६) किं वशीपि—“अभिनादयामि” इति । (७) सुभगे, श्रूयतामियमाशी —

११— (अ) स्वगुणा सदगुणा सनं
(आ) न स्तौतव्या स्थितास्त्वयि ।
(इ) लोऽल्लोचनकात ते
(ई) स्थिरीभवतु यौवनम् ॥

(१) गतीपा । (२) वयमपि गच्छाम । (३) (परिक्रम्य) (४) अये एषा
खलु निष्पुदत्ताया दुहिता माधनसना नाम अनपेक्षितपरिजनानुसरणा (५) व्याघ्रा
नुसारनिस्तमृगपातिनेन स्वरिततरपदन्यासा इत एवामिर्तते । (६) व्यक्तमिदानीं
जननीलाभदोपादनिष्टजनसम्भोगपरिविलष्टयाऽनया भरितव्यम् । (७) तथा हि—

के सिलाफ उसमे मेल किया है । लज्जा से मुँह नीचा करके यह क्यों हँसी ? वाह !
हमारा अनुमान ठीक है । सुन्दरी, ऐसा मत कर । कैसे—/

१०—माता की लालच को टुकरा कर तू ने रति मुखो में मन लगाया और
बहुत पन् देनेवाले चेन्न के नियमों को चिनका छोड़ना वेद्याओं के लिये फटिन है,
त्यागकर तू अपने प्रेमी के घर चली गई और उसके साथ रसीली रगरेलियों करती
रही । अपने इन गुणों से तू ने वेद्याओं को अपने पैरा तले कर दिया है ।

अरे तेरी लान ठीक ही है । कसम खाने से क्या ? तेरे घर आकर तेरी
माता को मना ल्या । तू ने वेद्याओं के स्वमान के निरुद्ध काम किया है । अब
तू जा सकती है । क्या कहती है—“अभिवादन करनी हूँ ।” सुभगे, यह मेरा
आशीर्वाद सुन—

११—तेरे गुन तुझमें रहकर मन्गुन हो गए हैं । उनकी बढ़ाई क्या करना ?
लोगों की लुभानवाला तेरा यौवन स्थिर रहे ।

यह चली गई । मैं भी चली । (धूमकर) —अरे, यन् निष्पुन्ता की पुत्री
माधनमेना अपने परिचना का पाठा करने की परवाह न करन बाध से पीठा
की जाती हुई मृगटोपी की तरह जल्दी चली पग बढ़ाती ड़धर हो आ रही है । यह
साफ है कि यन् जननी के लानच मे अनचाहे के साथ मिलने से दुर्मी है । क्योंकि—

१२—

- (अ) न ग्लानं वदनं न केशरचना प्रभ्रष्टपुष्पद्युतिः
 (आ) दन्ताक्रान्तनिपीतकोमलरुचिर्नैवाधरोष्ठः कृतः ।
 (इ) गाढालिङ्गनवर्जितौ स्तनतटावलिष्टचूर्णश्रियो
 (ई) श्रोण्या रागरतिप्रबन्धशिथिला न व्याकुला मेखला ॥

(१) अथे अनिष्टजनसम्भोगजनितसन्त्रासा मामनवेक्ष्यैवातिक्रान्ता । (२) भवतु । (३) एनामनुसृत्य निर्येदकारणं ज्ञास्यामहे । (४) हन्त ! स्वयमेव प्रतिनिवृत्ता । (५) किं ब्रवीषि—“न मया भावोऽलक्ष्यत” इति । (६) वासु नास्ति दोषः । (७) परिवलिष्टतया व्याकुलितचित्तानां बुद्धयो हि ससम्प्रभा भवन्ति । (८) किं ब्रवीषि—“अभिवादयामि” इति । (९) प्रतिगृह्यतामयमाशीर्वादः—

१३—

- (अ) आद्यास्ते दयितास्तन्तु
 (आ) विप्रियाः सन्तु निर्धनाः ।
 (इ) मातुलोभात् कदाचित् स्या—
 (ई) न्नाश्रियैरपि सङ्गमः ॥

(१) वासु कुत आगम्यते ? (२) किं ब्रवीषि—“धनदत्तसार्थवाहपुत्रस्य समुद्र-
 दत्तस्योदयसितादागच्छामि” इति । (३) अहो प्राप्तं कृतम् । (४) अद्यतनकाल-
 पैश्रवणः रत्नैषः । (५) किं दीर्घोष्णश्वासितविरुम्भितापरकिसलयं भ्रुकुटीविजिह्वित-
 नयनं व्याधर्तितमेवानया वदनम् । (६) हन्त ! अयाधितयप्रतर्काः स्मः । (७) कुतः—

१२—न तो मुँह उतरा हुआ है, और न केशरचना के फूल ही झड़े हैं, और न ओष्ठ की सुकुमार शोभा दन्तशत से विगड़ी है। गाढालिङ्गन से रहित स्तन तटों पर चन्दन चूर्ण की शोभा ज्यों की ज्यों हैं। श्रोणी पर मेखला रागपूर्वक रति करने से न ढीली पड़ी है, न अस्तव्यस्त हुई है।

अरे, अनचाहे के साथ मिलने के डर से वह मुझे बिना देखे ही चली गई। ठीक, मैं इससे रास जाकर इसके दुःख को कारण का बता लूँगा। वाह, स्वयं ही लौट आई। क्या कहती है—“मैंने आपको नहीं देखा।” वासु, तेरा दोष नहीं है। क्लेश से घबराए लोगों की अफ़स भी घबरा जाती है। क्या कहती है—“मैं अभिवादन करती हूँ।” तो यह मेरा आशीर्वाद ले—

१३—तेरे प्रियजन धनवान् हों और अनिष्टजन धनहीन हों। माता के लोभ में पड़कर अनिष्टजन के साथ तेरा समागम न हो।

वासु, कहाँ से आ रही है ? क्या कहती है—“धनदत्त सार्थवाह के पुत्र समुद्रदत्त के घर से आ रही हूँ।” अहा ! सूब किया। वह तो आजकल का सुपेर है। क्यों लम्बी मौन लेते हुए, अपर किमन्त्रियों को फड़फड़ा कर टेढ़ी भौंहों वाली आँखों से हमने अपना मुँह गुमा लिया ? हाय ! मेरा अन्धाजा मरी है। कैसे—

१४—

- (अ) वृद्धाह तोष्ठमिन्न निरलमृदुकथ हासलीलावियुक्त
(आ) जृम्भोष्ठाश्यासमिन्न परिशिथिलभुजालिङ्गन वीतरागम् ।
(इ) दु सादाश्रित्य शय्या वृत्तवर्तिनिधौ चेष्टित भावहीन
(ई) व्यस्त बालेऽश्यास्त्व निशि दिनसकरस्योदय चिन्तयन्ती ॥

(१) वासु अलमल निपादेन । (२) रूपाकरोऽपि धनमान् गम्येधमिहित
एत । (३) श्रूयताम्—

१५—

- (अ) सर्वथा रागमुत्पाद्य
(आ) चिप्रियस्य प्रियस्य वा ।
(इ) अर्थस्यैवार्पण कार्य—
(ई) मिति शास्त्रविनिश्चय ॥

(१) कि नरीपि—“भास्वस्यापि तल्लु मे जनन्या समो निश्चय ” इति । (२) भवति, मा मैत्रम् । (३) अस्त्येतत् कारणम् । (४) गच्छतु भवती । (५) तदग्रह
मेवागत्य शास्त्र तत्पतस्त्वा ग्राहयिष्यामि । (६) अहो उपदेशदोषादनभिगम्येन गता ।
(७) अहो तपस्विन्या उद्देग । (८) वयमपि साधयामस्तावत् ।

(९) (परिक्रम्य) (१०) अथै एषा तल्लु विलासक्रीडिनी नाम परित्राजिका
सललितमृदुपदन्यासा नयनामृताधमानरूपा इत एवाभिवर्तते । (११) अस्या पटयास

१४—हे बाले, यह प्रकृष्ट है कि रात में दुःख से शय्या पर जाकर तू ने
बनावनी रति का और दिन निकलने की बात सोचती रही । उस समय तेरी सब
चेष्टा ब्रू मन की (भावहीन) थी । कठिनाई से तू ने चूमने के लिये अधर दिया
मीठी बात भी कुछ न की, हमों मजाक भी कुछ न हुआ, जैमाई और गरम सौंसें
लेती रही, मुचाओ का आलिंगन भी ढीला ढीला ही रहा और राग का तो
नाम ही न था ।

वासु, गिनाठ मत कर । रूप से हीन धनी भी गम्य है, ऐसा कहा गया
है । सुन—

१५—अनचाह या चहेते, दोनों में पूरी तरह प्रेम उत्पन्न करके धन पैदा
करना चाहिए, यही शास्त्र का नियम है ।

क्या कहती है—“आप भी मेरी माता की तरह ही विचार वाले है ।” अरे,
यह बात नहीं है । डमम कुछ कारण है । तू अन जा । तेर घर आकर ठीक ठीक
शास्त्र का मर्म समझाऊंगा । अहो ! यह जिना अभिशादन किण ही चल दी ।
इसकी जिम्मा म त्रुि है । या इसका कारण बचारी का उद्देग है । हम भी
अन यहाँ से काम पर चले ।

(घूमकर) अरे, यह किण्मक्रीडिनी नाम की परित्राजिका नगरे से

गन्धोन्मत्ता भ्रमन्तो मधुकरगणाश्चूतशिल्पराण्यपि त्यक्त्वा परिव्रजन्ति खल्वेनाम् । (१२)
अभिभाषिष्ये तापदेनाम्, (१३) यतो नयनश्रयणकुतूहलमपनेष्यामि । (१४) भगवति
वैशिकाचलोऽहमभिवादये । (१५) किं ब्रवीषि—“न वैशिकाचलेन प्रयोजनं भवेद्
वैशेषिकाचलेन” इति । (१६) अस्त्येतत् कारणम् । (१७) कुतः—

- १६— (अ) दृष्टिस्तेऽतिविशालचारुरुचिरः नैकत्र सन्तिष्ठते
(आ) ग्लान्या कान्ततरं रतिश्रमयुतं शूनाधरोष्ठ मुलम् ।
(इ) आचष्टे सुरतोत्सवप्रकरणं रोदालसा ते गतिः
(ई) व्यक्तं ते कथितं प्रियेण सुभगे रत्यर्थवैशेषिकम् ॥

धीरे धीरे पैर रखती हुई इधर आ रही है । उसका रूप ओखों का अमृत है । इसके
पटवास की गन्ध से पागल भौरों आम की चोटियों को छोड़कर इस पर मँडरा रहे हैं ।
तो इससे बातचीत करूँ और अपनी ओखों और कानों का कुतूहल शान्त करूँ ।
भगवति, वैशिकाचल मैं आपका अभिवादन करता हूँ । क्या कहती है—“मुझे वेश
में डटनेवाले से प्रयोजन नहीं, मुझे तो वैशेषिक शास्त्र में डटनेवाले में रुचि है ।”
इसकी तो वजह है । कैसे—

१६—तेरी विशाल और सुन्दर ओखें एक जगह नहीं ठहरती ? ग्लानि से
अधिक सुन्दर और रतिश्रम से युक्त फूले अधर वाला तेरा मुख एवं श्रम से अलसाई
चाल तेरे सुरतोत्सव का संकेत दे रही हैं । हे सुभगे, इससे स्पष्ट है कि तेरे प्यारे
ने तुझे ‘रति ही नित्य पदार्थ’ है यही शास्त्र पढ़ाया है ।

१५ (१५) वैशेषिकाचल = वैशेषिक दर्शन का महारथी । किद ने परिभाषिका को
प्रणाम करते हुए अपने आपको वैशिकाचल (वेश का पुरस्कार) कहा । वह अपने आपको
काणाद दर्शन की अनुगामिनी बताती हुई व्यङ्ग्य करती है कि मेरी रुचि ‘वैशिकाचल’ में
नहीं, ‘वैशेषिकाचल’ में है ।

अचल = निय, ध्रुव, अविनाशी । वैशेषिकदर्शन चल विश्व के मूल में अचल तत्त्वों
का अन्वेषण करता है । परिवर्तनशील वस्तुओं के पीछे जो नित्य वस्तु है वही द्रव्य है ।
अचल शब्द की यही व्यञ्जना है । परमाणुओं का परस्पर भेद नित्य है जिसे विशेष कहते
हैं । इसी से यह दर्शन वैशेषिक कहलाया । अचल या नित्य तत्त्व वैशेषिकों के विचार की
मूल मिति थी । बौद्धों के षण्णिकावाद से इनकी टकराई थी । यह परिभाषिका वैशेषिक मत
की अनुयायिनी है, बौद्ध भिक्षुणी नहीं ।

१६ (ई) रत्यर्थ वैशेषिक—अर्थ = पदार्थ (कणादसूत्र १।१।४, अर्थ इति द्रव्य-
शुभकर्मसु, में पदार्थ को ‘अर्थ’ कहा है ।

वैशेषिक—यह दर्शन जो विशेष नामक नित्य तत्त्व पर आश्रित है । पृथिवी जल
तेज वायु के नित्य परमाणुओं का पारस्परिक भेद विशेष कहलाता है । विशेष नित्य तत्त्व

(१) किं वशीपि—“अहो दामेनात्मसदृशमभिहितम्” इति ।

१७—

(अ) धन्या भवन्ति सुभगे

(आ) दासास्तै चरणकमलयुगलस्य ।

(इ) अस्मदग्निधस्य वरतनु

(ई) कुतोऽस्ति तत् क्षीणपुण्यस्य ॥

(१) किं वशीपि—“पट्पदार्थवहिष्कृतैः सह सम्भाषणमस्माकं गुरुभिः प्रति-
पिद्धम्” इति । (२) भगवति युक्तमेतत् । (२) कुतः—

क्या कहती है—“अरे काम के दास, तू ने अपनी रुचि के अनुसार ही कहा ।”

१७—हे सुभगे, तेरे चरण कमलों का दास्य जिन्हे मिले वे धन्य है । हे वरतनु, हमारे जैसे पापियों को यह भी कहो सुलभ ?

क्या कहती है—“पट्पदार्थों को न जानने वालों के साथ बातचीत करना हमारे गुरुओं ने मना किया है ।” भगवति यह तो ठीक ही है । कैसे—

है । वैशेषिक का परिवाजिका पक्ष में व्यंग्यार्थ हुआ कि सेरे लिये रति ही एकमात्र ऐसा पदार्थ है जिसे तू निय मानती है । कणाद दर्शन के पक्ष में अर्थ हुआ कि द्रव्यगुणकर्म-सामान्य विशेष समवाय, इन छह निच पदार्थों में रति या भक्ति या इह आस्था यही तेरा सिद्धान्त है ।

१६ (१) दामेन—परिवाजिका ने ब्रिट को गाली देने हुए ‘दास’ - (गणिकाओं का गुलाम) कहा ।

१७ (१) पट्पदार्थ—१ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय—कणाद दर्शन में ये ही छह पदार्थ कहे गए हैं ।

पट्पदार्थवहिष्कृत—हमारे आचार्यों ने पट्पदार्थ माननेवालों के साथ बोलचाल का भी निषेध किया है । इस वाक्य की व्यञ्जना यह है कि पट्पदार्थ मानने वाले प्राचीन कणाद दर्शनियों का साथ पदार्थ मानने वाले अभिनव दार्शनिकों से गहरा मतभेद या शास्त्रार्थ था । प्रशस्तपाद पट्पदार्थ वाली आचार्य थे । यहाँ ‘हमारे गुरुओं’ का संकेत उन्हीं से प्राप्त होता है । ‘प्रशस्तपाद’ यह आचार्य का आदरार्थक शिष्य था, वास्तविक नाम नहीं । वैशेषिक दर्शन नित्य पदार्थवादी है । बौद्धदर्शन चण्डिकावादी है । नए वैशेषिकों ने अभाव का भी सातवें पदार्थ मानकर बौद्ध दर्शन का आश्रित रूप में मान लिया । यही नये पुराने वैशेषिक मता का द्वन्द्व था जिनका ओर परिवाजिका की टिप्पणी में संकेत है ।

१७ (२) युक्तमेतत्—जिद का कूट यह है कि तुम्हारा स्वरूप ‘पट्पदार्थों’ से बना है (जैसा १८वें श्लोक में बताया है), अतएव जो उन ‘पट्पदार्थों’ के हस्त्युक्त नहीं है, उनमें तुम्हारा मेल कैसा ? मनचले युक्तों में ही तुम्हारा पदो बैठता है ।

- १८— (अ) द्रव्य ते तनुरायताक्षि दयिता रूपादयस्ते गुणाः
 (आ) सामान्य तव यौवन युवजनः सस्तौति कर्माणि ते ।
 (इ) त्वय्यार्य समवायमिच्छति जनो यस्माद् विशेषोऽस्ति ते
 (ई) योगस्ते तरुणैर्मनोऽमिलपितैर्मोक्षोऽप्यनिष्टाज्जनात् ॥
 (?) अथे ग्रहास्त एव नः प्रतिवचनम् । (२) हन्त ! सफलो नः प्रतर्कः ।

१८—हे आयताक्षि, तेरा शरीर द्रव्य (मूल्यवान्) है। तेरे रूपादि प्रिय गुण हैं। तेरा यौवन सामान्य (सबके लिये) है। युवकजन तेरी गतिथो (कर्मों) की प्रशंसा करते हैं। हे आर्य, लोग तेरे साथ नित्य सम्बन्ध (समवाय) चाहते हैं, क्योंकि तेरा और सबसे नित्य भेद (विशेष) है। मनचाहे तरुण जन से तू योग (सम्बन्ध) कर लेती है और अनचाहे जन से तू अपना मोक्ष (छुटकारा) साथ लेती है।

अरे, केवल हँसकर ही इसने मेरी बात का जवाब दिया। मेरा अवाज

१८ (अ) द्रव्य = १—पृथिवी जल तेज वायु आकाशादि जो नित्य तत्त्व हैं, वे ही तुम्हारा शरीर हैं।

१८ (आ) रूपादयः गुणाः—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि ये गुण सदा द्रव्य में रहते हैं। रूप रस आदि गुण ही तुम्हारे गुण हैं।

१८ (आ) सामान्य—अनेक द्रव्यों में रहनेवाला नित्य पदार्थ जाति, जैसे गोत्व। तुम्हारी नई नई छीलाओं में तुम्हारा यौवन ही वह नित्य तत्त्व है जिसका सदा एकसा अनुभव होता है।

१८ (आ) कर्म—उक्षेपण (ऊपर की ओर गति), अवक्षेपण (नीचे की ओर गति), आकुञ्चन (सिकुड़ना), प्रसारण (फैलाना), गमन (सामान्य गति)। कौी पक्ष में विभिन्न प्रकार की सरलील गतिथीही कर्म हैं जिनसे युवका के मन आकृष्ट होते हैं।

१८ (इ) समवाय = नित्य सम्बन्ध। द्रव्य और गुण, क्रिया और क्रियावाद् अवयव और अवयवी का जो नित्य सम्बन्ध है वह समवाय कहलाता है।

१८ (इ) विशेष—द्रव्यों के नित्य अवयव या परमाणुओं में जो एक दूसरे से नित्यभेद है उसे विशेष कहते हैं। विशेष नित्य द्रव्यों में रहता है और स्वयं भी नित्य है।

१८ (ई) योग—काणाद दर्शन में योग द्वारा प्राप्त शक्ति विशेष को भी प्रमाण माना जाता है। यहाँ विद का व्यय है कि मन चाहे युवका से मिलना यही तेरे लिये योग है।

१८ (ई) मोक्ष—अविद्या से छुटकारा विद्या है जिससे मोक्ष होता है। परित्राजिका पक्षमें, जिसे तू नहीं चाहती, उससे अलग रहना हा तेरा मोक्ष है।

१८ (२) सात्य—(१) सात्य शास्त्र, (२) सत्या अर्थात् विचार के माथ।

(३) कि वनीपि—“सारयमस्माभिर्ज्ञायते—अनेपसो निर्गुणः क्षेत्रज्ञः पुरुषः” इति ।
 (४) हन्त ! निरुत्तराः स्मः । (५) अस्मत्कथाप्रसंगेन सूक्तशृङ्गा भवती दृश्यते ।
 (६) तरुणजनसुरतविधोऽप्यस्माभिः परिहर्तव्य । (७) साधयतु भवती । (८) गतेषा ।
 (९) गन्धामस्तापत् । (१०) (परिक्रम्य)

(११) अये किं नु सत्वैषा चारुदास्या माता रामसेना नाम वयःप्रसर्पेऽपि
 वर्तमाना (१२) विलासनिप्रेक्षितगतिहसितैर्युवतिजनलीला विडम्बयन्ती इत एवामि-
 वर्तते । (१३) अहो ! विस्मयनीया सत्वैषा—

१६— (अ) भुक्त्वा भोगानीप्सितान् कामदत्तान्
 (आ) इत्था सक्तान् स्वेर्गुणैः पीतसारान् ।
 (इ) भूत्वा यूना वरसचपेयोनि—
 (ई) नृनं दोग्धु याति कान्त सुतायाः ॥

(१) हन्त ! कामिजनमृत्युभूताया अस्या आदेहपातलीलामनुभवामस्तावत् ।
 (२) नमोऽस्त्यस्यै कामुकजनमहाशनये । (३) बाले रामसेने, दुहितृनकान्तयौवन-

ठीक निरुत्तरा । क्या कहती है—“सारय हमें बताता है कि पुरुष अलेख, निर्गुण
 और क्षेत्रज्ञ है।” वाह ! तूने तो हमारा मुँह ही बन्द कर दिया । हमारी इस
 बात चीत में तू उत्कण्ठित हो गई जान पड़ती है । जवानों के साथ सुरति में
 हमें विघ्न डालना नहीं चाहिए । अब तू अपने काम पर जा । वह चली गई ।
 तो मैं भी चली । (धूमकर)

अरे, कैसे यह चारणदासी की माता रामसेना मिनजदा होने पर भी विलास
 भरी चितवन, चाल और हँसी से युवनियों की नफ़ल करती हुई मौजूद है । अरे,
 यह अचरज से भरी है ।

१९—प्रेम के त्रिण हुए मन चाहे भोगोको भोग कर, अपने गुणों से प्रेमियों
 का सार खींच कर, युवकों की दुरमनी और सवर्ष का कारण बन कर, अवश्य यह
 अर अपनी पुरी के यार को दुहने जा रही है ।

हाय ! कामीजनों की मौत बुलानेवाली उसके बुढ़ावी उमर के नगरो का
 मैं मजा लूँ । कामुजनों के लिये इस महावज्र को नमस्कार करूँ । अरी कामिन

१८ (३) अलेख निर्गुण क्षेत्रज्ञ—ये तीन विशेषण सारय दर्शन में स्वीकृत
 पुरुष के लिये तो प्रष्ट रूप में धरित होने जा है, पर इनका महाराज्यरतिसील पुरुषा पर है ।
 अलेख = जो वीर्यांगन करके अलग हो जाता है, किन्तु उसका लेख स्त्री को उठाना पड़ता
 है । निर्गुण = रजोगुण एक गुण है, उसने स्त्रीरत्नस्वरूप होती है, पुरुष निर्गुण रहता है । क्षेत्रज्ञ =
 क्षेत्र का ज्ञाता । क्षेत्र = स्त्री का शरीर । क्षेत्र पर्वी शरीरयो, अमर । क्षेत्रज्ञ = स्त्री का
 रमास्वाद लेनवाला मामला तद्वचने वाला (वनारमा बोली) । परिमार्जिका ने ऐसा मजाक
 किया कि विर का मिहो भूल गई ।

१८ (५) सूक्तशृङ्गा = कामोत्कण्ठित ।

सौभाग्ये कतरस्य कामिनः कुलोत्सादनार्थमभिप्रस्थिता भवती । (४) भोः तद्दर्शने शपथ एव नः प्रतिवचनम् । (५) किं ब्रवीषि—“त्वच्छीलमेव त्वामानोशयति” इति । (६) अलमत्र बहुभाषित्वेन । (७) त्वद्गमनमेव तावदुच्यताम् । (८) किं ब्रवीषि—“दुहिता मे चारणदासी व्यतीतेऽहनि गता धनिकोदवसितम् (९) एनां सङ्गीतक-व्यपदेशोनाकपितुमभिप्रस्थिताऽस्मि” इति । (१०) अहो तु खलु चारणदास्याः प्रमादः । (११) कुतः—कामुकजनसर्वस्वहरणकुशलाया निष्पीतसारपरित्यागसामर्थ्ययुक्ताया-स्तवापि नाम दुहिता भूत्वा शास्त्रोपदेशाग्रहणेन शोच्या खलु सा तपस्विनी (१२) कुतः—

- २०— (अ) लब्ध्वा गम्यं प्राप्य चार्थं यथावत्
 (आ) ज्ञात्वा सम्यङ्निर्धनत्वं च तस्य ।
 (इ) रागात्सकं विप्रगोक्षतुं न वेत्ति
 (ई) मिथ्या तस्याः शास्त्रतत्त्वोपदेशः ॥

(१) किं ब्रवीषि—“संगीतकव्यपदेशेन तां गृहगानयिष्यामि, (२) त्वयाऽपि प्रत्यागतेन तत्रागम्य शास्त्रतत्त्वश्रुति आहयितव्या” इति । (३) एवमस्तु । (४) किन्तु

रामसेना, अपनी पुत्री को अपनी जवानी और सौभाग्य देकर अब किस कामी का घर उजाड़ने के मतलब से तू चली है ? अरे, उसके शास्त्र में तो कसम खाना ही इसका जबाब है । क्या कहती है—“तेरा शील ही तुझे कोस रहा है ।” अरे, बहुत बातचीत करने से क्या फायदा ? कितलिये जा रही है, वही कह । क्या कहती है—“मेरी पुत्री चारणदासी गए दिन धनिक के घर गई थी । उसे संगीतक (महफिल) के बहाने वहाँ से हटा लाने के लिये मैं जा रही हूँ । अरे यह तो चारणदासी की गफ़लत है । कैसे ? कामीजनों का सब मालमता हड़पने में कुशल तथा उनका सार पीकर सीठी की तरह फेंक देने में चतुर तेरे जैसी की बेटी होकर भी वह बेचारी शास्त्र के उपदेश के बिना शोचनीय रह गई ! कैसे—

२०— एक समय उसे गम्यरूप में पाकर और उससे भरपूर रफ़्तक पैदा करके, अब उसकी गरीबी को जानते हुए प्रेममें फँसे उसे वह छोड़ना नहीं चाहती तो ऐसी को शास्त्र के मर्म का उपदेश देना फ़जूल है ।

क्या कहती है—“जल्दसे के बहाने मैं उसे घर ले आऊँगी । तुम लौटते

१९ (५) त्वच्छीलमेव—व्यंग्यार्थ यह है किन्तु शील परफ़ुकर बैठे रह गए, नहीं तो मेरा मुँह लट्ठे ।

१९ (११) शास्त्रोपदेशाग्रहणेन—वैशिक शास्त्र के उपदेश की आवश्यकता तो भीनी ही होती है । बिना पढ़े ही उसे तो तुम्हारे सब विद्या सांत्व लेनी चाहिए । उमने उध न सीखा, पढ़ उर्बा की छापपरवाही है ।

त्वरानुष्ठेयं मित्रकार्यमास्त । (५) तत्समानीय भवत्याः कायमपि साधयिष्यामि । (६) गच्छतु भवती । (७) साधयामस्तावत् ।

(८) अहो ! अविश्वसनीयानि खलु गणिकाजनस्य हृदयानि । (९) कुतः—

२१— (अ) स्निग्धैः प्रश्लिष्टैः क्रीडनैर्लालयित्वा

(आ) हत्वा सर्वस्वं निर्धृष्टाः कामुकानाम् ।

(इ) लुब्धा वेश्यास्तानन्यसंरञ्जनार्थं

(ई) देहान् वेराग्याद् देहित्वत्सन्त्यजन्ति ॥

(१) अहो ! गणिकामातरो नाम कामुकजनस्य निष्प्रतीकारा इतयः । (२) स्वस्त्यस्तु कामुकैभ्यः । (३) विनाशोऽस्तु कामुकजनसर्वस्वहरणकुशलाभ्यो गणिकाजन-मातृभ्यो गणिकामोघालसर्गनिपुणैभ्यः । (४) (परिक्रम्य)

(५) अहो ! राजमार्गस्य कलिः सुकुमारिका नाम तृतीयाप्रकृतिरिति एवाभिधत्ते ।

हुए, वहाँ आकर उसे शास्त्र ज्ञान सिखाना ।” ठीक है । लेकिन अपने मित्र का काम मुझे जल्दी करना है । उसे पूरा करके तेरा काम भी करूँगा । अब तू जा । मैं भी अपने काम पर जाता हूँ ।

अरे, वेश्याओं का हृदय विश्वास के योग्य नहीं होता । कैसे—

२१—स्निग्ध और चिमटने वाली क्रीडाओं से लड़ करके, कामुकों का सब कुछ सफा करके, निर्दयी और लालची वेश्याएँ दूसरों के साथ मजे के लिये उन पहलों को विरक्त होकर ऐसे छोड़ देती हैं जैसे आत्मा शरीर को ।

अहो, खालाएँ कामियों के लिये ऐसी बवाल हैं जिसका इलाज नहीं । उनसे कामियों को भगवान् बचावे । कामुकों का सब कुछ हरण करने में कुशल और गणिकारूपी अमोघ हथियार चलाने में निपुण वेश्याओं की माताओं का सत्यानाश हो । (घूमकर)

अरे, राजमार्ग की कलिकान सुकुमारिका नाम की नपुंसका इधर ही आ रही

२१ (इ) विप्रमोचतुं न चेत्ति—अनि यह है कि जिसका सब धन निचोड़ लिया है ऐसे कामी को छोड़ देना ही उचित है । यदि गणिका इतनी भी नहीं जानती तो वैशिक शास्त्र इससे अधिक उसे क्या सिखाएगा ?

२१ (१) निष्प्रतीकारा इतयः—लाइलाज आकृत ।

२१ (५) कलि = टंटा, कगड़ा, कलकान । राजमार्गस्य कलिः = खुले आम लड़ाई का जड़ ।

२१ (५) तृतीया प्रकृतिः = नपुंसक, हिजड़ा, ज़नगरा । तृतीयाप्रकृतिः पण्डः स्त्रीय पण्डो नपुंसके, अमरकोश ।

(६) अहो अमङ्गलदर्शनेषा । (७) भवतु । (८) अनभिभाष्यैना वक्ष्यमन्तरीकृत्याति-
कमिष्यामस्तावत् । (९) तथा कुर्वन् । (१०) अये अनुधावत्येव माम् । (११) केदानीं
मे गति । (१२) अहो बलवान् इतान्त — (१३) यस्मात्प्रियमभिभाष्यैना व्याघ्रमुत्सा
दिवात्मान मोचयिष्यामि । (१४) किं ब्रवीषि—“अग्निवादयामि” इति । (१५)
वासु अविधवा बहुपुत्रा भव । (१६) अथ च—

२२— (अ) ब्रूदोपाक्षिविचारणोष्ठचलनैर्बाह्योश्च विक्षेपणै—
(आ) गत्या चालकया विलासहसिते स्त्रीविभ्रमा निजिता ।
(इ) निस्पृष्टाकुललोललम्भिरशना श्रोणी निशालायता
(ई) कस्यायासि रतैरतृप्तहृदया गेहाद् विशालक्षणे ॥

किं ब्रवीषि—“राजस्यातस्य रामसेनस्य गृहादागच्छामि” इति । (२) अहो
सफल जीवित तस्य । (३) सुभगे किमिदानीं चक्रवाक्मिथुनस्येव वियोग सवृत्त ।
(४) किं ब्रवीषि—“राजोपस्थान गच्छन्त्या गणिकापरिचारिकया रतिलतिकया (५)
चतुरमधुरहसितरतिचेष्टया सस्नेहललितकृपाक्षत्रिक्षेपाभ्युभिरभिपिष्यमानहृदय समुद्रत
रामाञ्चनिनयमानमदनानुराग (६) स तस्यास्त मदनानुराग शिर प्रणामेन प्रतिगृहीत
वान् । (७) ततस्तत्प्रत्यक्षव्यलीकमसहमानया मया प्रत्यादिष्ट सन् पादयोर्मै पतित ।

हे । उसकी मुलाकात से अब खैर नहीं । ठीक, बिना इससे बोले हुए कपड़े की
ओट देकर मैं इसे उचाकर निकल जाऊँ । (बैसा करते हुए) अरे, यह तो मेरे
पीछे ही दौड़ रही है । अब मेरी क्या हालत होगी ? अरे, काल बड़ा बरपान है ।
इसके साथ भीठी बातें करके बाघ के मुँह में जैसे फँसे हुए अपने आप को छुड़ाऊँ ।
क्या कहती है—“अभिवादन करती हूँ ।” वासु अविधवा और बहुपुत्रा हो ।
और भी—

२२—भौहे तान कर, आँखें चला कर, आँठ फड़काकर, बाहुए फटकारकर,
सुन्दर गतियों से, नखरे की हँसियों से स्त्रियों के नखरों को तूने मात कर दिया है ।
तेरे लम्बे चौड़े नितम्बों पर कूदनी अस्तव्यस्त होकर साफ नीचे झूल रही है । बता
तू रति से अवृत्त रहकर किसके घर से आ रही है ?

क्या कहती है—“राजा के साले रामसेन के घर से आ रही हूँ ।” उसका
जीवन राफ़ल है । सुभगे, चक्रवा चक्रुई के जोड़े की तरह क्या अब उससे वियोग
हो गया है ? क्या कहती है—“राज दरबार में जाती हुई गणिका परिचारिका रति
रतिका की चतुर और मधुर हँसी से युक्त नाम चेष्टा से तथा म्नेह भरे रलित
कृपाक्षों के जल से अपना हृदय सींच कर, रोगटे राडे होने से काम बिकार को
प्रकट करते हुए उसने उसके उस कामानुराग को सिर झुकाकर अगीकार किया

२२ (४) राजोपस्थान = राजसभा, आस्थान मण्डप, दरबार ।

(८) तथापि च मया ईर्ष्यामिभूतहृदयया नैवास्य प्रसादः कृतः । (९) ततो मामसी बलात्कारेण गृहमानीय पर्यङ्कतलमारोप्य मया सहासितः । (१०) स पुनर्मां मदना-
क्रान्तो रजन्यां मदनवेगखेदसुप्तां परित्यज्य (११) तस्या एव गृहं गत्वाऽद्य कतिपयान्य-
हानि नैव गृहमागच्छतीति (१२) पुनः साऽहमनुनयमगृहीत्वा पश्चात्तापेन दक्षमाना
भावसमीपमुपगता गृहच्छ्रया भावं समासादिताऽस्मि । (१३) तद् भावः प्राणसमेन मे
सन्धानं कर्तुमर्हति । (१४) वासु, अहो रामसेनस्य प्रसादः । (१५) कृतः—

२३— (अ) व्याज्ञेपं कुरुतस्तनो न सुरते गाढोपगूढस्य ते
(आ) रागध्वस्तव मासि मासि सुभगे नैवार्तवस्यागमः ।
(इ) रूपश्रीनवयौवनोदयरिपुर्गर्भोऽपि नैवास्ति ते
(ई) खेवं त्वां सगुणां विहास्यति स चेदरस्तुतव त्वक्षयति ॥

(१) भवलिदानीम् । (२) मानिनि तस्यैव स्वोदविसते मां प्रतिपालय । (३) अस्ति मम मित्रकार्यं किञ्चित्त्वरापुष्टेयम् । (४) तत्समानीय तं भगिनीसीभाव्यगर्भितं सुकुमारहृदयानां
त्वद्विधानां युवतीनां भाववह्निपूतं गृहभागत्य चरणयोस्ते पातयिष्यामि । (५) गच्छतु
भवती । (६) गतैषा । (७) गच्छाम्यहम् । (८) अहो कृच्छ्रेण सत्वस्माभिः प्रकृतिजना-

इस को सहन करने में असमर्थ मेरे डांटने पर वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा । फिर भी मैंने ईर्ष्या से अमिभूत होकर उसे माफ नहीं किया । इस पर वह मुझे जवर्दस्ती अपने घर लाकर और पलंग पर बैठकर मेरे साथ बैठ गया । फिर वह मदमाता मुझको रात में कामवेग के खेद से सोती हुई छोड़कर उसके ही घर जाकर कई दिनों से घर नहीं आया । तब मैं उसकी मानमनौतो को अस्वीकार करके पञ्चात्ताप से जलती हुई आपके पास आई हूँ । आपको उस प्राणप्यारे से मेरा मेल करा देना चाहिए ।” वासु, यह रामसेना की भूल है । कैसे—

२३—सुरत में जब तू उसका गाढ़ आलिंगन करती है स्तन बीच में रुकावट नहीं डालते । हे सुभगे, हर ग्रहीने समनायक अतु तुझे नहीं होता । रूप, श्री, और जवानी का दुश्मन गर्भ तुझे नहीं रहता । तुझ जैसी गुणवती को यदि वह छोड़ता है तो उसे रति का उत्सव छोड़ना पड़ेगा ।

अभी टहर । मानिनि, तू उसके घर जाकर मेरी बात देख । मुझे अपने मित्र का काम करने की जल्दी है । उसे खतम करके अपनी बहन (राजा की पत्नी) के सौभाग्य से फूट कर कुप्पा हुए और तेरे जैसी सुकुमार युवतियों के भाव को समझने के अयोग्य उससे तेरे घर पर ही तेरे पैरों में प्रणाम कराऊँगा । अब तू जा ।

२३ (८) प्रकृतिजन—मनुष्य रचना का अमली नमूना अब खो पुरण का भेद नहीं हुआ था, नपुंसक । प्रकृति = आरम्भिक नमूना ।

दात्मा मोचित । (६) अहमप्यस्मत्कार्यमनुष्ठास्यामि । (१०) (परिक्रम्य)

(१०) अये को नु खल्यमममागत्य मामभिवादयति । (११) स्वस्ति भवते ।
(१२) विरेणोदानी मया सलक्षितोऽसि । (१३) पार्थकसार्थवाहपुत्रो धनमित्रो ननु
भवान् । (१४) अथ मृत्यायिसचन्विमुहज्जनदारिद्र्यतमोपहस्य युगतिजनहृदयक्रमुद-
निबोधनकरस्य कुसुमपुरगगनपूर्णचन्द्रस्य कथमय ते व्यसनोपराग सवृत्त ? (१५)
किमतिलाभकाक्षया कुटुम्बसर्वस्वेन सगृहीतगाण्डो देशान्तरमभिगच्छन्न्तरा चोरैरप्या
सादितो भवान् । (१६) आहोस्वित् राज्ञोऽप्यभाचरतस्ते राज्ञाऽपहत सर्वस्वम् ?
(१७) एकाक्षपातमात्रेण धनदस्यापि विभवहरणसमर्थेन धूतेन क्षपितो भवान् ॥ (१८)
किं बहुना—

२४—

(अ) सरूढदीर्घनखलोममलाचिताङ्गो

(आ) ध्यानाभिभूतपरिपाण्डुरशुष्कवक्त्र ।

(इ) अरलक्षणीर्णमलकीर्णविशीर्णवस्त्रो

(ई) नाभासि दिव्यमुनिशापहतो यथैव ॥

(१) किं ववीधि—“यथा रामसेनाया दुहितरि रतिसेनाया परमो मम मदना
नुराग सवृत्त, (२) तस्याश्च मयि तथा । (३) सर्वमेतद् विदित भावस्य । (४)
अतो मातुलौभविकार भ्रात्वाऽपि सा मा न त्यज्यतीति सुहृज्जेन निवार्यमाणैनापि मया

चली गई । मैं भी जाता हूँ । हा । मुद्गिरल से मैंने इस असली नमूने को औरत
(नपुंसक) से जान छुड़ा पाई है । मैं भी अपना काम करूँ । (तूमकर)

अरे, यह कौन आकर मेरा अभिवादन करता है ? तेरा करयाण हो ।
बहुत दिनों के बाद दिखलाई दिया । तू पार्थक सार्थवाह का पुत्र धनमित्र है न ?
कैसे तू भृत्य, याचक जन, सम्बन्धी और मित्रा के दरिद्रता रूपी अधकार को हटाने
वाला, युवतियों के हृदय कमल को खिलाने वाला, कुसुमपुर के आकाश का पूर्ण
चन्द्र, इस आफत रूपी ग्रहण में फँस गया ? कहीं बहुत मुनाफे का इच्छा से
बुद्धि भर के धन से माल खरीद कर देसावर जाते हुए तुझे चोरो ने तो नहीं
लूट लिया ? अथवा राजा को बुराई करने से राजा ने तो तेरा सब कुछ नहीं छीन
लिया ? या पलक मारने भर में कुत्तों का भी सर्वस्व हरण करने में समर्थ जूए ने तो
तुझे खतम नहीं कर दिया ? बहुत कहने से क्या—

२४—बड़े हुए नख, केश, तथा मैल से भरे शरीर वाला, चिन्तासे अभिभूत,
पीले सूखे मुँह वाला, खुरदरे, पुराने, गन्दे और फटे कपड़े पहने हुए तू दिव्य मुनि
के शाप के मारा हुआ जैसा मालूम पड़ रहा है ।

क्या कहता है ? रामसेना की पुत्री रतिसेना पर मेरा बड़ा प्रेम पैदा हो गया
और उसका मुँह पर । यह सब आपको मालूम है । अपनी माँ की लाञ्छ जानते
हुए भी वह मुझे नहीं छोड़ेगी, इसलिए मित्रों के मना करने पर भी मैं अपना सब

कुटुम्भमस्य तस्यै युगपदेवोपनीतम् । (५) ततस्तदग्रहीत्वा कतिपयेवेवाहम्मु गतेषु
स्नानव्यपदेशेन स्नानीयशाटिका परिधाप्य (६) मामशोभनिसादीगमा प्रोक्ष्य द्वारं
चापिहिते (७) अशोकप्रनिम्नरक्षिणि विदितपरमार्थे पुरपैच्छिद्रद्वारेण निष्कामितोऽहम् ।
(८) ततोऽस्मिन्नेव नगरे अजितमुपित्वा कथमिदानीं बह्वन्वहानि दीनमास पश्यामीति
अरण्यमभिप्रस्थितेन मया यदृच्छया भाग एवासादित । (९) सुसुषुप्तमप्येतद् भागस्य
निवेदितम् । (१०) तदिदानीं भागेनानुज्ञात स्वात्मनि श्रेयम् चिन्तयिष्यामि” इति ।
(११) अहो ! लोभाभिनिर्गता वेगस्य । (१२) अहो ! कुटिलस्वभावात्ता च अत्रागना
नाम् । (१३) एहिं भो परिपञ्चामह तावद् भवन्तम् । (१४) दिष्टया जीवन्त त्वा
पश्यामि । (१५) कुत —

२५—

- (अ) शान्तिं याति शनैर्महोपधिबलादाशीगिपाणां निप
(आ) शन्यो मोचयितुं मदोक्तकटादात्मा गजेन्द्राद् वने ।
(इ) ग्राहस्यापि मुग्धान्महार्णवजले मोक्ष कदाचिद् भवेत्
(ई) वेशस्योऽवडवामुत्सानलगतो नैवोत्थितो दृश्यते ॥

(१) अथ भद्रमुख भवतो निवेदस्य कारणं रतिमेना, आहोस्मिदस्या जननी ?
(२) नि नर्नापि—“किमित्यनृतमभिधास्यामि । (३) रतिसेना मा प्रति सस्नेहैव ।
(४) मातृदापेणैव सवृत्तम् । (५) यदि तावद्भाग स्वल्पमपि तस्या मातुरविदित
मेव मे समागम प्रति यत्नं कुर्यान् ततो मे प्राणा प्रत्यानीता भव्यु” इति । (६) जाने

मालमता एव साय ही उमके यहाँ पहुँचा आया । मन कुठ लेकर कुठ दिन बीतने
पर यह स्नान के बहाने से नहाने की साड़ी पहनाकर मुझे अशोक वन की बावड़ी
में पहुँचा गई । जन द्वार बन्द हो गया तो अशोकाटिका के रक्षक पुरुषों ने
मन्चा हाल जान कर मुझे चोर दरवाजे से निराल बाहर किया । इसी नगर में
इज्जत से रहकर अब कैसे लम्बी गरीबी झेरेगा ? उस विचार से जंगल की राह
लेकर जाते हुए मुझे अचानक आप मिल गए । ये सब सुन बातें मैंने आपसे
निवेदन कर दीं । अब आपका कहे अनुसार अपनी गलाई सोचूँगा ।” अहो, वेश में
लोभ की चिन्ता पड़ है ? अहो, वेश्याओं के स्वभाव की रैमी कुटिलता है ? आ,
पहले तुझे छाती से लगा लूँ । बधाई है कि मैं तुझे निन्द्रा देव रहा हूँ । कैसे—

२५—महोपधि के उल से मापो का निप भी धीरे धीरे धान्त हो जाता
है । वन में मनचाले हाथी के मस्तक से अपने को छुड़ाना भी सम्भव है । समुद्र में
ग्राहक मुग से भी शायद दुत्कारा हो सकता है । पर वेष्ट्याख्या बड़वान्त में पड़ा
हुआ मनुष्य फिर उठना हुआ नहीं दिखाई पड़ता ।

अरे भग्मानम्, तरे दुग्ग का कारण रतिमेना है या उमसी मों ? क्या
कहता है—“मं झूठ क्यों मोचूँ ? रतिमेना तो मुच प्यार ही करती है । म्याला की
रुमाशी से ही गेमा हुआ । यदि उमसी माना के कुठ जाने बिना ही आप मेरे
समागम के लिये प्रयत्न कर दें तो मेरे प्राण लौट आँगे ।” उमका तरे लिये

तस्यास्तत्रयनुरागमन्यस्मादपि जनान्मया नाम श्रुतम् । (७) हा रोदित्ययम् । (८) अलमल विपादेन । (९) ममेदानीं किञ्चिन्नरानुष्ठेय मित्रवर्त्यमस्ति । (१०) तत्स-
म्याद्य पुनरागम्य तथापि कार्यं साधयामि । (११) गच्छतु भवान् । (१२) अहो
निपुणता वेश्याज्ञानानाम् । (१३) कुत —

- २६— (अ) यथा नरेन्द्रा० कुटिलस्वभावा
(आ) स दुष्टत मन्त्रिषु पातयन्ति ।
(इ) तथैव वेश्या शठधूर्तभावा
(ई) स दुष्टत मातृषु पातयन्ति ॥

(१) अहो गत एव तपस्वी सलजनोपाध्याय । (२) वयमपि साधयामस्तावत् ।
(३) (परिक्रम्य)

(४) अये वसन्तकोकिलानुकारिणा स्निग्धमधुरेण स्वरैण कया नु सल्वस्मन्नाम-
धेयामिव्यक्तिं कियते । (५) (विलोक्य) (६) अये प्रियगुप्तेना । (७) अयि
प्रियगुप्तेने अयमहमागच्छामि । (८) किं वशीपि—“अभिवादयामि” इति । (९)
वासु मतिगृह्यतामियमाशी —

- २७— (अ) रमण निवारयन्ती
(आ) कोमलकरचरणताडनै शयने ।
(इ) तदतिरतिरभसविगृहित-
(ई) सुविपुलजघना सुरमुपेहि ॥

प्रेम मैं जानता हूँ । दूसरो से भी मैंने सुना है । हा, यह तो रो रहा है । अरे अपना
दुखड़ा खतम कर । मुझे अभी मित्र का थोड़ा काम जल्दी ही निपटाना है । उसे
खतम करके फिर लौट कर तेरा भी काम करूँगा । अब तू जा । अहो वेश्याओं
की चतुराई ! कैसे—

२६—जैसे कुटिल स्वभाव वाले राजा अपना बुरा काम मन्त्रियों पर डाल
देते हैं, उसी तरह शठ और धूर्त वेश्याएँ अपनी बुराई अपनी माताओं पर
डालती हैं ।

दुच्छो का गुरू यह ढोंगी चला गया । मैं भी अपने काम पर जाता हूँ ।
(धूमकर) —

अरे वसन्त की वन कोकिल की तरह स्निग्ध मधुर स्वर से कौन मेरा नाम
पुकार रहा है ? (देखकर) अरे, प्रियगुप्तेना है । मैं जा रहा हूँ, क्या कहा—
“अभिवादन करती हूँ” । वासु मेरा असीस ले—

२७—अग्न्या पर लट हाथ की कोमल मार से अपने प्यारे को हटाती हुई
और प्रवृद्ध रतिवेग से मीठी गई तू विपुल जघन के साथ सुखी हो ।

(१) वासु अति परिश्रान्तजघनाप्यायनकरस्य नानागन्धाधिवासितस्य सुरभि गन्धिनो गन्धतैतस्यात्माङ्गस्पर्शप्रदानेन किमनुग्रहः क्रियते ? (२) मद्रमुत्ति, अवतारित-घटाग्रैवेयककक्षाया राजोपवाहकरेशोरिवावमुकालङ्काराया निर्व्याजमनोहररूपायाश्चारु-शोभं ते वपुर्यो न पश्यति स खलु वञ्चितः स्यात् । (३) कुतः—
२८—

(अ) मुकालङ्कारशोभां नखरपदचिता गन्धतैलाङ्गरागा—

(आ) मीपत्ताम्रान्तनेत्रां प्रहसितवदना यौवर्न स्पृष्टस्तनाढ्याम् ।

(इ) सुश्लक्ष्णाद्धोरुवस्त्रा व्यपगतरशना व्यायतश्रोणिबिम्बा

(ई) दृष्ट्वा त्वा चारुरूपा प्रविचलितघृतिर्मन्मथोऽप्यातुरः स्यात् ॥

(१) किं ब्रवीषि—“प्रियवचनं भावस्य” इति । (२) भोः किमयं सेवावादः । (३) अलं ब्रीडामुत्पाद्य । (४) आह्वानप्रयोजनं तावदुच्यताम् । (५) किं ब्रवीषि—“श्रूयताम्” इति । (६) वासु, अवहितोऽस्मि । (७) किं ब्रवीषि—“भगवतोऽप्रतिहत-शासनस्य कुसुमपुरपुरन्दरस्य भवने पुरन्दरविजयं नाम सङ्गीतकं यथारसामिनयमभिने-

वासु, अत्यन्त थके जघन की हुलसाने वाले नाना गन्धों से सुवासित तैल को अपने अंगों में किससे मलवाने की तूने कृपा की ? हे मद्रमुखी, घंटा, हैकल, और बद्धी उतारी हुई राजा की खासा हथिनी की तरह अलंकार उतार देने से स्वाभाविक सौन्दर्य युक्त तेरा मनोहर रूप जिसने नहीं देखा, उसे ठगा हुआ समझना चाहिए । कैसे—

२८—मोतियों के गहनों से सजी, नाखूनों की खरोचों से भरी, सुगन्धित तैल और अंगराग लगाए हुए, ललछोह आँखों वाली, हँसोड, जबानी की गर्मी से उमरे स्तनों वाली, बागीक जाधिया पहने, करधनी उतारे, चौड़े नितम्ब वाली, तुझ जैसी सुन्दरी को देखकर कामदेव का मन भी डगमगा जाय ।

क्या कहती—“आपकी बातें प्यारी हैं ।” अरे, क्या यह खुशामद है ? लजा मत । मुझे पुकारने का कारण बता । क्या कहती है—“सुनिष्” । वासु, मैं साधवान हूँ । क्या कहती है—“भगवान् अप्रतिहतशासन कुसुमपुर-पुरन्दर (पाटलिपुत्र) के

२७ (२) राजोपवाह करेणु—राजा की मवारी की निजो हथिनी ।

२८ (३) अधोरु—जोधिया, सुदने तक का बल, बनिया । अधोरुर्क वररुचिण स्याद्यष्टातकमस्त्रियाम्, अमरः ।

२८ (७) भवतोऽप्रतिहतशासनस्य कुसुमपुरपुरन्दरस्य भवने—तह सघाट् कुमारगुप्त का स्पष्ट उल्लेख है जो महेन्द्र या महेन्द्रादित्य कहलाते थे । कुसुमपुर पुरन्दर महेन्द्र का पर्याय है ।

कुमार गुप्त की सुवर्ण मुद्राओं पर ये विरुद पाए गए हैं—श्री महेन्द्र, प्रजित महेन्द्र, श्री महेन्द्रादित्य, सिंहमहेन्द्र, महेन्द्रगज, महेन्द्रखड्ग, अरवमेधमहेन्द्र ।

२८ (७) पुरन्दरविजय नामक संगीतक—उस युग में संगीतक नामक संगीत-प्रधान अभिनय का बहुत प्रचार था । ‘मदनाराधन’ नामक संगीतक का उल्लेख पहले भी चुका है (उभयाभिसारिका ३ (८)) ।

तव्यमिति देवदत्ता सह मे पणितः संवृतः । (८) अत्र ममाभ्युदयस्य भावः कारणम्”
इति । (९) मा मेवम् । (१०) सकलशशाङ्कविमलायां रजन्या नास्ति दीपप्रयोजनम् ।
(११) अपि च बलवतो नास्ति सहायसम्पत्प्रयोजनम् । (१२) भवत्येवात्र कारणम् ।
(१३) अस्मिन्नेवार्थे त्वदर्पितमदनुरागहृदयेन रामसेनेनाभ्यर्थितोऽस्मि ।

(१४) कथं सभ्रुविलासविक्षेपमीपत्कुञ्चितनयनकपोलनिवेद्यमानान्तर्गतप्रहर्ष
प्रचलिताधरकिसलयं मुखकमलं (१५) परिवर्त्य परिजनमवलोकयन्त्याऽनया हसितम् ।
(१६) हस्त प्राप्तं सेवाफलं रामसेनेन । (१७) अहो देवदत्ताया अकुशलता (१८)
या त्वया सह संपर्प कुरुते । (१९) यस्यास्तावत्प्रथमं रूपश्रीनवयौवनद्युतिकाम्वादीनां
गुणानां सम्पत्, (२०) चतुर्विधाभिनयसिद्धिः, द्वात्रिंशद्विधो हस्तप्रचारः, अष्टादशविधं
निरीक्षणं, षट् स्थानानि, गतिद्वयं (त्रयं), अष्टौ रसाः, त्रयो गीतवादित्रादित्थमा,

राजा) के महल में पुरंदरविजय नामक संगीतक को रसाभिनय के अनुसार खेलने
के लिये देवदत्ता के साथ मुझे भी बयाना (पणित) मिला है । इस मेरे अभ्युदय का
कारण आप हैं ।” अरे यह बात नहीं है । पूर्ण चन्द्र से खिलखिलाती चाँदनीवाली
रात को दीप की आवश्यकता नहीं । बलवानों को किसी अन्य से सहायता की
जरूरत नहीं । तू स्वयं ही इस सम्मान का कारण है । इसीलिए तुझमें अपने हृदय
का अनुराग होने से रामसेन मेरी खुशामद करता है ।

भौंहें चलाकर, आँखें और गाल कुछ सिकोड़ कर भीतरी उल्लास प्रकट
करते हुए, फड़कते अधर वाले मुख को धुमाकर, प्रियंगुसेना अपने परिजनों को
देखकर हँस पड़ी । बस रामसेन को सेवा का फल मिल गया । बाह रे, देवदत्ता की
बेधकूफी, जो वह तेरे साथ रगड़ा करती है । रूप, श्री, नवयौवन, कान्ति
आदि गुणों की सम्पत्ति, चार तरह के अभिनयों में सिद्धि, बत्तीस तरह के हस्त
प्रचार, अठारह तरह के निरीक्षण, छह स्थान, तीन गतियाँ, आठ रस, तीन गाने और

२८ (२०) चार प्रकार की अभिनय सिद्धि—आंगिक, वाचिक, आहार्य और
सार्विक ये चार प्रकार के अभिनय पाठ्य में होते थे (नाट्यशास्त्र ६१२३, बडौदा संस्करण) ।

२८ (२०) बत्तीस प्रकार के हस्तप्रचार—चतुरस्र, उद्विष्ट, तलमुख, स्वस्तिक,
त्रिप्रकीर्ण, अराज्ञ, खटकामुख, आबिह्वलन, सूच्यास्थ, रेचित, अर्धरेचित, उत्थान, वंचित,
पल्लव, नितम्ब, केशवन्ध, ललाहस्त, परिहस्त, पक्षवचितक, पक्षप्रद्योतक, गरुडपक्ष,
द्वन्द्व, ऊर्ध्वमंडली, पार्श्वमंडली, उरोमंडली, उरोपार्श्वमंडल, मुष्टिक, स्वस्तिक, नलिनी,
पक्षकोशक, भलपल्लवोद्गम, ललित और वलित (नाट्यशास्त्र, १११-१६)

२८ (२०) अठारह भौत की दृष्टियाँ—वस्तुतः नाट्यशास्त्र ८१४०-६५ में दृष्टीस
प्रकार की दृष्टियाँ कही गई हैं ।

२८ (२०) छह स्थान—वैष्णव, समपाद, वैशाख, मण्डल, प्रयालीढ, आलीढ
(नाट्य० १०१५१)

२८ (२०) तीन गति—स्थित, गम्य, द्रुत (नाट्य० १२११६) ।

(२१) इत्येवमादीनि नृत्तागानि त्वदाश्रयेणालङ्कृतानि । (२२) अथवा अनेनापि वेपेण देवासुरमहर्षिमनोनयनहरणसमर्थानामप्सरोगणानामपि लङ्घनसमर्थेति त्वा पश्यामि । (२३) अपि च—

२६—

(अ) प्रतिनर्तयसे नित्यम्

(आ) जननयनमनासि चेष्टितैर्ललितैः ।

(इ) किं नर्तनेन सुभगे

(ई) पर्याप्ता चारुलीलैव ॥

(१) अये ग्रीडिता । (२) हन्त अनेनैव ग्रीडालङ्कारेण विसजिताः स्मः ।

(३) गच्छामस्तावत् । (४) (परिक्रम्य)

(५) अये किन्तु खल्वैषा नारायणदत्तायारचेष्टिका कनकलता नाम चूर्णामोदित कर्कशस्तनयुगला विविधकुसुमालङ्कृतकेशहस्ता किमपि सलु ग्रहष्टवदना मदविलास-स्खलितपदविन्यासा इत एवामिवर्तते । (६) अभिभाषिष्ये तावदेनाम् । (७) कथ-मन्तिकमुपेत्य मामभिवादयति ? (८) वासु किं ब्रवीषि—“अभिवादयामि” इति । (९) वासु, प्रियस्य दयिता भव । (१०) भवति, चरणकमलविन्यासेन किमयं मार्गानु-ग्रहः क्रियते । (११) किं ब्रवीषि—“प्रियवादी सलु भावः” इति । (१२) भद्रे नैप सस्तयः । (१३) किं ब्रवीषि—“अनुगृहीताऽस्मि” इति । (१४) सर्वं तावत्तिष्ठतु । (१५) किमिदानीं चक्रनाकमिथुनस्येन नियोगः सवृत्तः ।

यजाने की लय आदि नृत्ताग तेरा आश्रय पाकर स्वयं तुझमें शोभा पाते हैं । अथवा इसी वेप में तुझे मैं देव, असुर, और महर्षियों के मन और आँखें चुराने वाली अप्सराओं को भी पड़ा देने में समर्थ देखता हूँ । और भी—

२९—अपनी ललित चेष्टाओं से तू सदा लोगों के मन और नेत्रों को नचाया करेगी । हे सुभगे, नाचने से क्या, तेरी सुन्दर लीला ही पर्याप्त है ।

अरे, लजा गई । बाह, इस लज्जा रूपी अलङ्कार से मुझे सौगात देकर निदा कर दिया । तो मैं चलूँ । (घूमकर)

अरे, यह जरूर नारायणदत्ता की चेरी कनकलता अपने कठिन स्तनों को चूर्ण से सुगन्धित करके, अपने जूड़े में भाति भाति के फूलों को सजाकर हँसी-मुशी के साथ, मद के विन्यास से डगमग पैर रखती हुई इधर ही आ रही है । तो इसमें बातचीत क्यों । क्यों पास पहुँचकर मेरा अभिवादन करती है ? वासु, क्या कहती है—“अभिवादन करती हूँ ।” वासु, प्यारे की प्यारी बन । तू अपने चरण कमलों के विन्यास से रास्ते पर क्यों कृपा कर रही है ? क्या कहती है—“मैं अनुगृहीत हो गई ।” छोड़ इन सन आतों को । जैसे चक्रवा-चक्रवा ना जोड़ा बरग हो गया ?

(१६) किं ववीपि—“ईर्ष्याभिभूतहृदयायां परित्यक्तस्नानशयनभोजनालङ्कारायां मशोकवनिकायामशोकत्रालवृक्षसंश्रिते शिलातल उपविष्टायां (१७) ईपत्पर्याप्तचन्द्र-मण्डलदर्शनेनानिभृतमधुररवेण वसन्तकुसुमगन्धामोदकर्कशेन दक्षिणपथेन च परिवर्धित-सन्तापायां (१८) सखीजनमधुरवचनैराश्वास्यमानायामस्मदञ्जुकायां (१९) मशोक वनिकाभ्यांशे कोऽपि खलु पुरुषः सन्दिष्ट इव मदनेनाव्यक्तकाकली रचनामूर्च्छनां वीणां कृत्वा इमे वक्त्रापरपत्रे गायन्नतिक्रान्तः ।

- ३०— (अ) निष्फलं यौवनं तस्य
 (आ) रूपं च विभवश्च यः ।
 (इ) यो जनः प्रियसंस्तको
 (ई) न क्रीडति वसन्तके

(१) अपि च—

- ३१— (अ) शशिनममिसमीक्ष्य निर्मलं
 (आ) परभृतरम्बरं निशम्य वा ।
 (इ) अनुनयति न यः प्रियं जनं
 (ई) विप्लवतरं भुवि तस्य जीवितम् ॥ इति ।

क्या कहती है—“डाह से भर कर, स्नान, शयन, भोजन और अलंकार छोड़े हुए, अशोकवनिका में अशोक के छोटे वृक्ष के नीचे शिलातल पर बैठी हुई, नए चन्द्रमंडल के देखने से, भौरों की झनकार तथा वसन्त के फूलों के गन्धामोद से कर्कश बनी हुई, दक्खिनी वायु से सन्तापित मेरी मालकिन (अञ्जुका) को जब सखियों मधुर वचनों से दिलासा दे रही थीं, तब सामने से कोई आदमी अशोकवनिका के पास में काम से डसे हुए की तरह अस्फुट काकली स्वर में एवं वीणा से मूर्च्छना छेड़ता हुआ इन वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों को गाता हुआ निकल गया ।

३०—उस आदमी का रूप, यौवन और विभव निष्फल है जो प्रिया के साथ मिलकर वसन्त में क्रीड़ा नहीं करता ।

और भी—

३१—निर्मल चन्द्र को देखकर अथवा कोयल की प्यारी बोली सुनकर जो प्रियजन को नहीं मनाता उसका संसार में जीवन व्यर्थ है ।

१९ (१९) अव्यक्तकाकली—काकली—निषाद स्वर का एक गेद, भाषुनिक शब्द निषाद ।

१९ (१९) मूर्च्छना—क्रम से स्वरों का आरोहावरोह । आरोहणानरोहणक्रमेण स्वर सप्तकम् । मूर्च्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः ॥ मतंग, बृहद्देशी ।

(१) ततस्तेन गीतकेन शिथिलीकृतमानपरिग्रहाऽस्मदञ्जुका आयुष्मदागमन-
मभ्यप्रतिपालयन्ती मामेवाह्वय पादचारेणैवास्मदमर्तुदारकगृहमभिप्रस्थिता । (२) यथैवा
स्मदमर्तुदारकोऽपि वसन्ताकान्तशिथिलीकृतधृतिर्भूत्वा सह केनाप्यस्मदञ्जुकामनुनेतु-
मागच्छन् वीणाचार्यस्य विश्वावसुदत्तस्योदवसितद्वार्यस्मदञ्जुका समासादितवान् । (३)
ततस्तौ किञ्चिदप्रतिपद्यमानौ दृष्ट्वा यदृच्छया निर्गतेन विश्वावसुदत्तेनात्मन उदवसितमेव
प्रप्रेषितौ । (४) ततः प्रमातेऽस्मदञ्जुकयाऽहमभिहिता “भावनेशिकाचल गृहीत्वागच्छ”
इति । (५) तदागम्यताम्” इति । (६) अहो श्रुतिमुत्त निवेदित भवत्या । (७)
किमन्या ते प्रीतिमुत्पादयिष्यामि । (८) प्रतिगृह्यतामियमाशीः—

३२—

(अ) तव भवतु यौवनश्रीः

(आ) मियस्य सततं गतं मियतया त्वम् ।

(इ) अनवरतमुचितमभिमत-

(ई) सुपभोगसुखं च ते भवतु ॥

(१) गच्छाम्यतः, (२) (परिक्रम्य) (३) किमाह कनकलता “एतद्गृहान्
प्रविशामः” इति । (४) बाढ प्रविशामस्तावत् । (५) (प्रविश्य) (६) अलमल
सम्रमेण । (७) आस्तामास्ता कामियुगलम्—

३३—

(अ) आत्मगुणैर्न वसन्तो

(आ) यथाऽद्य युवयोः समागममकर्णीत् ।

उस गीत से मान शिथिल हो जाने पर हमारी मालकिन आयुमान् के
आगमन की बात भी न जोहती हुई मुझे बुलाकर पैदल ही मालिक के घर चली । उसी
तरह हमारे मालिक भी वसन्त के आगमन से अधीर होकर किसी तरह मालकिन को
मनाने के लिये वीणाचार्यविश्ववसुदत्त के घर के द्वार पर हमारी मालकिन से मिल गए ।
उन दोनों का दाँव न लगते देखकर अचानक निकले हुए विश्ववसुदत्त ने उन्हें
अपने घर में घुसा लिया । सबरे मालकिन ने मुझसे कहा—“भाव वैशिकाचल के
लेकर आ ? तो आप चलिए ।” बाह ! तूने कानों को सुख देने वाली बात कही ।
मे तेरी दूसरी क्या भलाई करूँ ? मेरा यह आशिर्वाद ले—

३२—तेरी यौवन श्री नित्य बनी रहे । तू सदा प्यारे की प्यारी बन । तुझे
अनवरत उचित और मनचाहे उपभोगों के सुख मिलें ।

तू आगे जा (घूमकर) कनकलता ने क्या कहा—“इस घर के अन्दर
चले ।” ठीक, चलता हूँ । (घुसकर) अरे, घनडा मत । अरे, जुगलजोड़ी विराज-
मान रहे ।

- (३) ऋतवस्तथैव सर्वे
(३) कुर्वन्तु समागम कलहे ॥

(१) आत्मगुणगर्वितेन वसन्तेनाहमपि वञ्चितः । (२) यतो युवयोः समागमवहिष्टतः । (३) किमिदानीमभिधास्यामि । (४) अथवा नास्त्यत्रापराधो वसन्तस्य । (५) कुत —

- ३४— (अ) उद्यानानि निशाश्च चन्द्रसहिता वीणाश्च रक्तस्वरा
(आ) गोष्ठी दूतिजनो विचित्रचनो नानमिधाश्चर्तनः ।
(इ) नैतत् कामिजनस्य सङ्गमविधौ सञ्जायते कारण
(ई) ह्यन्योन्यस्य गुणोद्भवेरुत्तरे रागोच्छ्रयः कारणम् ॥

(१) तस्मादन्यजनदुर्लभेन परस्परगुणातिशयनिचितेनात्मगुणोपनीतेन मदन-
तन्त्रसारेण कुसुमपुरप्रकाशेन युयोरैव रागेण वञ्चिता स्म । (२) किं ब्रूथ “आनयो
रागोऽपि भावस्यैव प्रयत्नजनितः । (३) तेन भाव एव समागमकारणम् । (४)
वृत्स्नमिदानीं पाटलिपुत्रं यस्थ वचनलीलामनुभवति स कथं कामिजनवचनविशेषैरति-
शयितो भवेत्” इति । (५) कथाप्रसंगेन सुरतनृपितस्य कामियुगलस्य रतिव्याप्तौपः
परिहर्तव्यः । (६) तदनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

३३—अपने गुण से वसन्त ने जैसे तुम दोनों का समागम करा दिया वैसे ही सब ऋतुएँ कह न कामिजनो का समागम कराँयें ।

आत्मगुण गर्वित वसन्त ने मुझे भी ठग लिया, क्योंकि तुम दोनों का समागम मेरे बिना ही हो गया । अब मैं क्या करूँ ? इसमें वसन्त का भी अपराध नहीं है । कैसे—

३४—सुन्दर उद्यान, चौदनी भरी रात, सुरीली वीणा, गोष्ठी, दूतियाँ, विचित्र बातें, तरह तरह की ऋतुएँ—ये सब चीजें कामी जनो को मिलाने का कारण नहीं बनता । उसका कारण है एक दूसरे के अकृत्रिम गुणों को जानने से प्रेम का ऊँचा होना ।

इसलिए दूसरा मैं दुर्लभ, परस्पर के गुणों की अतिशयता से सवर्धित, आत्म-
गुण से उत्पन्न, कामशास्त्र के निचोड़, और कुसुमपुर में सुविदित तुम दोनों के प्रेम ने मुझे ठग लिया (अर्थात् तुम्हें एक दूसरे से मिला दिया, मेरी आवश्यकता न पड़ी) । तुम क्या कहते हो—“हम दोनों का प्रेम भी आपके ही प्रयत्न से पैदा हुआ । इसलिए आप ही हम दोनों के समागम के कारण है । इस समय सारा पाटलिपुत्र जिसरी बातों में मजा लेता है, कामिजनो के वचन उमरी महिमा पूरी तरह कैसे कह सकते हैं ?” सुरत के प्यासे कामि युगल की रति में बहुत बातचीत करके निम्न नहीं डालना चाहिए । आज्ञा दे मैं जाना चाहता हूँ ।

(भरतनाम्यम्)

३५—

(अ) व्याकोचाम्भोजकात् मदमुद्रुष्यित चारुनिस्तीर्णशीम

(आ) जातस्त्य प्रीतियुक्त प्रिययुगतिमुग्य वीक्षमाणो यथाद्य ।

(इ) एव सस्यधियुक्ता जलनिधिरशना मेरुविन्ध्यस्तनादरा

(ई) प्रीतिं प्राप्नोतु सर्वा श्रितियधिकगुणा पालयन्तो नरेन्द्र ॥

(?) (इति निष्पान्तो निट)

इति श्रीमद्भरुचिमुनिवृत्तिरुभयाभिसारिका नाम भाण समाप्त ।



३५—ग्विले कमल की तरह सान्त, मद भरी मीठी बातें कहने वाला, और छिगन्ती घोभा से सुन्दर अपनी युग्मी प्रिया का सुख देखकर जैसे तुम आज प्रसन्न हुए हो, वैसे ही धान्य से भरी, समुद्र का मेखला वाली, मेरु और विन्ध्य रूपी स्तनों से सुन्दर, अधिक गुणवर्ती सारी पृथ्वी का पालन करते हुए 'नरेन्द्र' भी प्रसन्न हों ।

(निट जाता है)

वरुचि मुनि की वृत्ति उभयाभिमारिका नाम भाण समाप्त



श्री
महाकवि—
श्यामिलकविरचितं
पादताडितकम्

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

- १— (अ) देहत्यागेन शम्भोर्नयनदुतचहे भानितो येन कोप
 (आ) सेन्द्रा यस्यानुशिष्टि स्रजमिव विबुधा धारयन्त्युत्तमाङ्गैः ।
 (इ) पायात्काम स युष्मान् प्रविततवनितात्तोचनापान्नशाङ्गौ
 (ई) बाणा यस्येन्द्रियार्था मुनिजनमनसा सादका भेदकाश्च ॥
- (१) अपि च—
- २— (अ) सभ्रूक्षेप सहास स्तननिहितकरामीक्षमायेन देवा
 (आ) सन्त्रासक्षितयाम्भि सह गणपतिभिर्नन्दिना वन्दितेन ।
 (इ) पायाद्गुण्यनेतुर्वृषपतिरुक्कदापाश्रयन्यस्तदोष्णा
 (ई) यस्य क्रुद्धेन बाह्य करणमपहत शम्भुना न प्रभातः ॥

नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश

१—शिव की नेत्राग्नि में अपने शरीर की आहुति देकर जिसने उनके क्रोध का मान रखा, जिसकी आज्ञा माला की तरह इन्द्रसहित देवता अपने शिरों पर चढ़ाते हैं, जो वनिनाओं के फैले हुए नेत्रों की टेढ़ी चित्तों से अपना धनुष बनाता है, जिसके निपयरूप बाण मुनियों के मन को भी पीड़ा पहुँचाते और भेद देते हैं ऐसा कामदेव तुम्हारी रक्षा करे ।

और भी,

२— देवी के स्तनों पर हाथ रखकर भौंहें नचाते हुए, हँसी के साथ उन्हें देखते हुए, डर से चुपपी साधे हुए गणनायका सहित नन्दी द्वारा वन्दित, एव वृषपति के कंधे पर हाथ रखकर खड़े हुए शिव जिसका प्रभाव नष्ट मिटाने के, यद्यपि क्रुद्ध होकर उसका शरीर उन्होंने हर लिया, ऐसा कामदेव आपकी रक्षा करे ।

१ (ई) इन्द्रियार्था — इन्द्रियों के विषय ।

१ (ई) सादका — शिथिल या निश्चय करनेवाले ।

२ (इ) अपाश्रय = भावस्थान, सहारा ।

(१) एवमार्यमिश्रान् शिरसा प्रणिपत्य विज्ञापयामि । (२) यद्वयमार्यश्या-
मिलकस्य कृति पादताडितकं नाम भाणं प्रयोक्तुं व्यवसिताः । (४) कुतः—

३—

- (अ) इदमिह पदं मा भूदेवं भवत्विदमन्यथा
(आ) कृतमिदमयं ग्रन्थेनाथो महानुपपादितः ।
(इ) इति मनसि यः काव्यारम्भे कोर्भवति श्रमः
(ई) सगयनजलो रोमोद्भेदः सता तमपोहति ॥ .
(अ) निर्गम्यता षक्विलालसमप्रचारे—
(आ) रार्यैश्च राजसचिवैः शमवृत्तिमिरच ।
(इ) तिष्ठन्तु डिण्डिकविनर्मकलाविदग्धा
(ई) निर्मक्षिकं मधु पिपासति धूर्तगोष्ठी ॥

आर्यमिश्रों को सिर नवा कर कहता हूँ । हम सब आर्य श्यामिलक की रचना
पादताडितक नाम भाण के अभिनय का आयोजन कर रहे हैं । हमें उस कवि के
परिश्रम को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिए । कैसे—

३— यहाँ यह पद नहीं होना चाहिए; यह पद ऐसे होना चाहिए; यह पद ठीक
नहीं बन पड़ा ; ग्रन्थ में इस अर्थ का बड़ा चमत्कार उत्पन्न हुआ है; इस प्रकार
काव्य रचना के पूर्व कवि के मन को जो श्रम होता है उस श्रम को सहृदय रसिकों
के नेत्रों में भरे हुए आँसू और पुलकित शरीर दूर करते हैं ।

४—बागल और बिल्ली की तरह चलने वाले राजमंत्री और सन्त रफूचककर

४ (अ) विलाल = बिडाल, हिन्दी बिलार ।

४ (आ) राजसचिवैः शमवृत्तिमिश्च—राज्याधिकारी और साधु सन्त ये दोनों
ही अपने को आर्ष कहकर डिण्डिक और विटों की स्वतन्त्रता में बाधा डालते हैं, अतएव ये
वही दूसरी जगह सुँह काला कर लें तो विटों का व्यापार बेखर्चके चले ।

४ (इ) डिण्डिक = गुंडा, 'लुगाडा' । यह शब्द कोशों में नहीं है, किन्तु
गुजराती भाषा में इसका रूप 'डांड्या' (भावारा लुब्धा) प्रचलित है । आगे 'लाडडिडिन्'
(१७१७) शब्द आया है । श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने एक बुन्देलखंडी कहावत बताई
है—तो डंडी न एक बुन्देलखंडी । बुन्देलखंड का एक व्यक्ति इतना चण्ड होता है कि
सौ डंडियों की हस्ती मिटा दे । इसमें डंडी शब्द प्राचीन डिडिक डिडिन् का ही रूप ज्ञात
होता है । मेरे मित्र र्थी दाम्भुखभाई मालवणिया ने सूचित किया है कि धर्मकीर्ति के
प्रमाणवातिक की श्लेषवृत्ति में डिडिक शब्द का प्रयोग आया है (को विरोधः रथात् डिडिक-
पुराणेतरयोः, पृ० ८२) । प्रमाण मीमांसा की प्रति के एक टिप्पण में 'डिडिका नम्राटा
ह्ययर्थः' मिला है ।

४ (इ) विनर्मकला = मन बहलाव, वाम प्रसंग, हँसा ठट्ठे से सम्बन्धित
कलाएँ, जैसे नृत्य, गति, मोछा आदि ।

४ (ई) निर्मक्षिकं = ऐसी स्थिति जिसमें मक्खी मच्छद आदि की बाधा न हो,

(१) कुतः—

- ५— (अ) न प्राप्नुवन्ति यतयो रुदितेन मोक्षं
(आ) स्वर्गायति न परिहासकथा रुणद्धि ।
(इ) तस्मात् प्रतीतमनसा हसितव्यमेव ✓
(ई) वृत्ति बुधेन खलु कौरुकुची विहाय ॥

(१) को नु सलु मयि विज्ञापनव्यये शब्द इव श्रूयते । (२) (कर्णं दत्त्वा) (३) हन्त ! विज्ञातम् । (४) एष हि स विटमण्डपः । (५) (प्रविश्य) (६) धूर्त-
चाक्रिकः सलतिश्यामिलको घण्टामाहत्य घोषयति । (७) य एषः—

- ६— (अ) व्यतिकरसुसभेदः कामिनीकामुकाना
(आ) दिवससमयदूतो दुन्दुभीना पुरोधाः ।
(इ) कलमुपसि सरत्वादस्य कंठा (घण्टा) रवाणा
(ई) घलवदभिनटन्तो गर्दभा नानुयान्ति ॥

हों जाएँ । डिंडिक, विट और दिलरगी बाज ठहरे रहें । धूर्तों की गोठें बेखटके शराब की प्यासी बनी रहें ।

कैसे—

५—यति रोने धोने से मोक्ष नहीं पा जाते । यदि आगे स्वर्ग मिलने वाला होगा, तो ! हँसी ठट्टे से उसमें बाधा पड़ने वाली नहीं है । इसलिए बुद्धिमान् को मुँह बिगाड़ने की आदत छोड़कर निर्द्वन्द्व मन से हँसना ही चाहिए ।

जब मैं इस तरह कह रहा हूँ तो यह दूसरी आवाज कैसी सुनाई पड़ रही है ? (कान देकर) आह, पता चला यह विटों की बैठक (मंडप) है । गुंजा श्यामिलक घंटा बजाकर मुनादी कर रहा है ।

६—कामिनी और कामियों के मिलनसुख को तोड़ने वाला, दिन उगने का सूचक, लुगियों का दादा जो इसका घण्टा बजाना है, उसकी बराबरी सबेरे जोर-जोर से रेंकते हुए गधे भी नहीं कर सकते ।

एकान्त में विस्मरहित स्थिति । कृतं भवनेश्वरी निर्मलिकम् (शकुन्तला २१६) । काशिका २।१।६, भक्तिकाणामभावः निर्मलिकम् ।

५ (आ) स्वर्गायति—अविष्य में स्वर्ग मिलने की सम्भावना ।

५ (ई) कौरुकुची वृत्ति = मुँह टेढ़ा करने या मुँह बिगाड़ने की आदत । कुच्छानु = टेढ़ा करना, सिकोड़ना । कुच् का रूप कुच् भी है । कूर = भात । कूरकुच = सामने भात देखकर भी मुँह बनाना । कूरकुचस्य भावः कौरुकुच, तस्येय कौरुकुची ।

५ (४) विटमण्डप—विटों का गोष्ठी स्थान ।

५ (६) धूर्तचाक्रिक = घण्टा बजाकर घोषणा करनेवाला धूर्त या कित्तय । चाक्रिक = घण्टे से मुनादी करने वाला । चाक्रिका घण्टिकाऽर्थकाः (अमरकोश) ।

६ (अ) व्यतिकरसुस = समागम-सुग्य ।

(१) किं नु तावदनेन घुष्यते ? (२) (कर्णं दत्त्वा) (२) (नेत्रेभ्ये)

७—

- (अ) जयति मदनस्य केतु
(आ) कात प्रत्युद्यतो विलासिन्या ।
(इ) शिरसा प्रार्थयितव्य
(ई) सालककनूपुर पाद ॥
(?) (निष्कान्त)
(२) स्थापना ।
(३) (ततः प्रविशति चिट)

चिट — (४) मा तावद् भो किमत्र घोषयितव्यम् ? (५) गदेव—

८—

- (अ) प्रणयकलहोद्यतेन
(आ) सस्ताशुकदर्शितोरुमूलेन ।
(इ) जितमेव मदकलाया
(ई) नूपुरमुखरण पादेन ॥

(१) अये केनैतद्वसितम् ? (२) (विलोक्य) (३) दद्रुणमाधवोऽप्यत्रैव ।
(४) अघो ! दद्रुणमाधव किमत्र हास्यस्थानम् ? (५) किं ब्रवीषि—“प्रत्यक्षं हि मे
तत् यदतीतेऽहनि तत्रभवत्या सुराष्ट्राणां वारमुरयया समदनया मदनसेनिकया तत्रभवा
स्तौण्डिकाकिविष्णुनागश्चरणकमलन शिरस्यनुगृहीत ” इति ।

यह क्या घोषणा कर रहा है ? (कान लगाकर) (नेत्रेभ्यः)

७—प्रियतम के ऊपर चलाए हुए विलासिनी के उस चरण की जय हो जो
आलते और झरझरते नूपुर से सजा हुआ काम का झंडा है, और जो सिर झुकाकर
आवभगत करने योग्य है । (जाता है)

स्थापना

(विष्का प्रवेश)

चिट—ठहरो, यहाँ घोषणा की क्या आवश्यकता है ? यहाँ तो ऐसा है—

८—प्रेम का झड़प म उठा हुआ, नूपुर से झरझर, खिसके दुकूल से खुली
जाघ वाला, मदबिहल कामिनी का पैर सदा से ही विजयी है ।

अरे यह कौन हँसा ? (देखकर) दद्रुण (ददोड़ा) माधव भी यहाँ है ।
अरे दाद भरे माधव, इसमें हँसने की क्या बात है ? क्या कहता है—“मुझे तो
साक्षात् देखने को मिला कि गए दिन सुराष्ट्र की मुख्य गणिना, श्रीमती मदनमेना
ने रागवती होकर श्रीमान् तौण्डिकोकि विष्णुनाग के सिर को चरण कमल से अनु
गृहीत किया ।”

(६) सप्तु सल्विदमुच्यते—“एति जीवन्तमानन्दं नर वर्षशतैरपि” इति ।

(७) त्रिष्णुनागोऽपि नामैव सर्वकामिजनसाधारण चरणाताडनसज्ञक शिरस्यभिषेक प्राप्तवान् । (८) किं वशीपि—“कुतोऽस्य तानि भागधेयानि य ईदृशाना प्रणयकलहो-

त्सवाना पात्र भविष्यति ? (९) स हि तस्या वेशदेवतायास्त सम्माननिशेपमवमान

मन्यमान क्रोधपरिव्यक्तनयनराग (१०) प्रस्फुरितभ्रुकुटीवक ललाट इत्वा शिरो

त्रिनिर्धूय दशनैरोष्ठमभिदश्य पाणिना पाणिममिहत्य दीर्घ निश्चस्योक्तवान् । (११)

‘हा धिक् पुश्चलि अनात्मज्ञे यया तया ममास्मिन्—

६— (अ) प्रयतकरया मात्रा यत्नात्प्रवृद्धशिरसण्डके

(आ) चरणानिते पित्राघ्राते शिशुर्युणवानिति ।

(इ) सकुसुमलये शान्त्यम्भोभिद्विजातिभिरुक्षिते

(ई) शिरसि चरणो न्यस्तो गर्गान्न गौरममाक्षितम् ॥

(१) एवञ्चानेनोक्ता निरज्यमानसन्ध्यारागेव रजनी वर्णान्तरमुपगता । (२)

अतिप्रभातचन्द्रनिष्प्रभ वदेनमुद्वहन्ती—

१०— (अ) ध्यपगतमदरागा अश्यमानोपचारा

(आ) किमिदमिति विपादात् स्विन्नसर्वाङ्गयष्टि ।

ठीक ही कहा है—‘चाहे सा बरस भी बीत जाएँ, कभी न कभी तो आदमी को जीने का मजा मिल ही जता है ।’ सो त्रिष्णुनाग ने भी सभी सच्चे कामियों को प्राप्त होने वाला चरणताडन नामक अभिषेक सिर पर पा लिया । क्या कहता है—“अरे, उसके ऐसे भाग्य नहीं जो इस तरह के प्रेम के रगड़ों का मजा उठा सके ? उसने उस वेश की देवी द्वारा दिए गए इस सम्मान को अपमान मान कर गुस्से से ओखें लाल करके, पड़खती भौंहों से लगान तान कर और सिर हिला कर, दाँतो से ओठ काट कर, तांगी बजा कर तथा लगे सोंस लेकर कहा—‘हे, अनाड़ी छिनाल, तुझे धिक्कार है । तूने मेर उस सिर पर—

९—जिसपर माता ने सधे हाथों से यल क साथ चोरी गूँथी थी, जिसे पिता ने चरणों में प्रणाम करते हुए देखकर ‘बया भोला लडका है’ यह कहते हुए सूँघा था, और जिस पर ब्राह्मणा ने फूल चढ़ाकर शान्ति का जल छिड़का था—घमण्ड म भर कर पैर रख दिया और उसके गौरव की तनिक भा परवाह न की ।

ज्योंही त्रिष्णुनाग ने यो डफ्फा, ल्योंही सोंस की ललाई फीकी पड़ जाने से उतरी हुई रात की तरह उसका रंग फीका पड़ गया । प्रातःकाल के चन्द्रमा की तरह ज्योतिहीन मुख लेकर,—

१०—उसका नशा रष्ट हो गया और साज समान निम्बर गया । मुझने

१० (अ) अश्यमानोपचारा—अश्यमान = तितर तितर हो गया । उपचार = माज सजा का सामान । अमरकोश में यह शब्द नहीं है । रघुवंश में उपचार शब्द इस विराप

(३) भयविगलितशोभा वान्तपुष्पेण मूर्ध्ना

(३) न पुनरिति वदन्ती पादयोस्तस्य लग्ना ॥

(१) ग्रणिपातावनता चानेन निर्घृणोक्ता (२) “चण्डि मा स्पाक्षी, कर्दनेन न मा ढोंकितुमर्हसि” इति ।

(३) कष्ट भो. कोकिना सल्लु कोशिकमनुवर्तते । (४) मदनसेनिकाऽपि त पुरुषोत्तल कदर्यमपवीर्यमनुवर्तते इति मे विस्मय । (५) भवति च पुनर्मेहामात्रपुत्रो राज्ञः शासनाधिरुत इति न दानकामोपेक्षते । (६) शब्दकामं खल्वेता भवन्ति । (७) कामे हि भयोजनमनेकनिघमित्युपदिश्यते । (८) किं व्रीपि—“लब्ध सल्लु शब्दकामया शब्दप्रधानार्जनाच्छब्दस्य व्यसन” इति । (९) सा हि तपस्विनी—

यह क्या हो गया, इस दुःख से उसका सारा बदन पसीने-पसीने हो पड़ा । भय से उसकी सारी शोभा मारी गई और सिर में गूँथे फूल बिखर गए । ‘फिर ऐसा कभी न होगा’ कहती हुई वह उसके पैरों में गिर पड़ी ।

दीनता से उसके झुकने पर भी उसने डफ्ट कर कहा—“चण्डी, मुझे मत छू । यों गडगड करते उदर से मेरे पास मत आ ।’

बड़े दुःख की बात है कि कोयल उल्लू के पीछे लगी है । मदनसेनिका भी उस कायर और हिजड़े पुरुष वेताल के पीछे जाती है, इसका मुझे आश्चर्य है । इसका कारण शायद यह है कि वह महामात्र का पुत्र और राजा का शासनाधिकृत है । इसलिए रकम वसूलने की इच्छा से वह उसकी उपेक्षा नहीं करती । वेश्याएँ बात की चटोरी होती हैं । कहा जाता है काम की तह में अनेक तरह के प्रयोजन होते हैं । क्या कहता है—“बातों से पहनने खाने का वसीला जमता है । अतएव बात की चटोरी इसे बातों की चाट पड़ गई है । वह बेचारी—

अर्थ में आया है—तस्योपकाराय रक्षितोपचारा (५।११, उपचारा शयनादयः), मत्सेवु उपचारवस्तु (६।१, राजा के काम की वस्तुएँ जैसे ताम्रगुल्फरक, पादपीठ, भृङ्गार आदि, ६।१५ में हेम पादपीठ का उल्लेख आया है) ।

१० (२) कर्दन = उदर का शब्द ।

१० (२) ढोंकितुम्—ढोंकू = पास आना ।

१० (५) महामात्र—एक उच्च राज्याधिकारी ।

१० (५) शासनाधिरुत—शामन = राज्यशासन, या राजकीय दान के साम्रपत्र आदि । अधिरुत = अधिकारी । अधिरुत > अहिरुड > हड्डवड > ईरुड ।

११—

(अ) तिर्यन्त्रपावनतपद्मपुटप्रान्ते—

(आ) धौताघरस्तनमुसी नयनाम्बुपाते ।

(इ) स्वागेप्लीयत नवै सहसा स्तनङ्गि—

(ई) रुद्रेजिता जलधरेरिव राजहसी ॥ इति ।

(१) न च भोश्चित्रमिदं श्रोतव्यं श्रुतम् । (२) न च खल्वस्मागिर्विदितायै रप्यतीतं पृष्टम् । (३) ततस्ततः । (४) किं वयीषि—“ततः स मया निर्भत्स्योक्तः ‘अये वैयाकरणसमूचिन्, सुमनसो मुसलेन मा क्षौत्सी’, (५) वल्गुकीमुलमुकेन मा वादी, चारुत्तरेण किसलयक्षीनां मा लौत्सीः मत्तकाशिनीम्” इति । (६) एवमुक्तो मामनादृत्य विटमहत्तर भट्टिजीमृतगृह गतः । (७) ततः सा तपस्विनी करकिमलय पर्यस्तकपोलमाननं कृत्वा प्ररुदिता । (८) तत उत्थाप्य मयोक्ता—‘सुन्दरि न वानरो वेष्टनमर्हति गर्दभो वा वरप्रवहणं बोद्धुम् । (९) अलमल रुदितेन । (१०) हास्यः खल्वेव तपस्वी । (११) नैन महान्त शिरः सत्कारमर्हति ।

१२—

(अ) किं कामी न कचग्रहैर्यमवलाः क्लिश्यन्ति मत्ता वलाद्

(आ) य वचन्ति न मेसलामिरथया न घ्नन्ति कणोत्पलैः ।

११—लाज से तिरछी झुकी हुई बरौनियां से, बहते हुए ऑसुओं से मुख, अधर और स्तन धोकर, सहसा गरजते हुए नए बादलों से राजहसी की तरह धनरा कर अपने अगो में ही सिमिट गई है ।

यह कोई अचरज नहीं जो यह सुनने को मिला । हमारे जैसे पंडितों से भी अब कुछ पूछने को बाकी नहीं बचा । तब फिर ? क्या कहता है—“उमसे मैंने फटकार कर कहा—‘अरे टकरिए वैयाकरण, पूछने को मूसल से मत कूट, बीणा की लुआठी से मत घजा, घचन की छुरी से मदभरी गुलाबी वेश्या को मत काट ।’ मेरे ऐसा कहने पर वह मुझे शिडक कर बिटो के चौथरी भट्टिजीमृत के घर चला गया । वह बेचारी अपने मुजुमार हाथों पर मुंह और गाल रखकर रोने लगी । उसे उठाकर मैंने कहा—‘सुन्दरि, बन्दर कगड़ी घटने के योग्य नहीं होता और न गद्दे को अच्छी सजारी में जोता जाता है । रोना बंद कर । यह बेजारा तो हँसो का पात्र है । उसका सिर इतने बड़े सत्कार के योग्य नहीं ।

१२ - वह कामी क्या, जिसे बाल पकड़ कर मतगाली अबलाएँ तग नहा करतीं, या मेगलाओं में बौधती नहा, या नान के फूलों से मारती नहीं । काम उमी

११ (४) वैयाकरणसमूचिन्—वह नाम मात्र का वैयाकरण जो कुछ पूछने पर आकाश की ओर देखने लगे या मौसम की बात करने लगे ।

११ (६) विटमहत्तर = विटों का प्रधान या चौधरा ।

११ (८) वेष्टन = पगड़ी ।

११ (८) वर प्रवहण = बढ़िया सवारी, रथ या गायुमशकट ।

(३) पक्षे तस्य तु मन्मथः सुहृत्तिनस्तस्योत्सवो यौवन
(३) दासेनेव रहस्यपेतविनयाः कीडन्ति येनाह्मणाः ॥

(१) एवञ्चोक्ता स्मितपुरस्सरमपाङ्गेन मे वचः प्रतिगृह्य सशिरःपादमवगुण्ठ्य वाससा शयनमलङ्कृतयती । (२) अहमपि कामिप्रत्यवरस्य दुश्चरितमनुचिन्तयन् प्रभातमिति राज्ञः प्राभातनान्दीस्नैरुत्थापितः (३) कृतकर्तव्यस्तदेव दुःस्वप्नदर्शनमिवापनेतुं ब्राह्मणपीठिका गत । (४) तस्या ब्राह्मणपीठिकाया पूर्वगत कीर्णकेश विष्णुनागमेवारूपमात्मकर्माचक्षाण (५) 'असावह भो. एवकर्मा, त मा वृपल्या. पादावधूतशिरस्कं त्रातुमर्हन्ति त्रैविद्यवृद्धाः' इत्युक्तवन्तमपश्यम् । (६) एवञ्चोक्ता ब्राह्मणाश्चलकपीलसूचितहासमन्योन्यमवलोक्य मुहूर्तमिव ध्यात्योक्तवन्तः । (७) 'भोः साधो अवलोकितान्यस्याभिर्गनुयमवसिष्ठगौतम-भरद्वाजशखलिखितापस्तम्बहारीतप्रचेतोदेवलवृद्धगार्ग्यप्रभृतीना मनीषिणा धर्मशास्त्राणि । (८) नैवविधस्य महत् पातकस्य प्रायश्चित्तमनगच्छाम.' इति ।

(९) एवञ्चोक्तो विपण्यन्तरवक्त्र उच्छ्वस्य हस्तावुपाक्रोशत् । (१०) 'भोः भोः चतुर्थो वर्ण इति न मामर्हथ भूमिदेवाः परित्यक्तुम् । (११) कुत.—

का साथ देता है और उसी बड़भागी का यौवन भी उत्सवों से भरपूर होता है जिसके साथ छवीली लियों लज्जा छोडकर चाकरो के समान अकेले में अटखेलियों करती है ।

ऐसा सुनकर उसने मुष्कुराहट के साथ चितवन से मेरी बात मान कर सिर से पैर तक अपने वस्त्र पहन कर शय्या को अलङ्कृत किया । मैं भी कामिजनों में दुकडहे उसके दुश्चरित को सोचता हुआ, राजद्वार की प्रभाती से जागरूक नित्य नियम से अवकाश पाकर मानो बुरा सपना देखने के फल को हटाने के लिए ब्राह्मणों को बैठक (पीठिका) पर पहुँचा । उस ब्राह्मण पीठिका में मैंने देखा कि पहले से पहुँचा हुआ बिखरे बालों वाला विष्णुनाग गिड़गिड़ा कर कह रहा था—'मैंने ऐसी खोटी करनी की है जो मेरे सिर पर वेश्या की लात लगी । हे त्रैविद्यवृद्ध जनो, मुझे बचाओ ।' उसके ऐसा कहने पर गाल पिचका कर हँसी का आभास देते हुए ब्राह्मणों ने एक दूसरे को देखते हुए क्षण भर मोच कर कहा—“हे साधु, हमने मनु, यम, वसिष्ठ, गौतम, भरद्वाज, शख, लिखित, आपस्तम्ब, हारीत, प्रचेता, देवल, वृद्धगार्ग्य आदि मनीषियों के धर्मशास्त्र देखे हैं, पर इस तरह के बड़े पाप का प्रायश्चित्त हम भी नहीं जानते ।”

ऐसा कहने पर दु खी मुख से दोनों हाथ उठाकर वह चिल्ला उठा—“अरे भूलोक के देवगण, मुझे शूद्र समझ कर आप त्यागिए मत । क्योंकि—

१२ (अ आ) स्त्री द्वारा पुरुष का कचग्रह, मेखला बन्धन और कर्णपल्लतादन— ये तीनों बातें पुराणवित रति की भूचक्र हैं । त्रैविण्, धूर्त विट सवाद, श्लोक १२, एवं काकं-श्रयोभ्यारणि की टिप्पणी, पृ० ८०, कुमारसम्भव ३८ ।

- १३— (अ) आयाऽस्मि शुद्धचरितोऽस्मि कुलोद्गतोऽस्मि
 (आ) शब्दे च हेतुसमये च वृत्तश्रमोऽस्मि ।
 (इ) राजोऽस्मि शासनकरो च पृथग्जनोऽस्मि
 (ई) त्रायधर्मात्तमगतिं शरणागतोऽस्मि ॥

(१) एतच्चोक्ताया तस्या परिपदि—

- १४— (अ) कैश्चिद्गौरयमित्यरनिचलनैरन्योन्यमावाटित
 (आ) स्यादुन्मत्त इति स्थित स्मितमुखे कैश्चिच्चिर वीक्षितम् ।
 (इ) कैश्चित्कामपिशाच इत्यपि तृण दत्तान्तरे धिक्कृत
 (ई) कैश्चिददुष्टतकारिणीति च पुन सेवाङ्गना शोचिता ॥

(१) प्रमत्तस्थाया च ससदि तस्या प्रतिपत्तिमूढेषु ब्राह्मणेषु प्रायश्चित्तविप्रलम्भ-
 विह्वले कोशति विष्णुनागे (२) तेषामरुतम आचार्यपुत्र स्वयञ्चाचार्या दण्डनीत्या-
 न्नीक्षिन्यारन्यासु च विद्यास्वभिचिनीत कलास्त्रपि च सर्वासु पर काशलमनुप्राप्तो (३)
 वाग्मी चातेवासिगणपरिवृत परिहासप्रवृत्ति शण्डिल्यो भवदामी नाम ब्राह्मण (४)
 सव्येतर हस्तमुद्यम्य स्मितोदग्रया वाचा परिपदमामन्योक्तवान् (५) 'अये भो विष्णुनाग

१३—मैं आर्य हूँ, शुद्ध चरित हूँ, कुलीन हूँ, मैंने व्याकरण और न्याय
 शास्त्र पढ़ा है, मैं राजा का शासनाधिकृत हूँ, कुछ अछूत (पृथग्जन) नहीं हूँ । मुझ
 दुखिया को आप उचाड़िए, मैं शरणागत हूँ ।

उस सभा में उसके ऐसा कहने पर—

१४—कुछ ने केहुनी चलाकर एक दूसरे को ठेहुनिया कर कहा—'पूरा
 बैल है' । कुछ ने हँस कर खड़े होकर देर तक उसकी ओर देखते हुए कहा—
 'पागल है' । किसी ने बीच में तिनका रखकर 'काम पिशाच है' कह कर उसे
 धिक्कारा । कुछ ने उस अगना को ही अपराधिनी मानकर अफसोस किया ।

सभा की ऐसी दशा में ब्राह्मणों के किंकर्तव्य मिमूढ होने और प्रायश्चित्त
 के लिये विष्णुनाग के चिल्लाने पर शण्डिल्य गोत्र के भगम्नाभी नामक ब्राह्मण ने
 चिमके स्वभाव में हँसोडपन था, जो आचार्य का पुत्र और म्वय भी आचार्य था, जो
 आन्वीक्षिणी दण्डनीति और दूसरी विद्याओं में पारंगत, कलाओं में कुशल और
 वाग्मी था, अपने गिण्यों का मण्डली के बीच में ही दाहिना हाथ उठाकर हँसो

१४ (इ) कामपिशाच = धार कामामन ।

१४ (ई) सेवाङ्गना शोचिता—जैसे गर्दभ को उसने अपने चरण तकार का पात्र
 बनाया, वह शेर का कारण है ।

न भेतव्यम् अलमल विपादेन । (६) अस्तीद धर्मवचन 'यथादेशजातिकुलतीर्थसमय धर्माध्यामनायैरविरुद्धा प्रमाणम्' इति । (७) अतो विटजाति सन्निपात्य विटमुख्येभ्यः प्रायश्चित्त मृग्यताम् । (८) ते हि तामस्मात्किल्बिषान्मोचयिष्यन्ति' (९) इत्युक्ते साधुनादानुयात्रमूर्ध्वागुलिप्रवृत्तमवर्तत तस्या परिपदि । (१०) तच्छ्रुत्वा विष्णुनागोऽप्यनुगृहीत इति प्रस्थित । (११) त्वच्चापि त्रितसन्निपातकर्मणि नियुक्त' इति वादम् ।

(१२) किं वगीपि—'के पुनरिह भग्नो विट स(म्भि)मता' इति । (१३) ननु भवानेव तादमे त्रिट । (१४) किं वगीपि—'कःमहमपि नाम विटशब्देनानुगृहीत' इति । (१५) क सशय', श्रूयताम्

१५—

(अ) दिवसमस्त्रिल इत्या वाद सह व्यवहारिभि—

(आ) दिवसत्रिगने मुक्त्वा भोज्य सुहृद्भगने क्वचित् ।

(इ) निशि च रमते वरास्त्रीमि क्षिप्रस्यपि चायुध

(ई) जलमपि च ते नास्त्यावासे तथापि च कथ्यते ॥

भरे म्वर से परिपद् को सगोधित करते हुए रहा—“अरे विष्णुनाग, तू ठर मत । अपना शोर छोड़ । धर्मशास्त्र का वचन है कि देश, जाति, कुल, तीर्थ और समय के अनुसार जो धर्म है वे वेद त्रिरोधी न होने पर प्रमाण माने जाते हैं । इसलिए विगे भी पचायत बुराकर विटो से प्रायश्चित्त पूछ । वे तुझे इस पाप से छुड़ाएंगे ।” उसके ऐसा कहने पर उस सभा में साधुवाद के साथ ऊँची उठी हुई अँगुलियाँ नाचने लगीं । उमे सुनकर विष्णुनाग भी अपने को अनुगृहीत मानकर चला गया । तो तू विटो की सभा बुलाने के लिये नियुक्त किया गया है ।

क्या कहता है—‘आपकी राय में कौन कौन से मुख्य विट हैं ?’ निश्चय ही रात्रि अगुवा त्रिट तू ही है । क्या कहता है—‘मैं कैसे इस त्रिट शब्द से अनुगृहीत हुआ ?’ इसमें शक ही क्या ? मुन—

१५—महाजनों (व्यवहारियों) के साथ सारा दिन भ्रमण कर, दिन बीतने पर किसी मित्र के घर में माल चर कर, जो रात में घेड्याओं के साथ रमण करता है, और पटेगाजी करता है, जिसके अपने घर में पानी तक नहीं है, फिर भी तू श्रेष्ठी पधारता फिरता है ।

१४ (६) यथा देश जाति—यह वसिष्ठावृत्ति का वचन है ।

१४ (७) विटजाति सन्निपात्य = विग की पचायत इकट्ठा करके ।

१५ (अ) व्यवहारिभि—व्यवहारिन् = बोहरे, जो रोज़ दिन का काम करते हैं ।

१५ (इ) क्षिप्रस्यपि चायुधम्—विट रात के समय शस्त्र लेकर गुहरे पर उतर भागे और मारामारी सब कर डालने से ।

(१) तत्कथं त्वमविटः ? (२) किं त्रीणि—“यद्येवमनुगृहीतः सन्निपातयिष्यसि विटान् । (३) विटलक्षणां ताच्छ्रोतुमिच्छामः” इति । (४) तत्प्रथमः कल्पः । (५) श्रूयताम्—

- १६— (अ) सौ प्राणैरपि त्रिद्विपः प्रणयिनामापस्तु यो रक्षिता
 (आ) यस्यातो भवति स एव शरणं लब्धद्वितीयो भुजः ।
 (इ) सधर्मान्मदनातुरो भृगयते यं वारमुख्यो जनः ।
 (ई) स ज्ञेयो विट इत्यपाशृतधनो यो नित्यमेवाधिपु ॥

(१) अपि च—

- १७— (अ) चरणरुमलयुग्मैरर्चितं सुन्दरीणां
 (आ) समुद्रुटमिव तुष्टया यो विभर्त्युत्तमाङ्गम् ।
 (इ) स विट इति विद्वद्भी कीर्त्यते यस्य चार्थान्
 (ई) सलिलमिव तृपार्ताः पाणिभुग्मेहैरन्ति ॥

(१) किं त्रीणि—“उक्तं विटलक्षणां विटानिदानीमुपदेष्टुमर्हसि” इति ।
 (२) श्रूयताम्—तत्रभगवान् कामचारो भानुः लोमशो गुप्तः अमात्यो विष्णुदासः शैब्य आर्यरक्षितो दाशेरकः रुद्रवर्मा आवन्तिकः स्कन्दस्वामी हरिश्चन्द्रो भिषक् आभीरकः

फिर तू कैसे विट नहा है ? क्या कहा—“यदि मुझे विटो में गिनने की कृपा करते हैं तो आप अवश्य विटो की पचायत जुटा सकेंगे । इस बीच मैं आपसे विट का लक्षण सुनना चाहता हूँ ।” उसका पहला लक्षण सुन—

१६—प्राणों की परवाह न करते हुए जो अपने शत्रु और मित्रों की आपत्ति में रक्षा करता है, आपत्ति के समय जिसका अपना भुजदण्ड तलवार लेकर स्वयं अपना रक्षक बनता है, रगड़े से मदनातुर वेदयाणें जिसकी खोज करती है, और जो याचकों को खुले हाथ धन देता है, उसे विट समझना चाहिए ।

और भी—

१७—सुन्दरियों के दोनों चरणरुमलों से अपने सिर को प्रजित देखकर जो ऐसे प्रसन्न होता है जैसे उस पर मुद्रुट रमना गया हो, जिसके धन को प्यासे पानी की तरह दोनों हाथों से हरते हैं, उसे ही विटो के गुणज्ञ सच्चा विट मानते हैं ।

क्या कहता है—“विट के लक्षण तो आपने कहे, अब उनके नाम भी बताइए ।” सुन—श्रीमान् कामचार भानु, लोमश गुप्त अमात्य विष्णुदास, शैब्य आर्यरक्षित, दाशेरक रुद्रवर्मा, आवन्तिक स्कन्दस्वामी, भिषक् हरिश्चन्द्र,

१७ (२) दाशेरक रुद्रवर्मा—दाशर या दशपुर का रुद्रवर्मा ।

१७ (२) आनन्दपुर—गुजरात का प्रसिद्ध स्थान जो बदनगर कहलाता है ।

कुमारो मयूरदत्तो मार्दगिक स्थाणुर्गार्ध्वसेनक उपायनिरिन्तिकथ पार्वतीय प्रथमोऽपरा
न्ताधिपतिरिन्द्रवर्मा आनन्दपुरत कुमारो मय्यवर्मा सौराष्ट्रिको जयनन्दको मौद्गल्यो
दयितविष्णुरित्यन्मादयो यथासम्भव सन्निपात्या । (३) किं ब्रवीषि—“सर्वं तावत्तिष्ठतु ।
(४) दयितविष्णुरपि भवतो विटसम्मत” इति । (५) क सन्देह । (६) किं
ब्रवीषि—“एष योऽयं राज्ञो बलपधिकृत पारशव कवि” इति । (७) बाढमेवैतत् ।
(८) किं ब्रवीषि—“या तावद्भो —

- १८— (अ) य सङ्कचल्युपहितप्रणयोऽपि राज्ञो
(आ) यो मङ्गले स्वपिति च प्रतिबुद्ध्यते च ।
(इ) देवार्चनादपि च गुग्गुलुगन्धवासा
(ई) योऽसौ विष्णुत्रयकठोरललाटजानु ॥

(१) अपि च—

- १९— (अ) देवकुलादराजकुल
(आ) राजकुलाद् याति देवकुलमेव ।
(इ) इति यस्य यान्ति दिवसा
(ई) कुलद्वये सप्रसक्तस्य ॥

(१) कथमसावपि विट” इति । (२) आ एवमेतत् । (३) अस्तादमस्य
विटसवादप्रत्यनाकभूतम् । (४) किन्तु—

आभीरक कुमार मयूरदत्त, मार्दगिक स्थाणु, गार्ध्वमेनक उपायनि, इन्तिकथ
पार्वतीय, प्रथम अपरान्ताधिपति इन्द्रवर्मा, आनन्दपुर का कुमार मय्यवर्मा, सौराष्ट्रिक
जयनन्दक, मौद्गल्य दयितविष्णु इत्यादि को यथासम्भव पञ्चायत में एकरूप करना ।
क्या कहता है—“सब तो ठीक है पर क्या दयितविष्णु भी आपकी समझ में विट
है ?” इसमें सन्देह क्या ? क्या कहता है—“क्या वही जो राजा का बलपधिकृत
पारशव कवि है ?” बेधक । क्या कहता है—“यह नहीं हो सकता—

१८—राजा के प्रेम करने पर भी जो सकोच करता है, जो हँसी खुशी
के साथ सोता और जागता है, देवार्चन में निसर्के रूपड़े गुग्गुलु की गन्ध से
वासित हो गए हैं और जिसके ललाट और दोनों घुटनों पर तान घट्टे पड़ गए हैं ।

और भी—

१९—जो देवकुल से राजकुल और राजकुल से देवकुल का पग करता
है, और जिसके दिन इन दोनों कुलों की सेवा में चिमटे रहने में ही बीत जाते हैं ।

क्या वह भी विट है ?” हाँ, अवश्य है । उमने विट होने में यह निमग्न
है । किन्तु—

- २०— (अ) पूर्वावन्तिपु यस्य वेशकलहे हस्ताग्रशासा हता
 (आ) सक्थो सयति यस्य पद्मनगरे द्विद्विभिनिस्तातानिपू ।
 (इ) बाहू यस्य विभिद्य भूरधिगता यन्त्रेपुणा वैदिशे
 (ई) यो बाजीकरणार्थमुज्झति वसून्यघापि वैधादिपु ॥

- २१— (अ) यस्माद् ददाति स वसूनि विलासिनीभ्यः
 (आ) क्षीणोन्द्रियोऽपि रमते रतिसङ्क्रामि ।
 (इ) तस्माल्लिसामि धुरि त विटपुङ्गवाना
 (ई) रागो हि रञ्जयति वित्तवता न शक्ति ॥ ✓

(१) कथमसाविति. ? (२) कि मरीपि—एवञ्चेदप्रणीविटानाम्” इति ।
 (३) तस्मादेवाय धुरि लिखित. । (४) गच्छतु भवान् । (५) स्वस्ति भवते । (६)
 साधयामस्तावत् । (७) (परिक्रम्य)

(८) एषोऽस्मि नगररथ्यामवतीर्णः । (९) अहो तु सल्लु जम्बूद्वीपतिलकभूतस्थ

२०—पूर्व अवन्ति में वेश के झगड़ों में जिसकी अँगुलियों कट गई, पद्म-
 नगर में जिसके कूल्हों की हड्डियों में दुश्मनों ने दो तीर खोस दिए, विदिशा में
 जिसकी बाहुएँ यन्त्रसंचालित बाण से कटकर जमीन पर गिरा दी गई, और जो
 बाजीकरण के लिए आज दिन भी वैद्य ओझाओं को रकम पिशुता रहता है;

२१—वह वेश्याओं को रकम चटाता है, शरीर का निजी मसाला कमजोर
 होनेपर भी जो रति की बातों में मजा लेता है, मैं इन कारणों से उसे विटपुंगवों की
 चोटी पर रखता हूँ । रईसों की रंगीली तनियत ही तो रिझाती है, उनके वृत्ते से
 क्या मतलब ?

वह विट कैसे नहीं ? क्या कहता है—“अगर ऐसा है तो वह अवश्य
 जिगे ना अगुआ है ।” इसीलिए तो मैंने भी उसे बिगे के सिरे पर रखा है । तू
 जा । तेरा भग्न हो । मैं भी चलूँ । (घूमकर)

२० (अ) पूर्वावन्ति = अवन्ति जनपद का पूर्वी भाग जो प्राकर कहलाता था ।

२० (आ) पद्मनगर—वर्तमान पीनार ।

२० (इ) यन्त्रेप—वह बाण जो नाली में रखकर चलाया गया हो, नावक का
 सार । ससृज में यहा वैतस्तिक भी कहलाता था । समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति में
 इसका उल्लेख है ।

२१ (९) जम्बूद्वीपतिलकभूत—यह उज्जयिनी की ओर मन्वेत है । गुप्तयुग में
 रोम से चीन और बिहल से मंगोलिया तक फैला हुआ जा विशाल भूपट था,
 उज्जयिनी उसमें सर्वत्र प्रख्यात था (मरुत्सुवनरथातयशासा) । कालिदास ने उसे
 ‘श्रीविशाला’ विशालपुरा कहा है । बाण क अनुसार उज्जयिनी के नागरिक कोटिपति,
 पद्मपति और अनेक देशों की भाषाओं और लिपियों से परिचित थे ।

सर्वरणाविष्कृत (रत्नालंकृत) विभूतेः सार्वभौमनरेन्द्राधिष्ठितस्य सार्वभौमनगरस्य परा
श्रीः । (१०) इह हि—

- २२— (अ) संगीतैर्वनिताविभूषणरवैः क्रीडाशकुन्तस्वनैः
(आ) स्वाध्यायध्वनिभिर्चनुस्वनयुतैः सूनासिशब्देरपि ।
(इ) पात्रीणां गृहसारसप्रतिरुतैः कक्षान्तरेषु स्वनैः
(ई) संजल्पानिव कुर्वते व्यतिक्रान्त् प्रासादमालाः सिताः ॥

(१) अपि च—

- २३— (अ) गिरिभ्यो द्रूपेभ्यः सलिलनिधिकवद्धादपि मरो—
(आ) नरेन्द्रैरायातैर्दिशि दिशि निविष्टैश्च शतशः ।
(इ) विचित्रामेकरथामनवगतपूर्वामिव कथा—
(ई) मिह सप्तः सृष्टैर्यदुविषयतां पश्यति जनः ॥

यह मैं शहर की सड़क पर आ पहुँचा । बाह, जम्बूद्वीप के तिलक, अनेक
युद्धों में अर्जित विभूतियों से सम्पन्न, 'सार्वभौम' सम्राट् के वासस्थान इस 'सार्व-
भौम' नगर की अपूर्व शोभा है ।

२२—संगीत से, स्त्रियों के गहनों की शंकारों से, पालतू पक्षियों की चहचहाट
से, स्वाध्याय की ध्वनि से, धनुष की टंकार से, कसाई खाने में छुरे की खसखसाहट
से, गहलों के कमरों में पतुरियों (पात्री) के स्वरों से, पालतू सारसों की गूँजती
आवाजों से, श्वेत भयनों की पुती हुई पंक्तियों मानों मिलजुल कर बातचीत कर
रही हैं ।

और भी—

२३—पहाड़ों से, द्वीपों से, समुद्र के किनारों से, मरुभूमियों से, सैकड़ों
राजा यहाँ आकर प्रत्येक दिशा में बस गए हैं । पहले अनयुनी अनोखी कहानी
की भोति विधाता की विविध रचनामयी सृष्टि की यहाँ एक ही स्थान में मनुष्य
प्रत्यक्ष देख सकता है ।

२१ (६) सार्वभौमनरेन्द्राधिष्ठित—पादतालितकं भाष्य युक्तमालीन धा । जैवा
भूमिका में उल्लेख है अथवा, सुराष्ट्र और अपराजितकी विजयके बाद चन्द्रगुप्त विजयादिपुत्रने
उज्जयिनी में अपनी दूसरी राजधानी स्थापित की । उसी की ओर यह संकेत दाल होता है ।

२१ (६) सार्वभौमनगर—उज्जयिनी दे० २९ (८) ।

२४—

(अ) शक्यवनतुपारपारसीकै-

(आ) मंगघकिरातकलिंगवंगकाशैः ।

(इ) नगरमतिमुदायुतं समन्ता-

(ई) महिपकचोलकपाण्ड्यकेरलेश्व ॥

(१) (विलोक्य) (२) अथे को नु खल्वेपोऽवमुक्तकञ्चुकतया धवलशिबिक-
येभ्यविधवालीलां विडम्बयन्नित एवाभिवर्तते । (३) (विमृश्य) (४) भवतु विज्ञातम् ।
(५) एष हि वेन्द्रदण्डकुण्डिकाभाण्डसूचितो वृषलचौक्षामात्यो विष्णुदासः । (६)

२४—शक, यवन, तुपार, पारसीक, मंगघ, किरात, कलिंग, वंग, महिपक, चोल, पाण्ड्य और केरल इन सब के वासियों से भरापुरा यह नगर सर्वत्र आनन्दमय है ।

(देखकर) अरे बिना ओहार (कञ्चुक) की सफेद पालकी पर चढ़ा हुआ यह कौन किसी रईसजादी विधवा के ठाठ की नकल करता हुआ इधर ही आ रहा है ? (सोचकर) ठीक, पहचान गया । यह बेंत के ढण्डे और कूण्डी से

२४ (अ) शक—कन्नड वंशी शकों से अभिप्राय है जिनका राज्य उज्जयिनी में कई शतियों तक रहा । चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ३६१ ईस्वी में उनका उन्मूलन करके सुराष्ट्र, अन्नन्ति और अपरान्त को अपने साम्राज्य में मिला लिया ।

२४ (अ) यवन—यूनानियों से अभिप्राय है जो सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्धों से बराबर इस देश में गुप्तकाल तक आते रहे ।

२४ (अ) तुपार—शकों की एक शाखा विशेष जिसमें कुषाणवंशी कनिष्कादि सम्राट् हुए ।

२४ (अ) पारसीक—शासन युग में ईरान की पारसीक संज्ञा प्रसिद्ध थी । कालिदास ने भी वहाँ के निवासियों को पारसीक कहा है (रघु० ४।६०) ।

२४ (आ) मंगघकिरातकलिंगवंगकाशैः—काश = प्रकट होना, दिखाई पड़ना । तात्पर्य यह कि उज्जयिनी के निवासियों में मंगघ, कलिंग, वंग, किरात आदि देशों के लोग भी मिले जुले दिखाई पड़ते थे ।

२४ (ई) महिपक—हैदराबाद प्रदेश का जनपद महिपक कहलाता था ।

२४ (२) अवमुक्तकञ्चुकतया—कञ्चुक या परदा व्यापार ।

२४ (२) इभ्य विधवा—रईस घर की विधवा स्त्री । सराफे बाजार के महाजन, 'इभ्य' (हाथों की सवारी के अधिकारी) कहलाते थे ।

२४ (५) चौक्षामात्य—चौचों का साथी । चौच = बहुत झुग्राटूत चरतने वाला भगवत । चौच के लिये देगिण, पद्मप्राभृतक १८ (६), टिप्पणी पृ० २१ । यहाँ जिसे वृषलचौच (= हरामी चौच) कहकर गाली दी है, उसे ही पद्मप्राभृतक १८ (३०) में चौच पिशाच कहा है ।

२४ (५) वेन्द्रदण्ड कुंडिका भाण्ड सूचित—एक हाथ में बेंत का डंडा और दूसरे में कूंडी यह विष्णुदास की पहचान थी । ज्ञात होता है वह मंग घोटता था ।

अनेन ह्येवं महत्यपि प्राड्विवाककर्मणि नियुक्तेन ध्यानाभ्यासपरवत्तयोपेक्षाविहारिणोव भिक्षुणा नाल्यर्थं राजकार्याणि क्रियन्ते । (७) तथा हि—

२५—

(अ) करविचलितजानुः कैश्चिदर्धासनस्थैः

(आ) समवनतशिरोभिः कैश्चिदाकृष्टपादः ।

(इ) अधिकरणगतोऽपि कोशता कार्यकाणां

(ई) विपणिवृष इमेवो ध्याति निद्रा च याति ॥

(१) तत्कामं विटजनप्रत्यनीकभूतमस्य दर्शनम् । (२) तथापि धर्ममुपदिश-
न्नभिगम्य एव । (३) उपसर्पाम्येनम् । (४) एष खलु दूरादेवभामवलोक्य शिधिका-
मवतार्यान्तरति । (५) अये भोः मर्षयतु भवान् । (६) नार्हस्यस्मानुपचारयन्त्रणया
जनीकर्तुम् । (७) किं वशीपि—“कश्च भवन्तमुपचरति ? (८) आचारोऽयमस्माभि-
रनुवर्त्यते” इति (९) मा तावद् भोः एवमुपचरता युमतं नाम भवतीमनगसेनामिह

पहचान में आनेवाला चौक्ष भागवत अमास्य विष्णुदास है । न्यायाधीश के दायित्व-
पूर्ण काम पर नियुक्त होकर भी ध्यान और अभ्यास के फेर में पड़कर उपेक्षा-
विहार करने वाले भिक्षु की तरह यह बेचारा राजकार्य ठीक तरह से नहीं निपट
पाता । और भी—

२५—न्यायालय में इसके साथ अर्धासन पर बैठे हुए साथी हाथ से घुटना
हिलाकर इसे जगाते हैं । सामने खड़े हुए अदालती कामकाजी चिल्लाते और सिर
झुकाकर दसका पेर खींचकर इशारा देते हैं । पर यह हाट के सौड़ की तरह ऊँघता
और सोता रहता है ।

इसने भेंट हो जाना किटों के लिये विघ्न रूप है । फिर भी धर्म का उपदेश
करने वाले इसके पास जाना उचित है । तो पाम जाऊँ । वह तो दूर से ही मुझे
देखकर पालकी रुकवा कर उतर रहा है । अरे, आप रहने दें । मेरी आवभगत का
कष्ट करके अपनापा दिखाने की आवश्यकता नहीं । क्या करता है—“आपकी
आवभगत के लिये नहीं, यह तो मैं अपना आचार निभा रहा हूँ ।” ठीक जब
आप उपचार के इतने कायल हैं तो प्रणयाभिमुखी अनंगसेना को उम प्रकार

२५ (६) उपेक्षाविहारिन्—मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा इन चार में से उपेक्षा
का पालन करनेवाला, अर्थात् काम वात्र में एक दम निरुत्तम । दे० टिप्पणी १३ (३) ।

२५ (अ) अर्धासनस्थ—अधिकरण या न्यायालय में बराबर के अधिकारी उसके
साथ अर्धासन का उपभोग करते थे ।

२५ (इ) कार्यक=मुकदमे में सम्बन्धित वादी प्रमिवादी । अदालत में खिया
हुआ मुकदमा ‘कार्य’ कहलाता था । दे० ‘कार्यागमेश्वर टिप्पणी (पृष्ठ १० १० भा, १० १८) ।

२५ (ई) जनीकर्तुम्—अपना बनाना, रखरखाव करना ।

प्रणयामिमुसी तथा मिमुरयितुम् । (१०) किं त्रीपि—“किं मया न तस्याः प्रणयानुरूपः
सम्परिग्रहः इतः ? (११) पश्यतु भवान् । (१२) सा हि मया—

२६— (अ) स्वस्तीत्युक्त्वा वन्दनाया कृताया—

(आ) मासीनाया याचितं योगशास्त्रम् ।

(इ) नेत्रे चास्या वायुनेर्यमाशे

(ई) सम्प्रेक्ष्योक्ता पुत्रि सर्पिः पिबेति ॥

(१) तत्कथं न सम्प्रतिगृहीता मया” इति । (२) अहो कामिन्याः संललित
सम्परिग्रहः इतः । (३) एष मां ग्रहस्य चोक्षोपायनेन बीजपूरकेण प्रसादयति । (४)
अये भो युष्मदन्तेरासिन एव वयमीदृशेषु प्रयोजनेषु नोत्कोट (च) नाभिर्नञ्चयितुं शक्याः ।
(५) सर्पयाऽदृश्य एवास्तु भवान् । (६) साधयामस्तावत् । (७) (परिक्रम्य)

बिमुख करना क्या ठीक है ? क्या कहता है—“क्या मैंने उसके प्रेम के अनुरूप
खातिर करने में फसर की ? तू देख—

२६—उसके वंदना करने पर मैंने स्वस्ति वचन कहा । जब वह बैठ गई
तो योग का अनुशासन मागा (जुटने को कहा) । उसकी वायु से उसकी हुई आँखें देख कर
मैंने कहा—‘ले बेटी, बी पी’ ।

तो फिर कैसे मैंने उसका सत्कार नहीं किया ?” अहो ! तूने उस नाजनी
की अवश्य बढ़िया खातिर की । यह मुस्कराकर भागवतो द्वारा देने योग्य सुद्ध
नियुआ दिग्बलाकर मुझे खुश करना चाहता है । अरे, मैं तो तेरा चेला हूँ । ऐसे
भारी काम में केवल बिलैया दंडवत से मुझे टरकाना ठीक नहीं । अब जल्दी से
तिड़ी हो । मैं भी चला । (धूमकर)

२६ (इ) ईर्यमाण—ईयां = सवत शिष्ट आचार । ललित विस्तर ११५।२,
पृष्ठटन बीद्ध सं० कोश । वायुना—(१) प्राण वायु साधने से नेत्र प्रादुर्भूत करने लगे, (२)
वायु विकार से नेत्र उन्मत्त की तरह घूमने लगे ।

२६ (ई) पुत्रि सर्पिः पिब—ले बेटी बी पी । ‘सायप्रातः होम’ निषते’ की भांति
रति के लिये मुँहई की भाषा । योग साधन और वायुरोग में बी उपचार था ।

२६ (२) संललितसम्परिग्रह—नाज नगरे के साथ खातिर, लाइचाव ।

२६ (३) चोक्षोपायन बीजपूरक = चौधसप्तक भागवतों द्वारा देने योग्य केवल
बीजपूरक गान की भेंट । ज्ञात होता है कि चौध भागवत देवता या गुरुगनों के पास बीज-
पूरक की भेंट लेकर उपस्थित होते थे । चौध = भागवतों का एक सम्प्रदाय विशेष जो बहुत
शुभाटन मानता था (दे० पद्मप्राभृतक १८ (६), पृ० २१) ।

२६ (४) युष्मदन्तेरासिन.—त्रिणुदाम प्राड्विवाक के पद पर नियुक्त था । ज्ञात
होता है कि वह उत्कोच लेने का अभ्यस्त था । बिट व्यग्रव वर रहा है कि मैं आपका चेला
हो हूँ, कोरी आनन्त से मुर्क धता करना सम्भव नहीं ।

२६ (४) उत्कोटना = मुस्करा दहीत करना ।

(८) एषः भोः अनेकदेशस्थलजजलजसारकल्मुपप्लवकयविक्रमोपस्थितस्त्रीपुरुष-
संवाधोन्तरापणो सार्वभौमस्य विपश्चिमुनुप्राप्तः । (९) अहो ! वतास्याः—

२७—

- (अ) शकुनीनामिवावासे
(आ) प्रचारेषु गवामिव ।
(इ) जनानां व्यवहारेषु
(ई) सन्निपातो महाध्वनिः ॥

(?) तथाहि—

- (अ) स्वरः सानुस्वारः परित्यजति कर्म्मार्थविषण्णो
(आ) भ्रमालूढं काश्यं कुररविलतानीच कुरुते ।
(इ) धृतं शरो शस्त्रं रसति तुरगश्चासपिशुनं
(ई) समन्ताच्चाप्नोति क्रयमपि जनो विक्रयमपि ॥

यह तो अनेक देशों के स्थल और जल के बढ़िया एवं घटिया माल को खरीदने और बेचने के लिये स्त्री पुरुषों की भीड़ से भरी दुकानों वाला सार्वभौम नगर का बाजार आ गया । अरे इसकी क्या बात है ?

२७—बसेरा लेने के स्थान में पक्षियों की और चरागाह में गायों के जमावड़े की भौंति यहाँ के लेन देन के स्थान में मनुष्यों की भीड़ से बड़ा शोर मच रहा है ।

जैसे—

२८—लुहारों की दुकानों में टन टन हो रही है । खराद (अम) पर चढ़ा हुआ कासा कुरर की बोली की तरह आवाज दे रहा है । चूड़ा काटने के लिए शंख पर रक्खा हुआ लोहे का औजार घोड़े की सोंस की तरह सोंस सोंस कर रहा है । चारों तरफ से लोग खरीदने बेचने के लिये आ रहे हैं ।

२९ (८) सार्वभौम—ऊपर (११ (१)) केवल सार्वभौम कहने से उज्जयिनी का बोध होता था । आपण = दुकान; विपणि = बाजार ।

२७ (ई) महाध्वनिसन्निपात—जैसे बसेरा लेते समय पक्षी महा कलरव करते हैं और चरने के लिये चरागाह में आई हुई गोर्खें रँभाती हैं, ऐसे ही बाजारों में शोर शार के साथ भीड़ लगती है । खगद्व के लिये दे० पाद० रलो० ६८ ।

२८ (आ) भ्रमालूढ काश्यं—खराद पर चढ़ाया हुआ कौंसे या फूल का पात्र ।
कुरर = कौंसे पक्षी ।

२८ (इ) धृतं शरो शस्त्रं—शंख को खराद पर रखकर लोहे की खाली से उसमें से चूड़ा काटकर उतारा जाता था । उसी की सरसराहट ध्वनि से तात्पर्य है ।

(१) अपि चेदानीं—

२६—

(अ) सुमनस इमा विक्रयन्ते हंसन्य इव श्रिय

(आ) चरति चपकः पानागारेष्वतः परिणीयते ।

(इ) करघृततृणैर्मसकायैरपान्ननिरीक्षिता

(ई) नगरविहगाः सूनामेते पतन्त्यसिमालिनी

(१) अपि च—

३०—

(अ) श्रमेनांसमभिघ्नतां विवदतां तत्तच्च संक्रीणतां ॥

(आ) सस्यानामिव पंक्तयः प्रचलतां नृणाममी राशयः ।

(इ) द्यूतादाहृतमापकाश्च कित्वा वेशाय गच्छन्त्यमी

(ई) सम्प्राप्ताः परिचारकैः सकुसुमैः सापूपमांसासवैः ॥

(१) यावदहमर्षीदानीं महाजनसम्मर्ददुर्गमं विपणिमार्गमुत्सृज्येमां पुनरपि—
मन्तरेण पानागाराण्यपसव्यमुपावर्तमानः (२) पूर्णभद्रशृङ्गाटकमवतीर्य मकररथ्या
वेशमार्गमवगाहिष्ये । (३) तत्काममसङ्गृहीतमापस्य वेशमवेशो निरायुधस्य सङ्ग्रामा-

और भी इस समय—

२९—दूकानों में शोभा से मानों हँसती हुई फूल मालाएँ विक्रि रही हैं, पानागारों में प्याले चल रहे हैं और पीए जा रहे हैं, हाथ में सरकंडों की मूठी लिए हुए मांस बेचने वाले उन पक्षियों को कनखियों से देख रहे हैं जो उस कसाई खाने पर दूट रहे हैं जिसके भीतर दीवारों पर छुरियाँ सजी हुई हैं ।

और भी—

३०—कंध से कंधा भिड़ोकर आपस में बहस करते और खरीदते हुए आते जाते आदमियों की यह भीड़ ऐसी लगती है मानों खेतों में पौधों की पंक्तियाँ हों । जुआड़ी जूए में कुछ मापक जीतकर फूल, पूए, मांस और आसव हाथ में लिए परिचारकों के साथ चकले की ओर बढ़ रहे हैं ।

तो मैं भी धक्का-धुककी करने वाली भीड़ के कारण चलने में अटकाव वाले बाजार का रास्ता बचाकर इस फूल गली के बीच से होकर पानागारों को दाहिने छोड़ते हुए पूर्णभद्र शृङ्गाटक पार करके मकररथ्या (गली) से वेशमार्ग में पहुँच जाऊँगा ।

२६ (इ) करघृत तृण—घोमचा लगाने वाले हाथ में मोँक आदि की मुट्ठी लेकर चिड़ियों से अपने गाल की रक्षा करते हैं । यह परिचित दृश्य है ।

३० (इ) मापक—चौड़ी का दो रत्ती तोल का या तीसरे का पाँच रत्ती तोल का घोट्टा सिका ।

३० (?) विपणिमार्ग = बाजार का चौड़ा रास्ता । इसके अतिरिक्त यहाँ शृङ्गाटक (खीराहा), घाँसिका (गल्ली), रथ्या (कम चौड़ी सड़क) का भी उल्लेख है । इनके यथाविधि नाम रखे जाते थे ।

वतरणमित्युभयमपार्थक्यं केवतामयशसे चानार्थाय च । किन्तु सुहृन्निदेशोऽयमस्माभिरवश्यं निर्वर्तयितव्यः । (५) भूयान् वेशे विटसन्निपातः । (६) (परिक्रम्य)

(१) अये नु खलु रोहितकीयेमादंगिकेः काश्यपन्वेष्टुमिश्रैर्यौधेयकवर्णैरुपगीयमानः एकध्वणायलम्बितकुरंटकशेखरो (२) विरलमपसव्यमाकुलदशमुत्तरीयमपवर्तिकया संक्षिपन्मुहुर्मुहुः प्रकटैकस्फिक् (३) सव्येन पाणिना मद्यभाजनमुक्षिप्य नृत्यन्नापानमयङ्गं हासयति । (४) (निर्वण्य) (५) आः ज्ञातम् । (६) एष हि स बाह्मिक-पुत्रः सर्वधूर्तपरिहासैकभाजनभूतो वेशकुम्कुटो बाष्पो घान्त्रः । (७) भोः यत्तत्त्वं न कदा-निदप्येनमयत्तमपीति वा पश्यामि न वायमुद्धितहस्तो मापकार्षेनापि । (८) तत्कुतोऽस्यै-

मापक इकट्ठा किए बिना वेश में प्रवेश करना बिना हथियार लड़ाई में उतरने की तरह व्यर्थ है और केवल बदनामी और अनर्थ का कारण है । पर मित्र के लिये मैं अवश्य उसकी सैर करूँगा । चकले में विटों का जखीरा जमा होगा । (घूमकर)

अरे, यह कौन है जो रोहतक के मृदंगियों द्वारा शौश और बॉसुरी बजाकर यौधेयो के घागड़ू गीतों के गान के साथ एकगाल पर कुरंटक का शेखर लटकाकर, दाहिने कंधे पर फड़कते किनारे के भीने उत्तरीय को नीचे न सरकने के लिये ऊपर को समेटता हुआ, बार बार कूल्हे मटका कर, बाएँ हाथ से मद्य पात्र उठा कर नाचता हुआ अपानमंडप को हँसा रहा है । (देखकर) हाँ, पता लग गया । यह वही बाष्पनामक बाह्मिक पुत्र है जो बेचारा सबकी हँसी का पात्र बन कर वेश के मुर्गे की तरह हो रहा है । अरे, यह सच है कि मेने उसे कभी बिना नशे के अथवा बिना पिए हुए नहीं देखा, दूसरी ओर उसके हाथ कभी अथेला भी नहीं लगता,

३० (१) रोहितकीयैः मादंगिकैः—ज्ञात होता है कि उस युग में रोहतक या हरियाना प्रदेश के मृदंगिये मशहूर थे ।

३० (१) यौधेयकवर्णः = यौधेय प्रदेश या हरियाने के गीत । रोहतक के उस पुन्व-पाथ में कुछ भौंक बूट रहे थे, कुछ बॉसुरी बजा रहे थे, कुछ मृदंग बजा रहे थे और कुछ गा रहे थे एवं उनके बीच में एक व्यक्ति फुदक कर नाच रहा था ।

३० (२) अपवर्तिका = नीचे सरक जाना या खिसक जाना ।

३० (६) वेशकुम्कुट—वेश में ही घुमकर घेठ भर लेने वाला, जिसकी और कोई स्वतन्त्र आजीविका न रह गई हो ।

३० (७) न वायमुद्धितहस्तः—मुद्रित संस्करण में इसका पाठ भ्रष्ट है—मवाय-मुद्धितहस्तः । न वायम् उद्धितहस्तः यही सशोषित पाठ होना चाहिए जो अर्थ की दृष्टि से समीचीन बैठता है । विट का अभिप्राय स्पष्ट है—एक जोर तो मैं इसे कभी बिना पिए हुए नहीं देखता, दूसरी ओर एक अथेला भी कहीं से इसके हाथ चढ़ी पड़ता । तो यह कैसे गुलखरें उड़ाता है ? उद्धितहस्तः—यह चढ़िया सुहावरा या । खेत में से अन्न का खिल्ला बीननेवाला तो कुछ देने पा जाता है, पर इसके हाथ कभी एक अथेला भी नहीं पड़ता, परी रकम पाने की तो बात ही क्या ? धार्मिक शब्दावली का उद्धृत शब्द (दे० मनुस्मृति ४।५) यहाँ वेश के सुहावरे में प्रयुक्त हुआ है । और भी दे० सुरतोन्मथुति शब्द पञ्चमाश्रुतक २१ (२१), पृ० २६ ।

तदुपपद्यते । (६) (वितर्क्य) (१०) हन्त विज्ञातम् । एष हि पुरोभागी लज्जावियुक्तः
सर्वकपः सार्वजनीनत्वात्—

३१—

(अ) आवद्धमण्डलानां

(आ) पिबतामुपदंशमुष्टिमादाय ।

(इ) प्रविशति बाष्पो मध्यं

(ई) नटनटीचेटाश्ववन्धानाम् ॥

(१) अहो तु खल्वस्य पानोपाजने विज्ञानम् । (२) तदलमनेनाभिभाषितेन ।
(३) इतो वयम् । (४) (परिक्रम्य) (५) इदमपरं जङ्गमं जीर्णोद्यानं विटजनस्य ।
(६) एषा हि पुराणपुंश्चली सरणिगुप्ता नाम कामदेवायतनाद् देवताया उपयाचितमभि-
निर्वर्त्य (७) स्फुटितकाशवल्लरीश्वेतमागलितमंसदेशादुपरि केशहस्तमुपन्यस्यन्ती (८)

तो उसका काम कैसे चलता है ? (सोचकर) हाँ, पता लग गया । यह बदमाश
- निर्लज्ज सबका भला होने के कारण सबको चूसने वाला हो गया है ।

३१—मंडल बांध कर पीने वाले के बीच गजक (उपदंश) की मूठी
लेकर यह बाष्प नट नटी चेठ और साईसों के बीच में घुसता है ।

अरे, पीने के लिये इसके पैदा करने का कौशल कैसा है ? अब इसके
साथ बात चीत करना बृथा है । (घूमकर) विटजनों का यह दूसरा चलता फिरता
पुराना जलीरा आ गया । कामदेव के मन्दिर से देवता की पूजा करके लौटकर
फूली कासवल्लरी की तरह सफेद और छिटकी हुई लट्ठों को कंधे पर संभालती हुई,

३० (१०) सर्वकप = सबसे कुछ न कुछ खींच लेने वाला । यह शब्द मॉनियर-
विलियम्स के कोश में नहीं आया ।

३० (१०) सार्वजनीनत्वात् = क्योंकि यह सबकी दृष्टि में भलामानस बना हुआ
है । सर्वजने साधुः सार्वजनीनः (प्रतिज्ञासिन्धुः सप्त, ४।१।६६) ।

३१ (५) जीर्णोद्यान—उज्जयिनी में पुष्पकरण्डक नाम का एक जीर्णोद्यान या
पुराना बगीचा था, ऐसा मृच्छकटिक में उल्लेख आया है (अंक ६ पुष्पकरण्डकं जिष्णुदत्ताणं) ।
उसी जीर्णोद्यान की ओर संकेत है । जीर्णोद्यान में जैसे मनचले एकत्र होते थे, ऐसे ही
सरणिगुप्ता के पीछे विट लगे रहते हैं ।

३१ (६) कामदेवायतन—उज्जयिनी में कामदेव के प्रसिद्ध मन्दिर का उल्लेख
मृच्छकटिक में भी है (एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानाप्रभृति तस्य दक्षिणोदत्तस्थानुरक्ता
न मां कामयते, अंक १) ।

३१ (६) उपयाचित = मनीता ।

३१ (७) केशहस्ता = बालों का जड़ा ।

सद्योघातनिधसना विगलितमुत्तरीयमेकांते प्रतिसमादधाना (६) बलिबिन्दुपोपनिपतितै-
र्वलिभृतैः परिवृतं मयूरं नृत्यन्तमपाङ्गेनावलोकयन्ती मकरयष्टिं प्रदक्षिणीकरोति (१०)
भोः यत्तस्यमद्याप्यस्याश्चिरातिक्रान्तं यौवनविभ्रमं विलासशेषं कथयति । (११)
तथाहि—

३२—

- (अ) श्वेताभिर्नखराजिभिः परिवृता व्यावृत्तमूली स्तनी
(आ) सृक्किणयोः शिथिलश्च मध्यगङ्गुलो निष्पीतपूर्वोऽधरः ।
(इ) सभ्रूक्षेपमुदाहृतः परिचयादद्यापि युक्तोऽन्तरः
(ई) रूपं हि ग्रहतं प्रसह्य जरया नास्या विलासा हताः ।

(१) तन्न शक्यमेनामनमिमाष्यातिक्रमितुम् । (२) एषा ह्यस्माकं प्रियवयस्य-
मार्दगिकं स्थाणुमित्रं मित्रं व्यपदिशन्ती क्रौञ्चरसायनोपयोगमात्मनः प्रकाशयति । (३)
तत्कथमेनामुपसर्पामि । (४) (विचिन्त्य) (५) आ ज्ञातम् । (६) अस्या हि
इतस्तृतीयेऽहनि तपस्वी स्थाणुमित्रश्चुम्बनातिमसङ्गात्तथा बीभत्समनुभूतयान् । (७)
अहो धिगकरुणो रागः—

तुरत के धुले कपड़े पहने हुई, एक कंधे पर से हटे उत्तरीय को ठीक करके अपनी
जगह पर रखती हुई पुरानी पुंश्चली सरणिगुप्ता कामदेवायतन की मकरयष्टि की
परिक्रमा लगा रही है, पर फनली से बलि पर झपटते हुए कौओं से घिरे हुए नाचते
मोर को भी देखती जाती है । अरे, सचमुच इसके शरीर पर विलास के बचे खुचे
चिह्न इसकी जवानी की बीती चुलबुलाहट बता रहे हैं । अब भी—

३२—लटके हुए स्तन नखक्षतों के श्वेत बिंदुओं से भरे हैं । पूर्वकाल में
चूसा हुआ अधर भ्रान्त भाग में लटक कर बीच में गठीला पड़ गया है । आज भी
पहले अभ्यास के कारण इसका मौं मटकाना इसके भीतर की हविस बता रहा है ।
बुढापे ने जयर्दस्ती इसका रूप तो हर लिया है, पर इसके नखरे नहीं हरे गए ।

तो इससे बातचीत किए बिना जाना मुश्किल है । यह मेरे प्रिय मित्र
मूर्दगिए स्थाणुमित्र को अपना मित्र बताती है । तभी तो यह प्रकट करती है
कि इसका क्रौञ्चरसायन खाना सफल है । इससे कैसे बात करूँ ? (सोचकर)
ठीक, पता लगा । आज से तीन दिन पहले वैचारे स्थाणुमित्र ने इसके साथ
गहरी चूमाचाटी के बीच बड़ा बीभत्स अनुभव किया । धिक्कार है ऐसे चिमड़े
प्रेम को—

३१ (६) मकरयष्टि—कादम्बरी में कहा है कि उज्जयिनी में प्रत्येक भवन के ऊपर
मकरांकित मदनयष्टि उद्भिष्ट की जाती थी जिससे सूचित होता था कि मकरपूजन की पूजा
की गई है (का० अनुच्छेद ४४) ।

३२ (अ) व्यावृत्तमूलस्तन—जिनके मूल भाग या चूंचुं बूढ़ावस्था के कारण
लटक गए हैं ।

३३—

(अ) चुम्बनरक्त सोऽस्या

(आ) दशन च्युतमूलमात्मनो वदने ।

(इ) जिह्वामूलस्पृष्ट

(ई) स्नादिति कृत्वा निरधीवत् ॥

(१) तत्काम वेशमवतितीर्षुस्तोर्थमतिकामन् वञ्चित स्याम् । (२) अथवा आनिष्टत स्यात् स्थाणुमित्रदने दन्तनिपतनम् । (३) तन्नामिगमनेन ग्रीवा पुनरुक्ती करामि । (४) सर्वथा नमोऽस्यै । (५) साधयामस्तावत् । (६) (परिक्रम्य)

(७) ण्योऽस्मि वेशमन्तीर्ष्य । (८) अहो तु वेशस्य परा श्री । (९) इह हि—एतानि पृथक् पृथङ्निनिष्ठानि रचिरवप्रनेमिसालहर्म्यशिखरकपोतपाली

३३— इसका चुम्बन में आसक्त दाँत अपनी जड़ से निकल कर उसके मुँह में चला गया, जिसे जीभ में लगते ही उसने खून से धूँक दिया ।

इसलिए वेश में घुसने का इच्छुक मैं यदि इस घाट को छोड़ कर जाऊँ तो ठगा गया । अथवा स्थाणुमित्र के मुँह में इसके दाँत गिरने की बात फैल चुकी होगी । तो इसके सामने पहुँचकर मेरा इसे फिर लज्जित करना ठीक नहीं । इसे निकल नमस्कार है । मैं अत्र चल् । (घूमकर)

मैं वेश में पहुँच गया । अहा ! वेश की वैसी अपूर्व शोभा है । यहाँ अलग अलग बने हुए, सुन्दर वप्र (मकान की कुर्मी की रोकने वाले हाथी), नेमि (दीवारों की नींव), साल (परकोटा), हर्म्य (ऊपरी तल के कमरे) शिखर,

३३ (८) वेशस्य पराश्री — उज्जयिना और पाण्डिपुत्र जैसे सार्वभौम नगरों में अनेक शोभायुक्त हाट होते थे । उनमें वश या शृंगारहाट का शोभा सबसे विलक्षण होता था ।

३३ (९) पृथक् पृथङ्निनिष्ठानि—महाभवनों का विन्यास कोटिबाह्य भौति एक दूसरे के बीच में कुछ भूमि छोड़कर किया जाता था ।

३३ (९) वप्र = कुर्मी का ऊँचा चेजा । स्वाद्ययो वप्रमद्वित्रयाम्, अमर ।

३३ (९) नेमि = नाव

३३ (९) साल = परकोण चारदावारा । प्राकारो वरण साल, अमर ।

३३ (९) हर्म्य = महल के ऊपरी भाग में कमरा । काचिन् स्थिता तत्र तु हर्म्यपृष्ठे गवाक्षपथे प्रणिधाय चक्षु (सौ-दरन-द ३१२८) ।

३३ (९) कपोतपाली = घर या मन्दिरक शिखर में ऐसा निकलता हुआ धुन्ना जिसपर कपोत पक्षि का अलकरण उकाँ रहता था । इस मध्यकालीन शिल्प प्रथा में कपवाला या केवाल भा कहा गया है ।

सिंहकर्णगोपानसीवलभीपुटाट्टालकावलोकनप्रतोलीविटङ्कप्रासादसनाधानि (१०) असम्बाध

कपोतपाली (कवूतरो के बैठने के छज्जे), सिंहकर्ण (खिडकी के कोने), गोपानसी (खिडकी की चौथी), वलभीपुट (मडपिका और उसकी उभरी छत) अट्टालक (अटारी), अवलोकन (गोख), प्रतोली (बहिर्द्वार या पौर) तथा विटक (पक्षियों के लिए छतरी) और प्रासादों से भरे हुए, चौड़े चौक वाले (कक्ष्या-

३३ (E) सिंहकर्ण और गोपानसी—घर के सुहार या मुखपट्ट पर सैय्यवातायन का अलकरण बनाया जाता था जिसे कान्तिमुख कहते थे । उसकी आकृति गुप्तकाल में जैसी विरसित हुई उसमें बीच में एक जालीदार छद्मा, दोनों ओर सिंह के कानों की आकृति के दो निकलते हुए कोने और ऊपर गोमुख की लम्बी नासिका जैसी शिखा बनाई जाती थी । इन्हें ही क्रमशः सिंहकर्ण और गोपानसी कहा जाता था ।

३३ (E) वलभी—महल के ऊपरी भाग में बनी हुई मडपिका या छोटी तिहरी, चारादरी आदि । कादम्बरी में 'निवासजीर्ण वलभी' का उल्लेख है जिसकी व्याख्या में भानुचन्द ने 'गृहोपरिभाग' लिखा है । मेघदूत में 'मवनवलभी सुसपारावतायाम्' उल्लेख से ज्ञात होता है कि वलभी छत के ऊपर का खुला हुआ मडप था जिसमें कवूतर स्वच्छन्दता से बसेरा लेते थे । पर यह आवश्यक न था कि 'वलभी छतपुर ही हो या खुली हुई ही हो । कादम्बरी में कदलीवन में बनी हुई हाथा दाँव की वलभियों का उल्लेख है (कदलीवनकलि-स्ताभि विशि विशि दन्तधेलभिकाभिर्धवलकीकृता) । तिलकमञ्जरी के अनुसार दन्तवलभी में चित्र भी लिखे जाते थे । फूटागार तु वलभी, अर्थात् वलभी शिखर युक्त छोटा कमरा होता था । यहाँ वलभीपुट में पुट से तात्पर्य वलभी के कूट या शिखर से हा ज्ञात होता है ।

३३ (E) अट्टालक = अट्टा या अटारी, छत के ऊपर का कमरा ।

३३ (E) अवलोकन—प्रासादके सबसे ऊपरी भागमें एक ऐसा छोटा मंडप या स्थान जहाँ से बाहर का ओर देखा जा सके । दिव्यावदान में इसे अवलोकनक (पृ० १२१) कहा है । कम्हेरा गुफाभा में एक भति उच्च गुफा को सागरप्रलोकन गुफा कहा गया है ।

३३ (E) प्रतोली = बग़ा द्वार, बहिरद्वारोत्तरण । प्रतोली > प्रओलि > पोल, पौर ।

३३ (E) विटङ्क—अमरकोश के अनुसार कवूतर आदि की छतरा की विटङ्क कहते थे (कपोतपालिकाया तु विटङ्क) । ऊपर जो कपोतपाली शब्द आ चुका है वह तो शिखर का एक अलकरण बन गया था । जैसा चोरस्वामी ने लिखा है, कपोतपाली पर पत्थर में कवूतरों की आकृति उकेरी जाती थी (पक्षिपक्षिदि तत्रोकीयते) । किन्तु विटक उस प्रकार का अटाला होना चाहिये जिस पर कवूतर मोर आदि पक्षी बैठते थे । उसे गुजरात में परबेरी कहते हैं । उज्जयिनी के राजकुल में बाग में विटङ्कवेदिकाभा से युक्त शिखरों का वर्णन किया है (अनेकसज्जनचन्द्रशालिका विटङ्कवेदिकासकटशिखरै महाप्रासादै) ।

३३ (E) प्रासाद—यहाँ प्रासादों को महाभवनों का एक अंग कहा गया है । अमर कोशके अनुसार देवता और राजा के भवन को प्रासाद कहा जाता था । अतएव यहाँ देव प्रासाद से तात्पर्य होना चाहिए ।

कक्ष्याविभागानि भागे निमित्तानि (११) सुनिर्मितरुचिरसातपूरितसिक्तसुपिरफूटतोत्को-
टितलितलिखितसूक्ष्मस्थूलविविक्तरूपशतनिबद्धानि (१२) बन्धसन्धिद्वारगवाक्षवितर्दि

विभाग), भागों में बँटे हुए, सुनिर्मित, जलपूर्ण सुन्दर परिखाओं से युक्त, छिड़काव
से सुशोभित, नल की फूँक से साफ किए हुए, टपरिया कर पलस्तर किये हुए
(उत्कोटित-लित), चित्रकारी किए हुए (लिखित), सूक्ष्म और स्थूल उभरी हुई
(विविक्त) भाँति भाँति की नकाशियों (रूप) से सजाए हुए, बंध-संधि, द्वार,

३३ (१०) असंवाधकक्ष्याविभाग—जिनमें लम्बे चौड़े चौक (कक्ष्या) एक भाग
को दूसरे भाग से भेद करते थे । प्राचीन महलों और बड़े भवनों का वास्तुविन्यास कक्ष्या-
विभाग पर आश्रित था । तीन, पाँच, सात कक्ष्याओं के सहल बनते थे । वसन्त सेना के
विशाल भवन में आठ कक्ष्याएँ थी । नन्द के घर को कक्ष्यामहत् कहा गया है (सी० ५।८) ।
कक्ष्या विभाग के लिये दे० हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३०४ ।

३३ (११) सुपिरफूटत—भाँति की पोली नलकी की फूँक से रजोहीन या स्वच्छ किए
हुए । यह सफाई का चरम आदर्श समझा जाता था ।

३३ (११) उत्कोटित—नोकदार बसूली से ठोककर सुरदार करना जिसे टपरियाना
कहते हैं । पलस्तर करने से पूर्व भीत को टपरियाते हैं ।

३३ (११) लित—लेप चढ़ाया हुआ ।

३३ (११) लिखित—चित्रों से अलंकृत, चित्रमण्डित ।

३३ (११) सूक्ष्मस्थूल विविक्तरूप—बारीक और मोटे काम की उकेरी द्वारा बनाए
गए अलंकरण या आकृतियाँ । रूप = आकृति या अलंकरण । विविक्तरूप = काढ़कर बनाई गई
(विविक्त) आकृति, जो उकेरी अपनी पृष्ठभूमि से भागे निकली रहे; अंग्रेजी रिलीफ । सूक्ष्म-
विविक्त = महीन काम, कम उठा हुई उकेरी, अ० बाल-रिलीफ । स्थूलविविक्त = मोटा काम,
अधिक उठा हुई नकाशी, अ० हाइ-रिलीफ ।

३३ (१२) बन्धसन्धि—दीवारों का जुड़ाई । विरलेयिता इव दिशामन्योन्यबन्ध-
सन्धयः, कादम्बरी अनुच्छेद ११२ ।

३३ (१२) गवाक्ष = मोख । जालों में गवाक्ष और कुंजराक्ष दो प्रकार के मोटे और
महीन कटाव होते थे । गवाक्ष जाल से अलंकृत बिड़की गवाक्ष कहा जाने लगे ।

३३ (१२) वितर्दि = वेदिका, घर के सुन्दे आँगन में बना हुआ चतुस्र । स्याद्वितर्दि-
स्तु वेदिकः (भस्मर) ।

संजवनवीथीनिर्यूहकानि (१३) एकद्वित्रिपादपालंकृतमाध्यकोद्देशानि (१४) उद्देश्यवृक्षक-

गवाक्ष, वितर्दि (वेदिका या चबूतरा), संजवन (चतुःशाल), वीथी और निर्यूहों (निकली हुई वेदिकाओं वाले छज्जे) से संयुक्त, नीच के चौक में कहीं एक-एक कहीं दो-दो कहीं तीन-तीन वृक्षों से अलंकृत, गृहोद्यान के योग्य वृक्ष (उद्देशक-

३३ (१२) संजवन = चतुःशाल, घर के भीतर का बड़ा आँगन जिसके चारों ओर शालाएँ या कमरे बने हों। बनारसी चोली में इसी से निकला हुआ चउसझा > चौसझा शब्द अभी तक चल रहा है। संजवनं त्रिवं चतुःशालम् (अमर)। राजभवन में धवलगृह के भीतर जो चतुःशाल होता था उसमें चार नहीं, अनेक कमरे बनाए जाते थे। चतुःशाल आँगन के बीच की वेदिका को हर्षचरित में चतुःशालवितर्दिका कहा गया है। संजवन या चतुःशाल और वितर्दि के ठीक अर्थ निर्णय के लिये दे० हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६२, २०७, २०८।

३३ (१२) वीथी—यह भी स्वाभाविक का पारिभाषिक शब्द था। धवलगृह के आँगन में चतुःशाल के कमरों के सामने एक खुला मार्ग रहता था जिसे 'पथ' कहते थे और खम्भों पर लम्बे दालान बने रहते थे जिन्हें वीथी कहते थे। हर्षचरित में इन्हें सुवीथी कहा गया है। पथ और सुवीथी के बीच में कई कनातें लगी होती थीं (त्रिगुणतिरस्करीणातिरोहित-सुवीथीपथे, हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०८)।

३३ (१२) निर्यूहक—घर के भीतर के बड़े कक्ष में वीथियों से निकलने हुए छज्जे जिनके सामने छोटी वेदिका हो और पीछे कमरे हों। महाव्युत्पत्ति (२२६।३२) और अजन्ता गुहालेख में यह शब्द आया है (गवाक्ष निर्यूह-सुवीथि-वेदिका-सुरेन्द्रकन्याप्रतिमाद्यलङ्कृतम् । मनोहरस्तम्भ-विभङ्ग-भूषित-निवेशिताभ्यन्तर-चैत्यमन्दिरम् ॥ अजन्तागुहा १९ में वाका-टकलेख)। निर्यूहो नगरादन्तके, अमर, अर्थात् हाथी के दाँतों की तरह ऊपर उठो हुई घुटिया पर डिकी हुई वेदिका निर्यूह कहलाती थी।

३४ (१४) माध्यक उद्देश—धवलगृह के भीतरका आँगन या खुला स्थान। उद्देश = स्थान (जहाँ प्रयातसुभगोऽयमुद्देशः, शकुन्तला अंक ३)। प्राचीन भवनों में दो उद्यान होते थे—वायोद्यान (मेघदूत १०।१) और गृहोद्यान या भवनोद्यान (वाण)। बाहरी परकोटे और मझान के बीच में जो खुला स्थान होता था वहीं बाह्य उद्यान लगाया जाता था। दूसरा अन्तःपुर उद्यान महल या मकान के भीतर (माध्यम उद्देश में) होता था, उसीसे यहाँ ता-पर्य है। वह सुखमन्दिर या रंगमहल के साथ संलग्न होता था। वहीं बाद में नज़र बाग कहलाने लगा।

३३ (१४) उद्देश्य वृक्षक—माध्यक उद्देश या भीतरी पालकों में रोपे जाने योग्य भवनपादप या छोटे और सुकुमार वृक्ष, जैसे अन्तःपुर बालवकुल, रक्तारोक आदि।

हरितकपलमाल्यपण्डमण्डितानि (१५) पुरण्डरीकशवलितविमलवापीतोयानि (१६)
तोयान्तरविहितदारुपर्वतकभूमिलतागृहचित्रशालालंकृतानि (१७) परार्धमुक्ताप्रवाल-

वृक्षक), साग-सञ्जी, फल और माला के लिये उपयोगी फूलों की अलग अलग
खंडियों या पालचों से मंडित, श्वेत कमलों की श्रवण चापियों के निर्मल जलों से
सुशोभित, जलवापो के समीप बने हुए दारुपर्वतक-भूमिगृह-लतागृह एवं चित्र-

३३ (१४) हरितकण्ड = हरियाली या साग सञ्जी के पौधों के पालचे ।

फलपण्ड—फलों के वृक्षों के पालचे, जैसे भवनदाडिम लता, बाल-सहकार या
छोटे कद के कलमों आम जैसे फलदार पेड़ ।

माल्यपण्ड—फूलों के वृक्षों के पालचे, जैसे प्रियंगुलता, जातिगुच्छ (हर्षचरित),
गन्धकवनराजि । पण्ड समास के अन्त में है; वृक्षक, हरितक, फल, माल्य इन चारों से
उसका सम्बन्ध है । हर्षचरित में रानी यशोवती के विलाप में इनका स्फुट वर्णन है
(हर्ष० पृ० १६४)

३३ (१५) पुरण्डरीकशवलितवापी—भवन दीर्घिका के बीच-बीच में राघोदक से
पूर्ण कीडावारियों बनाकर उनमें कमल कुबल्य आदि पुष्प लगाए जाते थे । वापीवर्णन
(मेघदूत, २। १३) । कादम्बरी में कांचन कमलिनी का उल्लेख है (पृ० २१९)

३३ (१६) तोयान्तर—जल से भरी हुई पुष्करिणी के निकट । अन्तर शब्द का
अर्थ यहाँ 'भीतर' नहीं 'निकट' है ।

३३ (१६) दारुपर्वतक—भवनोद्यान के एक भाग में जो क्रीडा पर्वत बनाया
जाता था वही दारुपर्वतक है । कादम्बरी के भवनोद्यान का वर्णन करते हुए याण ने
इसका सविशेष वर्णन किया है । क्रीडा पर्वत की तलहटी में ही भवनदीर्घिका या यही
पुष्करिणी बनाई जाती थी । अतः यहाँ भी दारुपर्वतक को तोयान्तर या जलके समीप में
निर्मित कहा है ।

३३ (१६) भूमिलतागृह—भूमिगृह = सुईहरा जो ग्रीष्मऋतु में विधाम के
काम आता था । लतागृह—कादम्बरी में भी क्रीडापर्वत के ऊपर बने हुए लतागृह का
उल्लेख आया है ।

३३ (१६) चित्रशाला—यह चित्रशाला वह स्थान था जो राजशासद से लगी
हुई वाटिका में बनाया जाता था । इस 'चित्तरसारी' में विविध अतिथि दहराए जाने थे
पद्मावत (जहाँ सोने के चित्तरमारी । वैडि वरात जानु पुष्पवारी ॥ २८२।२) और
चित्रानली (चित्रावलि का है चित्तरसारी । चारों माँहि विचित्र सँवारी ॥ ८३।३) में इसी
चित्रशाला का उल्लेख है जो बाह्योद्यान वाटिका में बनाई जाती थी । घण्टगृह के ऊपरी
तहने में पति-पत्नी के पास गृह या शयनरुच की मितियों पर भी चित्र माँदे जाने थे और
सम्भवतः उसका भी एक संज्ञा चित्रशाला या चित्तरमारी थी ।

किङ्किणीजालाविष्कृतपरिपुष्कराणि (१८) उच्चित्रसौभाग्यवैजयन्तीपताकानि उत्पतन्तीव
गगनतलमवनितलाद् भवनवरावतंसकानि वारमुख्यानाम् । (१९) यत्रैते—

३४—

(अ) आसीनैरवलीढचक्रलयैर्मल्लिङ्गिरावन्तिकै—

(आ) धार्यारूढकिरातसङ्गतधुरास्तिष्ठन्ति कर्णैरिथाः ।

शालाओं से अलंकृत, बहुमूल्य मोती, प्रवाल और किङ्किणी के जालों से घिरे हुए कमल के फुल्लों (परिपुष्करों) से सुन्दर, एवं सौभाग्य की सूचक वैजयन्ती नामक पताकाओं से युक्त, प्रधान वेश्याओं के आलीशान महल पृथिवी से आकाश की ओर उड़ते हुए से जान पड़ते हैं । जहाँ पर—

३४—वेश के बाहर कर्णारिथ खड़े हैं जिनके पहियों को नलों से खरोंचते हुए आवन्तिक पुरुष उनका सहारा लेकर बैठे हुए ऊँच रहे हैं । और उनके दोनों

३३ (१७) परिपुष्कर—कमलों की आकृति के फुल्ले जिनसे घर सजाए जाते थे । इन्हें यहाँ मोती, मूँगे और धुँधुरनों के बुने हुए जालों से शुकट रूप में विरचित कहा गया है । इन यवै फुल्लों की हर्षचरित में 'मंगल कमल' संज्ञा कही गई है—सरस्वती का मुख ऐसा शोभित था मानों त्रिभुवन की सजावट के लिये अद्वितीय मंगल कमल हो । बीच में खिले हुए कमल की आकृति और उसके चारों ओर और भी कई परिमंडल बनाए जाते थे जिनके अलंकरण मानसार में रत्नकर, पत्रकर, पुष्पकर, (५०५-६) आदि कहे गए हैं । इसी से इन्हें परिपुष्कर कहा जाता था । अजन्ता की गुहा १ की छत में परिपुष्कर का आलेखन है (राजा साहय औंध, अजन्ता, फलक ४५) । समासान्त में पठित जालशब्द का प्रत्येक के साथ अन्वय है—मुक्ताजाल, प्रवालजाल, किङ्किणीजाल ।

३३ (१८) सौभाग्यवैजयन्तीपताका—पताका = ध्वजा में लगा हुआ पट जो हवा में फहराता था । वैजयन्ती = ध्वजा । सौभाग्य = श्री पुरुषका साहचर्य (सौभाग्य, मेघदूत १।२१, स एव सुभगः यमंगनाः कामयन्ते) ।

३३ (१८) अवतंसक = मुकुट, चूडा ।

३४ (अ) अपरीत चक्रलयः—अपरीत—खरोंचने । चक्र, चक्रे, चक्र, चक्र, चक्र, पहियों की पुट्टियों को उँगलियों से खरोच रहे हैं ।

३४ (अ) आपन्तिक—अवन्ति जनपद के गाँवों से आए हुए तगड़े रथ चारदारों की ओर संरेत है ।

३४ (आ) कर्णारिथ—पदों से ढके हुए हाथ से रींचे जानेवाले छोटे रथ जो राजस्थानी महलों में अभी तक काम में आते हैं । श्वश्रूजनानुष्ठितचारुपेया कर्णारिथो रघुवीरपवीय (रघुवंश १४।१३) । कर्णारिथः प्रवहणं वयनं रथगमके इति यादवः । अमरकोश में भी यही अर्थ है । चक्रवलय और धुर पदों से सूचित होता है कि कर्णारिथ पाण्डों न होकर छोटे हथियार रथ ही थे । कुछ रईसजादे अपने आपको गुप्त रत्न के लिये कर्णारिथों में पैदा कर आते थे ।

३४ (आ) धार्यारूढ = बरदाँ बसे हुए । धार्य = बस । आरूढ = बसकर पढ़ने हुए ।

(३) एते च द्विगुणीकृतोत्तरकुथा निद्रालसाघोरणा-

(३) काम्बोजाश्च करेणवश्च कथयन्त्यन्तर्गतान् स्नामिन ॥

(१) अपि चास्मिन्नुद्देशे—

३५—

(अ) नयनसलिलैर्यैरेवैको व्रजन्नतिवाह्यते

(आ) प्रततन्निस्तृतैस्तीरेवान्यो गृहानभिनीयते ।

(इ) अट्टशविमवेष्वासागामास्था तथापि कृतव्यया

(ई) समनुपतिता निर्भर्त्स्यन्ते बलात् किल मातृभिः ॥

(१) (परिक्रम्य)

३६—

इयमनुनयति प्रिय क्रुद्धमेपा प्रियेणानुनीता प्रसीदत्यसौ सप्ततन्त्रीर्नरी-
र्घट्यन्ती कल काकलीपञ्चमप्रायमुत्कठिता बल्लुगीतापदेशेन विकीरति ॥

और बरदी करते हुए किरात धुरों से सटकर पहरा दे रहे हैं। वहीं कम्बोज देश के घोड़े और हथिनिया खड़ी हैं जिनके महाबल नाँव में ऊँघते हुए अलसा रहे हैं और जिनकी पीठों पर पड़ी हुई पलानें और कालीन मोड़कर दोहरे कर दिए गए हैं। ये तीनों सूचित करते हैं कि उनके मालिक रईस और अधिकारी अपने बाहन बाहर छोड़कर घेरा में गए हैं।

और इसी जगह में—

३५—एक ओर जिन आँसुओं से जाते हुआ को निद्रा किया जाता है, दूसरी ओर उन्हीं उमड़ते आँसुओं से आए हुआ को घर वापस भेज दिया जाता है। रईसों की खुशामद की जाती है और लुटे पैसे वाले प्रेमी वापिस आने पर खालाओं से धुडके जाते हैं।

(घूमकर)

३६—यह अपने मोहित प्रेमी को बना रही है। यह प्रिय से अनूनीत होकर प्रसन्न हो रही है। यह सप्ततन्त्री वीणा को नखों से झनकारती हुई उत्कठित होकर सुन्दर काकली के पंचम सुर में प्रिय गीत के बहाने रो रही है।

३४ (इ) द्विगुणीकृतोत्तरकुथा— अर्थात् मालिकों के सवारी छोड़ देने पर ऊपरी कालीन घोड़ी दर के लिये मोड़कर दोहरे कर दिए जाते थे, यही नियम था। उच्चयिनी के रात्रकुत्त का वर्णन करते हुए कहा गया है कि दरबार का समाप्ति पर राजाभा के उठ जाने के बाद उनके कुत्त और रत्नासन गोलिया बर आस्थान मध्य में एक ओर दर पर दिए गए थे (बादम्बरी अनु० ८८) ।

३५ (अ) अतिवाह्यते—अतिवाह = बिदा करना, पीछे जाकर गृहीत देना ।

३५ (इ) अट्टशविमम = त्रिनकी टेंट में अभी मालमता है ।

३५ (ई) प्रतव्यया — जो अपना पूँजी घेरा में पून चुके हैं ।

३७—इयमुपहितदर्पणा कामिना मण्डयते कामिनी कामिनो मौलिमेपा निवभ्नात्यसौ ।
शार्ङ्गिका स्पष्टमालापयत्येष मत्तो मयूरोऽनया चूतपुष्पेण सन्तर्जितो नृत्यति ॥

३८—कथमियमतिकन्दुकक्रीडया मध्यमावासायत्यल्पमेपा' प्रियेणोपविष्टा सहाक्षीः ।
परिक्रीडति प्रौढया चानयैतत् स्वयं लिरयते चित्रमाल्यायिकाऽसौ पुनर्वाच्यते ॥

३९—अलमलमतिसम्भ्रमेणास्यता वासु भद्रे चिराद्दृश्यसे किं ब्रवीष्य “य तं प्रष्टुम-
र्हस्यहं येन मुग्धा तथा यञ्चिते” ति प्रसाद्याऽसि नः स्वस्ति ते तत्तथा, साधयामो
वयम् ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) इदमपरं सुहृत्पत्न्यनुपस्थितम् । (३) एष हि बाह्लिकः

३७—पास में दर्पण रखकर यह कामिनी कामी द्वारा सजाई जा रही है । यह कामी की चोटी बाँध रही है । यह मैना को बोली सिखा रही है । यह मत्त मयूर आम की मंजरी से डकटा जाकर नाच रहा है ।

३८—यह अधिक गँद खेलकर अपनी पतली कमर कैसी लचका रही है ? यह प्रिय के साथ बैठकर पासा खेल रही है । यह मौढा मनोविनोद के लिये स्वयं चित्र लिख रही है और यह कहानी पढ़ रही है ।

३९—अरे, आवभगत हो चुकी । भद्रे वामु, तू बैठ । बहुत दिनों के बाद देख पड़ी है । क्या कहती है—“आज तू उससे पूछ लेना जिसने मुझ मोली को इस प्रकार ठग लिया ।” मेरी ओर से तू ही मनाने योग्य है । पर वह जैसा है तेरे लिए भला बना रहे । ले मैं चला ।

(घूमकर) यह दूसरा मित्रों का जखीरा ही आ गया । यह बाह्लिक का

३६ (३६) ये चारों दण्डक छन्द हैं जिसके प्रत्येक चरण में १५ अक्षर हैं । देखिए पद्यप्रामाण्यक श्लोक १ । मत्स्यपुराण अ० १५४ में दण्डक छन्दों के विशिष्ट उदाहरण हैं । गुप्तयुग में यह ललित छन्द उत्कृष्ट काव्य के लिये प्रयुक्त किया जाता था । इन श्लोकों में वेश जीवन के विविध दृश्यों का सरलित चित्रण है । इनके पृथक् क्रमांक चाहिए थे । श्रीरामकृष्ण के संस्करण में ऐसा नहीं है, पर यहाँ कर दिया गया है जिससे अगले श्लोकों की क्रम सत्या में चार की वृद्धि हुई है ।

३६ (३) बाह्लिक—बाह्लीक देश का । अफगानिस्तान के उत्तर पश्चिम का प्रदेश । मेहरीली स्तम्भ लेख के अनुसार चन्द्र नामक राजा ने बाह्लीक तक अपनी विजय का विस्तार किया था । इस चन्द्र की पहचान चन्द्रगुप्त विजयनादित्य से प्रायः की जाती है । इसमें सूचित होता है कि गुप्त साम्राज्य की सीमा का विस्तार बाह्लीक प्रदेश की बंधु नदी तक हो गया था, जिसका संस्कृत कालिदास के ‘बन्धु तार विचेष्टनैः’ उल्लेख में भी है (रघु० ४।६७) ।

काकायनो भिषगेशानचट्टि हरिश्चन्द्रश्च इव कुमुदवापा वेशवाटीमरभासयन्ति
एगभिरर्तते । (४) तन् स्मिन्स्येह प्रयोजनम् । (५) (विचित्य) (६) आ ज्ञातम् ।
(७) एष हि तस्या पूर्वप्रणयिन्या यशोमत्या भगिना प्रियगुण्यष्टिना कामयते । (८)
अस्मानपि रहस्येनातिसंघत्ते । (९) तन शन्यमेनमप्रतिपद्य गन्तुम् । (१०)
यानदुपसर्पाम् ।

(११) (उपगम्य) वशत्रिसवनेरुचक्राक कुतो भवान् ? (१२) किं वशीपि—
“एष हि तस्या प्रियसस्यास्ते स्नायसा प्रियगुण्यष्टिकाभोपधन सम्भाव्यागच्छामि” इति ।
(१३) न खलु तस्या सुरतभिन्नाया आमयासन्नो मदनाग्निस्तस्य दापनीयमुपनिष्ठ
वानसि । (१४) किं वशीपि—“मुक्त परिहास कण खलु तस्या शिरोवेदना” इति ।
(१५) वयस्य यत्नस्यम् । (१६) किं वशीपि—“क सदेह, कृच्छ्रसाध्या” इति ।

रहने वाला काकायनगोत्री वैद्य ईशानचन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र चन्द्रमा की तरह
कुमुदवापा रूपी प्रेमावाग को चमकाता हुआ डगर ही आ रहा है । यहाँ इसका क्या
प्रयोजन ? (सोचकर) याद आ गया । यह अपनी पुरानी प्रणयिनी यशोमती की
बहन प्रियगुण्यष्टिना को चाहता है । मुझमें भा वह यह भेद छिपाता है । अब
इससे मिले बिना जाना नहीं हो सकता । तो इसके पास जाऊँ ।

(पाम पहुँच कर) अरे, वेगरूपी कमलजन के अगले चरणे, कहीं से आ
रहा है ? क्या कहा—“जस तेरा प्रिय सखी यशोमती की छोटी बहन प्रियगुण्यष्टिका
को दवा देकर आ रहा हूँ ।” ज्ञात होता है सुरत की भिखमगा उमका मदनानि
इस बीमारी में भा बुझी नष्ट है । तू उसे गडकाने की सीख दे आया है । क्या
कहता है—“हँसी की बात परे रख । उमका सिर दर्द बड़ा भयकर है ।” मित्र
क्या सचमुच ऐसा है ? क्या कहता है—“इसमें क्या शक है ? वह मुश्किल से

३६ (३) काकायन = एक जाति का । हूणा के समान एक एक विशाल जाति
थी जिसका निवास बाह्याक व उत्तर में स्थित सुरज प्रदेश (सागदियाना) में था ।
भागवत में भा कका का उल्लेख है—त्रिरातहूणाग्रपालद्विपुलक्या आभारक्या यवना
ससादय (२।१।१८) ।

३६ (३) हरिश्चन्द्र वेद—रामकृष्ण भट्टि ने हरिश्चन्द्र पाठ दिया है । पर
संभवत यह ‘हरिचन्द्र’ था । वाग न भट्टार हरिचन्द्र क मनाहर गद्य ग्रन्थका उल्लेख
किया है । महेश्वर विरचित विश्वप्रकाश कोश के अनुसार व गार्ग्याङ्ग नृपति क राजवैद्य
थे । राजशेखर ने काव्य मामाम्या में हरिचन्द्र और चन्द्रगुप्त का विशाला अर्थात् उज्जयिनी
में एक साथ उल्लेख किया है (३० दर्पचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ६) ।

३८ (३) शवाटी—वाग = घिरा हुआ स्थान, मुहल्ला ।

(१७) एवमेतत् । (१८) शिरोवेदना नाम गणिकाजनस्य लक्षव्याधिर्यौतकम् ।
(१९) पश्यतु भवान्—

४०— (अ) ललाटे विन्यस्य क्षतजसदृश चन्दनरस
(आ) मृणालैः क्रीडन्ती कुचलयपलाशैः सकमलैः ।
(इ) सलील भ्रूक्षेपैरनुगतमुखप्राशिनकरुधा
(ई) विरक्ता रक्ता वा शिरसि रुजमारस्याति गणिका ॥

(१) किं वयोपि—“सदाऽपि नाम त्व कर्कशपरिहास । (२) एष खलु ता
मौपध प्रपाय्यागच्छामि” इति । (३) युक्तमेतत् । (४) असंशय हि—

४१— (अ) धुन्वन्त्या करपल्लव वलयिन घ्नन्त्या पदा कुट्टिम
(आ) विभ्रन्त्या (त्या)श्च्युतमशुक तरशान नाभेरथ पाणिना ।
(इ) तस्या दीर्घतराकृताक्षमपिब केशप्रहेरानन
(ई) बाला त्वदशनच्छदोपधमल सा वा दया पायिता ॥

अच्छी होगी ।” ठीक, सिर दर्द बेइयाबों के लिये लाख व्याधियों का दहेज है ।
तू देख—

४०—ललाट पर लहू की तरह लाल चदन लगाकर, मृणाल, पद्मपत्र और कमलों से खेलती हुई, भौहें नचाकर नखरे से मुख प्रश्न पूछने वाले यारों से बातें करती हुई, विरक्त अथवा रक्त गणिका सिर दर्द ही बताया करती है ।

क्या कहता है—“आप हमेशा से ही अपने कठोर परिहास के लिये मशहूर है । उसे दबा पिलाकर चला आता हूँ ।” ठीक है । बिना सन्देह—

४१—वलय से सुशोभित हाथ धुन्ती हुई, फर्श पर पैर पटकती हुई, नाभि से नीचे खिसकते हुए रशना युक्त अशुक को हाथ से सँभालती हुई, उसके बड़ी बड़ी आँखों वाले मुखको बाल सी च कर अपनी ओर करते हुए तूने उसका अधर पान किया या अपने अधर की औपधि रूपी तलछट उसे पिलाई ।

३९ (१८) लक्षव्याधिर्यौतकम्—वे अपनी लाखों व्याधियों में एक सिर दर्द का बहाना ले लेता है ।

४० (इ) मुखप्राशिनक—जब तुम मुख से सोये इस प्रकार का मुख प्रश्न पूछने वाला हित्वा व्यक्ति मुखप्राशिनक कहलाता था । इसी प्रकार के अन्य शब्द सोखशायनिक, सोस्नातिक आदि थे ।

४१ (अ) वलयी करपल्लव—बाएँ हाथ में पहिने हुए दोलायमान वलय से ता पय है ।

४१ (ई) दशनच्छद = अधर । औपधमल = दवाई छानने से बची हुई तलछट अथवा, तू नित्य जो वाजाकरण औपधें खाता है उनका मल तेरे अधर में लगा रहता है, उस मल को अपने अधर के साथ तूने उसे चगाया ।

(१) किं वचोपि—“वयस्य एव तथा निधास्यति” इति । (२) चोर यदि न पुनरस्मान् रहस्येनावक्षेप्यसि । (३) किन्तु सर्वविटैः सर्वविटमहत्तरस्य मट्टिजी-मृतस्य गृहे केनचित् प्रयोजनेन सन्निपतितव्यम् । (४) तदवयवस्योऽप्यहीनकालमागच्छेत् । (५) किं वचोपि—“विदितमेतद् विटजनस्य यथा विष्णुनागप्रायश्चित्तदानायापराह्णे सगागन्तव्यमिति । (६) तदगच्छतु भवान् । (७) अहमप्यागच्छामि” इति । (८) तथा नाम । (९) स्वस्ति भवते । (१०) साधयामस्तावत् ।

(११) (परिक्रम्य) (१२) कथमिदं सर्वविटैर्विदितम् । (१३) तेन ह्यल्पपरिश्रमोऽस्मि सजातः । (१४) केवल वेश्यासुहृत्समागमैः कालोऽनुपालयितव्यः । (१५) अये कस्य सत्त्वयमहूणो हूणमण्डनमण्डितः आर्यघोटकः पाटलिपुत्रकायाः

क्या कहता है—“मित्र, तू ही ऐसा कर सकता है ।” रे चोर, अब भी अगर तू मुझे अपना भेद नहीं बताएगा... पर आज सब विटों के चौधरी (महत्तर) भट्ट जीभूत के घर विटों का किसी काम के लिये जमावड़ा होनेवाला है । तो मित्र, तुझे भी ठीक समय पर आना चाहिए । क्या कहता है—“विटों को यह मालूम ही है कि विष्णुनाग को प्रायश्चित्त बताने के लिये तीसरे पहर पहुँचना है । तो तू जा । मैं भी जाता हूँ ।” ठीक । तेरा कल्याण हो । मैं चला ।

(घूमकर) सब विटों को इसका पता कैसे चल गया ? इससे मेरी मेहनत कम हो गई । तो बस वेदशाओ और मित्रों के साथ सगागम में समय बिताना चाहिए । अरे, हूण न होते हुए भी हूणों जैसे सिंगार पटार से सजा किसका यह

४१ (२) चोर यदि विट केवल आधा वाक्य कहकर छोड़ देता है, बात पूरी न करके दूसरा प्रसंग छेड़ देता है ।

४१ (१५) अट्टण—जो हूण जाति का नहीं है ।

४१ (१५) हूणमण्डनमण्डितः—हूण जाति के योग्य वेष और अलंकार पहने हुए । मण्डन शब्द घोड़े के अलंकार (हयामरण) के अर्थ में भी प्रसिद्ध था, अतएव दूसरा अर्थ यह हुआ—हूणनरल का न होने पर भी यह बड़ेबड़ा हूण घोड़े के साज से सज्जित है ।

४१ (१५) आर्यघोटकः—यह सुटीला शब्द इस सारे वाक्य की जान है । आर्य घोटक वह सर्जिला बड़ेबड़ा हुआ जिसे बरात आदि के जलम्प में सोने चाँदी के आभूषणों से सजा कर ले चलते हैं, उसपर सवारी नहीं करते । वह कोतल घोड़ा केवल पूजा के योग्य समझा जाता है । भट्टिमधवर्मा के पक्ष में व्यंग्य यह है कि वह कोतल घोड़े के समान सर्जिला जवान बना है, काम काज कुछ नहीं करता । आर्यघोटक शब्द कोशा में नहीं है । पूजार्थ शिलापट्ट को आर्यक पट्ट और खम्भों को आर्यक खम्भ कहते थे, ऐसा पुरातत्त्व गत प्रमाणों से ज्ञात है ।

४१ (१५) पाटलिपुत्रिका—पाटलिपुत्र की रहनेवाली पुष्पदामाँ उस समय उज्जयिनी में निवास करती थी जिसके घर का द्वार मधवर्मा खोल रहा था ।

पुष्पदास्या भवनद्वारमाविष्करोति । (१६) (निर्वर्ण्य) (१७) आ ज्ञातम् एमिरिहावद्ध-
 श्वेतकाष्ठकणिकाप्रहसितकपोलदेशैर्वद्धकैरसज्जमप्यसकृत्सज्जमिति प्रतिवादिमिलाट-
 डिडिभिः सूचितः सेनापतेः सेनकस्यापत्यरत्नं भट्टिमघवर्मा भविष्यति । (१८) तन्न
 शक्यमेनमनमिभाष्यातिक्रमिषुम् । (१९) अतिक्रमन् हि स्नेहमाध्यस्थ्य दर्शयेयम् ।
 (२०) यावदेनमुपसर्पामि ।

(२१) (उपेत्य) (२२) भोः कः सुहृद्गृहे ? (२३) (कर्णं दत्वा) (२४) एष

कोतल बछेड़ा है जो पाटल्युत्र की पुष्पदासी का दरवाजा खोल रहा है ।
 (पहचान कर) हाँ, समझ गया । यह सेनापति सेनक का छत्रीला बेटा भट्टिमघवर्मा
 है, जिसने (सौराष्ट्र विजय के समय) लकड़ी के सफेद कुंडलों से धवलित गाल
 वाले लाट के डिडियो (गु० डाढ्या) को पकड़ मँगाया है और वे उसके सामने
 हाथ जोड़ कर कह रहे हैं कि हमारे विषय में यह अभियोग कि हम लोग साक्षात्
 अपराधी न होने पर भी निशानिए बदमाश है, सही नहीं है । तो इससे बिना
 बात किए जाना संभव नहीं । चला जाऊँ तो स्नेह का फीकापन प्रकट होगा ।
 तो उसके पास चलूँ ।

(पहुँच कर) अरे मित्र के घर में कोई है ? (कान देकर) यह तो स्वयं

४१ (१७) आवद्ध श्वेतकाष्ठकणिका—ज्ञात होता है गुजराती डाढ्या या गुंढे
 कानों में लकड़ी के गोल बाले पहनते थे ।

४१ (१७) वद्धक = पकड़ कर मँगाए हुए, गिरफ्तार करके लाए गए । सूचित
 होता है कि भट्टिमघवर्मा के हुक्म से लाट के गुंढे गिरफ्तार करके उसके सामने पेश किए
 गए थे ।

४१ (१७) असज्जमप्यसकृत्सज्जम्—सज्ज = अपराधी, समायाचता । असज्ज =
 अपराध रहित । असकृत्सज्ज = किसी भी बार जो सजा काट व भुगत चुके हैं, जिन्हें
 निशानिए बदमाश कहते हैं । तत्काल उन गुंडा के विरुद्ध कोई अपराध का अभियोग न
 था, पर वे तमबरी बदमाश होने के कारण पकड़ मँगाए गए थे । वे हाथ ओढ़कर प्रतिवाद
 कर रहे थे कि हम निशानिया बदमाश नहीं हैं ।

४१ (१७) लाट डिडिन्—इसी भाग में इन्हें पहले 'दिडिडक' कहा गया है
 (४३) । दिडिक को गुजराती में डाढ्या कहते हैं जिसका अर्थ गुंडा है । जाने लाट
 डिडियो को पिशाचों की तरह बूर कहा गया है । इसीलिए भट्टिमघवर्मा ने उन शास्त्रि
 बदमाशों को पकड़वा मँगाया था । सेनापति सेनक का पुत्र होने के कारण भट्टिमघवर्मा
 शासनाधिकृत ज्ञात होता है ।

४१ (१९) स्नेहमाध्यस्थ्य—ब्रेम का फीकापन ।

रालु भट्टिमघवर्मा मामाह्वयति । (२५) किं ववीपि—“वयस्य किमद्याप्यपूर्वप्रतीहारो-
पस्थानेन चिरोत्सन्नो राजमायोऽस्मास्थाधीयते । (२६) स्थीयतां मुहूर्तम् । (२७)
आगच्छामि” इति । (२८) ससे स्थितोऽस्मि । (२९) (विलोक्य) (३०) इत
इतो भवान् । (३१) एष रालु पुलिनावतीर्णवृषभपदोद्धरणरोलेश्चरणपदविन्यासे-
र्भवनकक्ष्यामलङ्कर्वन्ति एवामिवर्तते भट्टी । (३२) अहो तु खल्वस्य विलासेष्वभ्यासः ।
(३३) वेशो विलास इत्युपपन्नमेतत् । (३४) अपि च—

४१— (अ) विलोलमुजगामिना रुचिरपीवरांसोरसा
(आ) विलासचतुरभ्रवा मुहुरपाङ्गविप्रेक्षिणा ।
(इ) अनेन हि नरेन्द्रसन्ध विशता पदेर्मन्थरे—
(ई) रवीणममुदङ्गमेकनटनाटकं नाट्यते ॥

(?) यावदेनमालपामि । (२) भट्टिमघवर्मन्, किमयमतिदिवाविहारेण
मुहज्जन उत्कट्यते । (३) साधु मुहूर्तमपि तावद्युष्मद्दर्शनेनानुग्रहोत् । (४) एष

भट्टिमघवर्मा ही मुझे पुकार रहा है । क्या कहता है—“मित्र, क्या इन नए प्रतीहारों
को सेवा में देखकर तू आज भी मुझे राजा समझ रहा है ? वह राजभाव मेरे तेरे बीच
में बहुत पहले ही बीत चुका है । क्षण भर ठहरिए । मैं आता हूँ ।” बालू पर गुरु
गम्भीर चाल से सोंड़ की तरह नपे तुले कदम रखता हुआ और कक्ष्या को सुगोमित
करता हुआ भट्टी इधर ही आ रहा है । इसे मौज की पुरानी आदत है । वेश
मौज की जगह है, इसलिए इसका यह रूप ठीक ही है । और भी—

४२—यह बाहें झुलता चला आ रहा है, इसकी छाती और कंधे फचीले
और उभरे हुए हैं, यह नखरे से भौंहे भटका रहा है और रह रहकर कनखिया
रहा है । ऐसे इसके राजमहल में चहलकदमी से प्रवेश करने पर मालूम पड़ता है
कि घीणा और मृदंग के बिना ही एकनट नाटक (भाण) का अभिनय हो
रहा है ।

तो इससे बात करूँ । भट्टिमघवर्मा, कैसे बहुत दिनों तक यहाँ मौज उड़ाकर
(अपने वियोग में) मित्रों को उत्कटित बना रहे हो ? मुहूर्त भर भी तुम्हारा दर्शन

४१ (२५) अपूर्व प्रतीहारोपस्थान—मघवर्मा के घर में कोई नया प्रतीहार
नियुक्त हुआ था । वह कह रहा है कि शायद वित इसी कारण भेतर आने में किमकर रहा
है और उसके और अपने बीच के येतकुल्लफों के व्यवहार को भूलकर फिर उमे राजा
समझ रहा है ।

४२ (ई) एकनट नाटक—भाण ही एकनट नाटक कहलाता है ।

सलु विहसन्नाकुलापसव्यपरिधानं श्वासविपमिताक्षरं स्वागतमित्यञ्जलिनाऽभ्युपैति ।
 (५) भो यदेतावदनेनाद्यैव पुष्पदासी पुष्पवतीति मह्यमारयाता, तथापि कथमुपमुच्यैव ।
 (६) (विचिन्त्य) (७) लाटडिडिनो नामैते नातिगिन्नाः पिशाचेभ्यः । (८) कुतः ?
 (९) सर्वो हि लाटः —

४३— (अ) नग्नः स्नाति महाजनेऽम्भसि सदा नेनेकि वासः स्वयं
 (आ) केशानाकुलयत्यधौतचरणः शय्यां समाकामति ।
 (इ) तत्तदभक्षयति ब्रजन्नपि पथा घस्ते पटं पाटितं
 (ई) छिद्रे चापि सकृत्प्रहृत्य सहसा लाट(लोल)श्चिरं कथ्यते ॥

(१) सर्वथा कृतमनेन स्वदेशोपयिकम् । (२) मा तावद्भो :—

४४—(अ) अविचिन्त्य फलं वल्ल्यास्त्वया पुष्पवधः कृतः ।

(१) किं प्रवीपि—“कथं” इति ।

४४—(आ) इदं हि रजसा ध्वस्तमुत्तरीयं विलोक्यताम् ॥

(२) किं प्रवीपि—“शय्यान्तावलम्बितं ताम्बूलायसिकमेतदवगच्छामि” इति ।

हो जाय तो कल्याण है । यह हँसता हुआ, दाहिने कंधे पर लहराते हुए उत्तरीय से सुशोभित, हाफते हुए अक्षरों से हाथ जोड़कर मेरा स्वागत कर रहा है । और इसने अभी तो मुझसे कहा था कि आज पुष्पदासी ऋतुमती हुई है । फिर भी यह उससे कैसे जुट आया ? (सोचकर) ये लाट देश के डाब्बा कुछ पिशाचों से कम थोड़े ही हैं ।—कैसे ? लाट का तो हर कोई—

भीड़ के बीच में नंगा होकर जल में नहाता है, स्वयं कपड़े पछारता है, लम्बा झोंटा फटकार कर रखता है, बिना पैर धोए पलंग पर सो जाता है, रास्ता चलते जो चाहे खा लेता है, फटे कपड़े पहनने में संकोच नहीं करता और दूसरे की मुमिबत में उसपर एक चोट करके भी हमेशा अपनी शोसी नभारता रहता है ।

अथवा इसने अपने देश के अनुसार ही काम किया ।

४४ (अ) तभी तो बेल के फल की परवाह न करके तूने फूल ही नोच डाला ।

क्या कहता है—“कैसे” ।

४५ (आ) रज से सने अपने इस उत्तरीय को देख ।

क्या कहता है—“मेरा विचार है कि खाट से लटकता हुआ यह पान की

४२ (७) लाटडिडिनो नामैते नातिगिन्नाः पिशाचेभ्यः—इससे ज्ञात होता है कि उस समय लाट देश के गुण्डे अपने कारनामों के लिये कितने बदनाम थे ।

(३) मा तावत् । (४) इदं चद्रमुकापलावकीर्णमिव ललाट स्वेदबिन्दुभिः किमिति वक्ष्यति । (५) एष पार्श्वमपघायोच्चैः प्रहसितः । (६) हृष्टे जघन्यकामुकः कथमनया च्छलितः । (७) किं वशीपि—“कश्छलितो नाम, ननु गृहीतोऽस्मि । (८) श्रूयताम् । (९) सा हि—

४५— (अ) निपुलतरललाटा सयतामालकत्वात्
(आ) रुचिरजघनभारा चाससाऽधोरुकेण ।
(इ) निवृततनुरपोढप्रागलङ्कारभारा
(ई) कथय कथमगम्या पुष्पिता स्त्री लता स्यात् ॥

(१) अपि च, श्रोतुमर्हति भवान्—

४६— (अ) पार्श्ववर्तितलोचना नरपदान्यालोकयन्ती मया
(आ) दृष्टा चेदवाहं सुखी स्वभवनप्रत्यातपेऽवस्थिता ।
(इ) सगृह्णाय करद्वयेन कठिनावुत्कम्पमानौ स्तनौ
(ई) प्राप्तिर्यातरगारमर्गलवता द्वार करेणावृणोत् ॥

(१) ततोऽहमनुदुत प्रविश्य—

४७— (अ) कचनिग्रहदीर्घलोचना
(आ) रमसावतितवल्गितस्तनीम् ।

पीरु में सन गया है ।” ऐसा मत कह । बिखरे हुए छोटे मोतियो जैसी पसीने की बुँदों से भरा हुआ तेरा यह ललाट क्या बता रहा है ? यह एक बगल होकर जोर से हँस रहा है । नीचे, जघन्य कामुक, क्या तू उमसे छला गया ? क्या कहता है—
“छलने की बात कैसी ? उमने तो मेरे दिल को ही पकड़ लिया । सुन—

४५—घुँघराले बालों का अगला भाग सँगर कर जमाने के कारण जिसका ललाट चौड़ा दीखता है, अधोरुक पहनने के कारण जिसका स्थूल जघन भाग सुन्दर जान पड़ता है, सामने के गहने उतार देने से जिसका शरीर उचड़ा सा लगता है—
ऐसी स्त्री रूपी लता पुष्पवती हो तो भी क्या वह अछूती छोड़ी जा सकती है ?

और भी सुनने योग्य है—

४६—पार्श्व की ओर आँखें घुमाकर, नाखूनों की खरोंचे देखती हुई, कुछ नीचे सिर झुकाए हुए अपने घर की छाया में बैठी हुई उमे मैंने जैसे ही देखा, वैसे ही वह दोना हाथों से अपने यहराते हुए कठिन कुचा को पकड़ कर घर में घुस गई और हाथों से व्योड़ा लगा कर उमने द्वार बंद कर लिया ।

इसपर मैंने भी जल्दी से घुम कर—

४७—जैसे ही उसके बाल पकड़ कर खींचे, वह बड़री आँखों से मेरी ओर

६४ (आ) प्रत्यातप = परदाई ।

(६) किमसीति नहीति वादिनी

(६) समचुम्य सहसा विलासिनीम् ॥” इति ।

(२) भो चित्र खलु प्रस्ताव । (३) पृच्छामस्तान्देनाम् । (४) ततस्तत ।
(५) किं वयीपि—“अथ सखे—

४८—

(अ) समुपस्थितस्य जघन

(आ) रशनात्यागाद्विविकतरविम्वम् ।

(इ) पाणिभ्यां ब्रीडितया

(ई) निमीलिते मेऽनया नयने” इति ॥

(१) ही धिक्त्वामस्तु । (२) अविक्त्वन उद्देजनीयो ह्यसि । (३) निन्द्य-
श्चार्यजनस्य सवृत्त । (४) किं वयीपि—“एवमप्यनुग्रहीतोऽस्मि । (५) न त्वया
महाभारते श्रुतपूर्व—

४९—

(अ) यस्यामित्रा न बहवो

(आ) यस्मान्नोद्विजते जन ।

(इ) य समेत्य न निन्दन्ति

(ई) स पार्थ पुरुषाधम ॥ इति ।”

(१) भो एतखलु डिण्डित्य नाम । (२) सर्वथाऽपि साधु भा मीतोऽस्मि भव

देखने लगी । तब जटदी में थहराते स्तनो वाली ‘क्या करता है ?’ ‘नहीं नहीं’ कहते
कहते उस विलासिनी को मने चूम ही तो लिया ।”

क्या विलक्षण पहली मुलाकात हुई ? मैं उससे पृछूँगा । ठीक, फिर क्या
हुआ ? क्या करता है—‘सखे—

४८—करघनी के हट जाने से उधरे जघन भाग पर मेरे आ जाने से
उसने रत्ना कर मेरी आँखें बन्द कर दा ।”

धिक्कार है तुझे । तू नीच घृणिन और आर्यजनों के लिए निन्द्य है ।
क्या रहा—“पिंगा कहकर भी आपने मुझे अनुग्रहीत किया । क्या आपने महाभारत
में पहले यह नहीं पढ़ा—

४९—निसके बहुत से बैरी नहीं, निम्मे लोग डरते नहीं, इन्हें होकर जिसकी
लोग निन्दा न करते हैं, वे पार्थ, वह पुरुष नहीं, पुरुषाधम है ।”

अमर म यही तो निष्पत्त्य है । मैं तेरे इमी डिण्डित्य पर सरामर रोभा

४७ (२) प्रस्तान = पढ़ा । मुलाकात ।

४८ (४) महाभारते श्रुतपूर्व—यह शब्द महाभारत में मुझे अजाना तक नहीं मिला ।

४९ (१) डिण्डित्य = डाँटपान, झुंझार ।

तोऽनेन डिण्डित्वेन । (३) सर्वथा निटेष्वधिराज्यमर्हसि । (४) अयमिदानीमाशीर्वाद —
(५) किं वशीपि—“अग्रहितोऽस्मि” इति । (६) श्रूयताम्—

५०— (अ) प्रभातमगम्य पृष्ठमुपगृह्य सुप्तस्य ते
(आ) प्रगल्भमधिरह्य पार्श्वमपगमसंकोरुणा ।
(इ) तथैव हि कचग्रहेण परिवृत्य वचनाम्बुज
(ई) पित्रत्यथ च पाययत्वधरमात्मनस्तु प्रिया ॥

(१) एष सत्सन्तुष्टहीतोऽस्मीत्युक्त्वा पलायते । (२) नमोऽस्तु भगवते ।
(३) साधयामस्तावत् ।

(४) (परिक्रम्य) (५) अये ना नु सत्सन्तुष्टा स्वभवनानलोकनमप्यत्र विमान-
मिनालङ्करोति । (६) एषा हि सा क्लृप्ता वारमुत्था पराक्रमिका नाम सुप्तमतिपिच्छो-
लया क्रीडन्ती रूपलान्ध्यानिभ्रमेलाचनमनुगृह्णाति । (७) आश्चर्यम् ।

हूँ । तू बिगे का एक छत्र राजा होने योग्य है । यह मेरा आशीर्वाद ले—

क्या रहता है—“मैं सावधान हूँ ।” तो सुन—

५०—सबेरा होने पर पास में सोए हुए तेरी पीठ को बाहु में भर कर,
प्रगल्भता से तेरे पार्श्व भाग पर अपनी उधरी हुई एक आघ रक्ष कर, तथा बाल
खींच कर तेरे मुख कमल को अपनी ओर घुमाते हुए प्रिया तेरे अधर का पान
करे और अपना अधर तुझे पिन्वे ।

‘मैं अनुगृहीत हो गया’, कहकर यह छटपटा चाहता है । तो तुझ ‘भगवान्’
को मेरा नमस्कार है । मैं भी चलूँ ।

(घूमकर) अरे, यह कौन अपने घर की म्बिडकी (अल्लोकन) पर विमान
में अप्सरा की तरह सज रही है ? यह काशी की मुख्य वेश्या पराक्रमिका पिन्छोले
से खेलती हुई रूप लावण्य की अम्बेलियों से आँवों को तर कर रही है ।
आश्चर्य है—

५० (२) नमोऽस्तु भगवते—विट का भट्टिमघवर्मा क साथ गहरा नारक फाक
हुई । उसे बिदा देने समय भा वह चुगला मचाक करता है । भगवते = (१) उद्ध का
सम्मानित भावपद, (२) जियका मन छा क गुल्ल अग में रमा है । विट न व्यर्थ क्या कि
तू जो मुझसे पक्षा युद्ध कर भाग रहा है वह काम का हडक तुझे उदाए लिए जा रहा
है । वेश की भाषा का यह विराजता था कि धर्म और दर्शन क अनेक शब्दों की व्यञ्जना
यहाँ पत्र की अर्थ में ला जातों था । ऐसे शब्दों का मूचा परिशिष्ट में दा गई है ।

- ५१— (अ) विरचितकुचमारा हेमैरुदयकेण
 (आ) स्फुटवित्तनितम्ना वाससाऽधोरुकेण ।
 (इ) विचरति चलयन्ती कामिना चित्तमेपा
 (ई) किसलयमिव लोला चञ्चलं वेशवल्ल्याः ॥

(?) अपि च—

- ५२— (अ) गन्दान्तागलितैककुण्डलमणिच्छायाऽनुलितानना—
 (आ) मन्वभ्यस्ततया हिकारपिशुनैः श्नासेरवाकोलुभिः ।
 (इ) पिन्धोला मधुरे निरैश्य मधुरामावादयन्तीमिमा
 (ई) गण्डकस्वनशङ्कितो गृहशिरसी पर्येति वक्राननः ॥

५१—सोने के वैश्यक से कुचों को कसकर, अधोरु पहन कर नितम्बों को साफ उधाड़ती हुई, कामियों के चित्त को मथती हुई वेशवल्लियों के चंचल किसलय की तरह वह झूमती हुई चल रही है ।

और भी—

५२—एक ओर की कनपटी पर लटकते हुए जड़ाऊ कुण्डल की मणि की आभा से उसका मुँह चिलक रहा है । वह लम्बे अभ्यास के कारण तालु के नीचे से ई-ई फूँक निकाल कर अधर पर रखी पिन्धोला मधुर स्वर में बजा रही हैं । उस ध्वनि से मेंढक के टराने का शरक करके घर का मोर अपनी गर्दन घुमाता हुआ चक्कर मार रहा है ।

५१ (अ) विरचितकुचमारा—वैश्यक एक प्रकार का हार था जो धाँपे कपड़े से सामने छाती पर होता हुआ दाहिनी बगल की ओर से पीठ पर जाता था । दो वैश्यक भी पहने जाते थे और तब दोनों स्वन उनके पेट में कस जाते थे । भार=कमल । वैश्यक ॥ तण्ण यण्ण तिर्यक् चिसमुराणि, भ्रमर ।

५२ (आ) मन्वभ्यस्ततया—बार बार के अभ्यास से, लम्बे रियास से ।

५२ (आ) हिकार पिशुन—पिन्धोला बजाती हुई वह ही ई ई ई की अदृष्ट सौं तालु के नाथ से निकालती आन पड़ती है ।

५२ (इ) पिन्धोला—एक प्रकार का छोटा पिपिहरी जैसा वाद्य जो लकड़ियों या बन्ने बजाते हैं । इसमें कई स्वरों के लिये अलग अलग छेद बने रहते हैं । मधुरा की रूपग बालीन बजा में इसका अवन पाया गया है (जे० उत्तरप्रदेश इतिहास परिषद् की पत्रिका में भेरा लेख, ए निरिखम फेभर इन मधुरा अर्ध, भाग १०, पृ ११४४, ५०-७१-७२) । भगविष्णु नामक अग्रजकालि प्रथम में भी इसका उल्लेख आया है (७०-७१) । रामहृण कवि ने 'विद्योमा' रूप दिया है ।

(१) किं नु सत्वस्या उदवसितादिन्द्रस्वामिनो रहस्यसचिनो हिरण्यगर्भको निपत्य इत एवाभिवर्तते । (२) किमनारचर्यम् । (३) इन्द्रस्वामी हिरण्यगर्भको वेश इति संहितमिदं तप्तं तप्तनेति । (४) एष मामजिलिनोपसर्पति । (५) हण्डे हिरण्यगर्भक किमिदं वेशदेवायतनमपरान्तपिशाचैर्विध्वंसयितुमिष्यते ? (६) किं ववीपि—“एष सलु स्वामिनोऽस्मि विदेशरागेणैव घुरि नियुक्तः । (७) एषा हि पूर्वं पञ्चसुवर्णशतानि गणयति । (८) अधुना सहस्रेणाप्युपनिमन्त्रिताऽपि विनियुज्यमाना नैव शययते तीर्थमवतारयितुम् । (९) तदर्हसि त्वमपि तावदेना गमयितुम्” इति ।

इसके घर से इन्द्रस्वामी का रहस्यसचिव हिरण्यगर्भक हडबडा कर निकलता हुआ इधर ही आ रहा है । इसमें आश्चर्य क्या ? इन्द्रस्वामी और हिरण्यगर्भक वेश में मिलें, यह तो गरम से गरम का जोड़ है । यह मुझे हाथ जोड़ कर प्रणाम कर रहा है । अरे हिरण्यगर्भक, तू क्यों इस वेश रूपी देवालय को अपरात के पिशाचों से ध्वंस कराना चाहता है ? क्या कहता है—“मेरे स्वामी को परदेसी माल का मजा लेने की चाट है, इसीलिए मुझे यह काम सौपा है । वह पहले पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा गिना ऐसी थी । अब तो एक हजार पर भी खुशामद से उसे घाट उतरवाना सम्भव नहीं । अब तू उसके तय कराने में मेरी मदद कर ।”

५२ (१) रहस्यसचिव = नर्म सचिव, काम क्रीडाओं के द्योत साधने में अन्तरंग सहायक । दे० रघुवंश मा० ६७ में मिथः सखी पद ।

५२ ५ हण्डे—नाटकों में प्रयुक्त नर्म सखी के लिये सवोधन । हण्डा—घर घर फिरनेवाली । हण्ड् धातु = घूमना, हँडना । यह शब्द बोल बाल में इतना रम गया था कि उसके प्रयोग में स्त्रीलिंग पुल्लिङ्ग का भेद जाता रहा, सभी तो यहाँ हिरण्यगर्भक को ‘हण्डे’ कहा गया ।

५२ (५) अपरान्त पिशाच—अपरान्त के इन्द्रवर्मा से तात्पर्य है जिसका डल्लेख विद्रो की मूर्ची में पहले आ चुका है ।

५२ (६) विदेश राग—गानासो बोलों में इसे ‘बादरी मजा’ कहते हैं, विदेश से आई हुई वेशस्थियों के उपभोग की लपक ।

५२ (७) सुवर्ण—गुप्तकाल में दो सोने की मुद्राएँ प्रचलित थीं, एक दोनार, दूसरी सुवर्ण । सुवर्ण तोल में कुछ भारी होती थी ।

५२ (८) तीर्थमवतारयितुम्—तीर्थ = घाट या पार उतारने का स्थान । विद्रो की भाषा में रति, स्थान से तात्पर्य है ।

(१०) अत्यार्जवः खलसि । (११) न हि शतसहस्रेणापि प्राणा लभ्यन्ते । (१२) किं ब्रवीषि—“किञ्चास्याः प्राणसन्देहे कारणमस्मासु पश्यसि” इति । (१३) आविष्टतं हि तत्रभवत्या भर्तृस्वामिनश्चामरग्राहिण्या कुटुम्बदास्या स्वामिनः संसर्गात्तथा-भूतं व्यसनमनुभूतम् । (१४) किं ब्रवीषि—“आलभस्य ताप्रदिदं मे शरीरम् । (१५) सत्यमेवेदम्” इति । (१६) असत्येन न स्वामिनमेवं ब्रूयात् । (१६) किं ब्रवीषि—“चिराभ्यस्तमेवेदमस्मत्तन्नामिपादानाम्” इति । (१७) अतएव न शक्यमन्यथा कारयितुम् । (१८) न चैतदेवम् । पश्यतु भवान्—

५३—

(अ) काव्ये गान्धर्वे नृत्तशास्त्रे विधिज्ञं
 (आ) दक्ष दातारं दक्षिणं दाक्षिणात्यम् ।

तू भोलेपन को भी मात कर गया है । लाख देने पर भी किमी की जान नहीं मिलती । क्या कहता है—“आप हमारे द्वारा उसकी जान जोखिम का कारण क्यों समझते हैं ?” सबको मालूम है कि भर्तृस्वामी की चामरग्राहिणी कुटुम्बदासी के साथ मालिक के जुट जाने से उसकी जान पर ही जोखिम आ गया था । क्या कहता है—“चाहे मुझे कूट डालिए । सच तो यही है ।” अरे असत्य का भी आश्रय लेना पड़े, पर स्वामी से ऐसा मत कह देना । क्या कहता है—“हमारे स्वामी की पुरानी आदत है ।” उनसे उसे छुड़वाना संभव नहीं । फिर बात ऐसी भी नहीं है । आप देखें—

५३—काव्य, संगीत और नृत्तशास्त्र में प्रवीण, दक्ष, दाता और चतुर,

५२ (१०) अत्यार्जव—भोलेपन को भी मात कर जाने वाला । आर्जवमतिश्रान्तः अप्यार्जवः ।

५२ (११) नहि लभ्यन्ते—विट का आशय है कि इन्द्रवर्मा के साथ समागम करनेवाली के प्राणों पर यन आती है । यहाँ विट का सजेत हस्तद्वारा मैथुन क्रीडा से है जिससे स्त्री का जान जोखिम में पड़ जाती थी । इन्द्रवर्मा उसका पुराना पापी था ।

५२ (१३) आविष्टत—सर्वत्रिष्टित है ।

५२ (१३) भर्तृस्वामिनश्चामरग्राहिणी—सजेत यह है कि भर्तृस्वामी इन्द्रवर्मा ने अपनी चामरग्राहिणी के साथ ही ऐसी हरकत की जिससे उसके प्राण सबट में पड़ गए ।

५२ (१४) आलभस्य—आलभन कर डालो । आलभन यज्ञ का शब्द था । यज्ञीय पशु की भौति में ही शरीर को चाहे मुरझा से कूट डालो ।

५२ (१६) असत्येन—अमन्य भी बोलना पड़े तो भी ।

५२ (१८) न चैतदेवम्—इन्द्रवर्मा से स्त्रियों घबरानी ही हों, ऐसा भी नहीं है ।

- (३) वेश्या का नेच्छेत्स्वामिन कोङ्कणाना
(६) स्याच्चेदस्य स्त्रीपार्ज्वात्सन्निपातः ॥

(?) अपि च—

- ५४— (अ) सञ्चारयन् क्लमक गजनर्तक वा ✓
(आ) वेश्याङ्गणेषु भगदत्त इवेन्द्रदत्तम् ।
(इ) उद्गीक्ष्यते स्तननिनिष्ठकाम्बुजाग्नि
(ई) व्याघ्रो भृगीभिरिव वारनिलासिनीभिः ॥

(?) अपि चपा भर्तुनोऽधिराजस्य स्यात् पारश्व कौशिक सिंहवर्माण मित्र-
मपदिशन्ती सत्रान् कामिनः प्रत्याख्यानेन ब्रीडयति । (२) किं व्रीपि—“तत्स्वैपाति-
कामितयाधमन्यते” इति । (३) युष्मद्देशोपयिक्तमेव न्ति सततमतिसेवनम् । (४)

कौरुण के स्वामी उस दाक्षिणात्य को कौन सी वेश्या न चाहेगी, शर्त यह है कि
यह भले मानुस की तरह उनके साथ सन्निपात करे ?

और भी—

५४—(भारत युद्ध में) मनुने हाथी को घुमाते हुए भगदत्त के समान
वेश्याओं के आँगन में हाथी नचाते हुए उस इन्द्रदत्त को जानिए । स्तनो पर अपने
हस्त रमल रखते हुए वेश्याएँ उसे ऐसे देखती हैं जैसे समीत हिरनियों बाघ को ।

और यह हमारे स्वामी अधिराज इन्द्रदत्त के साले पारश्व कौशिक सिंहवर्मा
को अपना मित्र बताकर पास बुलाती हुई सन कामियों को अँगूठा दिखाकर उन्हें

५३ (ई) सन्निपात = (१) सम्मिलन, (२) मैथुन । श्लोक ५३ में इन्द्र स्वामी
का सौम्यरूप और ५४ में उसी की विकृत कामुकता का रूप कहा गया है ।

५४ (अ) क्लमक सञ्चारयन् भगदत्त—महाभारत के युद्ध में भगदत्त के
भयकर गजयुद्ध की कथा का वर्णन द्रौणपर्व अ० २५ (पूना संस्करण) में आया है ।

गजनर्तक इन्द्रदत्त—यह मुष्टिप्रवेश करने वाले रीढ़वर्मा इन्द्रदत्त को भोर सकते हैं ।

५४ (?) अधिराजभर्ता—काकण के अधिपति इन्द्रस्वामी से सम्पर्क है ।

५४ (?) अपदिशन्ती—उद्घोषित करती हुई, इशारे से अपने पास बुलाती हुई ।

५७ (३) औपयिक्त—(१) उपाय, काम करने का ढंग, (२) चिकित्सा, औषध ।
औपयिक्त रानशास्त्र का पारिभाषिक शब्द था ।

५४ (३) अतिसेवन—सेवन = रति, मैथुन । अतिसेवन = १ अतिशयरति, २
स्वाम्याविक रतिहाल के वातने पर भी मुष्टि प्रवेश आदि से रति । त्रिदत्त का द्यम्य है
कि अतिसेवन तो कौरुण देश का रिवाज ही है, जैसा इन्द्रवर्मा के विषय में कहा जा
सुका है ।

किं ववीपि—“देशीपयिकमदेशीपयिकमिति नावगच्छामि । (५) विस्पष्टमभिधीयताम्” इति । (६) एवमनुग्रहीतः कथं न कथयिष्यामि । (७) श्रूयताम्—

- ५५— (अ) श्रवणनिकटजैर्नखावपातैः
 (आ) वनगजदम्भ इवाङ्कितः प्रतोदैः ।
 (इ) विवृतजघनमूपणां विवक्षा
 (ई) वृष इव वत्सतरीगिहोपयाति ॥

(१) किं ववीपि—“तेन ह्यनेनैवोपायनेनोपरथास्यामि” इति । (२) यद्येष-
 मिन्द्रस्वामी निज्ञायः—

- ५६— (अ) दशनमण्डलचित्रककुन्दरां
 (आ) दयितमाल्यनिवासित मेखलाम् ।
 (इ) त्वदपरं प्रति सा जघनस्थली
 (ई) न विवृणोति वृताऽपि शतं शतैः ॥

(१) स्वस्ति भयते । (२) साधयामस्तावत् ।

बेपानी कर देती है । क्या कहता है—“उसके अतिकामी होने से वह उससे छुटकती है ।” अतिसेवन तुम्हारे देश की रीति है । क्या कहता है—“देश का रिवाज या बे-रिवाज मैं नहीं समझा । साफ साफ कहिए ।” मला तेरे इस शिष्ट बरताव से कैसे मैं नहीं कहूँगा ? सुन—

५५—(काकली रति में) वह कानों के पास आए हुए उसके पैरों के नखशतों से अंकुश की मार से घायल जंगली हाथी के छौने की तरह उसके विवृत जघनस्थल पर ऐसे टूटता है जैसे सोंड़ बछिया पर ।

क्या कहता है—“अब मैं यही सौगात देने मालिक के पास जाऊँगा ।” अगर ऐसा है तो इन्द्रस्वामी से जाकर कहना—

५६—दन्तशतों से चित्रित पुष्टों वाली, प्यारे के माल्य को ही मेखला की तरह धारण करने वाली वह तेरे सिवाय दूसरों के लिए हजारों गिनवाने पर भी जघन नहीं उधारती ।

तेरा कल्याण हो, मैं चला ।

५५ (अ) श्रवणनिकटजैर्नखावपातैः—इस श्लोक में काकली नामक रतयन्त्र का संकेत है । इसमें नायक का मस्तक छी के पैरों की ओर होता है । तभी कामिनी के पैरों के नखशत उसके कर्ण देश में दिखाई पड़ते हैं ।

५५ (१) अनेनैव उपायनेन—हिरण्यगर्भक कहता है कि वह काकली रतयन्त्र की सौगात को लेकर अपने स्वामी से मिलेगा ।

५६ (अ) दशनमण्डलचित्रककुन्दरा—इस श्लोक में भी किसी विशेष रतयन्त्र का संकेत है ।

(३) (परिक्रम्य) (४) अये को नु सल्लेपः शोर्पारिकायाः शमदास्या भवना-
न्निपत्य डिग्दिगणपरिवृतो वेशमाविष्मरोति । (५) (विलोक्य) (६) एतज्जङ्गम-
तीर्थमुदीच्याना बाहोवाना कारुशमलदाना चेश्वरो महाप्रतीहारो भद्रायुध एषः ।

५७—

(अ) निरचितकुन्तलमौलिः

(आ) श्रवणार्पितकाष्ठनिपुलसितमलशः ।

(इ) जनमालपञ्जरै-

(ई) रन्नाटयतीन लाटानाम् ॥

(धूमर) अरे यः कौन शूर्पारक की वेष्ट्या शमदामी के घर से निकल
कर टिण्डिनो से घिरा हुआ वेश को जगमगा रहा है । (टेम्बर) यह तो उदीच्य,
बाहोव, कारुश और मलद देशों का श्वायी महाप्रतीहार भद्रायुध है जो बिटो का
चलना फिरना तीर्थ है ।

५७—बालों का जूट बाँधे और कान में नाथ का बना बड़ा श्वेत कलश पहने
साथियों में ज-ज-ज करके घात करता हुआ वह गुजरातियों की नकल कर रहा है ।

५६ (४) शोर्पारिकाया—शूर्पारक या सोपारा की ।

५६ (६) उदीच्याना—महाप्रतीहार भद्रायु उदीच्य-बाहोवों के शुद्ध तथा
शकमाएवापरान्त युद्ध के विजेता के रूप में चित्रित किया गया है । वह कोई ऐतिहासिक
व्यक्ति ज्ञात होता है । कथासरित्सागर में महेंद्रादित्य के पुत्र विज्रमादित्य अर्थात् (स्कन्द-
गुप्त) के भतिपुत्र भद्रायु का उल्लेख है (कथा० १२।१।५३) ।

५६ (६) महाप्रतीहार—भद्रायु युद्धों का विजेता है जो कारुश मलद आदि
देशों का शासक भी रहा है । महाप्रतीहार उसकी मगध राजभवन की पदवी (सिविल रैंक)
थी जिसे सैनिक और प्रशासनिक पदवियों के अतिरिक्त वह धारण किए हुए था । समुद्रगुप्त
की प्रयोग प्रशस्ति में हरिषेण का सैनिक पद महादण्डनायक, प्रशासनिक अधिकार साथी
विग्रहिक और कुमारामाथ्य व्यक्तिगत सम्मानित पदवी का वाचक था (दे० हर्षचरित एक
सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ११२) । चन्द्रगुप्त विज्रमादित्य के मंत्री शिखरस्वामी को कर्म
दंडा लेख में कुमारामाथ्य कहा गया है । ऐसे ही भद्रायु किसी समय मगधराजकुल में
महाप्रतीहार के पदपर था जिसे विज्र को वैयक्तिक सम्मान के रूप में वह चरावर धारण
करता रहा ।

५६ (६) कारुश—विहार का शाहानाद प्रदेश ।

५६ (६) मलद—बंगाल का मालदा प्रदेश ।

५७ (आ) श्रवणार्पित काष्ठ निपुलसित कलश—ऊपर कहा गया है कि लाट
देश के टाप्पा कान में श्वेत रंग की काष्ठश्रिका पहनते थे । कलशाकृति कर्णलोठक
नामक आभूषण मथुरा की शक कुशाग फालीन कला में अंकित है ।

(१) का तावदस्य लाटेपु साधुदृष्टिः एतावत् । (२) सवो हि लाटः—

- ५८— (अ) संवेष्ट्य द्वावुत्तरीयेण वाह
 (आ) रज्ज्वा माध्यं वाससा सन्निवध्य ।
 (इ) प्रत्युदगच्छन् संमुखीनः शकारिः
 (ई) पादापातीरंसकुब्जः प्रयाति ॥

(१) अपि च—

- ५९— (अ) उरसि कृतकपोतकः कराभ्यां
 (आ) वदति जजेति यकारहीनमुच्चैः ।
 (इ) समयुगल निबद्धमध्यदेशो
 (ई) व्रजति च पङ्कमिव स्पृशन् कराग्रैः ॥

(१) सर्वथा नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् । (२) अथवास्वैकस्य देशान्तरविहारो युक्तः । (३) कुतः ?

लाटों पर उसकी इतनी मिहग्वानी क्यों है ?

५८—लाट देश का व्यक्ति दोनों मुजाओं पर उत्तरीय लपेट कर, बटे हुए पटके से कमर बंधकर, सामना होने पर श-श-श करता हुए टेढ़े कंधे वाले कुबड़े की तरह पैरों पर गिरता हुआ आता है ।

और भी—

५९—छाती पर दोनों हाथों से कबुत्तर बना कर, वह 'य' की जगह जोर से ज-ज-ज करता हुआ हकलता है । दुरंगे बटे पटके (युगल) से बीचों बीच कमर कस कर वह इस तरह वच वच कर चलता है जैसे उँगलियों कीच में सनी जा रही हों ।

बिना ऐश का ऐश्वर्य कहाँ ? अथवा अकेले इसी को विदेश में आकर मौज मजा फबता है । कैसे ?

५८ (आ) रज्ज्वा वाससा माध्यं सन्निवध्य—गुप्तकाल के मद्राने वस्त्र विन्यास की यह विशेषता थी कि रेशमी वस्त्र को रस्सी की तरह बट कर और उसके कई लपेट करके कमर में पटका बाँधते थे । इसे नाचे के श्लोक में युगल कहा गया है । उपान काल में पटका कपड़े की चौड़ी पट्टी की तरह का और गुप्त युग में बड़ा हुआ होता था ।

५९ (अ) कपोतक—छाती पर सामने को ओर दोनों जुड़े हुए हाथ; हिन्दी कबुत्तर ।

५९ (इ) समयुगल = बराबर की लम्बाई के दो रँगवस्त्रे वस्त्रों को एक साथ लपेट कर बनाया गया पटका या कायकन्धन । इसे दिव्यावदान में यमलो (दिव्य पृ० २७६) और अंगविज्ञा में जामिलिक (पृ० ७१) कहा गया है ।

- ६०— (अ) येनापरान्तशरुमालमपुपतीना
 (आ) कृत्वा शिरसु चरणौ चरता यथेष्टम् ।
 (इ) कालेऽभ्युपेत्य जननीं जननीं च गङ्गा
 (ई) माविष्टता मगधराजकुलस्य लक्ष्मीः ॥

(१) अपि च—

- ६१— (अ) वेलानिलैर्मृदुभिराकुलितात्कान्ता
 (आ) गायन्ति यस्य चरितान्यपरान्तकान्ताः ।
 (इ) उत्कण्ठिताः समवलम्ब्य लतास्तरूणा
 (ई) हिन्तालमालिपु तटेपु महार्णवस्य ॥

(१) किञ्चिद् गीतम्—

६०—जिसने अपरान्त, शरु और मालव के राजाओं के सिरो पर अपने दोनों पैर रखकर उन्हें झुका दिया और यथेष्ट विहार करके कालान्तर में अपनी माता और मा गंगा के देश में लौटकर मगध राजकुल की लक्ष्मी को लोक में प्रकट बना दिया ।

और भी—

६१—वेलानिलों की हल्की थपनियों से निथुरे केशों वाली अपरात की उत्कण्ठित रमणियों महार्णव के तटों पर हिन्ताल के कुजों में वृक्षों की लताएँ झुकाकर उसकी विजय के चरितों का गान करती हैं ।

वह गीत क्या है—

६० (अ ई) येनापरान्त—इस विलक्षण श्लोक के गूँजते हुए शब्द जैसे गुप्त कालीन शिला लेखा से उठा लिए गए हैं । चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का 'कृत्स्नपृथिवी विजय' का अभिप्राय श्लोक २४ और ६० के शब्दों के पाछे भौंक रहा है । बाह्योक्त उदात्त, मालव सौराष्ट्र अपरान्त, यग वल्लिग, चोल पाण्ड्य-केरल इन चार अभियानों की स्मृति यहाँ है । मिहरीला लेख में सिन्धु बाह्योक्त, यग और दक्षिणोदधि के अभियानों का उल्लेख है । पादताडितक में 'कुसुमपुर पुरन्दर' अर्थात् महन्द्रादित्य कुमारगुप्त का उल्लेख आया है । वहीं इस भाग का रचना काल है जब स्कन्दगुप्त के हूण युद्ध की धूम थी ।

६१ (अ) अपरात = काष्ठीय प्रदेश, सह्याद्रि और समुद्र के बीच का भूमि । रघुवश में अपरान्तजय का उल्लेख आया है (४।५३, ५८) ।

६१ (इ) उत्कण्ठिता — अपरान्त के सैनिक दूसरे युद्ध में भाग लेने के लिये भद्रायुध की सेना में गए हैं, उनकी स्मृति से स्त्रियाँ उल्लिखित हैं ।

६१ (इ) समवलम्ब्य लतास्तरूणाम्—समुद्र के तटवर्ती उद्यान में त्रिया की उद्यान आदि भागों में परिचित मुद्रा का समेत है ।

६१ (ई) अर्णव—तु० रामाष्ट्रोत्सारितोऽर्णवसौ सल्लग्म इवार्णव (रघु० ४।५३) ।

६२—

उहि माणुसोत्ति भट्टाउहेण एवि लिच्चइ आउहे अ ।

सोयणारि तस्स कम्मसिद्धि विघसु सलु भुंजति सोकरसिद्धि ॥' इति ।

(१) (परिक्रम्य)

(२) एष खलु प्रद्युम्नदेवायतनस्य वैजयन्तीमणिलसति । (३) एतद्विडिडत्वं नाम भोः । (४) विडिडनो हि नामैते नातिविप्रकृष्टा वानरेभ्यः । (५) भोः किञ्च तावदस्य विडिडकेषु प्रियत्वम् । (६) विडिडनो हि नाम—

६२—मनुष्यत्व और अस्त्रविद्या इन दोनों में भद्रायुध के साथ कोई मुकाबला नहीं कर सकता । उसकी सफलता सुनकर जो उसकी बराबरी करना चाहे वह मानों सूअर का भोजन करता है ।

(घूमकर)

यहाँ कोई प्रद्युम्न (कामदेव) के देवायतन की ध्वजा चित्रित कर रहा है । यह किसी डाँढ्या का काम है । ये डाँढ्या बंदरों से बहुत कम नहीं होते । भला, इस चित्र की कौन सी विशेषता डँडियों को प्रिय है ? सुन—

६२—(सरकृत छाया) उभयत्र मनुष्यत्वे भद्रायुधेन लिप्सति आयुधे च । श्रुत्वा तस्य कर्मसिद्धिं विघसेत् खलु भुंजति शौकरसिद्धिम् ।

६२ उहि—सं० उभ > प्रा० उह, सप्तमी एक वचन ।

माणुसोत्ति—मनुष्यत्वे भयबा मानुषः इति ।

भट्टाउहेण—भद्रायुधेन ।

एवि—नहीं, निषेधार्थक अव्यय (पाइअसइमहणवो ४७५) ।

लिच्चइ—सं० लिप्सति = लालसा करता है । सं० लिप्स का प्राकृत धात्वादेश लिच्छ (हेम० ११११) ।

आउहे—सं० आयुधे (पासइ० १३१) ।

अ = च (पासइ० १) ।

सोयणारि—सुनकर या सुननेवाला । सं० ध्रवणकार ।

तस्स कम्म सिद्धि—तस्य कर्म सिद्धि ।

विघसु = खानेवाला, या खाना चाहे ।

सोकरसिद्धि—शूकर की सिद्धि । सं० शौकर > प्रा० सोकर, सोभर ।

सिद्धि—कृतार्थता, वृत्ति । वह शूकर की जैसी वृत्ति चाहता है, इसका जुगुप्सित अर्थ हुआ कि वह विद्या खाता है ।

६२ (२) प्रद्युम्नदेवायतन = कामदेव का मंदिर । प्रद्युम्न = कामदेव । मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मोनकेतनः—भगर ।

- ६३— (अ) आलेख्यमात्मलिसिभिर्गमयन्ति नाश
 (आ) सोधेषु कूर्चकमर्षामलमर्षयन्ति ।
 (इ) आदाय तीक्ष्णतरपारमथोविकार
 (ई) प्रासादभूमिषु घुणक्रियया चरन्ति ।

(१) किञ्च तान्दय लिसति । (२) (निलोष्य) (३) निरपेक्ष इति । (४) स्थाने सत्वस्येद नाम । (५) सुष्ठु सत्वदमुच्यते अर्थ नाम शीलस्यापहरतीति । (६) तथा ह्येव घान्त्रस्ता न प्रियससीमननेक्षया वेशतापसीत्रतेन कर्षयति । (७) सा हि तपस्विनी—

- ६४— (अ) नेत्रांशु पक्ष्मभिररालघनासिताम्रै
 (आ) नेत्रांशुघोतवलयेन करेण वनत्रम् ।
 (इ) शोक गुरु च हृदयेन सम विभति
 (ई) श्रीणि त्रिधा त्रिवलिजिह्वितरोमराजि ॥

६३—ये डाढ्या लोग बने हुए चित्र में अपनी ओर से कुछ लीप पोत कर उमे नष्ट कर डालते हैं, घर की पुती हुई दीवारों पर कुँची से स्थायी पोत कर उन्हें गद्दा कर देते हैं, और तेज नुकीली टोंकी लकर महल के खडों में कीरी फाँटे (घुणक्रिया) खरोंच देते हैं ।

यह क्या चित्रित कर रहा है ? (देखकर) अरे यह तो 'निरपेक्ष' है । इसका यह नाम ठीक ही है । ठीक कहा गया है कि पैमा शील को हर लेता है । इसी से यह भला आदमी हमारी उस प्रिय सखी के प्रति उदासीन है जिनके कारण वह वेश में तपस्विनी का व्रत साधनर दुबली हुई जा रही है ।

६४—यह बेचारी त्रिगुली प्रदेश में तिरछी रोमावली प्रकट करती हुई तीन वस्तुओं का बोझ तीन तरह से उठाए हुए है—नेत्रों का जल टेढ़ी सघन काली चरौनियों के अग्र भाग पर, मुँह को हाथ पर जिसका कहा आँसुओं के टपकने से भीग रहा है, और भारी शोक को हृदय पर ।

६३ (अ) लिसि = लिखाकर, कारीकेंग खींचना ।

६३ (आ) कूर्चक = कुँचा ।

६३ (इ) अयोविकार = लाले की टोंका ।

६३ (३) निरपेक्ष—यह शब्द पारिभाषिक था । खींचन आदि सामानिक वस्तुओं में अरति से 'उपेक्षा' वृत्ति धारण करने वाले उदात्तमान व्यक्ति या मिथु का भार संकेत है । इन्हें हा भागे चलकर 'उपेक्षाविहार' करनेवाला कहा गया है । इनकी मान्यता थी कि धन शाल (बौद्ध धर्म का आचार) का विघातक है ।

(१) तदुपालप्ये तात्वेनम् । (२) भो भागवत निरपेक्ष करुणात्मकस्य भगवतो मैत्रीमादाय यत्तेमानस्य तस्य मुद्रितायो योषिति युक्तमुपेक्षाविहारितम् ? (३)

तो इसपर कुछ फर्ती क्यूँ। अरे भागवत निरपेक्ष, (अथवा भागवतों से कतराने वाले), करुणात्मा भगवान् बुद्ध की मैत्री के अनुसार तू आचरण करता है।

६४ (२) भागवतनिरपेक्ष—इन्द्र दो शब्द माना जाय तो, भागवत = भगवान् बुद्ध में यद्वा रहने वाला, निरपेक्ष = ससार से अपेक्षा या लगाव न रखने वाला। भागवत निरपेक्ष को समस्त पद मान कर अर्थ होगा, वैष्णव भागवतों से बचकर रहने वाला।

६४ (२) करुणात्मकस्य—करुणा, मैत्री, उपेक्षा ये बुद्ध के उपदेश के धर्म थे।

६४ (२) मुद्रिताया योषिति—बौद्ध साधना का पारिभाषिक शब्द। मुद्रितयोषा यह स्त्री थी जिसकी सहायता से ध्यान साधना की जाती थी। यह साधक के लिये 'मुद्रित' या अनुपभोग्य (मुद्गरबन्ध) समझी जाती थी, अतएव उसकी सख्ति में कामविकारों को जीतने का अभ्यास किया जाता था। पौष्टे इसे ही अष्टपुरय दोगरी बाढाली कहा जाने लगा। 'मुद्रितायोषित्' की चषल काम मुद्राओं को देखकर भी जो उपेक्षा विहार करे, अर्थात् निर्लेप और एकप्रपन्ना रहे यही यक्षा साधक है।

६४ (२) उपेक्षाविहारितम्—उपेक्षा भाव से घटतना, उपेक्षा करके विहार में जा रहना। उपेक्षा (बौद्ध धर्म का पारिभाषिक शब्द) = उद्दामानता, जो भी घटना घटे उसी से सतुष्ट रहना, सतोपवृत्ति, दुःख सहनशीलता (पुजर्टन, बौद्ध सङ्घट्ट कोश, पृ० १४०)। यह सातवीं बोधवग माना जाता था। मैत्री करुणा मुद्रिता उपेक्षा ये चार अप्रमाण बल या विहार माने जाते थे (मैत्री उपेक्षा करुणा मुद्रिताप्रमाणा, ललित विस्तर २६।१२)। बुद्ध की चतुःप्रमाण प्रभ तेजवर कहा गया है। विहारितम्—बौद्धधर्म में मैत्री करुणा आदि चार अप्रमाण या अमन्त धर्म प्रहविहार कहे गए हैं (= प्राप्ती स्थिति, सर्वोच्च अवस्था, पुजर्टन कोश, पृ० ४०४)। उसी की ओर यहाँ संकेत है।

युक्तम् उपेक्षाविहारितम्—यह प्रश्न नी है और तत्त्व कथन भी है। हे भागवत (भगवान् बुद्ध के अनुयायी), हे निरपेक्ष (उपेक्षा मत लेने वाले), करुणा और मैत्री के साथ आपके लिए उपेक्षा विहार युक्त ही है। मुद्रितायोषित् में उपेक्षा विहार भी सार्थक है, क्योंकि ऐसी स्त्री के साखिध में असंग बना रहना ही सच्ची साधना थी। विट का प्रभावक क्या है—ऐसे भागवतों से बचकर रहने वाले, बुद्ध की करुणा और मैत्री का धोग करने कया अपने साथ का विवाहित स्त्री (मुद्रिता योषित्) की उपेक्षा करके विहार में रमना तेरे लिये ठीक है? भागवतों का इष्टिकोण गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों के प्रति बोद्धा से भिन्न था।

तस्य मुद्रिता योषित् = जो स्त्री तेरे साथ मुद्रित हुई है, विवाह सम्बन्ध से बँधी है, तेरे घर में सुँदी (मुद्रिता) है। अथवा मुद्रिता का अर्थ मुद्रा युक्त भी है। मुद्रा = कामशास्त्र की रति मुद्रा, रतबन्ध, करण। साधना करते हुए तूने जिसके साथ मुद्राभा का अभ्यास किया है। क्या यह ठीक है कि अब तू उसके प्रति उपेक्षा बरतने का डाग करता है ?

किं ब्रवीषि—“गृहीतो वञ्चितकस्यार्थः । (४) स्पृष्टोऽस्म्युपासकत्वेन । (५) ईदृशः संसारधर्म इत्युक्तं तथागतैर्न” इति । (६) या तावद् भोः । (७) तस्यामेव भवगतस्तथागतस्य वचनं प्रमाणं नान्यत्र । (८) किं ब्रवीषि—“कुत्र वा कदा वा मम तथागतस्य वचनमप्रमाणम्” इति । (९) इयं प्रतिज्ञा ? (१०) किं ब्रवीषि—“कः सन्देहः” इति । (११) मद्रमुखं श्रूयताम्—

६५— (अ) श्रमनिस्सृतजिह्वमुन्मुखं
(आ) हृदि निस्सङ्गनिखातसायकम् ।

तो क्या तुझमें मुद्रित (कामशास्त्र की मुद्राओं से युक्त) उस स्त्री के प्रति तेरा यह उपेक्षा विहार (उदासीन वृत्ति) ठीक है? क्या कहता है—“इस कटाक्ष का मैं मतलब समझ गया। मैं अब उपासक हो गया हूँ। तथागत ने कहा है कि यही संसार धर्म है।” अरे, ऐसा मत कह। क्या उसी के लिये तथागत का वचन लागू होता है, दूसरी जगह नहीं? क्या कहता है—“कहाँ और कब मेरे लिये तथागत का वचन प्रमाण नहीं है?” अरे, तेरी ऐसी प्रतिज्ञा? क्या कहता है—“इसमें क्या सन्देह है?” भलेमानस सुन—

६५—भागने के श्रम से जिसकी जीभ लटक रही है, जो ऊपर मुँह उठाए देख रहा है, जिसके हृदय में निद्रुआई से बाण बांध दिया गया है, ऐसे हिरन को

६४ (४) स्पृष्टोऽस्मि उपासकत्वेन—बुद्ध के अनुयायी दो प्रकार के थे उपासक और भिक्षु। उपासकों के लिये पाँच शिष्टापद थे—यावज्जीवं प्राणातिपातात्, भद्रतादानात्, कामेहि मिथ्याचारात्, मृषावादान्, सुरामिरेव मद्य प्रमाद स्थानात् प्रतिविरमिष्यामि, महावस्तु ३।२६८।१०-१३। इनके अतिरिक्त श्रामणेरों के पाँच शिष्टापद और थे। इसका तात्पर्य यही है कि मैंने उपासक के पाँच अर्थों का अभ्यास शुरू कर दिया है, इसलिये काम सम्मन्यी मिथ्याचार भय मैंने छोड़ दिया है।

६४ (५) ईदृशः संसारधर्मः—संसार में रहनेवाले उपासकों को इन पाँच बातों की धारण करना बुद्ध ने धर्म कहा है।

६४ (७) तस्यामेव—व्रिड का व्यंग्य है कि तूने अपनी कामुकता की लपक और कहीं तो नहीं छोड़ी, उस बेचारी के लिये ही तू उपासक बना है।

६४ (११) मद्रमुख = भलेमानस; (२) मुँह की भद्रा करानेवाला या घाल घुटाने वाला।

६५—व्रिड का व्यंग्य है कि तू शिकार में मृगों का वध करते हुए प्राणातिपात या हिंसा न करने के बुद्ध वचन की परवाह नहीं करता।

६५ (अ) श्रम निस्सृतजिह्व—(शिकारवाले हिरनपक्ष में) श्रम से जिसकी जीभ बाहर निखल रही है; (ध्यानी बुद्ध के पक्ष में) कठोर निराहार तप से जिनकी जिह्वा बाहर आ रही है। श्रम का अर्थ कठोर तप भी या जिसके कारण भिक्षु ‘श्रमण’

(६) समवेक्ष्य मृगं तथागतं

(६) स्मरसि त्वं न मृगं तथागतम् ॥

(१) एष ग्रहसितः । (२) किं ब्रवीषि—“न खलु तथागतशासनं शक्ति-
तव्यम् । (३) अन्यद्दि शास्त्रमन्यथा पुरुषप्रकृतिः न वयं वीतरागाः” इति । (४) यद्येव-
मर्हति भवास्तत्रभवती राधिका तथाभूता शोकसागरादुद्धर्तुम् । (५) किं ब्रवीषि—

शिकार में सामने आया हुआ देखकर तू उसके दुःख पर ध्यान नहीं देता, पर
तथागत बुद्ध का ध्यान करना जानता है ।

अरे, यह ठठाकर हँसा । क्या कहता है—“तथागत के शासन में शंका
नहीं करनी चाहिए । शास्त्र और है, मनुष्य का स्वभाव कुछ और है, और हम भी
वीतराग नहीं हैं ।” अगर यह बात है तो तुझे चाहिए कि उस अवस्था में पड़ी

कहलाते थे । (३) (मृग दाव वाले हिरन के पक्ष में) बुद्ध के भ्रम या सप को देख कर
बलेश से जिसकी जिह्वा बाहर आ रही है ।

६५ (अ) उन्मुख—(मृगपक्ष में) ऊपर मुँह किए हुए; (बुद्ध पक्ष में) ऊर्ध्व
रुधि मुद्रा युक्त ।

६५ (आ) निस्संगनिष्ठातसायक—(खग पक्ष में) निर्ममता से जिसके हृदय
में बाण मार दिया गया है; (बुद्ध पक्ष में) जिन्होंने हृदय में निस्संग या असंग व्रत धारण
किया है । भस्म को गोता में शस्त्र कहा गया है—अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण
हृदेन क्षिप्त्वा (१५।३) ।

६५ (इ) मृगं तथागतं—इसके तीन अर्थ हैं (१) एकान्त सेवी बुद्ध; (२)
शिकार की उस अवस्था में सामने आया मृग, (३) मृग और तथागत बुद्ध । मृग = मृग
की भौति, असंगप्राप्ति, ग्राह्य, ग्राह्यन्त, विहर, कर्त्तृ, कर्त्तृ, (मृगाका व. असंगप्राप्ति, प्रविविक्ता,
विहरन्ति भिन्नः, महावस्तु ३।२४।१६, दे० एजर्टन कोश) । तात्पर्य यह कि बुद्ध की
सपरिचयानिरत मुद्रा का दर्शन करके तुम्हें बुद्ध का ध्यान नहीं आता, तू शिकारी के
हिरन की ही बात सोचता रहता है । अथवा, धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध का और चरण
चौकी पर उत्कीर्ण मृग का जब तू दर्शन करता है, तो बुद्ध का ध्यान न करके हिरन के
मांस की बात ही सोचता है । इस तीसरे अर्थ में भ्रमनिवृत्त जिह्व और उन्मुख विरोपण
मृग के लिये तथा हृदि निस्संग निष्ठात सायक बुद्ध के लिये लेने चाहिए ।

तथागत शासनं—बुद्ध का उपदिष्ट धर्म, या बुद्ध की आज्ञाएँ ।

पुरुषप्रकृतिः = पुरुष का स्वभाव । अथवा पुरुष और प्रकृति या स्त्री के सम्बन्ध का क्षेत्र
दूसरा है, शास्त्र के उपदेश का दूसरा ।

राधिका—पौर्वी शती में राधिका नाम का प्रयोग ध्यान देने योग्य है ।

“यदाज्ञापयति वयस्योऽयममञ्जलिः साधु मुच्येयम्” इति । (६) सर्वथा दुर्लभस्ते मोक्षः किन्त्वियमाशीः प्रतिगृह्यताम् ।

६६— (अ) विप्रोप्यागत उत्सुकामवनतामुत्सङ्गमारोपय
 (आ) स्तब्धे वक्त्रमुपोपधाय रुदती मयः समाश्वासय ।
 (इ) आचक्षां महिषीविपाणविपमामुन्मुच्य वेणीं ततो
 (ई) लम्बं लोचनतोपशोण्डमलकं छिन्धि प्रियायाः स्वयम् ॥
 (?) एष प्रहस्य गतः । (२) इतो वयम् । (३) (परिक्रम्य) (४) अये

को नु खलोप इत एवामिवर्तते ।

६७— (अ) दुश्चीवरावयवसंवृतगुहादेशो
 (आ) वस्ताननः कपिलरोमशपीवरांसः ।
 (इ) आयाति मूलकमदन् कर्पिपिङ्गलाक्षो
 (ई) दाशेरको यदि न नूनमयं पिशाचः ॥

हुई तत्रभवती राधिका का शोक सागर से उद्धार कर । क्या कहता है—“मित्र जो आज्ञा, प्रणाम । राजी खुशी बिदा मिले (किसी तरह पीछा छोटे) ।” मोक्ष तेरे लिये बिल्कुल असम्भव है । फिर भी मेरा आशीर्वाद ले ।

६६—बाहर से आकर उत्सुक और अवनत प्यारी को अपनी गोद में बैठा; कन्धे पर सिर रखकर रोती हुई उसे फिर सान्त्वना दे; भैसे के सांग की तरह बँधी हुई उसकी विपम वेणी को खोल; तथा प्रिया की गरम आँसुओं से भीगी हुई लम्बी अलकों को स्वयं अपने हाथ से सुलझा ।

वह खीसे निकालकर चला गया । मैं भी चली । (धूमकर) अरे यह कौन इसी ओर आ रहा है—

६७—गंदे चीवर के चीथड़े से गुप्ताङ्ग को ढके हुए, बकरे के जैसी शकल वाला, पीला, लम्बे रोएँ वाला, भरे कंधों वाला, बदर के जैसी कंजी आँखों वाला, मूली खाता हुआ यह कोई दाशेरक आ रहा है, सचमुच इस रूप में अगर पिशाच ही न हो ।

६५ (५) साधु मुच्येयम्—(१) आपसे राजी खुशी बिदा लें; (२) अच्छा हो कि भापसे शीघ्र मेरा पिंड छूट जाय ।

६५ (६) दुर्लभस्ते मोक्षः—(१) तेरे जैसे दुकर्मों के लिये मोक्ष असम्भव है; (२) तेरे जैसे वेश के गिरदभंगा लोगों का हम विद्रों से बिल्कुल पल्ला छुटा लेना मुश्किल है ।

६६ (इ) महिषीविपाण विपमा वेणी—विरह में बहुत दिनों तक केश सस्कार से विरहित एक वेणी का सटीक उपमान है ।

६६ (ई) शोण्ड—सुरापान में आसक्त, भग्नस्त । आँसु पाने की भग्नस्त अलगावली ।

लंब = उन्मुक्त, विरह में छुटी हुई अलकें ।

६७ (ई) दाशेरक—दाशेर या दशपुर का निवासी ।

(१) भवतु । (२) विज्ञातम् । (३) एष खलु आतुरश्चा वयस्यस्य तत्र-
भवतो दाशेरकाधिपतेरपत्यरत्नस्य गुप्तकुलस्यावासे दृष्टपूर्वः, (४) तत् किमस्येह प्रयोज-
नम् ? (५) एष मा कृताञ्जलिरुपसर्पति । (६) किं ब्रवीषि—

(७) “गुप्तकुलेण पेम्ससि ओवारिद पण पञ्च दिव्बु गणिका कावि किं देप्पय-
तित्ति इतत्तुं आणा दिहा । (८) शु पोरवीधीए अपेप आउण्णि काचि गणिका ए दीपइ
तहम्मि तप्प अदीए । (९) तेण्णयं संमल्लेतो शिण्णुदिप्प ए अम्माए मे पापितं

अच्छा, पता चल गया । हमे मैने अपने बन्धु अथवा मित्र दाशेरकाधिपति के पुत्र
गुप्तकुल के घर में कभी देखा है । इसका यहाँ क्या काम ? यह मुझे हाथ जोड़ता हुआ
आ रहा है । क्या कहता है—“गुप्तकुल ने आज्ञा दी है कि तू छिपकर देख । मैं एक
मुश्त पाँच पण दूँगा । क्या कोई गणिका इतने बयाने से सन्तुष्ट हो जायगी ? यदि पुर
वीधी में सरासर भरी हुई गणिकाओं में कोई गणिका ऐसी दिखाई दे तो मैं ही उसे यह
बयाना दे दूँ । तो स्वामी की आज्ञा का स्मरण करते हुए एवं कुछ अपने मतलब से भी

६७ (३) गुप्तकुलस्य—दाशेर के स्वामी रुद्रवर्मा के पुत्र का नाम गुप्तकुल ।

६७ (७) से ६६ (१२) तक प्राकृत भाषा के वाक्य हैं । इनका अर्थ इस
प्रकार है—

६७ (७) गुप्तकुलेण आज्ञा दिष्णा, यह प्रधान वाक्य है—गुप्तकुल ने आज्ञा दी
है । पेम्ससि ओवारिद—तू छिपकर (अप्यारित > ओवारिद) देख, चुपके से दूँक । पण-
पंचदिव्बु = मैं पाँच पण तक गणिका की उज्जरता देना चाहता हूँ । दिव्बु—सं० दिव्बु >
प्रा० दिव्बु (पास० ५६८) । कावि = सं० कापि, कोई । कि—सं० किं = क्या ।
देप्पयतित्ति—देप्पयति सं० दापयति > प्रा० देप्पयति = दिलवाती है । त्ति = इति ।
अथवा देप्पय = तु दिलवा दे । तित्ति = वृत्ति । तित्ति इतत्तुं = उसके वृत्त या संतुष्ट होने
तक वह जितनी रकम चाहे । इतत्तुं—प्रा० इत्तोप्प = इतः प्रभृति (पास० १६०)
सात्पर्य यह कि किसी गणिका को प्रसन्न करके तू यह रकम दिलवा दे ।

६७ (८) शु—सं० शु = अगर, यदि । पोरवीधीए = पुर की धीधी में । अपेप—
सं० भरोप = निःशेष, सब ओर । आउण्णि—सं० आपूर्ण > आउण्य = पूर्ण, भरपूर (पास०
४० १३१) । काचि—सं० काचित् = कोई । ए = ऐसी । सम्बोधन या वाक्पालंशर
या स्मरणार्थ अव्यय । दीपइ—दृश्यते = दिखाई पड़े । तहम्मि—तो मैं ही । अथवा त +
हम्मि = तो जाकर । हम्मि = जाकर । हम्म = जाना (हैम ४।१६२) । तप्प—सं० तप्त्य =
उपे । अ दीए—सं० च दीये = दे दूँ । तो भय ओर गणिकाओं से भरी हुई नगर की
धीधी में कोई ऐसी गणिका दिखाई दे तो उसे जाकर यह बयाना दे आज्ञा ।

६७ (९) तेण्णयं—तेन + अयं = तो अपने शरामो को । संमल्लेतो = स्मरण करने
हुए । मं० मग्ग > प्रा० मंभर, मंमल । शिण्णुदिप्प—निजोद्देशन = अपने शरामो या
कार्यार्थ के उद्देश्य में । अम्माए—अम्मा या बेटा की माता से । मे पापितं—मया
आप्यापितम् = मैंने कह दिया । गुपंमयंरेण—स्वोद्वेग घन का चांगुना तब मैंने कह
दिया, अर्थात् चांग पण तक उज्जरता बढ़ा दी ।

तुर्यमर्थकेण । (१०) दाणि गणिक कमुष्पुलिद अप्पेण कुलंधित्येव कामा ए अप्पे ।
(११) जइ गच्छामि विपक्कहे दंष्टितुं होमि । (१२) रिदिवशा विपु एक एवं ति” ।

(१३) अहो देशनेपभापादाक्षियसम्पदुपेतो गुप्तकुलस्य युवराजस्य मदनदूतो
वेश एव वर्तमानो वेशमापणामिधानेन पृच्छति । (१४) तन्न शक्यमीदृशं रत्नमवबोध्य
विनाशयितुम् । (१५) ईदृश एवास्तु । (१६) एवं तावदेनं वच्चे ।

मैने खाला से चौगुना दाम तक सुना दिया । पर इस समय तो गणिकाएँ, यद्यपि वे लबालब काम से भरी हैं, कुलदुहिता की तरह काम की बात ही नहीं करतीं । यदि जाकर यह विपरीत बात कह दूँ तो दंडित होऊँगा । सब रईस एक जैसे होते हैं ।”

वाह देश, वेप, भापा और दाक्षिण्य के गुणों से युक्त युवराज गुप्तकुल का मदनदूत वेश में ही मौजूद होते हुए वेश की उस दुकान का पता पूछ रहा है जहाँ यह सौदा बिकता है । तो ऐसे रत्न को ठीक बात बता कर यहाँ से जल्दी सटका देना ठीक नहीं । यह ऐसा ही बना रहे । तो इससे यों कहूँ ।

६७ (१०) दाणि—सं० इदानीम् = इस समय । कामपुलिद—कामोत्पुलित = काम से लबालब भरी हुई । अप्पेण = भोज या इन्धिय । जिसकी भोज में काम का योग छलक रहा है, ऐसी गणिका भी कुलवधू की तरह काम की बात नहीं करती । कुलधिपेव—सं० कुलदुहितेव । सं० दुहिता > प्रा० धाभा, धिता, धित्या = कुल कन्या की भाँति । ण अप्पे—आर्या > अवस्व, अवस्था = नहीं बतियाती, काम की बात ही नहीं करती ।

६७ (११) जइ गच्छामि विपक्कहे दंष्टितुं होमि—यदि जाकर यह विपरीत सूचना दे दूँ तो दंड का भागो बनेँगा । विपक्क—सं० विपक्व = विपरीत ।

६७ (१२) रिदिवशा—सं० ऋदिवशाः = रईस । सं० रुद्धि > रिद्धि, रिधि, रिदि । विपु—सं० विश्वे = सब । सब रईसज्जनों का स्वभाव एक जैसा होता है, अतएव वह भी मुझ पर खौफ उठेगा ।

६७ (१३) वेशमापणामिधानेन पृच्छति—वेश में आकर भी पूछ रहा है कि भाई यह माल किम दुकान पर बिकता है या मिलेगा । हमसे उस मदनदूत का सरासर उल्लेख पना ज्ञापित होता है । वित ने जुटोली भापा में उसे ‘रस’ कहा है ।

६७ (१४) विनाशयितुम् = भगा देना, सटका देना । णश भदर्शने घातु का एक अर्थ भाग जाना भी था । हमसे सच्ची बात कह दूँ तो यह तुरन्त-यहाँ से चपत होकर स्वामी के पास पहुँच जायगा ।

(१७) मद्र राजवीथ्या लावणिकापणपु मृग्यता गणिका । (१८) एष महर्षात् प्रणिपत्य गत । (१९) इतो वयम् । (२०) (परिक्रम्य) (२१) क नु खल्विदानीं दाशेरकदर्शनावधूत चक्षु मक्षालयेयम् ? (२२) (विलोक्य) (२३) भवतु, दृष्टम् । (२४) एतद्धि तदस्माकं पूर्वप्रणयि-न्या शूरसेनसुन्दर्या निवेशनम् । (२५) कथमप्यवृत्तपक्षद्वारमेव । (२६) यावदेतत् प्रविशामि । (२७) (प्रविष्टकेन) (२८) क नु खल्विमं पादप्रचारश्चमगपनयेयम् । (२९) गवतु दृष्टम् । (३०) इयं सल्लु प्रियङ्गवीथिका । प्रियेवोत्सङ्गेन शिलातलनं मामुपनिमन्त्रयते । (३१) यावदनोपविशामि । (३२) (विलोक्य) (३३) किमिहाभिलिखितम् । (३४) (वाचयति) ।

६८—

- (अ) सखि प्रथमसङ्गमे न कलहास्पदं विद्यते
(आ) न चास्य विमनस्कतामशृणुष्व न वाकल्यताम् ।
(इ) युवानमभिमृत्य तं चिरमनोरथप्राथितं
(ई) किमस्य मृदितागरागरचना तथैवागता ॥ इति ।

अरे भाई, राजवीथी में लावणिकापण (नमक की दुकान) पर जाकर गणिका को खोज । यह तो खुशी से प्रणाम करके चला गया । हम भी चलें । (घूमकर) अब दाशेरक के दर्शन से धूलभरी आखें कहाँ धोऊँ । (देखकर) ठीक, दिखाई पड़ गया । यह हमारी पुरानी प्रणयिनी शूरसेनसुन्दरी का मकान है । बगल का दरवाजा कैसे खुला है ? तो इसमें प्रवेश करूँ । (अन्दर जाकर) कहाँ बैठकर पैदल चलने की थकावट दूर करूँ ? ठीक, जान लिया । यह प्रियगु की वीथी अपने शिलातल पर बैठने के लिये प्यारी की गोद की तरह मुझे बुला रही है । तो यहाँ बैठूँ । (देखकर) यहाँ क्या लिखा है ? (पढ़ता है) ।

६८—हे सखि, प्रथम समागम में कलह का मौका नहीं आता, उस तेरे प्रियतम के रूठने की बात भी नहीं सुनी और न उसकी बीमारी ही सुनी गई । चिर अभिलाषा के बाद प्राप्त उस युवक के पास से तू क्या अग्राग रचना मिटाए बिना वापस लौट आई ।

६७ (१७) लावणिकापण = नमक बेचनेवालों का दूकान । लवण से नमक और रूप आवण्य दोनों का संकेत होता है ।

६७ (१९) पक्षद्वार — प्रासाद के प्राकार में एक प्रधान कोरण या द्वार प्रकीर्ण होता था और उसके बाद होने पर आने जाने के लिये एक पक्षद्वार होता था ।

६८ (आ) अकल्यता = अस्वास्थ्य ।

६८ (ई) अमृदितागरागरचना — विशेषक आदि प्रसाधन चिह्न का निगड़े निना ।

(१) (विचिन्त्य) (२) कस्याश्चित् सखिय केनापि प्रत्याख्यातप्रणयाया
दोभाङ्ग्यघोषणा घुष्यते । (३) तत् क नु सलु पृच्छेयम् ? (४) (कर्णं दत्ता) (५)
अये इय चरणाभरणाशब्दसूचिता शूरसेनमुन्दरीत एवाभिर्गते । (६) यैषा—

६६—

(अ) आलम्ब्यैकेन कान्त म्मिलयमृदुना पाणिना छत्रदण्ड

(आ) सद्यहैन न नीनीं चलमणिरशनां अश्रमनाशुक्रान्ता ।

(इ) आयात्यभ्युत्समयन्ती ज्वलिततरवपुर्मूपणाना प्रभाभि

(ई) सज्योतिष्पा सचन्द्रा सविहगविरुता शर्नरीदेवतेन ॥

(१) भो यत्सत्यमभ्युत्पापयतीन मामप्यस्यास्तेजस्विता । (२) एषा मा कपोत-
केनोपसर्पति । (३) अलमस्मानुपचारेण प्रत्यादेष्टुम् । (४) किमाह भगती—“चिरा
दपि तावत्स्वामिनामुपगतानामुपचारेण तावदय जन आत्मानमनुगृह्णीयात्” इति ।
(५) अतमलमत्युपालम्भेन । (६) इदमुचितमुत्सङ्गासनमनुगृह्यताम् । (७) एषा मे
शिरसा प्रतिगृहीतम् इत्युत्वा शिलातलार्थं श्रौण्णिभिरेनाक्षिपतीनोपनिशति । (८)

(सोचकर) यह प्रेम में दुःखी दा जाने वाली किसी स्त्री के दुभाग्य की
घोषणा है । तो निम्ने पछूँ ? (कान देकर) अरे, पैर के गहनों की क्षणकार से यह
शूरसेनमुन्दरी डूधर ही आती जान पड़ती है ।

६६—यह पल्लव जैसे सुसुमार एक हाथ से सुन्दर छाते की डाडी पकड़े
हुए है । दूसरे से चंचल गणियों से गुँथी रशना वाली सरस्वती नीची का छोर
पकड़ कर खिमरते रेशमी कम्ब को संभाल रही है । मूपणों की चमक दमक से
झनझनी हुई अगयष्टि के साथ मुससुराती हुई यह चली आ रही है, मानो चन्द्रमा
नक्षत्र और पक्षियों की चहचहाहट से मुशोभित रात्रि की अधिदेवता हो ।

अरे, सचमुच इसका तेजस्विता मुझे भी उठने के लिए प्रेरित कर रही है ।
हाथ जोड़े यह मेरी तरफ आ रही है । अरे, इस खातिरदारी से मुझे मत निपट ।
तूने क्या कहा—“बहुत दिनों के बाद म्यामी के आने पर उपचार से यह सेविका
अपने को अनुगृहीत करना चाहती है ।” बस बस, बहुत उलाहना हो चुका । तेरे
लिये योग्य मेरा गोद के इस आसन पर कृपा कर । आपकी बात सिर माथे, यह

६६ (आ) चलमणि रशना—ऐसी रशना जिसके मनके धागे में एक स्थान पर
गड़ियाण न होकर पिसकने वाले ह ।

६६ (ई) सज्योतिष्पा = नक्षत्र सहित । आभूषण नक्षत्रों के समान है ।

६६ (ई) सविहगविरुता = पक्षिविरुत के साथ । यह पक्षिरुत किसी भा समय
पक्षियों का वालना न होकर सन्ध्या के समय बसरा लेने से पूर्व पक्षियों का सम्मिलित
चहचहाहट है जिसका का-वा में प्राय उल्लेख आता है । भवन वेद बुनि अति मृदुवाना ।
अनु खग मुखर समय ननु साना (रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड ३६५।७) । शकुनामामि
वाचामे (पाद० २७ अ) में इसा का उल्लेख है । यहाँ नक्षत्र और चन्द्रमा सहित पूणिमा
का सायकालीन छवि का वर्णन है ।

६६ (१) कपोतरु—६० पाद० ५८ (अ) ।

अये न खल्वत्रोपरोद्ध्वम् । (६) किमाह भवती—“किमर्थ” इति । (१०) नन्विदं कस्या अपि चरितं केनापि प्रत्याख्यातप्रणयायाः श्लोकसंज्ञकमयशोऽस्माभिर्दृष्टम् । (११) (कथं हस्ताभ्या प्रमाष्टिं) (१२) चोरि, न शक्यमिदानीं प्रमाष्टुम् । (१३) इदं हि मे हृदि लिखितम् । (१४) एषा किं वारयति ?

(१५) किमाह भवती—“जानीत एवास्मत्स्वामी यथास्मत्सरया कुसुमावतिकायाः प्रियवयस्यं चित्राचार्यं शिवस्वामिनं प्रति महान् मदनोन्मादः” इति । (१६) सुष्ठु जानीमः, (१७) तत्रभवत्या कुसुमावतिकया तत्रभवानभिगमनेनानुगृहीतः । (१८) किमाह भवती—“मदनविकलस्य स्त्रीहृदयस्यायं स्वभावः, (१९) कृतमनया स्त्रीचापल्यं” इति । (२०) चित्रः सलु प्रस्तावः, (२१) पृच्छाम्येनाम् । (२२) भवति, विलम्बः पृच्छति न पररहस्यकृतहलिता । (२३) तत् कथमनयोश्चिराभिलषितसमागमोत्सवो निर्वृत्तोऽभूत् ? (२४) किमाह भवती—“श्रूयतां” इति । (२५) अवहितोऽस्मि । (२६) किमाह भवती—“तस्या किल वारुणीमदलक्षेण तत्रभवन्तमनुगृहीतायां तत्र भवती वयस्यस्य—

७०—

(अ) गतः पूर्वो यामः श्रुतिचिरसया मल्लकथया

(आ) द्वितीयो विक्षिप्तः पल्लवगुडवाह्यतिकरः ।

कहकर घेह आधी पटिया को अपने नितम्ब से घेर कर बैठ गई । अरे तुझे यहाँ नहीं बैठना चाहिए । तूने क्या कहा—“क्यों ?” यह किसी ठुकराई प्रेमिका का चरित किसी ने श्लोक में अपनी बदनामी के रूप में लिखा है, वह मैंने देखा है । (क्यों इसे हाथ से गिटाने लगी ?) चोड़ी, इसे मिटाना सम्भव नहीं, यह तो मेरे हृदय में लिख गया है । यह क्यों छिपाती है ?

तूने क्या कहा—“आप तो सब जानते हैं कि मेरी सखी कुसुमावतिका का आपके प्रिय मित्र चित्राचार्य शिवस्वामी के प्रति गहरा कामोन्माद हो गया है ।” खूब जानता हूँ । और यह भी कि कुसुमावतिका ने उसे अपने आगमन से अनुगृहीत किया । तूने क्या कहा—“काम विकल स्त्री हृदय का यही स्वभाव है, सो उसने स्त्री चापलता दिखलाई ।” विचित्र बात है, मैं इससे पूछूँ । अरी, तुम दोनों का जो विश्वास मुझे प्राप्त है उसी से पूछ रहा हूँ, पराया रहस्य जानने के कुतूहल से नहीं । तो कैसे इन दोनों का चिर अभिलषित कामोत्सव सुख से निपटा ? तू क्या कहती है—“सुनिष्ट” । मैं सावधान हूँ । तूने क्या कहा—“वारुणी का नशा चढ़ने पर जब वह शिवस्वामी को अनुगृहीत करना चाहती थी तो, आपके मित्र का यह हाल हुआ—

७०—सुनने में अरुचिकर अपनी कुश्ती की कहानी कहते कहते उसने पहला पहर चिता दिया । और दूसरा पहर तिलकुट, गुड़ आदि की बातों के वे मतलब

(३) तृतीयो गात्राणामुपचयकथाभिर्विगलितः . .

(३) ततस्तन्निर्वृत्तं कथयितुमलं त्वयपि यदि ॥” इति ।

(१) सुन्दरि कुतस्त्वयैतदुपलब्धम् ? (२) किमाह भवती—“तस्यैव सरयुरुद-
वसितादागतात् प्रतीहारपद्मपालादुपलब्धवृत्तान्तया मयैव श्लोकः सुरप्रार्थिनकहरतेना
नुप्रेषितः । (३) ततः सा तेनैव परिचारकेण मामुपस्थिता लज्जाविलक्ष्णमुपहसन्तीव
मामुक्त्वती—(४) न च रहस्यानारयानेन भवतीमात्सेमुमर्हामि, (५) श्रूयतामिदम्-
पूर्वमिति । (६) ततोऽनया यथावृत्तं सर्वं महामारयातम् । (७) तेन हि त्वमप्यनेन
श्रोत्रामृतेन संविभक्तुमर्हसि” इति । (८) एषा—सतलघातं प्रहस्य कथयति । (९) -
सुन्दरि, किं वयपि—“श्रूयतामिदमिदानीं यन्मम प्रियसख्या कथितम् । (१०) साहि
मामुक्त्वती—प्रियसरि, स हि मया—

७१—

(अ) आलिङ्गितोऽपि स मया परिचुम्बितोऽपि

(आ) श्रोण्यर्पितोऽपि करजैरुपचोदितोऽपि ।

(इ) सिन्नास्मि दारिव यदा न स मामुपेति

(ई) शय्याङ्गमेकमुपगूह्य ततोऽस्मि सुप्ता ॥

(१) ततो मयोक्ता—“हृन्मृतं वतागुभूतवत्यसि । (२) किमितन्नावगच्छामि’
इति । (३) ततो निर्वस्य मामुक्त्वती—

पचड़ों में गुजर गया । तीसरा पहर जगीर को पुष्ट बनाने की बातें बताते हुए
गला दिया । उसके बाद जो हुआ वह आपसे भी कहना न पड़े (तो अच्छा) ।

सुन्दरी, तुझे इन सब बातों की खबर कहाँ लगी ? तूने क्या कहा—
“उसी के मित्र के घर से आए हुए प्रतीहार पद्मपाल से खबर पाकर मैंने यह श्लोक
खोज खबर लेने वाले (सुख प्रादिनक) के हाथ मेजा । तब उसने उसी परिचारक
के साथ आकर लजाकर हँसते हुए मुझसे कहा—‘तुझसे भेद छिपाकर मैं तुझे
परेशान करना नहीं चाहती । इसलिए यह नई बात सुन ।’ तब उसने मुझसे आप
बीती, मन्त्री, बात कही । तो, आप भी, दू. श्रोत्रामृत, में, हिस्सा, बढ़, नें, ।” यह वाली,
पीट कर हँसते हुए कह रही है । सुन्दरि, क्या कहती है—“मेरी सखी, ने जो कुछ
मुझसे कहा उसे अब सुनिए । उसने मुझसे कहा—‘हे प्रियसखी ।

७१—मैंने उसका आलिंगन किया और चुम्बन लिया, उसके नितम्बों
पर मैंने नखशत किए और उसे रति के लिए उकसाया । पर जब काठ की तरह
जड़ रहकर वह मुझसे न मिला तब मैं उससे खीझ कर खाट की पट्टी से लिपट
कर पड़ गई ।’

इस पर मैंने कहा—‘तूने बड़ी तकलीफ शेली । क्या मैं इतना नहीं
समझती ?’ उसने आह भर कर मुझसे कहा—

७० (ई) ततस्तन्निर्वृत्तं—ध्वज भग की ओर संकेत है ।

७२—

(अ) यदा सर्वोपायैश्चटुगिरुपयातोऽपि स मया

(आ) न यत्नं कुर्वाणो मयि मनसिजेच्छामलगतः ।

(इ) ततस्तस्मिन् सर्वप्रतिहतविधानाऽस्मि सहसा

(ई) स्वदीर्घायै मत्वा स्तनतटविक्रम्पं प्ररुदिता ॥

(?) ततः स मा रुदतीमुत्सङ्गमारोप्य मुहुर्मुहुर्व्यथैश्चुम्बनपरिष्वङ्गैराश्रयासयन्नाम
दृढमात्मानमायासितवान् । (२) उक्तं च मया—‘किं ते पाणिभ्या स्पृष्टवा’ इति ।

(३) ततो बीडाश्रितसाध्वसस्वेदवेषधुः शुष्यता मुरेन नातिप्रगल्भाक्षरमुक्तवान्—

७३—

(अ) न निन्दितुमनिन्दिते सुमगतां निजामहं सि

(आ) च्युतं हि मम चक्षुरेतदमितो निधिं पश्यतः ।

(इ) वधाय किल मेदसो यदपिचं पुरा गुग्गुलुं

(ई) तदेतदुपहन्ति मे व्यतिकरामृतं त्वदगतम् ॥

(?) ततो मया चिन्तितम्—

७४—

(अ) मेदःक्षयाय पीतो

(आ) यदि गुग्गुलुरिन्द्रियक्षयं कुरुते ।

७२—जब सब उपायों और खुशामदों से उकसाने पर भी उसने अपनी ओर से जतन करके भी मेरे प्रति अपना काग नहीं जगा पाया, तब मैं सहसा उसमें अपनी सब जुगत बेकार हो जाने से और अपना दुर्भाग्य जानकर अपनी छाती फूट कर रो पड़ी ।

तब रोती हुई मुझे गोद में लेकर बार-बार के व्यर्थ चुम्बनों और आलिंगनों से ढाढस देते हुए उसने अपने को खूब थकाया । मैंने उससे कहा—‘हाथों से छूने से क्या होता है ?’ तब लज्जा और ध्वराहट से पसीने पसीने होकर सूखते हुए मुँह से उसने कुछ दबे शब्द कहे—

७३—हे अनिन्दिते, अपने सोहाग की निन्दा मत कर । इतनी बड़ी निधि देखते हुए भी नेरी ओखें फूट गईं । चर्चा घटाने के लिये जो मैंने पहले गुग्गुलु का सेवन किया था वही तेरे साथ सम्मिलन के मेरे अमृत सुख को मार रहा है ।

तब मैंने सोचा—

७४—चर्चा घटाने के लिये पिया गया गुग्गुलु यदि इन्द्रिय शक्ति की रेड़

७४ (अ) मेदः क्षयाय पीतः—सुधुत ने मेद घटाने के लिये गुग्गुलु सेवन कहा है—शिलाजतु गुग्गुलु गोमूत्र त्रिफला लोहरबोरसाञ्जण मधुयव मुद्गकोरदूपक्षयामाको हालकादीनां विरुद्धं क्षेदनीयानां च द्रव्याणां विधितदुपयोगो व्यायामो लेखनचतसुपयोग-श्चेति (चिकित्सास्थान १५।३२) । मैं इस सूचना के लिये अपने मित्र वैद्य श्री अत्रिदेव जी का अनुगृहीत हूँ ।

(३) धूपार्थोऽपि न कार्यो

(३) गुग्गुलुना कामयमानेन ॥ इति ।

(१) एवमाश्रयोधिरप्रायितमपार्थक समागमनं प्राप्तकालमिच्छतोः—

७५—

(अ) रजनीव्यपयानमूचको

(आ) नृपतेर्दुन्दुभिपारिपार्श्वक ।

(इ) अपटन् स्तुतिमगलान्वल

(ई) स हि घण्टामभिहत्य घाण्टिक ॥

(१) ततस्तेनैव दक्षिणेनैव सुहृदा तस्मात् संकटात् परिमोचिता कामिना सत्रीव मुहूर्तमनुगम्य प्रेषिता । (२) रघुहमागता च रयया च सुखप्राप्तिनराभिधानेनो-
पहतिताऽस्मि । (३) तदेतत्ते सर्वमशेषतः धयितम् । (४) अहमिदानीं मिथ्याप्रजागर
दिवास्वप्नेनापनेप्यामीत्युक्त्वा मयाऽनुज्ञाता । (५) तदनन्तरागतेन स्वामिनाऽप्येत
“द्वुत्तम्” इति । (६) तेन हानेनैव परिहासपञ्चनेन तत्रभवत् शिवदत्तस्य पुत्र शिव-
स्वामिनः पुरपटभगम्भीरकीर्तिसागरमवगाहिष्ये । (७) पश्यतु भवती—

मारता है, तो कामियो को गुग्गुलु का धूप का भी सेवन न करना चाहिए ।

इम तरह हम दोनों के चिर अभिलषित मुरत के असफल हो जाने पर हम दोनों सोच रहे थे कि अब क्या करें कि—

७५—रात बीतने की सूचना देने वाले राजा के नगाड़ची (दुन्दुभि पारि-
पार्श्वक) घड़ियाली ने जोर से घटा बजा कर स्तुति मगल पढ़ा ।

अनुदु मित्र के समान उसने उस संकट से मुझे छुड़ा दिया । तब वह
कामी लज्जा से मुहूर्त भर साथ आकर मुझे छोड़ गया । जब मैं अपने घर लौट
आई उसी समय कुशल प्रश्न लेने वाला दूत भेजकर तुम्हें मानों मेरी हँसी उड़ाई ।
तो मैंने तुम्हें यह पूरा व्यौरा कह दिया । अब मैं उस व्यर्थ के रतजगे को दिन
में सोकर दूर धरूँगी । उसके यह कहने पर मैंने उसे बिदा दी । इसके बाद आए
हुए आपने भी यह सन् सुन लिया ।” तो महाशय शिवदत्त के पुत्र इस शिवस्वामी
ने अपने पुरपट का जो झूठा यक्षरूपी गहरा समुद्र रच रक्खा है उसकी थाह
मजाक के जहाज से लेंगा । तु देख—

७५ (आ) दुन्दुभिपारिपार्श्वक = दुन्दुभि या नीयत का बड़ा नगाड़ा बजाने
पर नियुक्त सेवक । पारिपार्श्वक = सेवक । परिपार्श्व पार्श्व व्याप्य वर्तते, पारि
पार्श्वक । यह अधिकारी घाण्टिक भी कहलाता था और प्रातःकाल राजा के उठने की सूचना
देने के लिये घड़ियाल बजाकर स्तुति मगल का पाठ करता था । राजा प्रबोधसमये घण्टा
शिरापास्त घाण्टिका (शिरस्वामी) । घाण्टिक को हा पहले वाक्त्रिक भी कहा है
(पा० ५ (६)) ।

७५ (६) पुरपटभ—रामकृष्ण कवि के संस्करण से यही पाठ यहाँ रक्खा है,
पर पुरुपटभ शुद्ध पाठ होना चाहिए ।

७६—

(अ) यो गुग्गुलं पिवति मेदसि सम्प्रवृद्धे

(आ) तस्य क्षयं व्रजति चण्ड्यचिरेण मेदः ।

(इ) स्त्रीणां भवत्यथ स यौवनशालिनीनां

(ई) आलेख्ययक्ष इव दर्शनमात्ररम्यः ॥

(१) एषा ग्रहस्योत्पिता—यास्यामि—इति । (२) भवतु, अलमजलिना ।
 (३) इतो वयम् । (४) (परिक्रम्य)

(५) किं नु खल्विमान्युद्गण्डपुरण्डरीकजनपण्डशोभानुकारीएयुद्ग्रीववदनपण्डरीकाणि विस्मयवितताक्षमालाशवलानि (६) उरसि निहितवरपल्लवान्यन्योन्यसङ्गापरिवृत्तकानि (७) निवृत्तकन्दुकपिच्छोलाकृतकपुत्रक दुहितृकाकीडनकानि (८) वेशरथ्यायाः प्रतिभवनच्छायासु वेशकन्याकावृन्दकान्यवलोकयन्ति ? (९) अये किं नु खल्विदम्—

७६— हे चडि, चर्ची बढने पर जो गुग्गुल पीता है उसकी चर्ची जल्दी ही घट जाती है और वह जवान स्त्रियों के लिये चित्रलिखित (आलेख्य) यक्ष की तरह, केवल देखने में ही खूबसूरत रह जाता है ।

वह हँसर उठी—‘मै अब जाऊँगी ।’ अरे, प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं । मै भी चला । (घूमकर)

सनाल कमलों के झुरमुट के समान जिनकी शोभा है, जो मुखरुमलयुक्त अपनी ग्रीवा ऊपर उठाए हुई है, जिनकी शबलित चितवर्ण खुली हुई है, जो छाती पर हाथ रखे हुए एक दूसरे को लौटने का इशारा कर रही है, और जो गेंद, पिच्छोला बाजा, गुड्डे-गुडिया और सिलौनों के खेल से छुट्टी पाकर वेदों की गली में भवनो की छाया में खड़ी है, ऐसी वेशकन्याओं का समूह यह क्या देख रहा है ? अरे, यह क्या है ?

७६ (ई) आलेख्ययक्ष—गुप्तकालीन चित्रों में वक्षमूर्तियाँ अंकित की जाती थीं, यह इसका प्रमाण है ।

७६ (६) सङ्गा = दशारा । परिवृत्तक = लौटाना ।

७६ (७) यहाँ कन्याओं के चार खेल दिए हैं । उनमें पिच्छोला या मुँह से वज्राने का यात्रा भी है जिसका उल्लेख पहले आ चुका है (पाद० ५० (६), ५२-इ) । रामकृष्ण कवि ने तीन जगह पिच्छोला, पिच्छोला, पिच्छोला तीन रूप दिए हैं, पर शुद्धरूप पिच्छोला ही था ।

७६ (७) कृतकपुत्रकदुहितृका = गुड्डे-गुडिया ।

७७—

(अ) अरञ्जरमिदं लुठत्यय इति समाहृत्यते

(आ) कनन्धमिदमुत्थितं व्रजति किं कुमूलद्वयम् ।

(इ) भवेत् किमिदमद्भुतं भवतु साम्प्रतं लक्षितं

✓ (ई) तदेतदुपगुप्तमनगुदरं समुत्सर्पति ॥

(१) भोः सुष्ठु सल्लिदमुच्यते धूर्तपरिपत्सु—

७८—

✓ (अ) वरभोगेर्गुप्तगलो

(आ) हरिदृष्णाः कृष्णा एव वनमेवः :

७७—यह बड़ा कुड़ा लुठकता आ रहा है, या कोई मशरू घसीटता ला रहा है; या कनन्ध उठ कर खड़ा हो गया है, या दो कुठले चल रहे हैं,—यह कौन सी अचरज भरी वस्तु है ? अच्छा अब समझ में आया—यह तो उपगुप्त का तुदिल शरीर रंगता आ रहा है ।

(इमकी हुलिया देवकर लगता है कि) धूर्त मण्डली में आवाजकरी टीक ही होती है—

७८—छिपाकर सरकारी माल गटकने वाला कोतल-गर्दन हरिकृष्ण काला

७७ (अ) मोटे उपगुप्त की हुलिया अरञ्जर, इति, कनन्ध और कुमूल जैसी कही गई है । अरञ्जर = बड़ाकुम्भ, बड़ा घड़ा, गोल । अमरकोश के अनुसार इसका शुद्ध रूप अलिञ्जर था (अलिञ्जर स्यान् मणिकम्) । अरञ्जर, अरञ्जर उसी के रूप भेद हैं । अलि = छोटे शराब । जिस समय पड़े पड़े बनते थे कुम्हार के घर की सब मिट्टी उन्हीं में लग जाती थी, और छोटे शकोरे न बन पाते थे, इसलिए उसे 'अलिञ्जर' कहा गया (अलीन् जरपति) । नालन्दा, सारनाथ, काशीपुर आदि की खुदाई में अलिञ्जर जैसे महाकुम्भ प्राप्त हुए हैं (दे० हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अभ्ययन, ६० २०४, टिप्पणा) ।

७७ (आ) कुमूलद्वयम्—दो कुठले । फूली हुई दोनों रानों का उपमान है । अलिञ्जर तिर का, इति पेठ का, कनन्ध छाती का और कुमूलद्वय रोंगों का उपमान है ।

७७ (१) धूर्त परिपत्सु—इस सुग का बिट गोहिया में बेईमान सरकारी अफसरों का सदीक हिजो उतारती जाती थी । इन श्लोको को पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है ।

७८ (अ) वरभोगे—सरकारी लगान क भोग या हजम करने से । भोग उन गुजारे की भूमियों की भी कहते थे जो राज्य की ओर से सेवा पुरस्कार के रूप में दी जाती थीं । दुष्ट अधिकारी उन माफियों में काफ कपट करके माल चोर जाते थे । क्षेमेन्द्र ने भी देशोपदेश नर्ममाला में इसकी शिकायत की है ।

७८ (आ) गुप्तगल—जिसकी गर्दन नहीं के बराबर है, जिसे आजकल कोतल गर्दन कहते हैं । उद्गम यह है कि राज्य का माल छिपाकर खाने के लिये हरिकृष्ण ने अपना गल ही गुप्त कर रक्खा है कि कोई देख न ले । या सरकारी माल खाते-खाते उसकी गर्दन घिसकर गायब हो गई है । वह जगली कालो मेंदा जैसा लगता है ।

(३) गोमहिषो हरिमूर्ति

(६) दत्तिगुप्तोऽनिलाध्यात ॥ इति ।

(१) कथं तु तावदिमं सा तपस्विनी गङ्गायमुनयोश्चामरग्राहिणी पुस्तकवाचिका मदन्यन्ती प्रियवयस्य नस्तत्रभवन्त त्रैविद्यवृद्ध पुस्तकवाचकमुत्सृज्योपगुप्तमनुरक्ता ? (२) तथा चास्य कोमलाभ्या भुजाभ्या परिप्लव्यते । (३) अथवा न तस्या परिप्लव्णेन प्रयोजनम् । (४) सा हि तपस्विनी निवृत्तकामतन्या रजोपरोधात् केवल कुटुंबतन्त्रार्थं शब्दकाममनुवर्तते । (५) गम्यश्चायमस्या । (६) 'अप्रुमान् शब्दकाम' इति दाक्षकीया । (७) (विलोप्य) (८) किञ्च तावदयमाविग्न इय । (९) आ ज्ञातम् ।

जगली मेंढा है । हरिमूर्ति पूरा भैसा है और दत्तिगुप्त हवा से फूली मशक है ।

यह क्या बात है कि वह बेचारी गंगा यमुना की चामर ग्राहिणी पुस्तक वाचिका मदन्यन्ती हमारे प्रियमित्र उस त्रैविद्यवृद्ध पुस्तकवाचक को छोड़कर उपगुप्त में अनुरक्त हो गई ? वह तो अपनी कोमल भुजाओं से उसका बैसा आलिंगन किया करता था । पर उस बेचारी को आलिंगन में कोई मजा नहीं । वह रज प्रवाह सूख जाने के कारण कामतन से रहित हो चुकी है । अब केवल कुटुम्ब पालने के लिये बातचीत से चुहलबाजी करती है । उसके लिए यह ठीक है । दत्तक के अनुयायी कहते हैं—पुस्तक शक्ति से रीता व्यक्ति बातचीत से ही काम निरालना चाहता है । (देखकर) यह क्यों कुछ उद्विग्न सा मालूम पड़ता है ? हाँ, समझ गया ।

७८ (३) गोमहिष = नरभैंसा ।

७८ (६) दत्तिगुप्त—यह भी निन्दित नाम है जो मशक की तरह फूल जाने के कारण पड़ गया है ।

७८ (१) गङ्गायमुनयोश्चामरग्राहिणी—गंगा यमुना के मन्दिर में चामर ग्राहिणी का कार्य करनेवाला । गुप्तकाल में गंगा यमुना सङ्ग नदा देवताओं के मन्दिर बनने लगे थे । इलौरा के कैलास मन्दिर के एक भाग में ऐसा मन्दिर है । खैबर ढालना गंगा यमुना की मूर्तियाँ की विशेषता थी (मूर्तें च गङ्गायमुने तदानी सचामरे देवसेविपाताम्, कुमार सम्भव, ७ । ४२) ।

७८ (१) पुस्तकवाचक—गुप्तकालीन समाज में इनका विशेष स्थान था । बाण ने अपने मित्रों का सूची में पुस्तक वाचक मुद्रि का उल्लेख किया है जो मधुर कठ से उसके लिये वायुपुराण वाचता था (हर्ष ४० ८५) ।

७८ (६) दाक्षकीया—दत्तक आचार्य के शिष्य । द्वाहाने वेश पर कोई ग्रन्थ लिखा था, ऐसा बास्यायन से ज्ञात होता है ।

(१०) तस्या एव मात्रा पणार्थमधिकरणायादृष्यत इति वेशे मयोपलब्धम् ।
 (११) यतः श्वन्ना सह इतविवादेनानेन भवितव्यम् । (१२) महदिद परिहासवस्तु ।
 (१३) न शक्यमस्यातिक्रमणादात्मान वञ्चितुम् । (१४) यावदेनमुपसर्पामि ।
 (१५) (उपेत्य) (१६) हण्डे वेशवीथीयज्ञ कुतो भवान् । (१७) एष पादचार-
 सेदात् काकोच्छ्वासश्चमविपमिताक्षरं—अयमञ्जलि—इत्युक्ता स्थितः । (१८) स्वस्ति
 भवते । (१९) किं वरीपि—“एष सलु तथा वृद्धपुरुषल्या सह विवादार्थं गत्वा कुमार-
 मात्याधिकरणादागच्छामि” इति । (२०) कथं भवन्त जयेन वर्धयामः, (२१) उता-
 होस्वित् दण्डसाहाय्येन सम्भाषयामः ? (२२) किमाह भवान्—“कुतो जयदण्डाभ्या
 सह सयोगः केरल वलेशोऽनुभूयते” इति । (२३) कस्मात् ? (२४) किं वरीपि—

उसकी माता ने रक्म के लिए उसे अधिकरण में घसीटा है, ऐसा मुझे
 वेश में पता लगा है । तो सास के साथ इसका विवाद हुआ है । यह बड़े मजे
 की बात है । मैं उसमें बचकर अपने को घाटे में रखना नहीं चाहता । उसके पास
 चलूँ । (पास पहुँचकर) अरे जनानिप (हंडे), वेशवीथी के यज्ञ, तू यहाँ कहीं ?
 वृद्ध पैदल चलने से थोड़े में ही थककर हँफता हुआ (काकोच्छ्वास) लड़खड़ाते
 स्वर से प्रणाम करके खड़ा हो गया । तेरा कल्पण हो । क्या कहता है—“उस
 बुढ़ी हरजाई के साथ विवाद के लिये जाकर कुमारामात्य के अधिकरण से आ
 रहा हूँ ।” तो क्या तुझे जीत की बधाई दूँ, या जुरमाने की रक्म अदा करने में
 सहायता पहुँचाऊँ । तूने क्या कहा—“जय और दण्ड के साथ कहीं में ? केवल
 कलेस हाथ लगा है ।” क्यों ? क्या कहता है—

७८ (१०) मात्रा—बेरवा की माता, खाला जिसे मेरी की ‘रवधू’ भी कहा
 गया है ।

७८ (११) इतविवाद—जिसने विवाद या मुकद्दमा कर दिया है । ‘विवाद’
 अदालत का पारिभाषिक शब्द है । ७७ (१६) में भा यहाँ अर्थ है ।

७८ (१७) काकोच्छ्वास—उथली हूँ सीस ।

७८ (१९) कुमारामात्याधिकरण—अधिकरण = अदालत, न्यायालय । कुमार
 माय—गुप्त शासन में एक पदवी (टाइटिल) जो मंत्रिपरिषद् के सदस्य, महादंडनायक,
 विपक्षपति आदि सम्मानित व्यक्तियों को दी जाता थी । साम्प्रतिक महादंडनायक हरिपेण
 को तथा कोटिवर्ष विपक्ष के अग्रपति को कुमारामान्य कहा गया है ।

७८ (२१) जय = मुकद्दमे का अपने पक्ष में निर्णय । दण्ड = यहाँ अर्थ दण्ड
 से तात्पर्य है ।

- ७६— (अ) प्रप्याति विष्णुदासो
 (आ) मात्रा किल तजितोऽस्मि कोङ्केन ।
 (इ) द्राक्तेनाभिहतोऽह
 (ई) फोशति विष्णुः स्वपिति चान् ॥

(?) अपि च—

- ८०— (अ) मृगयन्ते तदधिकृता
 (आ) मृगयन्ते पुस्तकालकायस्थाः ।
 (इ) काष्ठक्रमहत्तरेरपि
 (ई) विधृतोऽस्मि चिरं मृगयमाणैः ॥

(?) अपि च ततो गयावधृतम्—

७९—अधिकरण का यह हाल है कि वहाँ विष्णुदास जैसे ध्यान लगाता है, उसके भाई कोंक ने (वसूलने के लिये) मुझे डरवाया था और अभी अभी मुझे पिटा चुका है। विष्णुदास उल्टे मुझे ही डपटता है और अधिकरण में बैठा हुआ ऊँघता है।

और भी—

८०—वहाँ के अधिकारी (घूस) मोंगते हैं। पुस्तपाल और कायस्थ भी मोंगते ही मोंगते हैं। काष्ठ महरों (कचहरी के प्यादों) ने भी देर तक मोंगने के बाद अब मुझे पकड़ ही लिया है।

वहाँ से मुझे यह अनुभव हुआ—

७६ (अ) प्रप्याति—(१) मामले का विचार करता है ; (२) ध्यान लगाता है। व्यंग्य यह है कि मामले पर विचार क्या करता है, ध्यान लगाने लगता है, गुमशुम बैठकर कुछ सुनता समझता नहीं। उस युग की कचहरियों में घोटाले का उल्लेख रलोक २५ में भी आया है।

८० (अ) मृगयन्ते—मृग धातु का एक अर्थ मागना भी है।

८० (आ) पुस्तपाल = सरकारी कार्यालय में कागज पत्र रखनेवाले विशेष अधिकारी, मुहाफिजखाने का अमला। कायस्थ = पेशकार या दफ्तर का मुख्य लेखनाधिकारी। काय (= सरकारी दफ्तर में) + स्थ (= रहनेवाला)। दामोदरपुर ताम्रपत्रलेख में पुस्तपाल और गुणैधर लेख में कायस्थ का उल्लेख आता है। एक एक अधिकरण में कई पुस्तपाल और कायस्थ होते थे।

८० (ई) काष्ठक्रमहत्तर—काष्ठ या लट्ट लिपि हुए महत्तर सज्जक अधिकारी। ये अदालती प्यादे या चपरासी जान पड़ते हैं। बाण ने हर्षचरित में कटक नामक सिपाहियों का उल्लेख किया है जो डंडा या लट्ट रखते थे (हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२६)।

(अ) गणिकायाः कायस्थान्

(आ) कायस्थेभ्यश्च निमृशतो गणिकाः ।

(इ) गणिकायै दातव्यं

(ई) रतिरपि तावद् भवत्यस्याम् ॥” इति ।

(१) दिष्टा कायस्थगुरादतीत भवन्तमक्षतं पश्यामि । (२) सर्वथा प्रति-
बुद्धोऽस्ति । (३) इदानीमियमाशीः—

८२—

(अ) क्लमधुरकम्पटी

(आ) शयने मदिरालसा सपदना च ।

(इ) वस्त्रापरवस्त्राभ्या-

(ई) मुपतिष्ठतु चारमुस्या त्वाम् ॥

(१) एष सतलघात महस्य प्रस्थितः । (२) इतो ययम् । (३) (परिक्रम्य)

(४) अयै अयमपरः—

८३—

(अ) सस्तेपङ्गेप्ताढकान् लाटभक्त्या

(आ) दरया चित्रान् कोऽयमायाति मत्तः ।

(इ) पिभान्ताक्षो गण्डविच्छिन्नहासो

(ई) वेशस्वर्गं किं हृतेऽयं प्रणिष्टः ॥

८१—गणिका और कायस्थ, कायस्थ और गणिका, इन दोनों पर विचार कर देखने से जान पड़ता है कि गणिका को ही धन देना अच्छा क्योंकि उससे मजा तो मिल जाता है ।

बधाई जो कायस्थ के जाल में फँसकर भी तुझे सज्जल बाहर आया हुआ देख रहा हूँ । तू पूरा उस्ताद है । मेरा यह आशीर्वाद ले—

८२—शयन पर सुन्दर मधुर स्वर से गुनगुनाती हुई मदिरालसा और सक्रामा मुस्य वेश्या वस्त्र और अपरवस्त्र मुद्रा में तेरी आवभगत करे ।

वह ताली पीट कर हँसता हुआ चला गया । मैं भी चहूँ । (धूमकर) अरे यह दूसरा कोई है—

८३—यह कौन मतवाला झुर्रियों पड़ी देह पर गुजराती भोंत का चित्र विचित्र खोर रचकर आ रहा है ? मटकती आँखों वाला, पिचके गालों से दबी हँसी वाला कौन किसलिये इस वेश रूपी स्वर्ग में आया है ?

८२ (इ) वस्त्रापरवस्त्राभ्याम्—(१) वस्त्र और अपरवस्त्र छन्द पढ़कर तेरा स्वागत करे, (२) मुँह सामने करके और मुँह घुमाकर जुम्बन देती हुई तेरी खातिर करे ।

८३ (अ) आढक=मुगन्धित मिट्टी (आप्ते संस्कृत कोश), गोपी चन्दन । लाटभक्त्या=गुजराती दण्ड की खोर ।

(१) भवतु, विज्ञातम्—

८४—

(अ) शर्करपालस्य गृहे

(आ) जातः कीरेण चर्मकारेण ।

(इ) एष खलु कीदृक्चेत्यां

(ई) पिशाचिकायां तृणपिशाचः ॥

(१) अपि च—

८५—

(अ) शर्करपालं पितरं

(आ) व्यपदिशति भ्रातरं च निरपेक्षम् ।

(इ) प्रायेण दौकुलेयाः

(ई) सहैव दम्भेन जायन्ते ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) भोः किं नु खलु पृच्छेयम् ?—(३) किमस्य वेश-
प्रवेशे प्रयोजनं—इति । (४) अये अयं जरद्विटो भट्टिर्विदत्त इत एवामिधर्तते । (५)
यावदेनं पृच्छामि । (६) अंधो, भट्टिर्विदत्त कश्चिज्जानीते भवानस्य पुरुषवेतालस्य वेश-
प्रवेशप्रयोजनम् ? (७) किं ब्रवीषि—“मयानेव जानीते” इति । (८) तदगच्छतु
भवान् । (९) (परिक्रम्य) (१०) कं नु खल्विदं पुरुषकान्तारावगाहध्वान्तं मनो
विनोदयेयम् । (१०) भवतु दृष्टम् ।

ठीक पता चल गया—

८४—यह शर्करपाल के घर में तृणपिशाच चर्मकार कीर से डाइन कोंक-
चेटी में पैदा हुआ पिछा है ।

और भी—

८५—यह शर्कर पाल को पिता और निरपेक्ष को भाई बताता है । प्रायः
हुकड़हे कुल के लोग पाखण्ड के साथ ही जनमते हैं ।

(धूमकर) अरे, इससे क्या पूछूँ ? देश में इसका क्या प्रयोजन है ?
अरे, यह घूड़ा विट भट्टिर्विदत्त इधर ही आ रहा है । तो इसी से पूछूँ । अरे,
भट्टिर्विदत्त, क्या तू इस पुरुष वेताल के चक्के में आने का मतलब जानता है ?
क्या कहता है—“आप ही जानें ।” तो फिर तू जा । (धूमकर) आदमियों के
इस बीहड़ में फँस जाने से थके हुए मन को कहाँ बहलाने ? ठीक समझ गया—

८५ (आ) निरपेक्ष—उपेक्षाविहारी बौद्ध उपासक जिसका उल्लेख पहले पाद०
६२ (२) में आ चुका है ।

- ८६— (अ) इदमपरं प्रियसुहृदः
 (आ) सुहृदभयादपितार्गलं भवनम् ।
 (इ) वेश्यासुरतविमर्दे—
 (ई) प्वकृतविरामस्य रामस्य ॥

(१) तत्कथं प्रविशामि । (२) (कर्णं दत्त्वा) ।

- ८७— (अ) यथा काञ्चीशब्दश्चरति विक्रलो नूपुररवैः
 ✓ (आ) यथा मुष्टधाघातः पतति वलयोद्घातपिशुनः ।
 (इ) यथा निश्शुक्लारं श्वसितमपि चान्तर्यहगतं
 (ई) ध्रुवं रामा रामं युवतिविपरीतं रमयति ॥

(१) तदलमिह प्रविष्टकेन । (२) कः सुरतरयाक्षभङ्गं करिष्यति ? (३) इतो वयम् । (४) (परिक्रम्य) (५) अये अपरः—

- ८८— (अ) दग्धः शाल्मलिवृक्षः
 (आ) कतिपयविटपागशेषतनुशास्तः ।
 (इ) कृष्णः कृशो विटवक्रो
 (ई) वेशनलिन्या मरुपिशाचः ॥

८६—यह मेरे प्रिय मित्र राम का घर है जो वेश्यारति से कभी विश्राम नहीं लेता और जो अपने मित्रों के आ जाने के डर से घर में व्योड़ा लगाए रहता है ।

तो कैसे भीतर जाऊँ ? (कान देकर)

८७—नूपुरों की शनकार से मिली हुई मेखन की शनशन आ रही है, कड़ो की खडखड़ाहट से मुक्के चलने का पता चल रहा है, घर के भीतर से आने लगी, मिस्रकतिरपें, ओत, उतराते, निश्शुक्लपर्वक, मलतारी, हैं, कि, गस्तनी, मरी, गस्तनी, साथ विपरीत रति रम रही है ।

तो यहाँ प्रवेश करना ठीक नहीं । कौन सुरत के रथ की चलती धुरी का भंग करे ? मैं भी चूँ । (धूमकर) अरे दूसरा—

८८—यह जला हुआ और फुनगी पर बची कुछ डाले वाला सेमल का पेड़ है, या कलूटा और लकलक विट रूपी बगुल है, या वेशरूपी पुष्करिणी को झुलसाने के लिए रेगिस्तानी भूत है ।

८७ (१) प्रविष्टक = प्रवेश ।

८८ (ई) वेशनलिनी = वेश रूपी कमल पुष्करिणी ।

(१) भवतु, विज्ञातम् । (२) एष हि सौपरस्तोहिडकोकि सूर्यनाग । (३) तत किमिहास्य प्रयोजनम् ? कथमेव मा दृष्ट्वैवोत्तरीयावगुण्डनेन मुष्मपनार्य कागदेवा यतनमपसव्य इत्या प्रस्थित । (५) भो यदा तावदय तृतीयेऽहनि बहि शिविके कुटङ्गा गारनिकेतनाभि पताकावेश्याभि सम्प्रयुक्तो (६) स्लच्छन्मन्वन्नेर्व्यवहारार्थं थावणिके रधिकरणमुपनीयमान (७) स्तुक्क्रीतिना चलदर्शकेन स्वामिनो मे विष्णो स्यात्पीति रिति इत्या इच्छात् प्रगोचित इति वयस्यविष्णुनागेन कथितम् । (८) तत्किमयमि दानीमस्माद्वेशससर्गात् प्रीडित इवात्मान परिहरति ।

ठीक, पता चला, यह सोपारा का तोडिकोकि सूर्यनाग है। इसका यहाँ क्या मतलब ? क्या यह मुझे देखकर उत्तरीय से मुँह ढक कर कामदेव के मन्दिर को दाहिने छोड़कर सड़क रहा है ? आज से तीसरे दिन पहिले बहि शिविक मुहल्ले में छप्पर पड़े हुए घरों (कुटङ्गागार) में रहने वाली पताका वेश्याजा (टकहिया) ने जब इसपर मुकदमा चलाया और स्लेच्छ एव शपथ थावणिक जब इसे मुकदमे के लिये अधिकरण में घसीट कर लाए, तो बलदर्शक स्तुक्क्रीति ने 'मेरे स्वामीविष्णु का यह साङ्ग है,' यह कह कर मुश्किल से इसे छुड़ाया था—ऐसा मित्र विष्णुनाग ने मुझसे कहा है। फिर जिसलिए यह अब वेश में आने से लज्जा कर अपने को छिपा रहा है ?

८८ (१) सौपर—सम्भवत सौरपारक का छोटा रूप था ।

८८ (५) बहि शिविक या (बहिशिविक)—उज्जयिनी के सिमा मुहल्ले का नाम जो सम्भवत शहर से बाहर महाकाष्ट शिव के मन्दिर के मार्ग में था । दे० पाद० ३३ (१) ।

८८ (५) कुटङ्गागार = छप्पर पड़े हुए सस्ते घर । कटुगरु = छप्पर, छप्पर का घर (भाजेश्वर)

८८ (५) पताकावेश्या—यह शब्द कोशा में नहीं है। हिन्दा में निह टकहिया पड़्या कहते हैं, उक्त अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। पताका वेश्याजा का यथार्थ वर्णन ११० ३३ में आया है जहाँ उन्हें 'वाक्यामात्रपण्या' कहा गया है।

८८ (५) सम्प्रयुक्त = अभियोग द्वारा त्रिवाद स्थान में लाया गया ।

८८ (६) थावणिक = अधिकरण में वाद प्रस्ताव का सुकारने वाला । यह भा नया शब्द है। थावण = धावणा सुकार ।

८८ (७) स्तुक्क्रीति—गुप्त वाक्यान्वय में निवृत्त एक अभिव्यक्ति ।

(६) (विचिन्त्य) (१०) पाथिवकुमारसन्निकर्ष एनमनया प्रवृत्त्या व्रीलयति । (११) आश्चर्यम् ? (१२) गुणवान् सत्तु गुणवता सन्निकर्षः (१३) यदयमपि नामैवं गुणामिमुसः । (१४) तन्न शस्यमेनमप्रत्यभिज्ञानेन सकामं कर्तुम् । (१५) यावदहमप्येनं प्रदक्षिणीकुर्वन्नाम संमुखीनमेनं परिहासावस्कन्देन हन्मि । (१६) (परिक्रम्य) (१७) एष मां प्रतिमुसमेवावलोक्य प्रतिहसितः । (१८) हरडे सूर्यनाग, किमयं वेशनवावतारोऽन्धकारवृत्तमिव सुहृदवक्षोपेण विफलीक्रियते ? (१९) किं ब्रवीषि—
“क इव ममेहार्थः ? (२०) अहं हि कारायामवरुद्धस्य मातुलस्य मौद्गल्यस्य पारश्वस्य हरिदत्तस्य पूर्वप्रणयिनीमकल्परूपामद्य चार्ता पृच्छंस्तेनैव प्रहितोऽस्मि । (२१) तं तु मां कथमप्ययगच्छति” इति । (२२) आश्चर्यमिदं हि—भरतः सुहृदव्यापारेषु स्वैर्य तस्याश्च वारमुत्थायाः पूर्वप्रणयिष्वापदगतैष्वपि प्रतिपत्तिश्च । (२३) अतश्चैना—

८६—

(अ) वर्णानुरूपोज्ज्वलचारुवेषां

(आ) लक्ष्मीमियालेख्यपटे निविष्टाम् ।

(इ) सापहयां कामिप् कामवन्तोऽ—

(ई) रूपा विरूपामपि कामयन्ते ॥

(सोचकर) राजकुमार के आश्चर्यवर्ती होने से इसे अपनी इस हरकत पर लज्जा आ रही है । आश्चर्य ! गुणवान का सान्निध्य भी गुणकारी होता है जिससे इस जैमा भी गुण की ओर खिंच गया । तो इससे बिना जान पहचान निकाले इसकी इच्छा पूरी न हो सकेगी । मैं भी दाहिनी ओर से कावा काटता हुआ अपने सामने पड़े हुए इसपर हँसी की मार से छपा मारूँ । (घूमकर) यह मुझे सामने देखकर हँसा । अरे जनानिए सूर्यनाग, क्यों दोस्त को बुत्ता देकर वेश में अपनी इस नई आमद को अँधेरे के नाच की तरह विफल कर रहा है ? क्या कहता है—“मेरे यहाँ आने का क्या मतलब ? मैं कारावास में बंद अपने मामा मौद्गल्य पारश्व हरिदत्त की पूर्व प्रणयिनी की बीमारी का हालचाल जानने के लिये यहाँ भेजा गया हूँ । तू कुल और समझता है ?” आश्चर्य है तेरी सुहृद के काम में स्थिरता और इस वारमुत्था के आपत्ति में पड़े पूर्व प्रणयी में आस्था ? तभी तो—

८९—जो वर्ण के अनुरूप उज्ज्वल वेष पहनती है, और कामियों से अपना भेद छिपाकर रखती है, ऐसी वेदया अरूप या विरूप भी हो, उसे चित्रपट में लिखित लक्ष्मी मूर्ति की तरह कामिजन पसन्द करते हैं ।

८८ (१५) परिहासावस्कन्देन = मज़ाक के सहसा आक्रमण से । दे० पद्म० १६ (२३) ।

८८ (२०) कारा = कारागृह, बन्दीगृह ।

८६ (आ) लक्ष्मी आलेख्यपट—पॉंचवी शती में लक्ष्मी जी के चित्रपट का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है ।

(१) किञ्च अतिदुष्करकारिणीञ्चैनामवगच्छामि । (२) कुतः ? (३) असंशयं
हि ता—

- ६०— (अ) कारानिरोधादधिकारगौरं
(आ) देवार्चनाजातकिणं ललाटे ।
(इ) आस्यं बृहच्छ्मश्रुविताननद्धं
(ई) कालास्थिनिर्मुग्गमिवावलेदि ॥

(१) किमाह भवान्—“अतएवास्माकमस्यामादरः” इति । (२) भवस्त्वेवम् ।
(३) सुहृदनुरक्तं भवन्तं स्थापयामो वयम् । (४) एष खलु—प्रसीदतु स्वामी—इति
पादमूलयोरुपगृह्णाति । (५) किं मवीषि—“नार्हति स्वामी ममैव वेशप्रवेशं कचिदपि
प्रकाशकृतुं” इति । (६) भो वयस्य कश्चन्द्रोदयं प्रकाशयति ? (७) ननु यदेव
मवास्तत्रभवत्या रूपदास्याः परिचारिकां कुब्जां प्रति वदधमदनानुरागः (८) तदैवेतस्मिन्
प्रदेशे उदकतैलबिन्दुवृत्त्या विकसितं यशः । (९) मा तावद् भोः—

- ६१— (अ) परिष्वक्ता वक्षः क्षिपति गडुना याति बृहता
(आ) त्रिके भुग्ना नेष्टे जघनमुपधातुं समदना ।

और भी, मैं उसे कठिन काम साधने वाली समझता हूँ । कैसे ? वेशक वह—
६०—कारा में बन्द होने पर भी जिसका रंग फीका नहीं पड़ा है, देवार्चन
से जिसके ललाट पर घटा पड़ा हुआ है, हल्की झालरदार दाढ़ी से जो ढका है,
ऐसे उसके मुख को वह पुराने हड्डी की तरह चचोरती है ।

तूने क्या कहा—“इसीलिए मैं उसका आदर करता हूँ ।” तेरा यह-
आदर ऐसा ही रहे । मैं तुझे अपने मित्र का सचा अनुरागी समझता हूँ । अरे,
यह ‘स्वामी कृपा कीजिए’ कह कर मेरे पैर पकड़ रहा है । क्या कहता है—
“मेरे वेश प्रवेश की बात आपको कहीं भी नहीं कहनी चाहिए ।” अरे मित्र,
चौदनी को कौन खिला सकता है ? जब से तूने रूपदासी की परिचारिका उस
धुबड़ी से सुहृदवत बाँधी है तभी से इस प्रदेश में पानी में तेल की बूँद की तरह
तेरा यश खिल गया है । ऐसा नहीं—

६१—आलिंगन करने पर वह अपने वक्ष को आगे बढ़ाती है तो पीछे
कूबड़ बढ़ जाता है । कमर के त्रिक भाग के टेढ़े होने से कामवती होकर भी वह

६० (ई) कालास्थि = पुराना मृगो हड्डी ।

६० (ई) निर्मुग्ग = टेढ़ा

६१ (अ) गडु = कूबड़ ।

६१ (आ) त्रिक—कमर का वह भाग जहाँ दोनों पृष्ठों के बीच में रोड की हड्डी
मिलती है । हिन्दी में इसे ‘तिरक’ कहते हैं ।

(६) सरूपा टिट्ठिम्या भवति शयिता या च शयने

(६) कथं त्वं ता कुञ्जामवनतमुसाञ्जा रमयसि ? ॥

(१) किं व्रजीपि—“शान्त पाप, शान्त पाप, प्रतिहतमनिष्टम् । (२) स्वागत मन्वारय्यानाय । (३) पश्यतु भगान्—

६२—

(अ) सनिभ्रान्तेर्याति करमललित या मकुरुते

(आ) मुहुविक्षिताभ्या जलमिव मुजाम्भ्या तरति या ।

(इ) मुसस्योत्तानत्वाद्गगन इव तारा गणयति

(ई) स्पृशेत् कस्ता प्राज्ञः वृमिजनितरोगामिव लताम् ॥”

(१) अहो धिक् नष्टमेव धर्मज्ञस्य भवतो न युक्तमुपयुक्तस्त्रीनिन्दा कर्तुम् । (२) अपि च—

६३—

(अ) यद्यपि वयस्यं कुञ्जा

(आ) नालीनलिका वृक्षा च गडुला च ।

अपने जघन भाग को आगे नहा ला सकती । पलग पर सोई हुई वह जिन्ही सी जान पड़ती है । कैसे तू नीचे मुख कमल वाली उस कुवड़ी के साथ रमण करता है ?

क्या कहता है—“अरे, पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । अनिष्ट दूर हो । आपकी इस सच्ची ध्याख्या का स्वागत करता हूँ । वृषया देखें—

६२—जब वह ठमक कर चलती है तो ऊँट की चाल से मिल जाती है । बार बार झूमते हाथों से वह पानी में तैरती सी जान पड़ती है । जब मुँह उठाती है तो आकाश के तारे गिनती हुई जान पड़ती है । कीड़ों से रोगी बनी रता की तरह उसे कौन बुद्धिमान छूना चाहेगा ?

अरे तू ख है । तेरे जैसे धर्मज के लिये यो अच्छी स्त्री की निन्दा करना ठीक नहीं । और भी—

६३—मित्र, यदि कुञ्जा सरकडे (नालीनलिका) की तरह पतली ओर कुवड़ी है फिर भी झूठे की प्रीति की तरह देखने में वह मुख से तो सुन्दर है ।

६१ (२) अन्वारय्याना = किसी मूल वाक्य का टीका रूप में पुनः कथन । आशय यह कि उसका जैसा बुलिया है आपने अपने वर्णन में उसका सटाक चित्र उतार दिया है ।

६३ (आ) नालीनलिकावृक्षा—गेहूँ की नाला या कमल का नाल की पोली नलकी की तरह दुबली पतली (बोलचाल का संस्कृत का सुन्दर मुहावरा) ।

(इ) असतामिव सम्प्रोति-

(ई) मुखरमणीया गवति यावत् ॥

(१) न चेयं ताम्योऽरण्यावासिनीभ्यः पताकावेश्याभ्यः पापीयसी । (२) किं वधीषि—“काम्यः” इति । (३) कथं न जानीषे—

६४—

(अ) यास्त्वं भक्ताः काकिणीमात्रपरयाः

(आ) नीचैर्गम्याः सोपचारेनियम्याः ।

(इ) लोभैश्छन्नं काममिच्छन् प्रसामं

(ई) कामोद्रेकात् कामिनीयांस्तरण्ये ॥

और फिर यह सिवानों पर रहने वाली पताकावेश्याओं से तो बुरी नहीं है । क्या कहता है—“किनसे ?” क्या नहीं जानता ?—

६४—जो मतवाली है, जिनका केवल एक काकिणी भाड़ा है, जो भीचों से सेवित है, जिन्हें कायदे कानून से मर्यादा में रखना पड़ता है, लोगों से छिपकर और चलवान् काम की इच्छा से तू उन टकहियों के पास बाहर जाकर मिलता है ।

६३ (इ) मुखरमणीया—(१) नीचे का शरीर चाहे टेढ़ा मेढ़ा है, मुँह तो सुन्दर है, जैसे असउन्न की प्रांति केवल ऊपर से सुहावनी पर भीतर से कुटिलाई लिए होती है, (२) सुपरति के योग्य ।

६३ (१) अरण्यावासिनी पताकावेश्या—इस वर्णन में और श्लो० ६३ में पताका वेश्याओं का सखा हाल दिया है । अरण्यावासिनी = जंगल में रहने वाली, अर्थात् वेशा में न रहकर नगर की सीमा से बाहर सिवानों में रहने वाली । इस स्थान को म० (५) में बहिर्गम्यिका कहा गया है । संभवतः पताकावेश्याओं की यह यस्ती महाकाल मन्दिर के आस पास वहीं थी ।

६४—इस श्लोक में पताका वेश्याओं की दुःख और कष्ट से युक्त असहाय दुरवस्था का करण चित्र गीठा गया है । शराब पीकर टके टके पर भीचों के हाथ शरीर बेचना, यह उनके पतन की पराकृष्टा थी ।

६४ (आ) सोपचारेनियम्याः—सोपचार शब्द दो कई अर्थ सम्भार्य है—उपचार = (१) वेशों की चिकित्सा । इस प्रकार के किमी नियन्त्रण में पताकावेश्याओं की संभारतः रक्ष्यता जाता था । (२) आचार सम्बन्धी नियम जिनका परिपालन उनके लिये आवश्यक था ।

६४ (इ) लोभैश्छन्नसाम—ऐसे पापकर्म जिन्हें प्रकट करने में शोक भी एता एता हो ।

(१) किं वशीपि—“कृतस्तयैतदुपलब्धं” इति । (२) सहसचक्षुषो वयमी-
दृशेपु प्रयोजनेषु । (३) अपि च पदात्पदमारोक्ष्यति भगवन्—

६५—

(अ) त्यक्त्वा रूपाजीवा

(आ) यस्त्वं कुञ्जा वयस्य कामयसे ।

(इ) कुञ्जामपि हि त्यक्त्वा

(ई) गन्ताऽसि स्वामिनीमस्याः ॥

(१) एष प्रहस्य प्रस्थितः । (२) इतो वयं साधयामः । (३) (परिक्रम्य)

(४) अये अयमपरः कः सिंहलिकाया मयूरसेनाया गृहान्निपत्य स्कन्धनिव्यस्त-

क्या फहता है—यह मन आपको फहो पना लगा ?” इस तरह की बातों का पता लगाने में मैं हजार ओंखों वाला हूँ । तू सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ता जायगा ?

६५—मित्र, रूपाजीवा को छोड़ कर जो तू कुबड़ी को चाहता है, कुञ्जा को भी छोड़कर, किसी दिन उसकी स्वामिनी के पास पहुँचैगा ।

येहै हँसकर चला गया । मैं भी चहूँ । (घूमकर)

अरे, यह दूसरा कौन है जो सिंहल द्वीप की मयूरसेना के घर से निकल

६५ (अ) रूपाजीवा—एक विशेष प्रकार की वन्यखी जो कुम्भदासी से ऊपर की कोटि की मानी जाती थी । जयमंगला के अनुसार रूपाजीवा में केवल रूप होता था, कलाएँ नहीं । बिट का ध्येय है कि रूपाजीवा के रूप का मोह छोड़ कर तू कुञ्जा पर रीक गया जिसमें रूप भी नहीं । विभिन्न वेश्याओं की व्याख्या भूमिका में मोतीचन्द्र जी ने की है ।

६५ (इ) कुञ्जा—कुबड़ी, (ध्येयार्थ) अष्टवर्षा कन्या । रुद्रयामलसन्त्र तथा अन्य सन्त्रों में एक वर्ष से सोलह वर्ष तक की आयु को वन्याओं की संज्ञाएँ बताते हुए अष्टवर्षा कन्या को कुञ्जिका कहा है (सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा च कुञ्जिका, रुद्रयामल तंत्र, पटल ६, श्लो० ६४) । सोलह वर्ष की आयु होने पर वह अग्निका कही जाती थी । बिट का इशारा इसी तरफ है कि रूपाजीवा वेश्या को छोड़ कर तू जो कुञ्जा को चाहने लगा है, तो तुमारी पूजन के इसी मार्ग पर बढ़ते हुए किसी दिन कुञ्जा से आगे पौष्टशी अग्निका तक पहुँच जायगा । तुमारी पूजन के अन्तर्गत कुञ्जिका पूजन के लिये दे० देवी भागवत २।२६।४०-४३, अग्निपुराण अ० १४३-१४४ ।

६५ (ई) स्वामिनी = (१) मालकिन, कुञ्जा दासी का प्रतिपालन करने वाली; (२) पार्वती, दुर्गा । शिव का एक पर्याय ईश्वर या स्वामी है, उसी से पार्वती या अग्निका ‘स्वामिनी’ हुई । तापर्य यह कि वेश्या की छोड़कर कुबड़ी से प्रेम करने का पुण्य फल तुम्हें यह मिलेगा कि सयम के मार्ग में पड़कर कुञ्जिका आदि के पूजन का मत निभाते हुए दुर्गापूजन तक पहुँच जायगा ।

६५ (४) सिंहलिका—सिंहल द्वीप वासिनी वेश्या जो उज्जयिनी के वेश में बैठती थी ।

वसनो निमलासिपाणिमिर्दक्षिणात्यै परिवृतो (५) भद्राङ्क विरलमुत्तरीयमाकर्षन्वान्ध्रक
काष्णायस निगसित कुङ्कुमानुरकच्छविस्ताम्बूलसमादानव्यथपाणिरित एवाभिवर्तते ।
(६) भयतु, दृष्टम् । (७) एष हि विदर्भरासी तलवरो हरिशूद्रः । (८) भो यदा
तावदय ता कावेरिकामनुरक्त इति ममैव तु समञ्च सपादपरिग्रहमनुनयन्नप्युक्तस्तथा—

६६—

(अ) तामेहि किं तत्र मया

(आ) ज्योत्स्ना यदि न इव दीपशिखयार्थ !

(इ) विरम सह सयहीतु

(ई) नित्वद्वयमेकहस्तेन ॥

(१) तत्कथमनेनेगमनुनीता भविष्यति ? (२) किमयमनुरक्तमपि त्यक्त्वाऽन्या
प्रकाश कामयते इति वेशप्रत्यक्षमात्मनो दौर्भाग्यमयशस्थमिति स्वयमेव प्रसन्ना । (३)
आहोस्वित् काम्यमान कामयन्ते स्त्रिय इति श्रीस्वामानादस्या सधर्ष उत्पन्न । (४)
उताहो परिच्ययाकशितया मानवानुनियुक्ता भविष्यति । (५) सर्वथा प्रक्ष्यामस्तावदेनम् ।
(६) (उपसृतकेनाञ्जलिं दृष्ट्वा) ।

फर डधर ही आ रहा है । इसके कंधे पर बल्ल है और यह चमकती तलवारें हाथ
में लिए हुए दक्षिणात्य अगरक्षको से घिरा हुआ है । यह अपना सुन्दर छपा हुआ
(भद्राङ्क) पसला मलमली (विरल) उत्तरीय समेटता हुआ आन्ध्र देश का बना
लोहे का कवच पहने है । इसके शरीर पर केसर की खीर है और हाथ में पान
का बीड़ा संभाल रहा है । ठीक, पता चल गया । यह विदर्भ देश का वासी तलवर
हरिशूद्र है । अरे, इसने कावेरी पर रीझ कर मेरे सामने उसके पैर पकड़े, तो खुशामद
करने पर भी उसने इसमें यो कहा—

९६—‘उसी के पास जा । मुझसे तुझे क्या मतलब ? जध चाँदनी खिली
है तो दिएप्रती की क्या जरूरत ? एक हाथ में दो नित्वकल एक साथ पकड़ने से
वाञ्छा आ ।’

तो वह इसके मनाने से कब मानेगी ? यह उस अनुरक्त को छोड़ कर
दूसरे को सुले आम क्यों चाहता है, इसका चकले भर को पता है । अपने दुर्भाग्य
और बटनामी पर यह प्रसन्न है । अथवा म्रियों चहेतो को चाहती हैं । इस स्त्री
मगमाव से मयूरसेना की टखर हुई है; अथवा खरचे की तगी पड़ने पर रसाल स्वयं
ही मयूरसेना को उसके वश में कर देगी । इससे मैं यह सब पहुँगा । (पास
पहुँच कर, हाथ जोड़कर)

६५ (५) भद्राङ्क = सुन्दर अंक या छापे वाला ।

६५ (५) विरल उत्तरीय = अतिरकानी मलमल का उत्तरीय ।

६५ (५) आन्ध्रक काष्णायस—आन्ध्र देश का बना हुआ लोहे का कवच ।

६५ (७) तलवर = एक महारण्य शासनाधिकारी जिसका उल्लेख गुप्तयुग में
मिलने लगता है । इसे तलार भी कहते थे । इसमें पद और कर्तव्या के विषय में कई
प्रकार के प्रमाण मिलते हैं ।

६७—

(अ) ता सुन्दरी दरीमि

(आ) सिंहस्य मनुष्यसिंह सिंहलिकाम् ।

(इ) युक्त भवता मोक्षुं

(ई) द्रमिलीसुरताभिलाषेण ॥

(१) किं व्रीषि—“अनुनीता मया मयूरसेना । (२) एष तस्या एष गृहा-
दागच्छामि” इति । (३) कथं कथमशौर्णप्रायः सन्धिरनुष्ठितः ? (४) किं
व्रीषि—“अथ नृतीयेऽहन्महमपि वेश्याध्यक्षप्रतिहारद्रौणिकगृहे प्रेक्षायामुपनिमन्त्रित-
(५) स्तत्र च मयूरसेनाया लास्यनारो युद्धिपूर्वक इत्यगच्छामि । (६) ततः प्रताडि
तेष्वातोद्येष देवतामङ्गल पूर्वमुपोह्य प्रस्तुते गीतके प्रनृताया नर्तक्या प्रथमस्तुन्यैव
मयूरसेनायाः सलु नृत्ते प्रयोगदोषा गृहीताः” इति । (७) मा तावद् भोः मयूरसेनायाः
सलु नृत्ते प्रयोगदोषा गृह्यन्त इति । (८) कस्यायमतटप्रपातः ?

९७—हे मनुष्यसिंह, जैमे सिंह अपनी गुफा को छोड़ देता है ऐसे
द्रमिल देश की कापेरिका के साथ सुरत की अभिलाषा से उस सुन्दरी सिंहलिका को
छोड़कर तूने ठीक ही किया ।

क्या कहता है—“मयूरसेना को मैंने मना लिया है । ‘इसलिए उसी के घर
से आ रहा हूँ ।’ बता, दृष्टा हुआ मेल फिर कैसे जुड़ा ? क्या कहता है—
“आज से तीन दिन पहले मैं वेश्याध्यक्ष प्रतिहार द्रौणिक के घर जलसे (प्रेक्षा)
में बुलाया गया था । जान पड़ता है कि वहाँ जान बूझकर मयूरसेना के नाच
की बारी (लाभ्यवार) लगाई थी । बाजे बजने के बाद पहले देवतामङ्गल हुआ ।
फिर गीतरु प्रस्तुत होने के साथ नर्तकी नृत्य का आरम्भ हुआ । तो पहले ही प्रदर्शन
में मयूरसेना के नृत्त में प्रयोग दोष देखे गए ।” अरे, हो नहीं सकता कि मयूरसेना
के नृत्त में प्रयोग दोष पकड़े जाएँ ।” अरे, ऐसा कहते हुए कौन सिर के
बल गिरा है ?

६७ (३) वेश्याध्यक्षप्रतिहार—वेश्याध्यक्ष भी राज्य का एक विशिष्ट अधिकारी
था जिसकी पदवी प्रतिहार के समरूप थी ।

६७ (३) प्रेक्षा—नाटक ।

६७ (५) नृत्त—नाचना ।

६७ (७) अतलप्रपात—सिर के बल गिरना ।

६७ (८) भगवत्या वारुण्या—भाषण यह है कि लासक उपचन्द्र ने सुरा के
नशे में मयूरसेना के नृत्त में दोष बता दिया । यद्यपि लासक होने के कारण वह इस विषय
का मामिक जानकारी भी था, पर प्राचिनक ने मयूरसेना का पक्ष ही ठीक माना ।

(६) किं ब्रवीषि—“भगवत्या वारुण्या” इति । (१०) युक्तं नित्यसन्निहिता भगवती सुरादेवी प्रतिहारगृहे । (११) अथ कमन्तरीकृत्वायं सुराविभ्रमः ? (१२) किं ब्रवीषि—“वयस्यमेव ते लासकमुपचन्द्रकम्” इति । (१३) किमु(मनु)पपन्नमायतनं हि स ईदृशानाम् । (१४) अपि तु सविषयस्तस्यैवः (१५) ततस्ततः । (१६) किं ब्रवीषि—“स चोपचन्द्रपक्षे ससर्वसामाजिकजनः मयाऽपिमयूरसेनायाः पक्षः परिगृहीतः” इति । (१७) साधु वयस्य देशकालौपयिकमनुष्ठितम् । (१८) ततस्ततः । (१९) किं ब्रवीषि—“ततो न तेषां बुद्धिं परिभवामि । (२०) अपरिभूता एव सदस्या आगम-प्रधानतया मे प्राश्निकानुमते प्रतिष्ठितः पक्षः इति । (२१) साधु वयस्यानन्यसाधारणेन पश्येन कीता तत्रभवती । (२२) ततस्ततः ।

(२३) किं ब्रवीषि—“ततः सर्वगणिकाजनप्रत्यक्षं दत्ते पारितोपिके मयूरसेनायाः स्मितपुरस्सरेणापाङ्गपातिना कटाक्षेण प्रसादित इवास्मि । (२४) कावेरिकायास्तु पुनरसूयापिशुनमुत्थाय गच्छन्त्या आकारेण बहूपालन्व इवास्मि । (२५) तयोश्च कोप-प्रसादयोश्च प्रत्यक्षतयोभयतटभ्रष्ट इव सन्देहस्रोतसा हियमाणस्तस्मात् सङ्कटात् कथ-ञ्चिदगृहानागतः । (२६) उपविष्टश्च काऽनयोः किं प्रतिपत्स्यत इति वितर्कडोला

क्या कहता है—“इसे महारानी वारुणी का पतन समझो ।” ठीक ही है । प्रतीहार के घर में भगवती सुरादेवी तो सदा रहती ही है । यह नशे का सल्लर किसके सिर चढ़ा ? क्या कहता है—“तेरे मित्र लासक उपचन्द्रक के ।” इसमें अनुचित क्या ? वह तो ऐसी बातों का अभ्यस्त ही है । लेकिन वह इस विषय का जानकार भी है । क्या कहता है—“उपचन्द्रक के पक्ष में सब सामाजिक जन थे । मैंने मयूरसेना का पक्ष लिया ।” शाबाश मित्र, तूने देशकाल के अनुसार ही काम किया । इसके बाद क्या हुआ ? क्या कहता है—“मैं बुद्धि से उन्हें नहीं हरा सका । सदस्यों के न मानने पर भी प्राश्निक की सम्मति में शास्त्रीय आधार पर नेता जहाँ ठीक उद्देश्य था, वहाँ नहीं पहुँचा, नई असाधारण क्षमताओं से उत्प्रेरित । तब फिर ?

क्या कहता है—“सब गणिकाओं के सामने जब मयूरसेना को पारितोपिक मिला तो उसने मुम्कराहट बिखेर कर टेढ़ी चितवन से मुझे प्रसन्न कर दिया । ईर्ष्या की जलन से उठकर जाती हुई कावेरिका ने मुँह बनाकर मानों मुझे ताना मारा । अब इन दोनों के कोप और प्रसाद के प्रकट हो जाने पर दोनों किनारों से चूके हुए की तरह सन्देह की धारा में बहता हुआ उस संकट से पार पाकर किसी तरह घर पहुँचा । इन दोनों में से कौन क्या करेगी, इस संशय के

६७ (११) लासक—बाण के मित्रों में भी एक लासक युवा था । वह पुरुर होता हुआ भी विषोचन मुकुमार हास्यवृत्त में अग्रगत होता था ।

वाहयामि । (२७) ततः सहसैव मे प्रियया समेत्य नेत्रे निमीलिते । (२८) ततो विहस्य मयोक्ता—

- ६८— (अ) नेत्रनिमीलननिपुणे
 (आ) कि ते हसितेन चोरि गूढेन ।
 (इ) सूचयति त्वां पाण्यो—
 (ई) रनन्यसाधारणः स्पर्शः ॥

(१) एवमुक्त्याऽनया सुरभितनिश्वाससूचितमदस्सलितक्षरमभिहितोऽहमाचक्ष्व मा काहम्' इति । (२) ततो मयोक्ता—

- ६९— (अ) 'रोमाञ्चकर्कशाभ्यां
 (आ) प्रत्युक्ताऽसि ननु मे कपोलाम्याम् ।
 (इ) यद्वदसि पुनर्मुग्धे
 (ई) स्तयमेवाचक्ष्व काहिमिति' ॥

(१) तत उन्मील्य मामुक्तवती (२) 'अनेनैव रोमाञ्चसंज्ञकेन कैतरेन अयं जन आरुध्यत' इत्युक्त्वा मा कपोले चुम्बित्वा प्रस्थिता । (३) ततो मयोक्ता—

- १००— (अ) 'चुम्बितेनेदमादाय
 (आ) हृदयं क्व गमिष्यसि ।
 (इ) चोरि पादाविमो मूर्च्छां
 (ई) धृती मे स्वीयतां ननु ॥'

(१) एवं चोक्ता शयनमुपगम्योपविष्टा । (२) ततो मयाऽस्याः स्वयं पादौ

झूल पर मैं बैठा हुआ झूलने लगा । इसके बाद एकाएक मेरी प्रिया ने आकर मेरी आँखें मूँद लीं । इस पर मैंने हँसकर कहा—

९८—आँखें मूँदने में निपुण है चोड़ि, छिपकर हँसने से क्या लाभ ? तेरे हाथों का अपना अनोखा स्पर्श तो तुझे प्रकट कर ही दे रहा है ।

मेरे ऐसा कहने पर महमहाती स्वासा छोड़ते हुए मदस्वलित अक्षरों से उसने कहा—'बता मैं कौन हूँ ?' तब मैंने कहा—

९९—रोमाञ्च से कठोर मेरे कपोलों ने तेरी बात का जवाब तो दे दिया । फिर भी मुग्धे यदि तू पूछती है तो तू ही बता 'तू कौन है' ?

तब मेरी आँखों पर से हाथ हटाकर उसने कहा—'इसी रोमाञ्च की ठग धिया से तो मुझे स्वीच लेता है । यह कह उसने चुम्मा भरा और चल दी । इसपर मैंने कहा—

१००—'चुम्बन के साथ हृदय जुराकर तू कहाँ चली ? चोड़ि, तेरे दोनों पैर मैं अपने मस्तक पर रखता हूँ । किसी तरह टहर ।'

मेरे ऐसा कहने पर वह शय्या पर जाकर बैठ गई । तब मैंने स्वयं उसके

प्रक्षालितौ । (३) अनया चास्म्युक्तं गृहीत पादम् । (४) एहीदानीं कित्वा सलसली' ति । (५) ततो निकोचमुकुलजालकेनेव मालतीलताविहसितेनैरुहस्तावलम्बितसरशान निरसना (६) पर्यङ्कावष्टनद्विगुणमध्यबाहुमुणालिकात्रिकपरिवर्तनसाचीकृतदर्शनीयतरा (७) तदानीं वेष्टमानमभ्यविषमवलिप्रनष्टनाभिमेण्डलप्रविषमोदितरोमराजि (८) एक-स्तनावगलितहाराऽप्राश्रितेतरस्तनकलशपाश्या (९) अवगलितकपोलपर्यस्तकुण्डलम-कराधिष्ठितविशेषकक्रान्ततरेणासपरावृत्तशोभिनाऽवस्थानेन लज्जाद्वितीया रतिरिव रूपिणी (१०) समुत्थितैकभ्रूलतिवेन कुवलयशवल जलमिवाकिरन्ती दृष्टिविक्षेपेण मासुवतवती 'यत्ते रोचते' इति ।

(११) ततोऽहमासङ्गमालेरयवर्णकपात्र गवाक्षादाक्षिप्य चरणनलिनरागायो पस्थितः । (१२) अथ यस्यालपतकन्यासविन्यस्तचक्षुरुक्षितपाप्पिगुल्फनूपुराधिष्ठि-

दोनों पैर धोए । उसने मुझसे कहा—'चरणामृत ले चुका । अब आ जा । सचमुच तू पूरा धूर्त है ?' इसके बाद मालती लता के खिले मुकुल जाल की तरह हँसी बखेर कर उसने सरसती हुई, फरधनी और साड़ी एक हाथ से थाम ली । पलंग पर शरीर घुमाने से दोहरी कमर और भुजा के साथ त्रिक भाग के मुड़ने से वह और अधिक सुन्दर लगने लगी । तब मध्य भाग के घूमने से उसकी त्रिवली ऊँची नीची हो गई और नाभि प्रदेश के छिप जाने से रोमावली टेढ़ी हो गई । उसका हार एक स्तन के ऊपर से और दूसरे स्तन कलश के बगल से झुकने लगा और कुडल के गाल पर आ छटकने से मकराकृति विशेषकर अधिक खिल उठा । यो तिरछे कंधे की मोड़-मुरक से लजीली बट कामभिया रति की तरह रूपवती बनकर एक ओर की भौह तान कर फटाक्षो से मानो जल पर नीले कमल बिठाती हुई मुझसे बोली—'ले अपनी मनचाही कर' ।

इसके बाद गवाक्ष मे से चित्र लिखने के लिये रगभरे पात्र और सुगन्धिन मिट्टी लेकर मैं उसके चरण कमल रगने के लिये तैयार हो गया । मित्र, जन मेरी

१०० (६) ताचीकृत—यहाँ भगवद्वि का पूरा विवरण दते हुए साचीकृत मुद्रा का वर्णन है ।

१०० (६) मध्य = मध्य भाग, कटिभाग ।

१०० (११) आसन्न = सुगन्धित मिट्टी; इसका हवन पोता फेर कर तब पैर पर आलते की रँगाई की जाती थी ।

१०० (११) आलेख्य वर्णनपात्र—चित्रकर्म में प्रयुक्त रंग की प्यालियों ।

१०० (१२) अलक्षकन्यासविन्यस्तचक्षुः—आलता रँगने का किया मेनेत्रलगाकर अपाङ्ग मीर्चा दृष्टि करन ।

१०० (१२) पाप्पि = पेशा । गुल्फ = टलने । सद्गन्धी धुन्के गुल्फी पुगाट पाणिगयोदय —भरन ।

तज्ज्ञाभागदाया' तस्या (१३) असंभुस्तत्वादनूरुयाहिणो मर्मरस्योपसंहारभङ्गाभोगानु-
कारिणः कौशयस्यासंयतत्वात् (१४) गजकलभदन्तदशनच्छदान्तरमिव कदलीगर्भमिव
चान्तरूमीक्षे । (१५) ईक्ष्णुश्चापोह्याविनीत चक्षुरसीत्युक्त्वा पादमाक्षिप्योरसि मा

दृष्टि आलता लगाने में लगी थी, तब उसने अपनी एड़ी, गुल्फ और नूपुर उठाते हुए जंघा ऊँची की तो उसकी जो कल्पदार रेशमी साड़ी थी और जो कोरी होने से अभी तक टॉग पर चिपकी न थी, अपने तहदार मोड़ के निशान पर मुड़ने के लिये सिमिट गई, और जवान हाथी के दाँतों के बीच के अधर की भोंति

१०० (१२) नूपुराधिष्ठित जङ्घा—पैर के गटाँ से ऊपर का भाग या पिंढली जहाँ नूपुर पहने जाते हैं । जंघा कांड = टाँगों से घुटने तक का भाग ।

१०० (१३) असंयुक्तत्वात्—न पहने जाने के कारण । रेशमी साड़ी अभी कोरी थी, अर्थात् पहली ही बार टटकी पहनी गई थी, अतएव उसके मौँड़ की कुरकुराहट जैसी की तैसी बनी थी । कुछ देर तक पहनने के बाद कलफ के मुरझाने से वस्त्र धन से चिमटने लगता है, वह बात अभी पैदा न हुई थी । इसे ही 'अनूरुयाहिणः' पद से कहा गया है—उसका कौशेय अभी 'ऊरग्राहो' या जाँघ से सटने वाला नहीं बना था ।

१०० (१३) मर्मरकौशेय = मर्मर शब्द करने वाली रेशमी साड़ी, जो मौँड़ या कलफ लगा कर धोई गई थी ।

१०० (१३) उपसंहारभङ्गाभोगानुकारिणः—इसमें चार शब्द हैं—(१) उप-संहार = वस्त्र की वह अवस्था जिसमें वह तह करके रखा जाय । (२) भग = तह (३) भाभोग = शिकन मोड़, तह की जगह पड़ी हुई शिकन या सलबट, ठीक मोड़ने की जगह बना हुआ निशान । (४) अनुकारी = उसी स्थिति को पुनः प्राप्त करने की प्रवृत्तिवाला, पुनः मोड़ की जगह सिमिट जाने वाला । विलकुल नया वस्त्र जब तक पहनने से छिचे नहीं उसमें तह के निशान बने रहते हैं और उन्हीं निशानों पर सरलता से फिर उसकी तह की जा सकती है ।

१०० (१३) असंयतत्वं—साड़ी का अपनी जगह से हट जाना । टॉग का घुटने से निचला भाग उठाने से वहाँ की साड़ी तह के मोड़ पर से सिमिट कर जाँघ के ऊपर की ओर सरक गई ।

१०० (१४) गजकलभदन्तदशनच्छदान्तरमिव—दन्त = हाथी के दो बाहरी दाँत जो नीनों जंघाओं के उपमान हैं । दशनच्छद = अधरोष्ठ । हाथी के लाल अधरोष्ठ को स्त्री के गुलांग का उपमान माना गया है । अन्तरूकम्—दोनों उरुदण्डों के बीच का भीतरी भाग ।

१०० (१४) कदली गर्भमिव = केले के भीतरी गांभे के समान रवेत रंग का । गोरी जाँघ के लिये कालिदास ने भी लगभग यही उपमान रक्खा है—वास्यत्यूरः सरस कदलीस्तम्भगीरश्चलत्वम् (मेघ० २।३३) ।

१०० (१५) ईक्ष्णु = दृष्टि या नेत्र । अपोल = हटाकर ।

ताडितवती । (१६) ततो रोमाञ्चकचर्कशत्वचा मयोस्ता 'नार्हसि मामसमातराग-
मन्नेष्टु' मिति । (१७) ततस्तथाऽहमुक्त- 'साधु खलु निमीलिताक्ष- समापयेन' मिति ।
(१८) ततस्तस्या लाक्षारस निमीलिताक्षोऽर्पयामि चरणाभ्यां सकचग्रहमधरोष्ठे गृहीतो
ऽस्मि । (१९) ततस्तथैव विवृतरोमाञ्च मा समभिधीक्ष्याशोकसमदोहलोऽसि नमो
ऽस्तु ते शाठ्याये त मा परिष्वज्य शयनमुपगता । (२०) ततः पर देवानां प्रिय एव
ज्ञास्यति" इति ।

(२१) यद्येवमर्हति भवानपि तोहिदकोकिविष्णुनागप्रायश्चित्तार्थं सन्निपतितान्
विटानुपस्थातुम् । (२२) किं व्रीषि— "शान्तमेतत् पुनरपि यदि शिरो मे तस्याश्च-
रणाकमलताडनेनानुगृह्येत तदेव मे प्रायश्चित्तम्" इति । (२३) यद्येव यमुनाहदनिलयो
यदुपतिचरणाङ्गितललाटो नागः कालिय इव वैनतेयस्यावध्य इदानीं सर्वविटानामसि ।

सुन्दर एव केले के गाभे की तरह श्वेत उसका भीतरी उरु भाग मुझे दिखाई पड़
गया । मेरी दृष्टि को हटाती हुई वह बोली— 'एसे समय जो चक्षु का समय चाहिए
वह तूने नहीं सीखा', और यह कह कर उसने पैर खींच कर मेरी छाती पर मारा ।
इससे मुझे रोमाच हो आया और कच की तरह कर्कश त्वचा युक्त होकर मैंने
कहा— 'राग पूरा किए बिना तो मुझे हटाना तुझे उचित नहीं ।' तब उसने कहा—
अच्छा, ओखें मींच कर राग पूरा कर ले ।' इसके बाद मैं ओखें मूँद कर उसके
पैरो में आलता लगाने लगा तो उसने मेरे बाल खींच कर मेरा अधर चूम लिया ।
इस पर मुझे उसी प्रकार रोमाचित देखकर बोली— 'तू अशोक के समान पांदाघात
से घृन्ता है; तेरी इस घाटता से मैं हारी ।' और यह कहती हुई मेरा आलिंगन
घरके सेज पर चली गई । फिर क्या हुआ, यह देवाना प्रिय ही समझ लें ।

यदि ऐसा है तो तू भी तौडिकोकि विष्णुनाग को प्रायश्चित्त बताने के
लिये ढकड़े हुए विटों की सेवा में उपस्थित हो । क्या कहता है— "हा, ऐसा
न कहें ! मेरे सिर को भी वह अपने चरणकमल के ताडन से अनुगृहीत करे, यही
मेरा प्रायश्चित्त है ।" यदि ऐसा है तो जैसे यमुना की दह में रहने वाला, कालिय

१०० (१६) असमातराग—(१) जिसका आलता राव लगाने का काम अभी
समाप्त नहीं हुआ, (२) जिसका रतिसागन्धी राग अभी पूरा नहीं हुआ ।

१०० (१७) निमीलिताक्ष—व्यजना से यहाँ दिवारति के लिये पक्ष शत की
ओर भी मनेत है ।

१०० (१९) अशोकसमदोहल—छाँ के चरणताडन से घृन्ने वाले अशोक की
भाँति कामेच्छा प्रयत्न करने वाला ।

१०० (२१) अर्हति उपस्थातुम्—व्यजना है कि उनके पास जाकर इस चरण-
ताडन का प्रायश्चित्त तू भी पूछ ।

१०० (२३) अवध्य = अपराजित ।

(२४) एष विहस्याममलिरिति प्रस्थितः । (२५) यादहमपि विटसमाज गच्छामि ।
 (२६) अहो तु सलु सुहृत्स्थायैरस्माभिरतीतमप्यहो न विज्ञातम् । (२७)
 सम्प्रति हि—

१०१— (अ) सोत्कण्ठैरिष गच्छतीति कमलमीलद्विरालोचिन
 (आ) प्रच्छाद्यैरधिरह्य वैश्मशिरारायुत्सार्यमाणोत्प ।
 (इ) तै. स्पृष्ट्वा चिरमुन्मुगीष स्मिण्णैरुद्यानशारासाम्,
 (ई) यात्यस्त वलभोरुपोतनयनैगजितरागो रवि ॥

(१) अपि चेदानीम्—

१०२— (अ) प्राप्तराग्रे गराक्षैः पतित सगरत्नै. सूच्यमानो विलालः
 (आ) प्राप्तादेभ्यो निवृत्तो व्रजति समुचिता वासयष्टि मयूरः ।

नाग कृष्ण के चरणों से मस्तक पर अन्तित होकर गरुड से अवश्य हो गया था, वेमे ही गुज पर भी किसी विट का वजन नहीं चल सकेगा। यह हाथ जोड़कर हँसना हुआ चला गया। अब मैं भी विट समाज में चलूँ। अरे, मित्रों के साथ बात चीत में बीते समय का भी पता न चला। अभी तो—

१०१—देखो यह सूर्य अस्त हो रहा है। निदा लेते हुए इसको मुँदते हुए कमल उत्कण्ठा से देख रहे हैं। झुटपुग अँगोरा घरो की चौदियों पर चढकर उनकी धूप को हटा रहा है। बगीचों की ऊपर उठी हुई शाखाओं का देरतक अपनी त्रिणों से स्पर्श करके सूर्य उन्हीं में टिपा जा रहा है। अटारी पर बैठे हुए कबूतर उसकी ओर देखते हुए उसकी लानी अपनी आँखों में भरे ले रहे हैं।

और भी इस समय—

१०२—पक्षियों की तेज चहचहाहट से सूचित बिडाल भी खिडकी से महल की चारदीवारी पर दृढ़ रहा है। मोर मकानों से हट कर अपने परिचित अङ्गु

१०१ (आ) प्रच्छाद्य = अधकार ।

१०१ (आ) उत्सार्यमाणोत्प — जिसकी धूप को अँधेरा हटा रहा है ।

१०१ (इ) त्रिणैः स्पृष्ट्वा = त्रिणों से देर तक छुँकर । त्रिण को कर भी कहते हैं । उद्यान शम्बाओं के साथ देर तक कर स्पर्श से रमकर सूर्य उन्हीं के भीतर विलान हुआ जा रहा है ।

१०१ (ई) वलमी कपोत — महल के ऊपर की अगरी (वलमा) में बसेरा लेनेवाले कबूतर । कपोत सूर्य का राग अपने नेत्रों में समेट रहे हैं । राग = प्रेम, लाली । कबूतर की लाल पुतलियाँ पर उत्प्रेक्षा है ।

१०२ (अ) सगरत्नैः विलालः — श्री राघवन ने मद्रास का प्रति देखकर यह शुद्ध पाठ मुझे सूचित किया है । रामकृष्ण कवि के संस्करण में 'खरकते सूच्यमानोपि लाल' यह अशुद्ध पाठ छपा है ।

(६) सान्ध्य पुष्पोपहार परिहरति मृगः स्थाण्डिले स्पृश्याम्
(६) तोयादुत्तीर्य चासौ भवनकमलिनीपेदिना याति हसः ॥

(१) (परिक्रम्य)

१०३—

(अ) एते प्रयान्ति घनता बलभीषु धूपाः

(आ) वैदूर्यरेणुव इत्योत्पतिता गवाक्षैः ।

(इ) रथ्यासु चैतमनगाढमुदग्रमेत्य

(ई) स्नानीदकौघमनुपट्चरणा भ्रमन्ति ॥

(१) अहो तु खल्विदानीमस्य समृद्धसिक्ताचक्षीर्णकुतुमप्रद्वाराजिरस्य (२)
आदोषिज्ञोपचारव्याप्यपरिचारकजनस्य (३) देशवयोविभवानुरूपालकारव्यापृतचारमुख्य-
जनस्य, (४) प्रचरितमदनदूतीसञ्चाररमणीयस्य, (५) प्रवृत्तमत्तविटविदग्धपरिहास-

(वासयष्टि) पर बसेरा ले रहा है । शयन के लिये ऊँघता हुआ हिरन चबूतरे पर
चढ़ाए हुए संध्या के फूलों को भी छोड़ रहा है । इस पानी से निकल कर भवन
पुष्करिणी के पास के चबूतरे पर आश्रय ले रहा है ।

(धूमकर)

१०३—भरोखों से निकल कर ऊपर महल की अटारियों में भरा हुआ
घना धुआँ उड़ती हुई बिल्लीरी धूलि सा जान पड़ता है । गलियों में ऊपर तक भरे
हुए सुगन्धित स्नान जलो पर भीरे मँडरा रहे हैं ।

अहो, इस समय वेश के महापथ की कैसी अपूर्व शोभा है ? इसके
बहिर्द्वार तोरण के बाहर का बड़ा अजिर झाड़ने बहारने के बाद छिड़काव से
सौंच दिया गया है और उसमें फूलों के ढेर सजा दिए गए हैं । परिचारक जन
संध्या के उपचारों में लगे हैं । देश, वय और विभव के अनुसार बेश्याएँ सिंगार-
पटार करने में लगी हैं । मदनदूतियों इधर उधर दुमकती हुई वेश को सोहावना बना

१०२ (ई) कमलिनी = कमलों की पुष्करिणी जिसे नलिनी भी कहते थे ।

१०२ (अ) धूप = महल के भीतर जलाई हुई धूपों का धुँआ ।

१०२ (आ) वैदूर्यरेणुव.—सानपर काटे जाते हुए बिल्लीरी खड पत्थर में से जो
भस्सी उड़कर छा जाती है उससे सटीक उपमा ली गई है ।

१०२ (इ) अवगाढ = भरा हुआ । उदग्र = ऊँचा, ऊपर तक ।

१०२ (१) समृद्ध—समाजनों या बहारी से स्वच्छ किए हुए ।

१०२ (१) सिक्क = जल के छिड़काव से सिंचित । अवकोर्ण कुसुम = साध्य पूजा
के उपहार पुष्प द्वार के सामने बाँही न बखेर कर छोटी छोटी ढेरियों (पुष्प प्रकर) के रूप
में सजाए जाते थे ।

१०२ (१) प्रद्वाराजिर—प्रद्वार और अजिर दोनों स्थापत्य के पारिभाषिक शब्द
हैं । प्रद्वार = यद्वा द्वार, जिसे बहिर्द्वार कहते थे । अजिर = प्रद्वार या यद्वा द्वार के बाहर की

रसान्तरस्य (६) स्नातानुलितपीतप्रतीतरुणजनावकीर्णचतुष्पथशृङ्गाटकस्य वेशमहा-
पथस्य पराश्रीः । (७) इह हि—

- १०४— (अ) एषा रीत्युपवेशिता गजधूरारुहमाणा शनैः
(आ) एतत् कमलवाहक प्रमदया द्वास्थ समारुहते ।
(इ) शिञ्जन्नूपुरमेतलामुपगहन् वेश्या चलत्कुण्डला
(ई) श्रोणीभारमपारयन्निव हयो गच्छत्यसौ धीरितम् ॥

(?) अपि चास्मिन्निमाः—

- १०५— (अ) मदीपस्त्वह्वरीजटिलचारुनातायना
(आ) मयूरगलमेचकैरनुसृतास्तमोभिः क्वचित् ।

रही है। मतवाले बिट चुटीली डिल्लगी के व्यंग्यों का मजा ले रहे हैं। नहा
धोकर, डन फुन्ले लगाकर, और पी पाकर हृष्ट सत्सजजन चौराहो (चतुष्पथ) और
तिराहो (शृङ्गाटक) पर निधुर रहे हैं। यहाँ पर—

१०४—सवारी के लिये बैठाई गई हथिनी अपनी पीठ पर चढ़ाते समय
धीरे से चिंघाडती है। द्वार पर खड़ी पालकी (कमलवाहक) में कोई स्त्री बैठ
रही है। नूपुर, मेखना की झनकार और हिलते हुए कुंडलों वाली वेश्या
के नितम्ब भार से दब कर घोडा मानो दुलकी ही चल पा रहा है।

और भी यहाँ पर—

१०५—कहीं भवन भित्तियों के गवाक्ष दीपक की किरणों के जाल से भरे
हैं। कहीं दीवारों पर मोर के गले की तरह नीला अन्धकार छा गया है। चूने से

ओर चौड़ी खुली जगह भजिर कहलाती थी। हर्षचरित में भी राजद्वार के बाहर के खुले मैदान
को 'भजिर' कहा गया है (दे० हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०४, चित्र फलक
२५)। इसे ही आगे १११, १२ में प्रद्वारागणक कहा है।

१०३ (६) प्रतीति = हृष्ट । रयाते हृष्टे प्रतीति — अमर ।

१०३ (६) चतुष्पथ = चौराहा । शृङ्गाटक = सिंघाड़े की आकृति का तिराहा,
तिरमुहानी ।

१०४ (आ) कमलवाहक—अमरकोश में इसका रूप कम्बलि-वाहक है (गन्त्री
कम्बलिवाहकम्, अमर २।८।५४) वही ठाक जान पड़ता है। पादनाडितकम् में दोनों बार
कम्बलिवाहक (श्लो० १०३, १०८) छपा है। इसके और साहित्यिक प्रयोग ढूँढने योग्य
हैं। कम्बलिन् = गलम्बल युक्त बैल । अतएव कम्बलि वाहक = गोरकट, या गोरध या
बहली की सवारी हुई, विरोध बहली तो खियों के लिये ही बनाई हुई बढिया सवारी
मानी जाती थी ।

१०४ (ई) धीरित = दुलकी चाल ।

(६) विभान्ति गृहभित्तयो नवसुधावदातान्तराः

(६) तमालहरितालपङ्कृतपत्रलेखा इव ॥

(?) (परिक्रम्य)

(?) सर्वथा रमणीयस्तावदयमुद्भिद्यमानचन्द्रसनाथ उत्सवः प्रदोपसंज्ञको जीव लोकस्य । (३) सम्प्रति हि एष भगवारचक्षुषा साधारणं रसायनं हसितमिव कुमुद-
वापीनामुदेति शीतरश्मिः । (४) य एषः—

१०६—

(अ) किं नीलोत्पलपत्रचक्रविवरैरग्येपि मा चुम्बितुं

(आ) न त्वा पर्यति रोहिणी कथय मे सन्त्यज्यता वेपथुः ।

(इ) मत्ताना मधुभाजनेष्वतिकथाः श्रोतुं सहासा इव

(ई) खीणा कुण्डलकोटिमिवकिरणचन्द्रः समुत्तिष्ठति ॥

टटकी छुही गई घर की दीवारें चढी सुहावनो लग रही है, मानों उन पर तमाल और हरिताल के पंक से पत्रावली को बल्लरियों रची गई हों ।

(घूगकर)

चन्द्रोदय की शोभा के साथ प्रदोप नामक यह सार्वजनिक उत्सव कैसा सुन्दर है ? अभी अभी भगवान् चन्द्र सबकी आँखों में रसायन डालते हुए और बापियों के कुमुद पुष्पों को हँसाते हुए आ रहे हैं ।

१०६—मध के चपक में अपना प्रतिबिम्ब डालकर नीलोत्पल के गोलपत्तों के बीच बीच में से क्या तू मेरा चुम्बन लेना चाहता है ? मुझे बता कि क्या तेरी रोहिणी प्रिया तुझे नहीं देखती ? सात्त्विक भाव जनित अपने शरीर का यह कम्प दूर कर । मतवाली स्त्रियों के मधुपान के समय की ये परिहास भरी कथाएँ सुनने के लिये मानो उदित हुआ चन्द्रमा उनके कुडलों की कोटि में अपना प्रति-
बिम्ब डाल रहा है ।

१०५ (ई) पङ्कृतपत्रलेखा इव—पत्रलेखा या पत्रावली रचना गुप्तकालीन कला की मनोहर विशेषता थी । बाण ने लिखा है कि पत्रलता को रक्षा विधायक माना जाता था । इसीलिये रानी विलासवती के सूतिकागृह की भित्तियों पर पत्रावली की बल्लरियों मौड़ी गई थी (भूतिलिखित पत्रलताकृत रक्षापरिक्षेपम्, काद० अनुच्छेद ११) ।

१०५ (२) प्रदोप उत्सव—ज्ञात होता है उज्जयिनी में भगवान् महाकाल से सम्बन्धित प्रदोपव्रत का उत्सव धूमधाम से मनाया जाता था ।

१०६ (अ) नीलोत्पलपत्रचक्रविवर—मधु चपक में नीलोत्पल कुतर कर डाले जाते थे । उनके बीच बीच में अपना प्रतिबिम्ब डालकर चन्द्रमा मानो पानासक स्त्रियों का चुम्बन करना चाहता है ।

१०६ (इ) अतिकथा—असम्प्रद बातें, गप्पाटक ।

१०६ (ई) कुण्डलकोटि मिवकिरणः—स्त्रियों के कुण्डलों में प्रतिबिम्बित चन्द्र माना उनकी बातें सुनने के लिये शान के पाल आया है ।

(?) (परिक्रम्य)

१०५—

- (अ) गायत्येपा धृत्य कान्तद्वितीया
 (आ) सुप्रभाणा स्पृश्यतेऽमौ निपञ्ची ।
 (इ) उद्ध्वा गोष्ठी पीयते पानमेतद्
 (ई) धर्म्यामेपु प्राप्तचन्द्रादयप ॥

१०६—

- (अ) निरचयति मयूरीदीं धिक्काम्भस्तु सतु
 (आ) निरुजति कदलीप रया प्रभादण्डराजी ।
 (इ) पुनरपि च सुधाभिर्गण्यन् सौधमाला
 (ई) क्षरति किमलयेभ्यो मौक्तिकानीन चन्द्र ॥

(?) (परिक्रम्य) (१) अहो तु सलु क्षीरोदेनेगोद्वेलप्रवृत्तिरीर्यमाण
 बीचिराशिना ज्योत्स्नासूतनेन पयसा प्रसर्पताऽनुगृहीत इव जीवतोरु । (२) सम्प्रति हि—

(घूमकर)

१०७—यहीं कोई अपने कान्त के साथ दुकेली बनी हुई मधुर स्वर में गा रही है । यहीं झनझरती हुई धीणा बज रही है । यहीं महला के कोठे पर चन्द्रोदय के समय गोठ बोंध कर शरान पी जा रही है ।

और इस समय मैं भगवान् चन्द्रमा—

१०८—यहीं अपनी किरणों से गृह दीर्घिकाओं के जलों में आरपार सेतु बोंध रहे हैं, यहीं कदली वृक्षा के झुरमुट में प्रविष्ट होती रश्मियों से अपनी ज्योत्स्ना के स्तम्भ जैसे रच रह हैं, यहीं पुती हुई सौध मालाओं को पुन अपनी रश्मि सुधाओं से रँग रहे हैं, यहीं किमलगा से बूँदा की झरझर वृष्टि करते हुए माना मोती बरसा रह है ।

(घूमकर) अहो, चन्द्रमा की किरणों से झरता हुआ चोंदनी रूपी जल झुन में घेसे भर रहा है मानो क्षीर सागर का जल वेला के बाहर उमड़ कर अपनी लहरें दूर तक फैला रहा हो । अभा तो—

१०७ (आ) प्रभाणा = बाणा का झनझर । बाणाया बवाणिते प्रादे प्रमाण प्रवणादय — नमर ।

१०८ (अ) दीर्घिकाम्भस्तु सतु — गृह दीर्घिकाओं के जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा का किरणें उनमें दोना किनारों को मिलान वाला रश्मिमय सेतु सा बनाता है ।

१०८ (आ) प्रभादण्डराजी — यह रूपना आतिशयाज से ला गई है । अँधेरा रात में छूटा हुई आतिशयाज के फूल स प्रभादण्ड का रचना का जाता है । कदगा वन पण्डा में चन्द्ररश्मियों वैसा दृश्य बना रहा है ।

१०८ (इ) गण्यन् = रँगता हुआ, छूँदता हुआ ।

१०६—

(अ) एते व्रजन्ति तुरगेश्च करेणुभिश्च
 (आ) कर्णरिथैरपि च कम्बलवाहकैश्च ।
 (इ) आलिङ्गिता युवतिभिर्भुदिता युवानो
 (ई) गन्धर्वसिद्धमिथुनानि विहायसीव ॥
 (?) (परिक्रम्य)

११०—

(अ) असावन्वारूढो मदललितचेष्टः प्रमदया
 (आ) परिप्लव्क्तः पृष्ठे निविडतरनिक्षिप्तकुचया ।
 (इ) परावृत्तश्नुम्बन् व्रजति दयितां यस्य तुरगो
 (ई) गृहानेपोऽभ्यासादनुपतति नोत्क्रामति पथः ॥

(१.) कश्च तावदयमस्मिन् चन्द्रातपेऽप्यन्धकार इव वर्तमानो वैशरथ्यायां गर्भगृह-
 भोगेन तिष्ठन् नैर्लज्यमाविष्करोति ? (२) आः ज्ञातम् । (३) एष सौराष्ट्रिकः शक-
 कुमारो जयन्तक इमां घटदासीं वर्वरिकामनुरक्तः । (४) किञ्च तावदनेनेतस्मात् सवै-
 श्यापत्तनाद्वेशवद्वेशवर्वयां गुणवत्त्वमवलोकितम् । (५) किञ्च तावत्—

१११—

(अ) अधिदेवतेय तमसः
 (आ) कृष्णा शुषला द्विजेषु चाक्षणीश्च ।

१०९—घोड़ों, हथिनियों, कर्णारिथों, और बहलियों (कम्बलवाहक) पर
 चढ़े हुए युवकजन युवतियों से आलिङ्गित और मृदित होते हुए आकाश में गन्धर्वों
 और सिद्धों के मिथुनों की तरह आ-जा रहे हैं ।

(धूमकर)

११०—नशे में ललित चेष्टाएँ करते हुए युवक को उसके पीछे घोड़े की
 पीठपर बैठी हुई प्रमदा कुचों से गाढालिङ्गन देती है, तो वह भी धूमकर प्यारी
 का ज़ुम्बन करता है । घोड़े को घर के मार्ग का ऐसा अभ्यास है कि वह सीधा
 चला जाता है, बहकता नहीं ।

यह कौन है जो चौदनी में भी अँधेरे की तरह वेश की गली में गर्भगृह के
 सगान भोग करता हुआ निर्लज्जता दिखा रहा है ? ठीक, पता चला । यह सौराष्ट्रिक
 शककुमार जयन्तक इस घटदासी वर्वरिका पर अनुरक्त है । उसने सारे वेश्यापत्तन
 में इसी वेश वर्वरी में कौन सा वेशोचित गुण देखा ? तो कुछ—

१११—अँधेरे की देवी की तरह, दाँतों से धौली, आँखों से काली, वह

१०६ (आ) कर्णरिथ—दे० द्वि० पा० श्लो० ३४ ।

१०६ (आ) कम्बलवाहक—दे० द्वि० पा० श्लो० १०३ ।

११० (इ) घटदासी = कुम्भदासी, विरुष्ट कोटि की चेरया ।

(३) असक्लशशाङ्कलेसे-

(३) व र्णरी वर्णरी भाति ॥

(१) अथवा सौराष्ट्रिण वानरा वर्णरा इत्येको राशि निम्नाश्रयम् । (२)
तथा हि—

११२—

(अ) धवलप्रतिमायामपि

(आ) वर्णरा सक्तचक्षुषो ह्यस्य ।

(इ) अलससरुपायदृष्टे

(ई) ज्योत्स्नापीय तमिलेन ॥

(१) तदलमयमस्य पन्था । (२) इतो वयम् । (३) (परिक्रम्य) (४)
इयमपरा का—

११३—

(अ) वर्णद्वयाननतलाधनतालपत्रा

(आ) वर्यतलग्नमणिर्मोक्तिरुहेमगुच्छा ।

(इ) कूर्पासकोत्करचितस्तनबाहुमूला

(ई) लाटी नितम्बपरिवृत्तदशान्तनीयी ॥

वर्णरी अष्टमी के चन्द्रमा से युक्त रात्रि जैसा लगती है ।

अथवा, सौराष्ट्र के लोग, बदर और वर्णर इन तीनों की रास एक ही है ।
तो इसमें क्या अचरज ?

११२—गोरी वर्णरी पर भी इससी ओखें लगी हैं तो इसकी अलसाई नशीली
ओखों से यह चौदनी भी अंधेरी की तरह जान पड़ती है ।

तो वस, इसका रास्ता यही समाप्त होता है । मैं बलूँ । (घूमकर) यह दूसरी
कौन है ?—

११३—इस लाटी के दोनों कानों में साने के तालपत्र लटकते हैं, चेणी
के अन्त में मणियों और मोतियों का हेमगुच्छ है, उसके कूर्पासक (चोली) से
स्तन और बाहुमूल ढके हैं और नीवी के छोर पर पहुँच रहे हैं ।

११२ (अ) तालपत्र = तालपर्ण, तरिवन ।

११३ (इ) कूर्पासक—स्त्रा के शरीर के ऊर्ध्व भाग को कसनेवाला चोला या
अँगिया । कूर्पासक तान प्रकार का होता था पूरा बहूँ का, आधा बाहूँ का और बिना बाहूँ
का । यहाँ बिना बाहूँ के कूर्पासक का उल्लेख है क्योंकि उससे सामने का छाता और
केवल बाहुमूल ढके हैं । (कूर्पासक के वर्णन और चित्रा के लिये दे० हृषचरित एक सारक
तिक अध्ययन, पृ० १५३, चित्रफलक २०, चित्र ७१) ।

(१) (विचार्य) (२) मयतु विज्ञातम् । (३) एषा हि सा राका राज्ञः स्या-
लमाभीलकं मयूरकुमारं मयूरमिवनृत्यन्तमालिङ्गन्ती चन्द्रशालाग्रे वेशवीथ्यामात्मनः
सौभाग्यं प्रकाशयति । (४) अयमपि चार्जवेनानया तपस्वी कीत इव ।

११४—

(अ) अपि च मयूरकुमारं

(आ) गौरी कृष्णमतिदुर्वलं स्थूला ।

(इ) स्वमिव प्रच्छायाग्रक—

(ई) मुरसि विलग्नं वहत्येषा ॥

(१) (परिक्रम्य) (२) इयमपरा का ? (३) (विचार्य) (४) इयं हि सा
तत्रभवतः सुगृहीतनाम्नः शार्दूलवर्मणः पुत्रस्य नः प्रियवयस्यस्य वराहदासस्य प्रियतमा
यवनी कर्पूरतुरिष्ठा नाम (५) प्रतिचन्द्राभिमुखं मधुनः कास्यमङ्गुलित्रयेण धारयन्ती

(सोच कर) पता लग गया । यह राका है जो राजा के सारे दुर्दशा
ग्रस्त मयूरकुमार को, जो नाचते मोर की तरह अपने को प्रकट करके रिशाता है,
चन्द्रशाला के सामने आलिंगन करती हुई वेश के बाजार में अपना सौभाग्य दिखा
रही है । उसकी सचाई से वह बेचारा खरीदा सा लिया गया ।

११४— वह गौरी और मोटी उस दुबले और सौंवेले मयूरकुमार को मानों
सामने आई अपनी परछाई की तरह छाती से लटका कर ले जा रही है ।

(घूमकर) यह दूसरी कौन है ? (सोचकर)—

यह यशस्वी शार्दूलवर्मा के पुत्र हमारे प्रिय मित्र वराहदास की प्रियतमा
यवनी कर्पूरतुरिष्ठा है । यह तीन अंगुलियों से मधु का, प्याल पकड़ कर उसे

११३ (३) आभीलक = दुर्दशाग्रस्त । कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्—अमर ।

११४ (इ) स्वमिव प्रच्छायाग्रकम् = मानों उसकी अपनी परछाई सामने आकर
छाती से लटक रही है । प्रच्छाया = परछाई । अग्रक = अगला भाग । विलग्न = लटकन्त ।

११४ (४) यवनी कर्पूरतुरिष्ठा—यह यवनी स्त्री उज्जयिनी के वेश में रहती थी ।
इसके नाम का उत्तरपद यूनानी भाषा के किमी शब्द की संस्कृत में अनुवृत्ति है ।

११४ (५) प्रतिचन्द्राभिमुखं—हमने यवन देश का शिष्टाचार सूचित होता है
कि पान पात्र भरकर उसे पहने चन्द्रमा की अघिष्टाश्री देवी को अर्पित करते थे ।

११४ (५) कास्य = पानपात्र, चपक ।

११४ (५) अंगुलित्रयेण धारयन्ती—यह चपक पकड़ने का यूनानी दृष्ट था ।

(६) कपोलतलरसलितविम्बमलम्ब्य कुण्डलं क्रिरणैः प्रेक्षोलितमंसदेशे शशिनमिमोद-
हन्ती यैषा—

११५—

(अ) चक्रोरचिकुरेक्षणा मधुनि वीक्षमाणा मुस

(आ) निरुर्थं यमनीनरीरलवचल्लरीमायताम् ।

(इ) मधूरुमुमानदातमुक्रुमारयोर्गण्डयोः

(ई) ममाष्टि मदरागमुत्थितमलककाशझ्या ॥

(१) अपि च यमनी गणिका, वानरी नर्तरी, मालवः कामुको, गर्दभी गायक
इति गुणतः साधारणमगच्छामि । (२) सर्वथा सदृशयोगेषु निपुणाः सलु मजापतिः ।
(३) तथा हि—

११६—

(अ) रादिरतरुमात्मगुप्ता

(आ) पटोलवल्ली समाश्रिता निम्बम् ।

चन्द्रमा की ओर उठाए हुए है । दूसरे हाथ से वह कान का चन्द्राकृति कुण्डल
पकड़े है जिमका प्रतिबिम्ब गाल में पड़ रहा है । उस कुण्डल की छिटकती हुई
क्रिरणों से उसके कंधे पर भी मानों चन्द्रमा खेलता हुआ जाग पड़ता है ।

११५—चक्रोर के जैसे बाल और ओंखों वाली यवनी मधुपात्र में अपना
अम्स देवती हुई, नव्यों से लम्बी लट्ठों को बिखेरती हुई, मधु के फूलों की
तरह श्वेत और सुकुमार गालों पर उमरी हुई मद की लली को आलता जानकर
पोछती है ।

यवनी और गणिका, बंदरिया और नर्तकी, मालव और कामुक, गायक
और गधा—इन्हें मैं गुण में एकमा मानता हूँ । सन तरह से जोड़ी मिलाने में ब्रह्मा
निश्चय ही निपुण है ।

११६—जैसे खैर के पेड़ पर आत्मगुप्ता, और नीम पर परवल की लता फैलती

११४ (६) कुण्डल—कान में लटकते हुए चन्द्राकृति कुण्डल का एक प्रतिबिम्ब
तो गाल में पड़ रहा था । उसी की छिटकती क्रिरणों से कंधे पर मानों दूसरी चन्द्राकृति
बन रही थी । गधार कला में कान के अनेक आभूषण चन्द्रमा की नोकदार आकृति के मिले
हैं । कानों में छिर्यो वैसे कुण्डल पहनती थीं और कंधे पर साड़ी के पिन की तरह चन्द्राकृति
आभूषण खोस लेती थीं । उसी पर आधारित यह कल्पना है ।

११५ (१) यमनी गणिका—यह गहरा कटाव है । प्राचीन काल से ही इतनी
अधिक सख्या में यवन देश की छिर्यो गणिका वृत्ति और परिचारिका कर्म के लिये भारतवर्ष
में आने लगी थीं कि गुप्त काल में यमनी और गणिका इन दोनों की लगभग पर्याय समझने
लगे थे ।

११६ (अ) आत्मगुप्ता = कंबाच । आत्मगुप्ता—कपिचक्षुरच, मर्कटी—अमर ।

- (३) रिलष्टो वत संयोगो
(३) यदि यवनी मालवे सक्ता ॥

(१) तत्काममियमपि ये सखी न त्वेनामभिमापिष्ये । (२) को हि नाम तानि वानरीनिष्कृतोपमानि चीत्कारभूयिष्ठानि अप्रत्यभिज्ञेयव्यञ्जनानि किञ्चित्करेणान्तराणि-
(१) प्रदेशिनीलासनमात्रसूचितानि स्वयं वेशयवनीकथितानि श्रोष्यति । (३) तदलमनया ।
(४) (परिक्रम्य) (५) अयमपरः कः—

११७—

- (अ) प्रतिमुखपवनैर्वेगात्
(आ) उत्क्षिप्तामालकोत्तरीयान्ताम् ।
(इ) कान्ता हरति करेण
(ई) वासवदत्तामिषोदयनः ॥

(१) (विचार्य) (२) आ विदितम् । (३) एष स इभ्यपुत्रो विटप्रवाल

हे, बैसे ही यदि यवनी मालव पर फिदा हो तो वह बढ़िया जोड़ी है ।

यह मेरी परिचित है, पर इससे बातचीत न करूँगा । ऐसा कौन है जो बंदरिया की खाँव-खाँव की तरह, चीत्कार युक्त अनजाने व्यञ्जनों से भरी, कुछ इशारों के साथ केवल प्रदेशिनी अँगुली हिलाकर अभिप्राय सूचित करनेवाली वेश की यवनी की स्वयं कही हुई बातें सुनेगा ? इससे बाज आया । (घूमकर) यह दूसरा कौन है—

११७—जो हवा के विरुद्ध फड़कती हुई अलकावली और दुपट्टे वाली कान्ता को हथिनी पर बैठाए लिए जा रहा है, जैसे उदयन वासवदत्ता को ले गया था ?

(सोचकर) पता चल गया । यह इभ्यपुत्र (रईसजादा) है जिसका विट

११६ (२) वानरी निष्कृतोपमानि—इस वाक्य में यवन 'देश की छियों की भाषा और भरपूर उच्चारण पर बहुत व्यंग्य किया गया है ।

११६ (२) अप्रत्यभिज्ञेयव्यञ्जन—यूनानी वर्णमाला में कई व्यञ्जन ऐसे हैं जिनके समकक्ष उच्चारण भारतीय वर्णमाला में नहीं थे, उन्हीं को और संकेत है ।

११६ (२) स्वयं—विना किसी के पूछे अपने आप जो बोलती रहे ।

११७ (३) इभ्यपुत्र = रईसजादा । इभ्य = हाथों की सवारों के पात्र । हाथों की सवारों पर बैठकर निकलने का अधिकार या तो राजा को था, या विवाह में वर को, या मर्राफे बाजार के सदस्यों को जिनकी संख्या सीमित होनी थी और जो थोड़े, महाजन कहलाते थे ।

११७ (३) विटप्रवाल = विटव का यज्ञा हुआ भंडार । यह उसका सामयिक नाम नहीं था, किञ्चित् में प्रसिद्ध नाम था ।

इति डिण्डिमिरभ्यस्तनामा सुरतरणपटकृत्यभ्यराणामधिपतिः (४) ता वेशमुन्दरीमस्मद्-
वालिका मदनपरचराः पितृमातुश्च शासनमुपेक्षानुरक्त एव । (५) काममतिडिण्डी सत्य-
यम्, (६) स्वसुरशब्दावकुण्डनास्तु वयम् । (७) तदलमनेनाभिभाषितेन । (८) अय-
मस्याञ्जलिरितस्तावद् वयम् । (९) (परिक्रम्य) (१०) यावदहमपि विटसमाज
गच्छामि । (११) एषोऽस्मि भोः सुवृथातिग्राहिने वेशमहापथे निमग्नहृत्स्य भट्टिजीमृतस्य
(१२) समन्तात्मन्निपातितविटजनवाहनसहस्रसङ्घप्रद्वाराङ्गणमुल्लिखरजतमन्त्रपाथ
परिचारकोपस्थिततोरणं भवनमनुप्राप्तम् ।

(१३) सुष्ठु सत्विदमुच्यते—“महान्तं सलु महतामारम्भा” इति । (१४)

प्रवाल नाम उडियो मे सुपरिचित है । फेंटा उस कर सुरतरण मे चढ़ने वालों का
यह गुरु है । यह हमारी बच्ची उस वेशमुन्दरी पर काम के फन्दे में फँसकर
माता पिता के हुनम की भी परवाह न करते हुए अनुरक्त हो गया । निश्चय यह
डियो का उस्ताद है । ससुर घनने के कारण इसके सामने मेरी भी बोलती बन्द
है । तो इसमे बातचीत न होगी । इसे हाथ जोड़कर मे यहाँ से सटक जाऊँ ।
(घूमकर)—मैं भी अब विट समाज में पहुँचूँ । वेश महापथ में गिरकुल व्यर्थ का
चनकर काट कर यह मैं विटों के चौधरी भट्टिजीमृत के घर आ गया । इसके
बहिर्द्वार के सामने के खुले मैदान के चारों ओर बुलाए गए विटों के हजारों वाहनों
की भीड़ इकट्ठी है । यहीं तोरण के पास ही चोंदी के घडों में पेर धोने का जल
उपर उड़ाए हुए परिचारक जन उपस्थित है ।

ठीक ही कहा है ‘घडों की घातें बड़ी होती हैं ।’ अभी यहाँ पचरंगे

११७ (३) सुरतरणपट—सुरतरण म चढ़ाई करने के लिये पहना गया पट या
बर्दी । कृत्यभ्यर = फेंटा, पटका । रणभूमि में युद्ध के लिये भर्ती होनेवाले सैनिकाका
वर्दा (पट) और पटका । कृत्यभ्यर = पहनना आवश्यक था और सम्भवतः वह उन्हें शासन
की ओर से मिलता था । इक्ष्वाकु विट प्रवाल को ऐसे रणपट और कृत्यभ्यर सम्भवे बहिष्क
प्राप्त थे, अर्थात् वह मानों सुरतरण का सेनापति था ।

११७ (४) अस्मद्वालिका—कोई नवगणिका जिसे या तो विट ने अपनी पोष्य-
पुत्री मान लिया था या जो उससे गणिका में उत्पन्न हुई थी ।

११७ (५) अतिडिण्डी = सब डिण्डिया को मात करनेवाला ।

११७ (६) स्वसुरशब्दावकुण्डना —ससुर डाने के कारण हमारा शब्द या
बोलना अवकुण्ठित या बन्द हो गया है ।

११७ (११) सुवृथातिग्राहिने—सुवृथा = बिलकुल व्यर्थ । अतिग्राहित = बहुत
देर तक घूमना या चकर काटना ।

११७ (१२) प्रद्वाराङ्गण—प्रद्वार या बहिर्द्वार के सामने का आँगन या मैदान
जिसे पहले प्रद्वाराजिर कहा है (पाद० १०२।१) ।

साम्प्रत होतद् दशार्धवर्णं पुष्पमुत्कीर्यते मुक्तम् (१५) आसज्यते ग्रथितम्, (१६) सञ्चार्यन्ते धूपा, (१७) प्रज्वाल्यन्ते दीपा (१८) उच्यते स्वागतम्, (१९) मुच्यते यानम्, (२०) दृश्यते विभ्रमः, (२१) उपगीयते गीतम्, (२२) उपनाद्यते वाद्यम्, (२३) दीयते हस्तः, (२४) कथ्यते श्लक्ष्णम्, (२५) आलिङ्ग्यते स्निग्धम्, (२६) श्रव लभ्यते सप्रणयम्, (२७) अग्नम्यते सविनयम्, (२८) स्पृश्यते पृष्ठम्, (२९) आह्वयते सप्रक्षेपम्, (३०) आप्रायते शिरः, (३१) स्थीयते सनिभ्रमम्, (३२) उप निश्यते सलीलम्, (३३) विधाययते चन्दनम्, (३४) आलिप्यते वर्णकः, (३५) विग्यस्यते विलेपनम्, (३६) उक्कीर्यते चूर्णं, (३७) परिहास्यते विट्टेः, (३८) प्रति दृश्यते निलासिनीभिरिति । (३९) किं बहुना—

फूल लुट्टा निरेरे जा रहे है; गुथो हुई मालाएँ लट्काई जा रही है; प्रज्जगित धूप घुमाई जा रही है; दीपक जलाए जा रहे है; स्वागत शब्द का उच्चारण हो रहा है; सवारियों खोलकर छोड़ी जा रही हैं; दौड़ धूप दिखाई दे रही है; गीत गाए जा रहे हैं; बाजे बजाए जा रहे है; आने वालों को हाथ का सहारा दिया जा रहा है; मोठी बातें कही जा रही हैं; प्यार भरे आलिंगन दिए जा रहे हैं; प्रेमपूर्ण भाव से एक दूसरे के शरीर का सहारा ले रहे हैं; अति निम्न ढंग में परस्पर शुक रहे हैं; पीठें थपथपाई जा रही हैं; कभी मोहें चढ़ाकर बटकारी मार रहे हैं; लोग मिलने पर मिर सँघ रहे हैं; कुठ नम्बरे से खड़े हैं; कुठ अंदा से बैठ रहे हैं; चन्दन बाँटा जा रहा है; खिजाज (चर्णक) पोता जा रहा है; अगाराग (निपेपन) लगाया जा रहा है; सुगन्धित पट्यास चूर्ण उड़ाया जा रहा है; निट्ट परिहास कर रहे हैं; और बेरयाएँ उनका जनाब दे रही हैं । बहुत कहने से क्या ?

११७ (१४) दशार्धवर्णं पुष्प = पचरंगे फूल । यह उपहार पुष्पों के प्रकर रूप में भोग्य या फर्श पर मजाने का उपकरण है । योंव रंगों के विषय में मामानन्द मात्रक में उपकरण है—जो वषट्पत्तवर्षको वर्णद भाग्यस, भया गुणिरहेव सुलभपचरागिनी वर्णा भार्याता इति भाग्यिनु भवान् । ये मौक्तिक रंग या शुद्ध वर्ण मौक्त, पीत, लोहित, शुक्ल और शृङ्गा ये ।

११७ (१५) आगम्यते ग्रथितम्—गुंथा हुई मोती और कृणों की मालाओं को गुंथा या गमों में लटकाया जाता था नि ह प्रालम्ब कहने थे ।

११७ (३४ ३५) रत्नक, विलपन—इनका प्रथक् अर्थ समस्तता आवरणक है । पर्वत भर विप्रेतन या भयम कोश में पपीय जाना है, वहाँ शोला में भेद दिया है । शोला बाँधे टाक है । वहाँ में रस भरकर होना चाहिए । वेगल चन्दन अनुलेपन हुआ । वनागानुलेपन पद से सूचित होता है कि अनुलेपन रसायन के बाद लगाया जाता था । चन्दन में अमृता, दागाल, कमर, चमूरा आदि मिखाकर वासा कोय जो विरेचन बनता था । अइसा चन्दन प्रिया जाता है, वहा बेयर चमूरा मिखाकर पोया जाता है (निरे रात्रि विरेचनम,

११८—

- (अ) पुष्पेते जानुदध्नेषु लग्नाः
 (आ) शृङ्खात्पादा नामनैरुदध्नियन्ते ।
 (इ) विभ्रन्ताक्षः केतकीना पलाशान्
 (ई) सीत्कुर्वाणाः पादलग्नान् हरन्ति ॥

(१) अपि चैते विटमुल्याः—

११९—

- (अ) श्रीमन्तः ससिभिरलङ्घितासनाद्धाः
 (आ) कुर्वन्तश्चतुरमर्ममेदि नर्म ।
 (इ) वैश्याभिः समुपगताः सम समन्ता—
 (ई) दुष्पाणो व्रज इव भान्ति सोपसयाः ॥

११८—अन्त पुर में परिचारक का काम करनेवाले बौनों के पैर घुटनों तक फूलों में धँस गए हैं, अतएव वे कठिनाई से चल पा रहे हैं। ओखें मटकती हुई गणिकादारिकाएँ पैरों में लगी केतकी की पखुडियों को सी सी करके निकालत रही हैं।

और ये—

११९—रईसजादे विटमुख्य आघे आसनो पर बैठी अपनी सहेलियों से चतुराई भरे शब्दों में ऐसी दिल्लगी करते हैं जो मर्म पर चोट न करे। वे वेश में इधर-उधर ऐसे निर्द्वन्द्व घूमते हैं जैसे लगे सोंड उठान पर आई हुई कलोर गायों के साथ गोचर में घूमते हैं।

विराट पर्व ८।१६)। चन्दन और विलेपन के इस भेद को रष्टि में रखते हुए दोनों के लिये अनुलेपिना नीर विलेपिका नामक दो पृथक् परिचारिकाओं की बात स्पष्ट हो जाती है। इनका पाणिभि ने भी अलग परिगणन किया है (४।४।४८)। विलेपिका का कार्य अधिक सूक्ष्म था और उसको जो नियत द्रव्य दिया जाता था उसके लिये विलेपिक यह विशेष शब्द प्राचीन भाषा में प्रयुक्त होता था (भाष्य १।३।१०)। केयर कस्त्रा आदि के रंगों से युक्त विलेपन द्रव्य को वर्णक भी कहना चरितार्थ हो जाता है, जैसा अमर कोश में दिया है। शरीर पर पद्मच्छेद आदि से उसका विन्यास या रचना की जाती थी, जैसा यहाँ कहा है—विन्यस्यते विलेपनम्। किन्तु वर्णक का दूसरा विशेष अर्थ भी अवश्य था, जैसा वर्णक और विलेपन के पृथक् उल्लेख से सूचित होता है। याग ने भी उन्हें अलग लिए हैं—गान्धिक भवनमिव स्नानधूपविलेनवर्णकोज्ज्वलमिव राजकुलम् (कादम्बरी अनुच्छेद ८५)। वर्णक का यहाँ विशेष अर्थ सिन्धु ही हो सकता है। मेदिनी कोश में वर्णक के दोनों अर्थ दिए हैं—१ विलेपन, २ नीलाकर्म। अतएव इस प्रसंग में वर्णक का सिन्धु वाला अर्थ ही सगत है।

११७ (३६) चूर्ण = पटवाम या चम्रो को मुगन्धित बनाने के लिये हवा में धूलि की भाँति टटायी जानेवाला चूर्ण।

(१) अपि चैषामेतत् सदः—

- १२०— (अ) नम इव शतचन्द्रं योपिता वक्त्रचन्द्रैः
 (आ) इतशवलदिगन्त सम्पतदिम् कटाक्षैः ।
 (इ) सपरिषमिव यूनां बाहुभिः सम्प्रहारैः
 (ई) निचितमिव शिलामिश्रचन्दनाद्रैरुरोमि ॥

(१) अपि चारिमन्—

- १२१— (अ) एतै विभान्ति गणिकाजनकल्पवृक्षाः
 (आ) तादात्विकाश्च खलु मूलहराश्च गीराः ।

१२०—उनके इस सभा भवन के नभोभाग या छत का शतचन्द्र अलङ्करण मानो स्त्रियों के सैकड़ों मुखचन्द्रों के रूप में है। उस भवन का दिगन्त भाग (चारों ओर को कनातें या भित्तियाँ) स्त्रियों की चितवनों के रूप में मानो शताक्षि अलङ्करण से सुशोभित है। युवकों की एक दूसरे से रगड़ती भुजाएँ ही उस भवन का चारों ओर घूमा हुआ परिघ या अर्गल है। चन्दन से आर्द्र उरस्थल ही उस सभाभवन में शिलापट्टों से बना हुआ कुट्टिम प्रदेश है।

और भी यहाँ—

१२१—वेश्याओं के लिए कल्पवृक्ष की तरह, काम पर फौरन तैयार, अपनी

११६ (ई) सोपसर्पाः—रामकृष्ण कवि में इसका पाठ सोपसर्पा अशुद्ध धृपा है। उपसर्पा = सरदाने के लिये उठी हुई, गरमाई हुई गाय (उपसर्पा काहया प्रजने, सूत्र १।१।१०४)।

१२० (अ) नम इव शतचन्द्र—सभाभवन की स्थापत्यमयी रचना और उस पर आश्रित उग्रेचाभा वासमिलित रूप में यह वर्णन है। नम = आकाशस्पर्शनीय छुत, चन्द्रोपक या ऊपर का चैंदोपा। शतचन्द्र = सैकड़ों चन्द्रमाभा की आकृति से अलङ्कृत शतचन्द्र नामक अलङ्करण। चन्द्रोपे की छुत में यह अलङ्करण बनाया जाता था। विराट्पर्व १०।१२ में इसी के समरूप शतमूर्य, शताक्षि, शतायत और शतयिन्दु अलङ्करणों के नाम आते हैं।

१२० (आ) इत शवलदिगन्त सम्पतदिम् कटाक्षैः—श्री पुराण की शयलित चितवनों के रूप में ही माना उस सभाभवन का पङ्कजपद्ममयी भित्तियों पर शताक्षि अलङ्करण दृष्टिगोचर हो रहा था। शताक्षि अलङ्करण का उल्लेख भी उपर विराट्पर्व के उद्धरण में है।

१२१ (आ) तादात्विका = जो तदाव या वर्तमान काल में ही तुरन्त भोग भोगने में प्रियत्व करते हैं, आनेवाले भविष्यकाल या आयति में भोग प्राप्त करने के लिये प्रतीक्षा नहीं करते। तदा व और आयति के दृष्टिकोण का भेद पद्म० श्लो० २०।२५ में स्पष्ट किया है। तादात्विक प्रत्ययनादा लोकायतिका के अनुवर्षा थे।

(३) बाल्येऽपि काष्ठम्लहान् कथयन्ति यथा

(३) वृद्धा सुयोधनवृकोदयोरिवोच्चै ॥

(१) तदेतादहमपि सुहृन्निदेशवेष्टने शिरसि भगवते चित्तेश्वरायाञ्जलिं दत्त्वा सुहृन्निदेशादिममधिकारं पुरस्कृत्य (२) प्रत्यश्चिचार्यं तत्रभवतस्तौण्डिकोकेविष्णुनागस्य घोषणापूर्वं विद्वान् विज्ञापयामि । (३) (परिक्रम्य) (४) भो भो सकलक्षतितलसमागता प्रियम्लहा कलहाना च निवेदितारो धूर्तमित्रा शृणन्तु शृणन्तु भवत ।

१२२—

(अ) कामस्तपस्विषु जयत्याधिकारकामो

(आ) निर्वस्य चित्तविभुरिन्द्रियगोच्यधीश ।

(इ) भूतानि विभ्रति महात्यपि यस्य शिष्टि

(ई) व्यावृत्तमौलिमणिरश्मिगिरुत्तमाङ्गै ॥

(१) (परिक्रम्य)

१२३—

(अ) अथ जयति मदो तिलासिनीना

(आ) स्फुटहसितप्रविकीर्णं र्णपूर ।

सब पूँजी छोड़ने पर सन्नद्ध, ये शूरवीर हैं जिनके लडकपन की नकली लड़ाई (काष्ठ कलह) को बुढ़े लोग सुयोधन और वृकोदर की लड़ाई की तरह बखानते हैं ।

फिर मित्र की आज्ञा की पगड़ी सिर पर बाँधे हुए मैं भी भगवान् कामदेव को प्रणाम कर उसके आदेश से इस कर्तव्य पालन को आगे करके श्रीमान् तौण्डिकोकि विष्णुनाग के प्रायश्चित्त के लिये शिगें से निवेदन करूँ । (घूमकर) अरे-अरे, सारी पृथिवी से आए हुए, कलह में रुचि लेने वाले, और कलहों का वृत्तान्त कहने वाले, हे धूर्त लोगों, आप सब सुनिए-सुनिए—

१२२—उस भगवान् काम की जय हो जो तपस्वियों पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है, जो सबके चित्त का स्वामी, और इन्द्रिय रूपी थोड़े का शासक है, और जिसकी आज्ञा बड़े बड़े प्राणी भी चूड़ामणियों के साथ मस्तक झुकाकर मानते हैं ।

(घूमकर)

१२३—जिसकी खिलखिलाहट भरी हँसी गाल के समीप के कर्णपूर पर

१२१ (आ) मूलहरा = सारा पूँजा फाक देनेवाले ।

१२१ (इ) काष्ठम्लह = लकड़ा का तलवार या पगपरा लेकर किए हुए युद्ध ।

१२२ (इ) शिष्टि = आज्ञा, आदेश, शासन ।

१२२ (ई) व्यावृत्त मौलिमणि—मौलि में जड़ित मणि को प्रणाममुद्रा में नीचे

झुकाकर ।

(३) स्खलितगतमधीरदृष्टिपातः

(३) तदनु च यौवनविग्रमा जयन्ति ॥

(१) तदेवं वारमुख्यजनचरणरजः पवित्रीकृतेन शिरसा धूर्तमिश्रान् प्रणिपत्य विज्ञापयामि । (२) किञ्चित्दविज्ञापयामि ? (३) श्रूयताम्—

१२४— (अ) नागवद्विष्णुनामाऽसा—

(आ) बुरसा वेष्टते क्षितौ ।

(इ) प्रायश्चित्तार्थमुद्विग्नं

(ई) तमेनं त्रातुमर्हथ ॥

(१) किं मां पृच्छन्ति भवन्तः “कोऽस्यापनयः” इति । (२) श्रूयताम्—

१२५— (अ) उद्दिष्टालकमीक्षणात्तन्तुगलितं कोपाञ्जितान्तभुवा

(आ) दष्टाधौष्ठमधीरदन्तैर्किरणं प्रोत्कम्पयन्त्या मुखम् ।

(इ) शिञ्जन्नूपुरया विकृप्य विगलद्दंशुकं पाणिना

(ई) मूर्धन्यस्य सनूपुरं समदया पादोऽर्पितः कान्तया ॥

(१) किं किं वदन्ति भवन्तः “कस्याः पुनरिदमविज्ञातपुरुषान्तरायाः प्रमाद-

खिल रही है, ऐसी विलासिनियों के यौवन मद की जय हो एवं उनकी ढगमगाती चाल और चंचल चितवनों की जय हो । और उसके बाद उनकी यौवन की अठखेलियों की जय हो ।

प्रधान वेदया की चरण रज से अपना मस्तक पवित्र करके उस मस्तक को धूर्तमिश्रों के चरणों में झुकाकर मैं निवेदन करता हूँ । कहने वाली बात क्या है ? सुनिप—

१२४—यह विष्णुनाग प्रायश्चित्त के लिये साँप की तरह पृथिवी पर छाती के बल छटपटा रहा है । आपको इसकी प्राण रक्षा करनी योग्य है ।

क्या आप सभं मुझमें पृच्छते हैं कि इसकी चूक क्या है ? सुनिप—

१२५—आँखों पर गिरती लट्ठ ऊपर फेंककर, क्रोध से भौहों का कोना खींच कर, अधोष्ठ को काट कर, दाँतों की किरणें बखेर कर, कोंपते मुखसे, नूपुर भलकारती हुई उस मदभरी कान्ता ने खिसकते रचांशुक की हाथ से खींचते हुए अपना नुपुगालंकृत चरण इसके मस्तक पर रख दिया ।

क्यों, आप सन् क्या कहते हैं—“पुरुष के भेद ज्ञान में अनाड़ी यह कौन

१२५ (३) दिष्टया नेह कश्चिन्—सुनी है कोई बाहर का यहाँ ऐसी दुष्टों यात सुनने के लिये नहीं है ।

संज्ञकमयशो विस्तीर्णत” इति । (२) ननु तत्रभवत्याः सौराष्ट्रिकाया मदनसेनिकाया ।
(३) एते विटा ‘दिष्ट्वा नेह कश्चिदित’ सम्भ्रान्ता इव । (४) य एते—

१२६—

(अ) निर्धूतहस्ता विनिगूढहास्ता

(आ) धिक्वादिनो धीरमुसानि वदध्वा ।

(इ) ध्यायन्ति सम्प्रेक्ष्य परस्परस्य

(ई) जातानुकम्पा इव नाम धूर्ताः ॥

(१) एतेषां तावदासीनानां नियुक्तो विटमहत्तरो भट्टिजीभूतः कृपया नाम परं
वैस्त्वय्यमुपगतः । (२) य एषः—

१२७—

(अ) कष्टं कष्टमिति श्वासान्

(आ) मुञ्चन् वलान्त इव द्विपः ।

(इ) जीमूत इव जीमूतो

(ई) नेत्राभ्या वारि वपेति ॥

(१) एष मामाह्वयति । (२) अयमांगतोऽस्मि । (३) किमाज्ञापयति भट्टिः ?
‘श्रुतपूर्वं मया, भूयोऽपि वदसि—एवं प्रायश्चित्तार्थं बाह्यशोपगमनम् । (४) तस्मादेवाह-
मुपविष्टस्तत्समयपूर्वमुपगृह्यन्ता तत्रभवन्तो विटाः” इति । (५) यदाज्ञापयति भट्टिः ।
(६) भो भोः शृण्वन्तु शृण्वन्तु मयन्तः—

सी गणिका है जिसकी लापरवाही इस बदनामी के रूप में सामने आ रही है ?
क्यों, यह सौराष्ट्र की श्रीमती मदनसेनिका है । प्रसन्नता की बात है कि कोई दूसरा
यहाँ नहीं है—इस प्रकार की मुद्रा में ये विट कुछ धवराएँ दोख पड़ते हैं ।

१२६—हाथ हिलाते हुए, हँसी छिपाकर, धिक्कारते हुए, ज़ेहरों पर
गम्भीरता लाकर धूर्त मानों दयालु होकर एक दूसरे का मुख देखते हुए विचार में
डूब गए हैं ।

‘यहाँ बैठे हुए वियों के चौधरी विटमहत्तर भट्टिजीभूत करुणा से बहुत व्याकुल
हो उठे हैं ।

१२७—‘कैसा दुःख है, कैसा दुःख है’ कहते हुए वे थके हाथी की
तरह ज़सस छोड़ते हुए बादल की तरह आँखों से पानी बरसा रहे हैं ।

वे मुझे पुकार रहे हैं । मैं आ गया । भट्टि की क्या आज्ञा है—“मैंने
पहले सुना है, तू भी फिर कहता है कि ऐसे प्रायश्चित्त के लिये ब्राह्मणों के पास
जाना चाहिए । इसीलिये मैं बैठा हूँ । तू तब तक वियों को शपथ दिलाकर तैयार
कर ले ।” भट्टि की जो आज्ञा । अरे, आप लोग सुनिए, सुनिए—

१२६ (१) नियुक्त—प्रधान अधिकारी । कृपया = करुणा से ।

१२७ (४) समयपूर्वकम् उपगृह्यन्ताम्—शपथ दिलाकर सब बात कहने के लिये
उन्हें तैयार करो ।

१२८—

- (अ) धूतेषु मा स्म विजयिष्ठ पशुं कदाचित्
 (आ) मातुः शृणोतु पितरं विनयेन यातु ।
 (इ) क्षीरं शृतं पिबतु मोदकमचु मोहात्
 (ई) व्यूढापतिर्मवतु योऽत्रवदेदयुक्तर ॥

(१) अपि च—

१२९—

- (अ) परिचरतु गुरुनपेतु गोच्छा
 (आ) भवतु च वृद्धसमो युवा विनीतः ।
 (इ) पलितममिसमीक्ष्य यातु शान्तिं
 (ई) य इदमयुक्तमुदाहरेन्निपण्यः ॥

(१) (विवृत्यावलोक्य) (२) एष धावन्निनन्तकथः सहस्रोत्थाय मा माह-
 यति । (३) किं ब्रवीषि—“तस्मा एवेदमविज्ञातप्रणयायाः पातकं नाश्रभवतः । (४)
 श्रोतुमर्हति भवान्—

१२८—आज इस समा में जो अंडबंड कहे वह जूए में कभी बाजी न जीते, माता का आज्ञाकारी बने, विनय से पिता के पैर छुए, उमाला हुआ दूध ही पीकर रहे, मोह में पड़कर लड़क खाकर तृप्त रहे, और व्याही स्त्री से सन्तुष्ट रहे ।

और भी—

१२९—गुरु की परिचर्या करे, विट गोष्ठी से निकल जाय, युवा होते हुए भी वृद्ध की तरह विनीत हो जाय, बुढ़ापा आने पर शान्त हो जाय, जो यहाँ बैठ कर अंड बंड कहे ।

(घूमकर देखकर) धावकि अनन्तकथ (भगजपच्ची करने वाला) सहसा उठकर मुझे बुलाता है । क्या कहता है—“प्रणय न जानने वाली उसका ही दोष है, तौण्डिकोकि का नहीं । सुनिए—

१२८ (आ) मातुः शृणोतु—बिचों की प्रवृत्ति के विरुद्ध यह माता पिता का विनीत पुत्र बनकर रह जाय ।

१२८ (इ) क्षीरं शृतं पिबतु—बारगो को जगह उसे बेचल अयात के दूध से भन यहलाना पड़े ।

१२८ (इ) मोदकमचु मोहात्—बुद्धि के व्यामोह से भोस के कपाप छोड़कर उगे कोरे लड्डू खाने को मिले ।

१२८ (ई) व्यूढापतिः—उसकी रति व्याहता तक सीमित हो जाय ।

१२९ (इ) पलितममिसमीक्ष्य—बुढ़ाप्या में सविद्यत की रसोनी के यत्राप यह शान्तिप्राप्ति बन जाय ।

१३०—

- (अ) अशोक स्पर्शेन द्रुमैसमये पुष्पयति य
 (आ) स्वय यस्मिन् कामो विततशरचापो निवसति ।
 (इ) स पादो विन्यस्तः पशुशिरसि मोहादिव तथा
 (ई) ननु प्रायश्चित्तं चरतु सुचिरं सेव चपला ॥” इति ।

(१) सम्यग्भवानाह । (२) तथा हि—

१३१—

- (अ) उपवीक्षित एष गर्दभः
 (आ)-समुपश्लोक्ति एष वानरः ।
 (इ) पयसि शृत एष माहिषे
 (ई) सहकारस्य रसो निपातितः ॥”

(१) अपि त्वार्तानुपातानि प्रायश्चित्तानि । (२) आर्तश्चायमुपागतस्तदनुग्रहीतुं
 मर्हन्ति भान्तः । (३) तत्कं नु खल्वेवा गोमलनसा, (४) य एष मदरभसचालितमौलि-

१३०—अशोक का पेड़ जिसके स्पर्श से असमय में फूलता है, स्वयं
 कामदेव तीर चढ़ाकर जिसमें निवास करता है, ऐसे अपने चरणों को जिस सुन्दरी
 ने मानो भूलकर इस जानवर के सिर पर रख दिया, प्रायश्चित्त तो उस चपला को
 लम्बे समय तक करना चाहिए ।

तूने ठीक कहा । क्योंकि—

१३१—इस गधे के सामने उसने बीन बजाई; इस बदर के सामने उसने
 श्लोकमयी प्रशंसा पढ़ी; तो भैरव के अधावट दूध में उसने सहकार का रस चुखाया ।

फिर भी दुखियों को ढाँढ़स देने के लिये प्रायश्चित्त होते हैं । आते होकर
 यह आया है । इसलिए आप सबको इस पर कृपा करनी चाहिए । कौन है यह
 गादर बैल का नाती जो मतवालेपन से हिलते सिर को एक हाथ से रोक कर

१३०—चपला—वह चंचल थी जिसने ऐसे अपात्र के प्रति अपने वह पादाभिघात
 रूपी काममुद्रा व्यर्थ प्रयुक्त कर दी, योग्य पात्र के मिलने तक न, ठहर सकी जो संवमुच
 उस पादताडन से खिल उठता ।

१३१ (अ) उपवीक्षित—बीणा पर गान सुनाना ।

१३१ (आ) समुपश्लोक्ति—श्लोकों द्वारा प्रशंसा माने करना ।

१३१ (इ) पयसि शृत एष माहिषे—जो सहकार का रस मधुचपक में चुखाने
 योग्य था उसे उसने गैर के अधावट दूध में मिलाने का विडम्बना की ।

१३१ (१) आर्तानुपातानि—दुखियों के अनुपात से प्रायश्चित्त बनाए गए हैं,
 उन्हीं के समाधान के लिये प्रायश्चित्त हैं । अतएव जहाँ कोई आर्त है—उसे तदनुसार प्राय-
 चित्त मिलना ही चाहिए ।

१३१ (२) गोमलनसा—गादर गलिया बैल का नाती । गोमल = गलिया बैल,
 थका हारा बैल । गलायताति ग्लः । गोमलश्च गोमलः । यह शब्द कोशा में नहीं है । हिन्दी
 का 'गोम' शब्द इसी से बना है (गोमल > गोम > गोम = कायर) ।

मेकहस्तेन प्रतिसमावदय (५) स्रग्मुक्तावकीर्णमिव स्वेदविन्दुमिल्ललाटदेशं प्रदेशिन्या परामृज्य (६) 'श्रूयतामस्य प्रायश्चित्त' मिति मामह्वयति । (७) यावदुपसर्पामि । (८) एने विटाः कश्च तावदयं विटभावदूषिताकारः प्रथमतरो विटो विटपरिपद्युत्थाय प्रायश्चित्तमुपदिशतीति कुपिताः । (९) हण्डे मल्लस्वामिन्, श्रुतम् ? (१०) एवमाहु-
रत्रभवन्तः । (११) किं वचीपि—“मा तावन्नोच्यन्तामत्रभवन्तः ।

१३२—

(अ) ताते पञ्चत्वं पञ्चरात्रे प्रयाते

(आ) मित्रेष्वार्तेषु व्याकुले बन्धुवर्गे ।

(इ) एकं कोशन्तं चालमाधाय पुत्रं

(ई) दास्या सार्धं पीतवानस्मि मधम् ॥

(१) कथमहमविटः” इति । (२) एतच्छ्रुत्वा मनुजानन्ति विटमुत्प्योऽसीति ।

(३) आस्यताम् । (४) किं वचीपि—“श्रूयतामस्य प्रायश्चित्तम्” इति । (५) वाढं भूयः श्रावयामि । (६) तत् किं नु खल्वेव मां शौच्यः कविरार्यरक्षितो वायुनेपम्यनिषीडि-
ताक्षरो मामाह्वयन् “न खलु न खल्विदं प्रायश्चित्तम्” इति प्रतिषेधति । (७) अतिविटश्चैव धान्नः । (८) कुतः—

छोटे मोतियों जैसी ललाट पर फैली पसीने की बूँदों को प्रदेशिनी से पोंछ कर ‘इसका प्रायश्चित्त सुनो,’ ऐसा मुझसे पुकार कर कह रहा है ? तो उसके पास जाऊँ । ये विट उस पर बिगड़ रहे हैं कि ‘यह कौन विटभाव को पिगाड़नेवाली शकल वाला अपने को अगुवा विट मानकर विटपरिपद् में उठकर प्रायश्चित्त का उपदेश करने चला है ।’ अरे, जनानिए मल्लस्वामी, तुने सुना ये सब ऐसा कह रहे हैं ? क्या कहता है—“क्यों नहीं तू इन सबसे जता देता ?

१३२—पिता के स्वर्ग सिंघारने के पाँच रात बाद ही जब मित्र दुखी थे और रिश्ते नाते के लोग रो पीट रहे थे, एक ही विलम्बते बालक को अलग रखकर दासी के साथ मैंने मधुपान का मजा लिया ।

कैसे मैं विट नहीं हूँ ?” यदि ऐसा है तो सब मानते हैं कि तू विटों का मुखिया है । बैठ जा । क्या कहता है—“उस मदवसेनिका से प्रायश्चित्त कराना चाहिए ।” अच्छा मैं इसकी फिर पोषण करता हूँ । क्यों, यह भिक्षुदेश का कवि आर्य रक्षित हाँफती हुई भाषा में मुझे पुकार कर कह रहा है—“निरन्धे ही यह प्रायश्चित्त ठीक नहीं ।” यह भग्यमानुस भी बड़ा विट है । क्योंकि—

१३१ (११) मा तावन्नोच्यन्ताम्—महस्वामी का आशय है कि ये मुझसे परि-
धित न होने के कारण ऐसा कह रहे हैं, तू मेरा परिधय इन्हें दे दे ।

१३२ (अ) पञ्चरात्रे—पाँच रात के भीतर ही । धर्मग्रन्थ है कि जो मेरे पिता
सबे पञ्चरात्री भागवत बनते थे, उनका मैं ऐसा मरत हुआ कि उनके मरने ही मैंने तुल
गोमते की शान ली ।

- १३३— (अ) विक्रीणाति हि काव्यं
 (आ) श्रोत्रियभवनेषु मद्यचपकेण ।
 (इ) यः शिविकुले प्रभूतो
 (ई) भर्तृस्थाने जरां यातः ॥

(१) अपि च—

- १३४— (अ) विक्रीणन्ति हि कवयो
 (आ) यद्येवं काव्यं मद्यचपकेण ।
 (इ) काशिषु च कोसलेषु च
 (ई) भर्गेषु च निपादनगरेषु ॥

१३३—वह श्रोत्रियों के घर जाकर एक प्याला शराब के लिये अपना काव्य बेच आता है, जो शिविकुल में पैदा हुआ, और भर्तृ स्थान में बुढ़ा हो गया ।

और भी—

१३४—यदि कवि यों काव्य बेच रहे हैं तो वह काव्य भी ऐसा ही है जो मद्य चपक के साथ तैयार होता है । काशि, कोसल, और भर्ग के जनपदों में और निपाद नगरों में यही हाल है ।

१३३ (आ) श्रोत्रिय भवनेषु—यह ऐसा पक्का बिट है कि वेदशास्त्रियों श्रोत्रिय के घर जाकर भी मधुपान की धत पूरी करके कविता सुनाता है ।

१३३ (ई) भर्तृस्थाने—यह मूलस्थान का पर्याय जान पड़ता है, जहाँ सूर्य का मन्दिर था । भर्तृ = प्रभु, स्वामी । सूर्य का एक पर्याय इन्द्र (= प्रभु) भी था (माघ २।११, तपस्विनाः ; इन्द्रकान्त = सूर्यकान्त) । पंजाब के रंग मधियाना इलाके में शिविकुल या शोरकोट से लगभग पचास मील पर सटा हुआ मुल्तान था । व्यंजना यह है कि यह पूरा रूप मद्धक है जो शिविकुल में पैदा होकर मुल्तान में बुढ़ा हो गया ।

१३४ विक्रीणन्ति हि कवयो यद्येवं—बिट ने यहाँ उस युग के, कदाचर कवियों पर गहरा व्यंग्य किया है । यदि यों ही मद्य चपक चढ़ाकर काव्य बन जाता है तो उसका कीर्ती मोल बिकना ही ठीक है । जो कविता मद्य चपक से बनी हो वह पियकड भार्यरहित के काव्य की तरह मद्य चपक के मोल बिकेगी । वृत्त यह हुआ कि मद्यगृह में एक प्याला मद्य पिलाकर चाहे जहाँ कविता सुन लीजिए । काशि, कोसल, भर्ग, निपाद नगर आदि में कविता की यही दुर्दशा दिग्याई दे रही है ।

१३४ (ई) भर्गेषु = भर्ग जनपद में । यह बौद्ध साहित्य का भग्ग जनपद है जिसकी राजधानी सुंमुमारगिरि थी । कवि संस्करण में भर्गेषु अवपाठ जान कर मने सुधार दिया है ।

(१) यावदेनमुपसर्पामि । (२) सरो अयमस्मि । (३) किं वशीपि—

- १३५— (अ) “धृतो गरुडागोमे कमल इव वक्षो मधुकरैः
 (आ) विलासिन्या मुक्तो वकुलतरुमापुण्यति यः ।
 (इ) विलासो नेत्राणा तरुणसहकारप्रियसरः
 (ई) स गण्डूयः शीघ्रः कथमिह शिरः प्राप्स्यति पशोः ॥” इति ।

(१) अयमपरो भवकीर्तिर्वदकरः प्रायश्चित्तार्थं मामाहुयति । (१) अतिविट-
 इत्येव माणवकः । (२) कुतः—

- १३६— (अ) सुरडा वृद्धा जीर्णोक्तापायनस्था
 (आ) भिक्षाहेतोर्निगिराङ्क प्रविष्टाम् ।
 (इ) भूमावार्ता पातयित्वा स्फुरन्ती
 (ई) योज्य कामी कामकार करोति ॥

(१) यावदेनमुपसर्पामि । (२) किं वशीपि—“इदमस्याः प्रायश्चित्तम्—

तो इसके पास चलूँ । सगे, मैं आ गया । तू क्या कहता है—

१३५—जैसे बन्द कमल में भौरे भरे रहते हैं ऐसे जो मधु कामिनी के गालों में भरा रहता है, जो उसके मुँहसे निकल कर बकुल के विटप को खिला देता है, जो नेत्रों में विलास भर देता है, और जिसमें ताजा सहकार रस मिलाया जाता है, ऐसे शीघ्र गण्डूय से सिद्धि होने की पात्रता इस नर-पशु तौण्डिकोकि विष्णुनाग के मस्तक में कहाँ ?

यह दूसरा भवकीर्ति हाथ जोड़ कर प्रायश्चित्त बताने के लिये मुझे बुला रहा है । यह ब्राह्मण बालक भी अतिविट है । क्योंकि—

१३६—यह बदमाश उस मुडित, वृद्धी, पुराने गेरुए वस्त्र पहनने वाली, भिक्षा के लिये बेसठके घर में आई हुई, भयभीत और फड़फड़ाती हुई भिक्षुणी को जमीन पर पटक कर काम की हरकत कर बैठता है ।

तो इसके पास चलूँ । क्या कहता है—“इसका यह प्रायश्चित्त है—

१३५ (अ) कमल इव वक्षो मधुकरैः—मुँह कमल में भरे हुए भौरों से काले शीघ्र मधु की उपमा अति उपयुक्त है । पत्रकोश में से जैसे भोरे छिन्कते हैं ऐसे ही मुँह से मधु गण्डूय का फुहारा छूटता है ।

१३५ (इ) तरुण सहकार प्रियसरः—मधु में सहकार का रस मिलाया जाता था । तरुण सहकार = टटका सहकार रस । अथवा तरुणा का समागम जिसका प्रिय साथी है ऐसा विलासिनी के मुख का मधु गण्डूय युवकों से सार्थक होता है, विष्णुनाग जैसे खूब अरसिक प्रेमी से नहीं । विलासिनी द्वारा मधुगण्डूय सेक और पादाभिचार दोनों ही कामियाँ के पुरस्कार हैं । यहाँ पहले के व्याज से दूसरे के लिये विष्णुनाग की अपात्रता लक्ष्य ॥ ।

- १३७— (अ) वध्यता मेसलादाम्ना
 (आ) समावृष्य कचग्रहे ।
 (इ) अथ तस्या प्रसुप्ताया
 (ई) पादौ सवाहयत्तयम् ॥” इति ।

(१) भो एतदपि प्रतिहतम् । (२) एष इभ्यपुनश्चेत्पुनैरभ्यस्तनामा गान्धर्व-
 सेनको हस्तमुद्यम्य मामाद्वयति । (३) यद्येष हस्त ।

- १३८— (अ) बाधेषु त्रिविधेष्वनेककारणैः सञ्चारिताम्राङ्गलि
 (आ) ताम्राम्भोरुहपनट्टधिरिव यस्त ग्रीष्मं पर्यस्यते ।
 (इ) कोलम्बानुगतैन येन दधता श्रोणीतटे वल्लकी-
 (ई) गिभ्यान्त पुरसु दरीकररुहक्षपा समास्नादिता ॥

(१) यावदेनमुपसर्पामि । (२) (उपेत्य) (३) किं ब्रवीषि—

१३७—उसे चाहिए कि इसके बाल पकड़ कर खींचते हुए इसे अपने मेखला
 दाम से पहले गोंध दे । फिर जब वह गयन करने लगे तो यह उसके पैर दबावे ।

यह भी इसके लिये ठीक नहीं है । वह रईसजादा गान्धर्वसेनक जिसका
 नाम सब चेहों की जवान पर है हाथ उठाकर मुझे बुला रहा है ।

१३८—उसके हाथ की अँगुलियों तीन तरह के बाजों पर अनेक हस्त मुद्राआ
 म दौबती रही है । जैसे लाल कमल की पखुडियों का मेह बरसता है ऐसे वीणा
 के तारा पर सर्वत्र उसकी लाल अँगुलियों व्याप्त रही है । वीणा बजाते हुए इसने
 रईस घरों की अन्त पुर सुन्दरियों को पार्श्व में बैठकर उनको श्रोणी तट पर वीणा
 रख कर उनके नखक्षतो का मना लिया है ।

तो इसके पास चलूँ । क्या कहता है—

१३७ (अ) वध्यता मेसलादाम्ना—मदनसैनिका पहले अपना मेखला इसको कपि
 प्रदेश में घोंवर कामतत्र में शूय इस सौँदके साथ पुरुषायित रति करे और जब वह थककर
 विश्राम करे तो यह सेवक का भौंति उसका चरण सवाहन करे । मेखला-य धन का चयनना
 के लिये दे० धूर्तविट सवाद, श्लोक १६, कार्श्ययाग्यारणि पर निष्पणा ।

१३८ (इ) कोलम्बानुगतैन—काव के संस्करण में कोल बानुगतैन पाठ है ।
 दा० राघवन ने शुभ सूचित किया है कि मद्राम का प्रति में कोलम्बानुगतैन पाठ है ।
 कोलम्ब = वीणा का नाचे का तूवावाला भाग । अथवा बरार वरार के अभद्र से कोल
 बानुगतैन पाठ में, कोल बानुगतैन = वीणा विहार करते हुए (कोल = वीणा) । इस अर्थ में
 क्षप = अरि, डॉट ।

- १३६— (अ) “जघनरथनितम्प्रैजयन्तो
 (आ) सुरतरणव्यतिपङ्गयोगवीणा ।
 (इ) क च मणिरशना चराङ्गनाना
 (ई) क च चरणानशुभस्य गर्दभस्य ॥” इति ।

(१) (परिवर्तन) (२) अयमिदानीं दाक्षिणात्य कनिरार्यक प्रायश्चित्त-
 सुपादिशति । (३) कि वरीषि—

- १४०— (अ) “निम्नमचेष्टितेनेव
 (आ) दृष्टिपेण भूयसा ।
 (इ) शिर कणोत्पलनास्य
 (ई) ताड्यता मत्तया तया ॥” इति ।

(१) एतदपि प्रतिहतमनेन गान्धारकेण हस्तिमूर्तेण । (२) किमिदमुच्यते भवता—

- १४१— (अ) नरगिलिसित कर्णे नार्या निरेशितमन्धन
 (आ) सचितशशल दृष्टिपेराङ्गविलम्बिनि ।

१३९—“जघन रूपी रथ के पाङ्खों में पहरानेवाली पताका के सहज और सुरतयुद्ध में परस्पर मिलन के लिये बढ़ावा देने वाली झंकारती वीणा के समान वेश्याओं की मणिरशना ऊहों और ऊहों इस गधीले गर्दभ के पैर ?

(घूमते हुए) अब यह दक्षिण देश से आया हुआ कवि आर्यक प्रायश्चित्त बता रहा है । क्या कहता है—

१४०— “नखरो से भरी चितवनो के साथ वह मतनाली अपने कर्णोत्पल से उसके सिर पर बार बार प्रहार करे ।”

गान्धार देश से आए हुए हस्तिमूर्ख ने इसका कथन भी व्यर्थ कर दिया । तु क्या कहता है—

१३६ (अ) नितम्प्र = ध्रोणा प्रदेश, पारवै भाग ।

१३६ (अ) वैजयन्ती—(१) पताका, (२) वैजयन्ती माला । जघन रूपी रथ का वैजयन्ती पताका और नितम्प्र का वैजयन्ती माला ।

१४० (इ) शिर कणोत्पलनास्य—विपरीत रति का ओर सजेत है । कुमार सम्भव ४।८ (भवतसोत्पलनाङ्गना नि वा), भूतविजयसवाद श्लोक० १६, पादसाहितक श्लोक १२ (य वत्तति य मेखलाभिरथवा न भ्रन्ति कर्णो पलै) ।

१४१ (अ) नरगिलिसित—हाथा क नख को उत्कर्षण करके घनाया हुआ । विलिखितता यहाँ अर्थ उर्काव करना है । काशिका में दन्तलेखक, नखलेखक उदाहरण है (२।२।१७, ३।२।०३) । आटे और माविधर विलिखित के बोझ में ‘दात या नख रोगनवाला’ अर्थ चित्त है । ‘नखविलिखित’ प्रयोग से निश्चित ज्ञात होता है कि हस्ति दन्त या हस्तिनख का उत्कर्षण करके कर्ण पल आदि आभूषण बनाए जाते थे ।

(इ) यदि नरपशोरस्येदं भोः शिरस्यतिपात्यते

(ई) सुरभिरजसा प्रायश्चित्तं किमस्य भविष्यति ॥” इति ।

(१) बाढमेनमेतदिति प्रतिपन्ना विट्मुख्याः । (२) (परिवर्तकेन) इमान्परों मामाह्वयतः ।

१४२—

(अ) गुप्तमहेश्वरदत्तौ

(आ) सुहृदान्कासनस्विताभौ ।

(इ) उपगतकाव्यप्रतिभौ

(ई) वररचिन्नाव्यानुसारेण ॥

(१) यावदुपसर्पामि । (२) (उपसृत्य) (३) हण्डे गुप्त रोमश, किमाह भवान्—

१४३—

(अ) पादप्रक्षालनेनास्याः

(आ) शिरः प्रक्षाल्यतामिति ।

१४१—जो उत्पन्न हन्ति नख को उत्कीर्ण करके बनाया गया है, स्त्री ने जिसे अपने कर्ण में धारण किया है, एव जो उसकी अपागव्यापी चितवनों से झबलित हुआ है, उससे यदि इस नर पशु के मम्मरु का स्पर्श किया गया तो प्रायश्चित्त क्या होगा, उलटे उसकी सुगन्धित रज से यह पवित्र होगा ।

इसकी राय ठीक है । चण्ड विट्मुख्य भी यही कहते हैं । (घूमर) ये दो मुझे पुरार रहे हैं ।

१४२—एक ही आसन पर बैठे हुए गुप्त और महेस्वरदत्त ये दोनों मित्र महाकवि पररुचि की काव्य प्रतिभा के अभ्यास में प्रतिभशाली हैं ।

तो मैं इनके पास चलूँ । (पास पहुँच कर) अरे जनानिए मनुदे गुप्त, तूने क्या कहा—

१४३—“उसके पैर के धोवन से इसका सिर धोना चाहिए ।” त्रैविद्यरुद्ध

१४१ (इ) अतिपात्यते—बार बार गिराया जाय ।

१४१ (ई) सुरभिरजसा—इससे सूचित होता है कि उत्तमार्णवकर्त्रेण का सद्धि-द्रव्यजिह्वा में सुगन्धित द्रव्यों की धूलि भरने की कला थी । इसा युक्ति से सुगन्धित बनाए हुए भारत से रोम देश में भेजे जाने वाले गन्धमुकुट महीना तक सुगन्धित बने रहते थे ।

१४२ (ई) वररचिन्नाव्यानुसारेण—वररुचि का यह काय कौन था ज्ञात नहीं । उभयामिसारिका भाग अवश्य वररचिकृत है । सम्भव है उर्मा की नकल करके ये दोनों अपने को यद्वा कवि मानते हों ।

१४३ (ई) अनुसार काव्य—उसका अनुसरण या नकल करके बनाया हुआ ; या उसके जोड़ का ।

(१) कथमेतदपि विप्रतिपिद्धं त्रैविद्यवृद्धेरिति (२) सुहृद्भिरनुगृहीतनाम्ना महेश्वरदत्तेन—

(३) पादप्रक्षालनं तस्याः

(४) पातुमप्येष नाहति ॥ इति ।

(१) अयमपरोऽस्मत्सुहृत्सौवीरको वृद्धविटः स्वच्छन्दस्मितोदमया वाचा मन्ययते ।

(२) क्रियाहभावान्—

१४४—

(अ) “निर्भूषणापययचारुतराङ्गयष्टिं

(आ) स्नानार्द्रमुक्तजघनस्थितकेशहस्ताम् ।

(इ) तामानयाम्यहमयं तु दधातु तस्याः

(ई) नेत्रप्रभाशिवलगणदलमात्मदर्शम् ॥” इति ।

इसका प्रतिषेध करते हैं—यह राय देते हुए मित्रों की मण्डली में प्रिय नाम वाले महेश्वरदत्त का कहना है—

उसके पैर का धोवन भी पीने लायक यह नहीं है ।

यह दूसरा हमारा मित्र सौवीर देव का बूढ़ा विट स्वाभाविक मुस्कराहट युक्त वाणी से मुझे बुला रहा है । तू ने क्या कहा—

१४४—जब अंगों के आभूषण उतार देने से उसका शरीर स्वाभाविक कान्ति से और सुन्दर लग रहा हो, जब स्नान के अनन्तर उसकी गोली लट्टे जघन स्थल पर विधुर रही हों, उस अवस्था में मैं उसे यहाँ ले आता हूँ । तब यह अपना दर्पण उसके सामने लेकर खड़ा हो, जिसके गोल भाग को वह अपने केशों का प्रसाधन करती हुई अपनी नेत्र प्रभा से श्वलिखित करे ।

१४३ (१) स्वच्छन्द स्मित = स्वाभाविक हँसता, यह सुस्मराहट जो अपनी हृष्टता के अनुसार हो, दूसरे के कारण नहीं ।

१४४ (अ) निर्भूषणापयय—स्नान से पूर्व आभूषण उतार कर ।

१४४ (आ) चारुतराङ्ग यष्टि—जिसकी अंगुष्ठेय अपने स्वाभाविक गौर वर्ण से अधिक प्रदीप्त ज्ञात हो ।

१४४ (आ) केशहस्त = केशवस्त्राप (भाष ३।२१) । पाशः पञ्चदश हस्तद्वय कलावाभाः कक्षापरः—अमर ।

१४४ (ई) मण्डल—दर्पण का ऊपरी गोल भाग । दर्पण के नीचे को डंडी यह हाथ में पकड़ कर ऊपर के गोल भाग को उसके मुख के सामने किए रहे ।

आत्म दर्श—स्वरूप देखने का दर्पण । दर्श = दर्शन, दर्पण । यह शब्द अभी कोशों में नहीं है । आत्म = स्वरूप, आकृति । आत्मदर्श की एक व्यवज्ञा यह है कि यह प्रापञ्चित के भाव से उसके सामने खड़ा होकर अपना प्रदर्शन करे । यह भी व्यवज्ञा है कि यह उसके सच्चे स्वरूप का दर्शन करने के लिये अपनी नेत्र दृष्टि से उसके चारों ओर शयल मंडल बनाता हुआ खड़ा रहे ।

(१) इदमपि प्रतिपिदधमनेन कविना दाशेरकेण रुद्रवर्मणा । (२) किं ववीषि—

१४५—

(अ) “विद्वानयं महतिं कोकिकुले प्रसूतो

(आ) मन्त्राधिकारसचिवो नृपसत्तमस्य ।

(इ) वेश्याङ्गनाचरणपातरजोऽवधूतान्

(ई) केशान्न धारयितुमर्हति मुखेभ्यतां सः” ॥ इति ।

(१) एष सत्त्वनुग्रहीतोऽस्मीत्युक्त्वा विष्णुनागो विद्वापयति । (२) “किं किल सदागमितं दासीपदन्यासधर्पितं शिरो विच्छिन्नमिच्छामि प्रागेव तु शिरोरुहाणि” इति । (३) कथमेतदप्यस्य प्रतिहतमनेन विटमहत्तरेण भट्टिजीमूतेन । (४) किमाह भवान्—

१४६—

(अ) स्तलितचलयशब्दैरञ्चितप्रलतानां

(आ) सचितनसमयूरैरङ्गुलीयप्रभाभिः ।

(इ) कितलयसुकुमारेः पाणिभिः सुन्दरीणा

(ई) सुचिरमनमिमृष्टान् धारयत्येव केशान् ॥

दाशेरक कवि रुद्रवर्मो इसका प्रतिपंध करता है । तू क्या कहता है—

१४५—“यह विद्वान् उच्च कोकिकुल में पैदा हुआ है और राजा के मन्त्राधिकार का सचिव है । वेश्या के पैर लगाने की धूल से सने हुए बालों को इसे नहीं रखना चाहिए । इसलिए इसका सिर मूँड दो ।

‘मुझ पर आपकी कृपा हुई’ यह कह कर विष्णुनाग बिनती करने लगा है— ‘बाल काटने के पहले मैं अपने इस सदा नमित और वासी की लात से अपमानित सिर को ही काट डालना चाहता हूँ ।’ इसकी इस बात का भी विटमहत्तर भट्टिजीमूत यह जवाब दे रहे है—

१४६—टेढ़ी मौहों वाली सुन्दरियों के सरकते कड़ों की अंकार वाले, नखों की किरणों से खचित, अँगूठी की गोभा से युक्त और किसलय की तरह सुकुमार हाथों से कोई भी सुन्दरी इसके बालों का प्रमाणन न करे, और यह वैसे ही रखे केशों को धारण किए रहे ।

१४५ (आ) मन्त्राधिकार सचिव—श्लो० १३ में उम्मे राजा का शामनकर कहा गया है । अतएव ज्ञात होता है कि विष्णुनाग मन्त्रि मंडल के अधिकरण के अन्तर्गत शामन या दान-पत्र विभाग का सचिव था ।

(१) अपि चेदमस्याः प्रायश्चित्तं श्रूयताम्—

- १४७— (अ) तस्या मदालसविधूर्णितलोचनायाः
 (आ) श्रोत्रयर्पितकक्तरसंहतमेसलायाः ।
 (इ) सालककेन चरणेन सनूपुरेण
 (ई) पश्यत्वयं शिरसि मामनुगृह्यमायाम् ॥

(१) एते विटाः साधुवादानुयाया 'एतदेव प्रायश्चित्तम्' इतिवादिनः सम्भावयन्ति विटमहत्तरं भट्टिजीमूतम् । (२) एष सर्वथाऽनुगृहीतोऽस्मीत्युपत्त्या प्रस्थितस्ती-
 रिडकोक्किविष्णुनागः । (३) एष मामाह्वयति विटमहत्तरो भट्टि । (४) अयमस्मि ।
 (५) किमाह भवान्—“अनुष्ठितमिदं किं ते भूयः प्रियमुपहरामि” इति । (६) भोः
 श्रूयताम्—

- १४८— (अ) कुट्टिन्यश्चतुरकथा भवन्त्यरोगा
 (आ) धूर्तानामधिकशताः पणा भवन्तु ।

उस मदनसेनिका के लिये भी प्रायश्चित्त सुनिप—

१४७—मद से घूमते हुए नेत्रों वाली वह नितम्ब पर एक हाथ रखकर मेखला सँभालती हुई अपने अलत्तकरंजित नूपुरयुक्त चरण को मेरे सिर पर रख कर मुझे अनुगृहीत करे और यह तैण्डिकोकि विष्णुनाग डुकुर डुकुर देखता रहे ।

‘यही ठीक प्रायश्चित्त है,’ यह कह कर सब विट साधुवाद देते हुए भट्टिजीमूत का समर्थन कर रहे हैं । ‘अब मैं सब तरह अनुगृहीत हो गया’ कह कर तौण्डिकोकि विष्णुनाग चला गया । विटमहत्तर भट्टि मुझे बुला रहे हैं । मैं आया । आप क्या कहते हैं—“यह सब तो हो गया । अब आप सबका क्या मिय करूँ ? वह भी सुन लीजिए—

१४८—नौक भौंक की बातों में चतुर कुट्टिनियों सकुशल रहें, धूर्तों की सैकड़ों की आमदनी सही सलामत बनी रहे (वे निछद्म माल फाँटे), इस नगरी में

१४९—अनभिष्ट—अब भविष्य में कुटिल अकुटिल वाली कोई सुन्दरी अपने पल्लव सुकुमार हाथों से, जिनमें कंकणों की कनकार उठती हो, जिनके गलों को रश्मियाँ जडाक अँगूठी की किरणों से मिल कर चमकती हों, इसके केशों का संस्कार न करे और बहुत समय तक इसे उन्हें उसी तरह संस्कारविहीन रखना पड़े ।

१४७ (१) एते विटाः—ज्ञात होता है कि विट गोष्टी के निर्णय सर्वसम्मति से किए जाते थे । एक का भी विरोध होने पर दूसरे का सुकाव प्रतिहत या अमान्य समझा जाता था ।

(३) मूयासुः प्रियविटसङ्गमाः पुरेऽस्मिन्

(३) वारस्त्रीप्रणयमहोत्सवाः प्रदोषाः ॥

(?) (निष्क्रान्तो विटः)

इति कवेरुदीच्यस्य विश्वेश्वरदत्तपुत्रस्यार्यश्यामिलकस्य कृतिः

पादताडितकं नाम गायः समाप्तः

विटों की सुखकर गोष्ठियों जमती रहें और संध्याओं में चारविलासिनियों के प्रेम भरे जलसे होते रहें ।”

(विट जाता है)

उदीच्य कवि विश्वेश्वरदत्त के पुत्र आर्यश्यामिलक की कृति

पादताडितक नामक भाग समाप्त ।

परिशिष्ट १

अ

श्लोकानुक्रमणिका

उ

असेनासमभिघ्नता
अथ जयति मदे
अधरोष्ठरक्षणीनाम्
अधिदेयतेव तमसः
अन्यस्त्रीसेवनं
अपि च मयूरकुमार
अरञ्जरमिदं लुठति
अलमलमतिस्त्रभमेण
अनिचिन्त्य फल
अयाथिग्लानमङ्गम्
अशोक स्पर्शेन द्रुम
असाधन्वारूढो मद
अस्या नेत्रान्त
आक्षिप्तस्तत्रा प्रशिथिल

आ

आढ्यास्ते दयिताः सन्तु
आतोद्य पक्षिसपास्तवरस
आत्मगुणेन घसन्तो
आदष्टस्फुरिताधरे
आद्वापदनुगम्य साधु
आश्चर्याभिनवाम्बुजद्युति
आषट्मण्डलाना
आर्षाऽदिम शुद्धचरितो
आलम्ब्यैनेन कान्त
आलिङ्गितोऽपि ॥
आलोप्यनारमलिरि
आवलिगतस्तनतणानि
आसानैरधलीदचक्र

इ

इदमपर प्रियमुद्द
इयमनुनयति प्रिय
इदमिह पदं मा भूदेव
इयमुपहितदर्पणा

ई

ईषत्नीलाभिदध

पा ३० उत्प्ल्यालम्बमीपत्
पा १२३ उत्क्षिप्तालकमीक्षणान्त
धू ६६ उद्यानानि निशाथ
पा १११ उभिद्राधिकतान्तताम्रनयनः
धू ४४ उन्मत्ते नैत्र तावत्
पा ११४ उपवीणित एष गर्दभः
पा ७७ उरसिभृतकपोतः
पा ३६ उहि माणुसोत्ति
पा ४४

ए

एते प्रयान्ति बलभीपु
एते विमान्ति गणिका
एते मज्जन्ति गुरगेश्व
एषा कामिकरागुलिप्रिय
एषा रौत्युपनेशिता

क

कचनिग्रहदोर्षलोचना
कथमियमनिकन्दुकक्रीडया
कदम्बगन्धमादाय
करभोगैर्गुप्तगलो
करविचलितजानु
कर्णद्वयावनतकाञ्चन
कलमधुररत्नकण्ठी
कलाविशानसपत्ना
कष्ट कष्टमिति
काञ्चीनूर्यमसत्तपीनजघन
कान्त कन्दर्पपुष्प
कान्त रूप यौवन
कान्ता नेत्रार्धपाता
कान्तान्यर्धनिमीलितानि
कामस्तरस्विपु
कामावेश कैतवस्यो
कारानिरोधादविकार
काव्ये गन्धर्वे नृत्तशाले
किं कामी न कचग्रहैर्
किं कृत्वा अकुटीतरङ्ग

धू ३६
पा १२५
उ ३४
प ७
प ३६
पा १३१
पा ५६
पा ६२

पा १०३
पा १२१
पा १०६
धू १६
पा १०४

पा ४७
पा ३८
धू ५
पा ७८
पा २५
पा ११३
पा ८२
प १२
पा १२७
धू १२
प ३६
उ ५
धू ३१
धू ६
पा १२२
प २३
पा ६०
पा ५३
पा १२
प ५१

किं नीले स्वल्पम्	पा १०६	तामेहि किं तव	पा ६६
किमुक्ता केन त्वम्	पा १४	तिर्यक् त्रपावनत	पा ११
कुट्टिन्यश्चतुरकथा	पा १४८	ते दग्धाः प्रविशन्ति ये	धू ४
कुले प्रसूतः श्रुतवान्	प ० ४१	त्यक्त्वा रूपाजीवा	पा ६५
कुञ्ज्राहत्तोष्ठविभ्र	उ १४	स्वस्व कान्तेति	धू ५५
कृत इह कलहो कृतेह	धू १५		
कृत्वा विग्रहमागतोऽसि	प १६	दत्तात्मजाः मुन्दरि	प ४२
कृशा विवर्णा परिपाण्डु	प ३७	दग्गः शालमलिवृद्धः	प ८८
केशान्तः स्नानरुद्धो	धू ६२	दन्तपदजर्जरोष्ठी	प ३५
केशेषूकृत धूपवास	धू ४०	दर्शयति कामलिङ्गं	धू ४६
कैश्चित् गौरवमित्य	पा १४	दशनपदचिह्नितोष्ठ	उ ७
कोपापगमे नार्पाः	धू ४६	दशनमण्डलचित्रक	पा ५६
कोऽसि त्व मे का वा	उ १	दातारः सुलभाः कला बहुमताः	धू १०
		दानाद् रागमुपैति	धू २०
लदिरतवनात्मगुता	पा ११६	दिवसमलिल कृत्वा	पा १५
		दुग्धा श्लेषयितु कभा	धू ३३
गणिकायाः कावस्थान्	पा ८१	दुश्चीनरायनसकृत	पा ६७
गतः पूर्वां यामः	पा ७०	दृष्टिस्तेऽतिविशालाचार	उ १६
गते तु कोपे प्रथमे	धू ४८	देवकुलाद् यजकुल	पा १६
गण्डान्तागलितैक	पा ५२	देहत्यागेन शमोः	पा १
गायन्त्येषा वल्लु	पा १०७	द्युतेषु मा स्म विजयिष्ठ	पा १२८
गिरिभ्यो ह्येभ्यो	पा २३	द्रव्य ते वगुरायताञ्चि	उ १८
गुणमद्देवपरदत्तो	पा १४२		
ग्राणे वासः श्रोत्रिष	धू ३८	धन्या भवन्ति सुभगे	उ १७
		धवलप्रतिमायामपि	पा ११२
		धाम्न्यात् सगोपहारः	धू ४१
च कोर चितुरेक्षणा	पा ११५	धुन्वन्त्याः करपल्लव	पा ४१
चरणकमलकुम्भीर	पा १७	ध्रुवो गण्डाभोगे कमल	पा १३५
गुणवन्तः सांऽस्याः	पा ३३		
गुग्गुलेनेदमाढाय	पा १००	नराविलिखित कर्णे	पा १४१
		नग्नः स्वाति मद्राजने	पा ४३
जघनरथनितम्ब	पा १३६	न ग्लानं वदन न केश	उ १२
जयति भगवान् स रुद्रः	प ०	न निम्बिनुमनिन्दिते	पा ७३
जयति मदनस्य येन	पा ७	न त्वाहमतिरर्तिष्ये	धू ७१
जन्मपरनीयलेपः	धू २	न प्राप्नुवन्ति मनसो	पा ५
जात्यन्धा मुक्तेषु दीन	धू १३	नम इव शतचन्द्र	पा १२०
		नयनमलिलैर्वैरैर्वै	पा ३५
तप मरुतु यौवनभी	उ ३२	नागवद् विष्णुनाभा	पा १२४
तस्या मशान्मविष्मिन्	पा १४७	निषी कृतेऽपि नहि	धू ५६
तो मुन्दरी द्योगिय	पा ६७	किञ्चनदना शोकजाना	प २८
ताते पयसा पयगवे	पा १३२		

निर्गम्यता वसरिलाल	पा ४	प्रिय प्रियार्यं कटु वा	धू ६०
निर्धूतहस्ता निनिगूढहासा	पा १२६	प्रियविरहे यद्दुःख	धू ३५
निभूषणावयवचार	पा १४४	प्रेम्होत्तुखडलाया उलम्ब	प ३१
निवृत्तसगीतमृदङ्गसन्निधाः	धू ७	वदूषा मानिनि मेगला	धू ७०
निश्चस्पाधोगुणी किम्	प ३३	वृष्यता मेखलादाम्ना	पा १३७
निषेध सलोलितमूर्धनानि	धू १६	बाला बालत्वाद् द्रव्य	धू ४५
निष्फल जीवन तस्य	उ ३०	बिभ्रात्तेक्ष्णमक्षतोष्ठ	प ८
नीचैर्मानः प्रियचनता	धू ५७	म	
नेत्रनिमीलननिपुणे	पा ६८	मद्र ते बलगीगवाह	प २६
नेत्रागु वक्षमभिः	पा ६४	भयद्रुतमन्वितप्रचलमेखला	प ४४
नेत्रैरर्धनिमीलितैः	धू १७	भुक्ता भोगानोस्तिताम्	उ १६
नैनाह कामयामीत्यसदृद्	प ४०	भ्रान्तपचनेषु सप्रति	धू ६
प		भूक्षेपाक्षिविचार	उ २२
पद्मोत्तुल्लभीमद्वक्त्रा	प २०	म	
परभूतचूताशोका	उ ३	मधुरैः कांकिलाक्षायैः	उ ४
परिचरतु गुरुनपैतु	पा १२६	मातुर्लोभमगार्य	उ १०
परिष्वक्ता यत्तुः	पा ६१	मुक्तालंकाशोभा	उ २८
पाटप्रद्वेगेऽवश्य बाध्यः	धू ३७	मुग्धा वृद्धा जीर्णकापाय	पा १३६
पादप्रक्षालनेनास्याः	पा १४३	मूलादपि मध्यादपि	प ४
पाश्चावर्ति तलोचना	पा ४६	मुगयन्ते तदधिभूता	पा ८०
पुण्याहवाद् वेदाम्नासाः	प ६	मेढः क्षयाय पीतो	पा ७४
पुष्पसमुज्ज्वलाः कुरङ्का	प २	य	
पुष्पस्त्रादहासः	प १०	यः सङ्कल्पपहितपणयो	पा १८
पुष्पेभ्येति ज्ञानुदघ्ने	पा ११८	यथा काञ्चीशब्दश्च	पा ८७
पूर्वावन्तिपु यस्य येषा	पा २०	यथा नेत्रेन्द्राः कुटिल	उ २६
प्रचलक्विसलयाप्रप्रवृत्त	प ६	यथा प्रतोदोऽवहित	धू ४२
प्रणमकलहोत्थतेन	पा ८	यदा सर्वोपायैश्चटु	पा ७२
प्रणष्टा न व्यक्तिर्भवति	धू २५	यद्यपि वपस्य कुञ्जा	पा ६३
प्रतिनर्तयसे नित्यम्	उ २६	यद्माद् ददाति स वसूनि	पा २१
प्रतिमुखपवनेर्वैगात्	पा ११७	यस्यामिना न बहवो	पा ४६
प्रथमवयस स्वसन्न	उ ८	यस्यास्मास्रतलाङ्गलिः	धू ५३
प्रथमसमागमनिभूतः	धू ६५	यास्त्व मत्ता	पा ६४
प्रदीपकरवल्लरी	पा १०५	ये कामिनीं गुणवर्ती च	धू ३६
प्रध्याति त्रिष्णुदासो	पा ७६	येनापयन्तश्चकमालव	पा ६०
प्रभातमवगम्य प्रष्टु	पा ५०	यो गुम्युल् विव्रति	पा ७६
प्रयत्नस्या गात्रा	पा ६	यो मा परयसि	धू १४
प्रयत्नहनिरोधयेदलसा	धू ८	र	
प्रनाललालाहलिना	प ३०	रञ्जनीऽपयानमृचको	पा ७५
प्राकाराग्रे गवाक्षे	पा १०२	रत्यर्थिनी रहसि य	प १८
प्रागल्भ्य स्थानशीर्य	धू ६४	रमण निवारयन्तो	उ २७
प्राप्त इव शरत्कालः	प १३	रमात्वादितयौ नप्रति	प २१
प्रायश्चारापर्यदा चक्षुमपि	प ३२	रजनि निद्रमय्ये	धू ३४

रुढस्नेहाय युक्तम्	धू ५१	शान्तिं यान्ति शनैर्	उ २५
रोमाच दर्शयता	धू १८	शुक्लसितान्तरका	प ३४
रोमाचकर्कशाम्याम्	पा ६६	शून्ये वा सप्रमर्द्य	धू ४७
ल		श्रमनिस्तुतजिह्मु-मुप	पा ६५
लब्ध्वा गम्गं प्राप्य	उ २०	श्रवणनिकटजैनसाक्षात्पातैः	पा ५५
ललाटे विन्यस्य क्षतज	पा ४२	श्रीमद्देवेशममृदङ्ग	धू ३
स्त्रीव्योद्यतस्य कलहे	धू २८	श्रीमन्तः सखिभिर्	पा ११६
य		रवेताभिर्नखराजिभिः	पा ३२
वर्णानुरूपोज्ज्वल चारु	पा ८६	ख	
वसन्तप्रमुखे काले	उ २	संरुढदीर्घनखलोम	उ २४
बाद्येषु त्रिविधेध्वनेक	पा ११८	सचेष्ट्य द्वाञ्चतरीयेण	पा ५८
बासन्तीकुदमिश्रैः	प २५	मकेफरा मन्दनिमेष	धू ५२
विकचनघोस्पर्शतिलका	धू २६	सखि प्रथमसङ्गमे	पा ६८
विक्रीणन्ति हि कवयो	पा ११४	सगीतैर्बनिताविभूषण	पा २२
विक्रीणाति हि काव्य	पा १३३	सचारयन् कलभक	पा ५४
विलम्बितविशेषक	प २६	सफलं तस्य कुशोदरि	धू २७
विद्याया ख्यापिता ख्यातिः	धू १	सभ्रूक्षेप सहास	पा २
विद्वानय महति	पा १४५	समुपस्थितस्य जघनं	पा ४८
विधेयो मन्मथस्तस्य	उ ६	सपातेनातिभूमि प्रतरसि	प २२
विपुलतरललाटा	पा ४५	सर्वथा रागमुत्पाद्य	उ १५
विप्रोप्यागत उत्तुका	पा ६६	सर्वैर्वीतमयैः	उ ६
विभ्रमवेदितेनैव	पा १४०	सभिभ्रान्तैर्याति	पा ६२
विरचयति मयूतैः	पा १०८	ससभ्रमररभृतस्तः	प ५
विरचितकुचभारा हेम	पा ५१	ससभ्रमोद्धूतविपुर्णिता वा	धू ६१
विरचितकुन्तलमौलि	पा ५७	साक्षा निश्वासा स्नेहयुक्ता	धू ३२
विलोल भुजगामिना	पा ४२	सी-कारोत्पलितस्तनी	धू २६
विलभाच्च हृताशुकस्य	धू २०	मुमनस इमा विक्रीयन्ते	पा १६
विलम्बो गतवीवनामु	धू ५०	मुवाक् मुवेपा निभृता	धू ५६
वेलानिलैर्मृदुभिरा	पा ६१	सूर्यं यजन्ति दीपैः	प ११
वेश्मालाङ्गण प्रविष्टो	प १४	सौरभ्यैरिषि गच्छ	पा १०१
वेश्याभयनरथस्थः	धू ६३	स्फलितवलयशब्दैः	पा १४६
व्यतिकर मुपभेदः	पा ६	स्निग्धैः प्रश्लिष्टैः	उ २१
व्यसगतमदरागा	पा १०	स्यात् कोपाद् रुदित	धू २१
व्यथं प्रमथते वदत्यवधिते	धू ४३	सस्तेस्वगेष्वाटकान्	पा ८३
व्याकोचामभोजनान्त	उ ३५	स्वगुणाः सद्गुणाः	उ ११
व्याघ्रेषु कुस्तस्तनौ	उ २३	रज्ज्वान्ते नखदन्तविज्ञतमित्र	प २७
श		स्वरः सानुस्वारः प्रपतति	पा २८
शक्यननुपार	पा २४	स्वस्तीत्युक्त्वा बन्दनाया	पा २६
शकुनीनामिवावासे	पा २७	स्वैः प्राणैरपि निद्रिषः	पा १६
शङ्करश्चल पितरं	पा ८५	स्वैरालापे स्त्रीवयस्योपचारे	प १७
शर्कपालस्य गृहे	पा ८४	ह	
शंखयोमजगाह्य हर्म्यं	धू २४	हस्तालयिन मेगलाम्	प ५४
शशिनमभिसमीक्ष्य	उ ३१	हस्ते ते पणिमृज्य	धू ११
शालामनृत मन्दो	धू ६८		

परिशिष्ट २

लोकोक्ति-सूची

अ

अनपदानक्षममेतद् राजयौतकम्	प २६।२
अनागतमुखाशया प्रत्युत्तरितमुत्त-	
त्यागो न पुरुषार्थः	प २१।२६
अनुवृत्तिर्हि कामे मूलम्	धू ५६।११
अयद्धि शास्त्रमन्यथा पुरुषप्रवृत्तिः	पा ६५।३
अग्निं त्यातांनुगतानि प्रायश्चित्तानि	पा १३१।१
अप्रुमान् शब्दनामः	पा ७८।५
अमृतसंज्ञं किमपि भ्रूयते आयुर्वंशः	
वस्थापनं रमायनम्	धू ४८।४
अमृतद्वन्द्वो नाटकः सवृत्तः	प २२।२
अयं तु तपस्वी लोकः विप्लिकाचमौड-	
न्योन्यानुचरितानुगामी	धू ६७।१
अर्थस्य त्रय एव विधयः दानमुपमांगो	
निधानमिति	धू ५८।४
अग्निचिन्त्यं फलं बल्ल्यास्त्वया	
पुण्यत्रयः कृतः	पा ४४।अ
अनिश्चयसनीयनि खलु गणिकाजनस्य	
हृदयानि	उ २०।८
असद्वृत्तिमापस्य वेशप्रवेशो निराशुषस्य	
सद्भ्रामावतरणम्	पा ३०।३

आ

आकारसवरणमप्याकार एव	प २५।३८
आकारसवरणं हि महात्माना न शक्नु-	
वन्ति कर्तुम्	धू ८२।०
आरुच्यते वा सद्विशेषः किं नैकमूलो न	
लताद्रयेन	पा ४२।८-ई
आन्नेभ्यपन्न इव दर्शनमात्ररूपः	पा ७६।ई

इ

इह खलु भगता समुद्राम्युत्थं नियते	
यद् वार्गाश्चरं वाग्भिर्चर्यति-	प १०।८
इह कृत्स्नता मर्षपापोयसी	धू ६२।३
इह खलु वर्पतुं ज्योत्स्नादर्शनम्	प ३३।१०

उ

उदकतैलं विन्दुवृत्त्या विकसितं यशः	पा ६०।८
उपनीयित एव गर्दभः	पा १३१।अ

ए

एकाक्षरातमात्रेण घनदस्यपि विभज्यहरण-	
समर्था द्यूतः	उ २३।१७
एति बीजन्तमानन्दो नरं वर्पयतैरपि	पा ८।६

क

कलहोयऽमुपचारो नु	प १७।१८
कश्चन्द्रोदयं प्रशशयति	पा ६०।६
कष्टं भो कोकिल खलु कौशिकमनु-	
वर्तते	पा १०३
किं वसन्तमासो न पुष्पोपहारमर्हति	प १०।६
कितनेष्वपि नाम कैत्रमासस्यते	॥ १८।२२
किमिति त्वया दिवा दीपप्रज्वालनं	
क्रियते	प ८।१३
किमिदं गापालकुलो तत्र निजयः	

क्रियते

क्रियते	प १८।२१
किमिदमाकाशरामन्यनं क्रियते	प ६११
किमिदं गुणस्य लीङ्मन्त्रीलया स्थीयते	प १८।१६
कुडिन्यश्चतुरकथा भवन्त्वरोगाः	प १४८।अ
कुमुदाननप्राधन्यं दिवाचन्द्र	
लीलयाऽतिशयमिति	प ११।१४
कुम्भटासीकृतकद्वित दुग्धकिस्सम्	धू ६।३

कैशिकाश्रयं हि गानं पर्यायशब्दो

रुदितस्य प ३१।२०
क्षिप्तः कदर्थयित्वा हेमन्ते तालवृन्त
इव प १३।६-ई

ख
खदिरतरुमात्मगुता पटोलवल्ली
समाभिता निम्बम् पा ११६।अ-आ

ग
गणिकाजनो नाम वैशुन्यमाभृतैवा

जातिः प ४२।१०
गणिकामातरो नाम कामुकजनस्य
निष्प्रतीकारा ईतयः उ २१।१
गुणवती परिपदिता प १५।१

घ
चक्षुषि हि सर्वे भावा नियताः
चोरि सहोदामिपरीता केदानीं
यास्यति प २७।१

छ
छन्नेन चन्द्रातप इव प्रतिपिभ्यते प २१।१६

ज
जरद्भुजंगइव जरात्वमुत्सृजामि प २०।१२

ड
टिडिनी हि नामैते नातिविप्रकृष्टा
वानरेभ्यः पा ६२।४

त
तद्रात्वमेवावेक्षितं नावतिगम् प २१।२५
तदात्वायत्नोस्तदात्वमेव गरीयः

प्रत्यक्षफलत्वात् पू ६४।१०
स्वानुष्ठेयं मित्रवार्यम् उ २०।४

द
द्राक्षिष्यं विरूपायपि स्त्रियं भूयति पू ५५।७
दानं नाम सर्वसामान्यं वशीकरणम् पू २६।२५
दीर्घगुप्ता नाम कार्यान्तरमुत्पादयति प ३८।११

ध
धूतानामपिकशताः पन्था भवन्तु पा १४।अ

न
न दीपेनाग्निमार्गं क्रियते प २१।२७
ननु सायं प्रातर्होमो वर्तते प २५।२५
न प्राप्नुवन्ति यतयो रुदितेन

मोक्षम् पा ५।अ
न रोहति परिक्षतं हृदयम् धू ३५।ई
न वायसोच्छिष्टं तीर्थजलमुपहतं भवति प २१।७
न सुखं दीपेनान्यकारं प्रविशति प १८।२६
निर्मन्त्रिकं मधु पिपासति घूर्तगोष्ठी पा ४।ई

प
पटोलवल्ली समाभिता निम्बम् पा ११६।आ
पयसि श्रुत एष माहिपे सहकारस्य
रसो निपातितः पा १३१।६-ई
पायसोपवासमिव क एतत् श्रद्धास्यति
प १८।३४

पिता नाम खलु सयौवनस्य पुरुषस्य
मूर्तिमान् शिरोरोगः धू ११।६
पीतेनात्र किमौपधेन कडुना प १६।ई
पुनि सर्पिः विबेति पा २६।ई
प्रचुरपादपान्तरचारिणीव कंकिला
स्वभावस्वरविल्वपादमाभिता प १७।७-अ
प्रत्यक्षे हेतुवचन निरर्थकम् धू ३४।३
प्रायेण दोष्कुलेयाः सहैव दम्भेन
जायन्ते पा ८५।६-ई

भ
भो येष्वा लिपिकारश्च छिद्रमहारित्वा-
स्तुल्यमुभयम् धू ४६।४

म
मदनीयं खलु पुराणमधु प २१।१
मनोमयं व्याधिमदारुणौषधम् प १७।ई
मन्त्रावरुद्धो भुजंगमोऽजङ्गमः धू २०।५
महान्तः खलु महतामाग्भाः पा ११७।१३
महेन्द्रादयोऽप्यहल्यायामु विवृतिना-
पन्थाः धू ६४।५
मृतमपि पुरुषं मञ्जीरयेद् घोरपा-
मुग्रस्तः धू ११।२४

मेघावगूढमनि चन्द्रमस कुमुदती-

प्रबोधः सूचयति

प ३६।६

य

यननी गणिका, वानरो नर्तकी, मालव.

कामुको, गदंभो गायक इति

गुणतः साधारणमवगच्छामि पा ११५।१

युक्त नित्यसज्जिता भगवतो सुगदेवो

प्रतिहारयद्दे

पा ६७।१०

रक्ता सजादयति बल्लरुमुल्लेन

प १८।६

रागो हि रञ्जयति चित्तवता न शक्तिः पा २१।६

ल

लघुल्लोऽपि बलवान् मदन-याधिः

प ६।९

लज्जा नाम विलासयौतकं प्रमदाजनस्य

प ४१।६

लाटकिङ्किनो नामैते नातिगिनाः

पिशाचैभ्यः

पा ४२।७

च

बल्लकीमुल्लुकेन मा घादी.

पा ११।५

वामशीला हि नार्यः

धू ४७।६

ग्रायस इव ग्रामापात्त न मुञ्चति

धू २७।७

विशया कृपापिता रुधातिः

धू १।४

विपणिद्वय इवैवो भ्याति निद्रा च

याति

पा २५।६

विरम सह समहीतु बिल्वद्वयमेक

हस्तेन

पा ६६।६-६

वृथा मुण्डनश्चिद्विद्वद्गुणपत्रते

प २४।१२

मा

शाखं नामार्यनिर्गतको बुद्धिविशेषः धू ५६।६

शिरोवेदना नाम गणिकाजनस्य

लक्ष्याधिर्योतम्

पा ३६।१८

स

सदृशेन नम्रमालिकामपचिनोपि

प १८।३२

सहितमिदं तत्प तत्तेन

पा ५२।३

सज्जनाराधन धनम्

धू १।४

सदृशसयोगी हि भगवान् मदनः

धू १०।१२

समुत्सर्पिष्क हि परमन्न सोपदश-

मास्याद्यतर भवति

प ६।६

समुपलोकित एव वानरः

पा ११।१४

सर्वथा नास्त्रयपिशाचमैश्वर्यम्

पा ५६।१

सर्वथा सदृशयोगेषु निपुणः खलु

प्रजापतिः

पा ११।५।२

सर्वोऽपि विरितकामः कामी भवति

प ३०।५

सुकुमारः खलु कामिनीसपरिग्रहः

प १७।१७

सुमनसो मुसलेन मा दौस्त्यीः

पा ११।४

सूर्यं यजन्ति दीपे समुद्रमद्भिर्वभन्त

अग्निं पुण्यै

११।३-४

स्तब्धता च कामस्य महान् शत्रुः

धू ५५।१०

स्वर्गायति न परिहासकथा रुणद्धि

पा ५।४

सन्तुष्टस्यापि जनस्य न स्वमृते

पर्याप्तिरस्ति

प ३०।३

परिशिष्ट ३

विट भाषा की विशेष शब्दावली

विटों की भाषा में अनेक धार्मिक शब्दों के विशेष अर्थ व्यंग्य से समझे जाते थे। यह भाषा बहुत अधिक मैत्र गई थी। इसने चारों प्रयोगों की व्यवस्था जैसी चतुर्भाषी में है संस्कृत साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलती। तथागत, तथा, मृग, पुरुष, प्रकृति, क्षेत्रज्ञ, अलेपक, निस्सग आदि शब्दों में भरी हुई अर्थों की नुकीली धार देखने योग्य है।

अकरुण राग—पा ३२।७ (१) कष्टकारिण प्रेम, (२) निष्ठुर रति।

अकल्य रूपा—पा ८८।२० (१) जो शरीर से अस्वस्थ है, (२) वह वेश्या जिसका रूप या सौन्दर्य पुराना पड़ गया है, दृढ़ो, पूर्ण प्रणयिनी।

अप्रसस्य—पा १६।३ (१) पहली पसल, (२) मुरत से पूर्व चुम्बनादि।

अप्रहार,—धू २६।६ (१) मापी की भूमि या आयदाद, (२) कामदेव की मापी (मदनाप्रहारा)

अचौक्य—पा १८।६ (१) जो चौक्य या भागवत नहीं है, (२) जो वेश्या रत होने के कारण आचार शुद्ध नहीं है।

अतिदिवाचिहार—पा ४२।२ (१) दिनमें मिलने छुलने के लिये अधिक बाहर रहना, (२) दिन में ही वेश प्रसंग या रति कर्म में लीन रहना।

अप्रत्यभिज्ञान—पा ८८।१४ (१) बिना ज्ञान पहचान, (२) वर्तमानकाल में वेश्या का प्रत्यक्ष अनुभव कराए बिना। प्रत्याभिज्ञान दर्शनका परिभाषिक शब्द था। किसी स्थूल माध्यमसे तत्त्वका प्रत्यक्ष ज्ञान या अनुभव प्रत्यभिज्ञा कहलाता था।

अतिलंबयते—पा ६।४ (१) प्रत या उपवासक्री उचित समाप्ति पर पारण के समय भी पारण न करके उपवास करते जाना, (२) कामी का प्रियतमा के साथ समागम का समय समुपरिथत होने पर भी उसका उपवास न करना।

अतिव्यायाम—पा ८।२ (१) अत्यन्तव्यायाम, (२) अत्यधिक रतिभंग।

अतिस्वेदन—पा ५४।३ (१) अतिशय रति, स्वाभाविक रतिकाल बीत जाने पर भी मुष्टि प्रवेश रति।

अन्तेवासिन—पा २६।४ (१) शिष्य, (२) साथ रहकर काम लीलामें सहायक, नर्म सचिव।

अमृदङ्ग—पा २१।२ (१) बिना मृदङ्ग ध्वनि के, (२) कामासुख की सहचारी चुम्बनादि क्रियाओं के बिना।

अलेपक—पा १८।३ (१) साख्य दर्शन में निर्लेप पुरुष, (२) वेश्या का कामुक पति जिसने वीर्याधान का लेप उसे नहीं छोड़ा प्राप्त होता है।

असमाप्तराग—पा १००।१६ (१) जो अलक्षक लेप पूरा नहीं कर पाया है, (२) जिसका कामासुख समाप्त नहीं हुआ।

आर्यघोटक—पा ४१।१६ (१) वह घाटा जो जलूम में सजा चलाकर बिना ससारी के ले जाया जाता है, (२) वेश में आनेवाला सजीला छैल खंडसजादा।

आलभरन शरीरम्—पा ५२।१४ (१) आलभन यत्न का शब्द या, जहाँ अन्न का मुँह खँवकर उसकी बलि दी जाती थी, (२) मेरे शरीर का मुक्ने से बृन् डालो, मेरा बलि चढ़ा दो ।

आलेख्ययत्न—पा ७६।३ (१) चित्र लिखित यत्न मूर्ति, (२) वश में आनेवाला वह धनी व्यक्ति जिसमें गहरा तडफ-भडक और रईसी के गुलछुरे ता हाँ पर पुस्तक शक्ति न हो ।

ईर्यमाणनेत्र—पा २६।३ (१) प्राण वायु साधने से जाटक से स्थिर नेत्र, (२) रति घूर्णित नेत्र ।

वञ्जितहस्त—पा ३०।७ (१) अपने हाथ से अन्न का सिद्धा बानने वाला, (२) इधर उधर से रकम खसोने वाला । मित्राहण मुखाञ्जुवृत्ति—प २१।२१ ।

उन्मुत्त—पा ६४।अ (१) मुँह ऊपर उठाए हुए, (२) वेश की आँर उन्मुत्त, उसमें कँसा हुआ या वहाँ बैठने वाली स्त्रियाँ के अट्टा की आँर ताकने वाला ।

उपचार—प १७।१८ (१) शिष्टाचार, (२) छुआछूत, छूँ छूँ ।

उपासकरव—पा ६४।४ (१) बुद्ध की भक्ति, (२) वेश्या की उपासना या चाकरी, या स्त्री सग करने का प्रवृत्ति ।

उपेक्षाविहारितर—पा ६४।२ (१) उपेक्षा नामक शीलवर्म का पालन करनेवाले भिक्षु का स्वभाव, (२) प्रेम करने वाली वेश्या के प्रति उदासीनता ।

उपेक्षाविहारी—पा ४६।६ (१) मैत्री कष्टना मुद्रिता उपेक्षा इन चार में से उपेक्षा धर्म का पालन करने वाला भिक्षु, (२) उपेक्षा या लापरवाही से रहने वाला, काम काज में निरुत्साह ।

उष्णस्थली—पा १८।१६ गर्म रेती या रेंगीटी जैसा गरम जगह, (२) रति स्थान ।

औपयिक—पा ५४।३ (१) उपाय, काम करने का दग, (२) चिकित्सा, औपथ ।

करभ—प १६।१६ (१) ऊँट का पट्टा, (२) वेश में गँवार पट्टा ।

करुणात्मक—पा ६४।२ (१) जिसने करुणा नामक धारमिता को-चिच में स्थान दिया हो, अथवा दयापूर्ण चित्तवाला, (२) करुण अर्थात् परब्रह्म में विल्ल लगाकर वेश प्रमग से उदासीन हो जानेवाला ।

कर्म—उ १८।आ (१) वैशेषिक दर्शन में कर्म सहक पदार्थ, (२) वेश्या का ललित हाव ।

कर्मलीला—प १८।१६ (१) कजुए का अपने अग्रा का सिकाडना पैलाना, (२) रति या कामसुख के लिये आसुलता ।

कह्यरूपा—पा ८८।२० (१) जो लगभग स्वस्थ है, (२) वह वेश्या जिसका सौन्दर्य प्रात काल के फलेऊ की तरह अमी चरने योग्य हुआ है, नीची, टूट सौन्दर्य वाली, त्रमाल ।

कु जा—पा ६०।७ (१) कुजड़ी स्त्री, (२) स्वल्प आयु की अग्र वया क या, कामसिन वश्या देखिए ६५।३ की टिप्पणी ।

कृतव्ययामा—प २५।२६ (१) शाश्वतिक भ्रम करनेवाली, (२) मुक्तभ्रम से धकी ।

क्षेत्रज्ञ—उ १८।३ (१) सामान्य दर्शन में शरीरी पुरुष, (२) कामतन म क्षेत्र अर्थात् स्त्री शरीर का स्वाद लेनेवाला कामी पुरुष ।

- गुण—उ१८।अ (१) वैशेषिक दर्शन में गुण नामक पदार्थ, (२) वेश्या के रूपादि गुण ।
- गुणाभिमुख—पा ८८।१३ (१) वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित गुण सङ्गक पदार्थ में रुचि लेने वाला, (२) रूप नामक गुण का भोग करने के लिये उत्सुक ।
- चुम्बितचान्द्रायण—प ३५।ई (१) चान्द्रायण व्रत में भोजन का नियम, (२) सूरत में चुम्बन को चान्द्रायण व्रत के आहार की भांति घटाना बढ़ाना ।
- जङ्गमतीर्थ—पा ५६।६ (१) चलता फिरता तीर्थ, (२) जहाँ देखो वहीं वेश प्रसंग का व्योम लगाने वाला अति कामुक व्यक्ति ।
- तत्रभवती—पा ६५।४ (१) देवी या राक्षी के लिये सम्मानित पद्मी, (२) तत्र अर्थात् गुह्य साधना में भयती या अपनी होम्स साथ रहनेवाली ।
- तथा—पा ६५।२ (१) वैसी दशा, बुद्ध को प्राप्त सत्त्वात्मक स्थिति, (२) जीवन का सच्चा सार या वेश्या ।
- तथागत—पा ६४।५ (१) बुद्ध जो तथता या पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, (२) तथता या वेश्या के साथ तन्मयता की दशा को प्राप्त कामी, (३) वेश के भोग भोगने से निर्धार्य या छुँछा बना हुआ (तथागत) व्यक्ति जो केवल गिरदमंभा बनकर वेश में आता जाता है । ऐसे व्यक्ति के लिये उपेक्षा विहार या कामभावमें उदात्तोनता मजबूरी है ।
- तथागत—पा ६५।३ (१) जैसा आया वैसा गया, वह चपल बुद्धि व्यक्ति जो वेश में ठहर कर उसका मज़ा नहीं लेता, कोरा नापिस जाता है, (२) वेश की कामदर्शात् संतत व्यक्ति, जो कस्तूरिया हिरन की तरह हो जाता है ।
- तथागत भृग—पा ६५।ई (१) शिकार में घायल हिरन या पशु, (२) वेश के बाण से छिदा हुआ चपल युवक, (३) कस्तूरिया हिरन की भांति कोश या नाफे में काम की मुगन्ध भर जाने से जो सदा वेश में चक्कराता रहता है पर बिसे वेश्या संग प्राप्त नहीं होता (निरसंग निष्ठात सायक) ।
- तथागतशासन—पा ६५।२ (१) बुद्ध की आज्ञा या उपदिष्ट धर्म, (२) तथा अर्थात् वेश्या से आगत (मिला हुआ) शासन पत्र या आदेश ।
- तथाभूता—पा ६५।४ (१) उस दशा को प्राप्त, विरह में संतत, (२) तथा या साधना की परमोच्च दशा या परम प्रज्ञा की प्रतिनिधि (= मुद्रितायोपिन्) । तुमने राधिका को आरने लिये 'मुद्रितायोपिन्' बनाया, पर वह तुमसे प्रेम करने लगी अतएव शोक-प्राप्त है ।
- तपस्थिनी—प २८।३ (१) तप साधनेवाली, (२) नियमस्था विरहिणी ।
- तपोवृद्धि—प ३५।२ (१) तपभ्रष्टा की वृद्धि, (२) रुके हुए सुगन्धादि कर्मों की वृद्धि ।
- तीर्थ—भू ४।६ (१) नदी पार करने के स्थल त्रिशोप, पाट, (२) स्त्री को मुक्तानुमूल बनाने के उपाय ।
- तीर्थमवतारयिनुम्—पा ५२।८ (१) पाट उतारना, नदी पार कराना, (२) रति कराना ।
- तृतीयाप्रवृत्ति—उ २१।५ (१) पग और अंग प्रवृत्ति से भिन्न तीमरी विचक्षण प्रवृत्ति, (२) जो न स्त्री हो न पुरुष, अर्थात् नपुंगक या दिवङ्गा ।

तृष्णाच्छेद—प २४१२ (१) तृष्णा या तन्हा का अन्त करना, (२) मुग एवं मुरत की प्यास बुझाना ।

त्रैविद्यवृद्ध—पा १४२।१ (१) त्रयो विद्या में पारंगत दशावरा धर्मपरिपत् के तीन सदस्य (दे० मनुस्मृति १०।११२), (२) विट परिपत् में वैशिक शास्त्र और कामतंत्र के ज्ञाता ।

दिवादीपप्रज्वालनं—प ८।११ (१) दिन में दीप जलाना, (२) दिवारति ।

देशान्तरविहार—पा ५६।१ (१) निदेश में परिभ्रमण, (२) निदेश की वेश्याओं के साथ मोज मजा लेना ।

द्रव्य—उ १८।२ (१) वैशेषिक दर्शन के पृथिवी जल तेज वायु आकाशादि नित्य पद (१) वेश्या का शरीर रूपी पदार्थ ।

धर्मज्ञ—पा ६२।१ (१) धर्मशास्त्र का ज्ञाता, (२) रति धर्म में प्रवीण । एष धर्मज्ञस्य—इस प्रकार की कुञ्जा (कुचड़ी या कमसिन) के साथ भी रति का अनुभूत रहनेवाला ।

न तथागतशासनं शक्तिव्ययम्—पा ६५।२ (१) बुद्ध का धर्म शका से ऊपर है, (२) वेश प्रवेश के लिये वेश्या (तथा) से शासक पत्र मिल जाय तो फिर क्या डर ? (१) मृग स्वभाव के पुरुष को जो वेश से कोरा वापिस कर दिया गया हो पुनः न आने के लिये यदि वेश्या का हुकुम हुआ हो तो फिर उसकी सचाई में शका न करनी चाहिये ।

नाटकाङ्ग—प २१।२ (१) नाटक का अकारतार, (२) मुरतरूपी नाटक का अभिनय ।

नित्यप्रसन्न—प २४।२ (१) सदा प्रसन्नता या मुदिता का अनुभव करनेवाला, (२) हमेशा प्रसन्ना नामक शयान से छूना रहनेवाला ।

निरपेक्ष—पा ६३।१ (१) सासारिक वस्तुओं में अरति या उपेक्षा वृत्ति धारण करनेवाला भिक्षु, उपेक्षाविहारी, (२) बिना सोचे समझे सर्वत्र रति प्रसंग खोजनेवाला, या, अनुरक्त वेश्या के प्रति उदासीन रहनेवाला ।

निर्गुण—उ १८।३ (१) साध्य दर्शन में गुणातीत पुरुष, (२) स्त्री में होनेवाले रजोधर्म से मुक्त पुरुष ।

निरसंग—पा ६५।२ (१) असंगृहीति, वैराग्य भावना, (२) वेश्या प्रसंग की अप्राप्ति ।

निरसंगनिद्रातसायक—पा ६५।३ (१) (मृगपक्ष में) जिसके हृदय में निद्रुरता से बाण छेद दिया गया है, (२) (बुद्ध पक्ष में) जिन्होंने अपने हृदय की वासनाओं को असंग रूपी बाण से समाप्त कर दिया है, (३) (वेश पक्ष में) वेश्या का संग न मिलने की कसक से जिसका हृदय कामवाण से छिटा है, (४) (मृग पुरुष पक्ष में) जिसने बिना स्त्री प्रसंग के ही अपना काम बाण या पुरुष शक्ति कुटेव से गँवा दी है ।

पञ्चशिक्षापद—प २४।१० (१) बौद्ध भिक्षुओं के लिये विहित शील के नियम, (२) मुरत सम्प्रन्धी सीखने योग्य पाँच कर्म, यथा आलिंगन, चुम्बन, नखविन्यास, दर्शन-विन्यास, मुरत बन्ध ।

पद्म—प ४३।१ (१) कमल का फूल, (२) वह नायक जिसके साथ पद्मिनी नायिका ने मुरत की सब लीलाओं का रस लिया हो ।

परभृत—प ११।४ (१) कोषरु, परपुष्टा, (२) वेश्या, पल्लवती ।

परापरज्ञ—धू २६।२७ (१) परा और अपरा विद्या के जाननेवाले, (२) ऐसे विद जो पहले (बुद्धों के) और पिछले (युगों के) सब कामतन्त्रों का भेद जानते थे ।

परिनिर्वाण—प २४।२ (१) मंजु, (२) रतिजनित परम सुख या अत्यन्तानन्द ।

पिण्डवान—प २३।१७ (१) वैद्याचरण, (२) सुतकर्म में शरीर का लगाना, या-मुरत की भीम मागना ।

पुराणमधु—प २१।१ (१) पुरानी शराब, (२) प्रौढा की ।

पुरुषप्रकृतिः—पा ६५।३ (१) दर्शनशास्त्र में पुरुष के साथ प्रकृति का सम्बन्ध, (२) पुरुष का स्वभाव, (३) पुरुष को स्त्री का चसका या उसकी आवश्यकता का अनुभव होना, (४) पुरुष की रचना में प्रयुक्त काम का उपकरण या सागम्री, अर्थात् पुरुष में मन है और उसमें मनसिद्ध काम है ।

पुरुषार्थ—प २१।२६ (१) धर्म अर्थ काम रज निगम, (२) पुरुष का पुत्र या यौवनोद्देक ।

पुष्पवध—पा ४४।अ (१) लता से अवयव में फूल तोड़ लेना, (२) ऋतुवती ने साथ ही रतिकर्म ।

प्रकृतिजन—उ २३।८ (१) साक्यशास्त्र का प्रकृति पुरुष, (२) नपुंसक पुरुष ।

प्रत्यभिज्ञान—पा ८८।१४ (१) ज्ञान-बह्वान, (२) प्रत्यभिज्ञा दर्शन में—वर्तमान काल में किसी चिह्न द्वारा तन्त्र का प्रत्यक्ष अनुभव (न तावदेकस्यातीतवर्तमानकालद्वय सम्बन्धिष्य प्रत्यक्षज्ञान प्रत्यभिज्ञा, प्रत्यक्षज्ञानस्य वर्तमानमानाग्रहित्वात् (आलोक्योश), (३) वेश्या सग का प्रत्यक्ष अनुभव ।

प्रस्ताव—पा ४७।२ (१) काम का आरम्भ, (२) वेश्या से पहली मुलाकात ।

प्रिण्वपादप—प १७।८ (१) बेल का पेड़, (२) स्वभाव का कटीक्षा नायक ।

भक्तं कल्पयति—प १८।१ (१) भोजन पानी का सम्बन्ध रखना, (२) रतिसम्बन्ध रखना ।

भगवत्—पा ५०।२ (१) देवता या बुद्ध का सम्मानसूचक आस्पद, (२) स्त्री के गुह्याग में रमनेवाला, जिसे सदा काम की तीव्र इच्छा या हडक बनी रहे ।

भगवत्—पा ६४।२ (१) भगवान् बुद्ध की, (२) भग वा स्त्री ने गुह्याग में निग्त व्यक्ति की ।

भद्रमुग्र—पा ६८।११ (१) मुन्दर आकृतिवाला, (२) घुटी मुड़ी आकृति वाला, घुटमुड़ा भिक्षु ।

भागवत—पा ६४।२ (१) भगवान् बुद्ध में श्रद्धालु, (२) भगवती वेश्या में आसक्त या उसे देवता मानने वाला ।

भागवत निरपेक्ष—पा ६४।२ (१) भागवतो से बचकर रहनेवाला बौद्ध भिक्षु, (२) भगवान् बुद्ध ने शीलपालन की परवाह न करनेवाला । (३) भगवती (=वेश्या) को देवता मानकर उसमें आसक्त होकर भी उससे उदासीन रहने का ढोंग रचनेवाला ।

मण्डल—पा ३१।४ (१) देवता की आराधना या साधना के लिये बनाया हुआ घेरा, (२) पीनेवालों का जमावड़ा या धूर्तगोष्ठी ।

मदनाग्निहोत्रस्य पुनराधानं—प ३३।८ (१) छूटे हुए अग्नि होत्र का पुन आरम्भ, (२) विरह में दूटे हुए मुरत का फिर से आरम्भ ।

- मुखरमणीया—पा ६३१ई (१) सुन्दर मुँह वाली, (२) केवल मुख में रति के योग्य ।
- मुद्रिता योषित्—पा ६४१२ (१) बौद्ध साधक के लिये साधना में सहायक पर अनुपभोग्य स्त्री, (२) वह स्त्री जो व्यक्त न हुई हो, नौची, (३) विवाह सम्बन्ध में पैंधी हुई की भाँति वेश्या, (४) कामशास्त्र की मुद्रा या रतन्ध जानने वाली ।
- मृग—पा ६५१६ (१) हिरन, (२) चंचल स्वभाव का पुरुष, पुरुषों के चार भेदों में से एक (अतिभीरुभ्रान्तमतिः सुदेहः शीघ्रवेगो मृगोऽयम्, आप्ते कोश) । मृग तथागत = मृग या चंचल बुद्धि का व्यक्तिवेश में आकर भी जैसा का तैसा चला जाता है ।
- मैत्री—पा ६४१२ (१) शील का एक गुण (कृष्ण मैत्री मुद्रिता उपेक्षा में से एक), (२) वेश्या के साथ मेल-मुलाकात ।
- मोक्ष—उ १८१ई (१) वैशेषिक मतमें अविद्यासे छुटकारा, (२) अनचाहे प्रेमीसे छुटकारा ।
- यथातथा—य १६१२७ (१) सच्ची कुशल, (२) ऐसी तैसी ।
- योग—उ १८१ई (१) काणाद दर्शन में योग द्वारा अर्जित शक्ति विशेष, (२) वेश्या का मन-चाहे युवकों से मिलना ।
- योगशास्त्रं—पा २६१आ (१) योग विद्या का उपदेश, (२) सुख कर्ममें सज्जन होना ।
- रत्यर्थं वैशेषिक—उ १६१ई (१) विशेष नामक पदार्थ को मानने वाला दर्शन, (२) रति को ही सर्व निशिष्ट नित्य पदार्थ माननेवाला दृष्टिकोण ।
- रसायनं (आयुर्वेद्योऽवस्थापनं)—धू ४८१४ (१) अमृत कल्प रसायन, (२) सुख मुख ।
- राजयौतकं—य २६१२ (१) राजा के योग्य देह, (२) वेश में बढिया गणिका या चोना माल ।
- राधिका—पा० ६५१४ (१) राधिका नाम की प्रणयिनी, (२) वह मुद्रिता योषित् जिसके साथ रतन्ध लीला की साधना की जाती थी, जैसे कृष्ण की राधिका के साथ विहार-लीला होती थी । शत होता है गुप्तयुग में मुद्रितायोषित् के लिए 'राधिका' शब्द चल गया था ।
- लावणिकापण—पा ६७१२७ (१) नमक की दुकान, (२) लावण्य या रूप विकने की दुकान अर्थात् वेश ।
- वत्सतरी—पा ५५१ई (१) कलार श्लेडी जो शरधाने पर हो, (२) ज्ञान पट्टी वेश्या जो मरद के लिये लुटपटाती हो ।
- विदेशराग—पा ५२१६ (१) विदेश में घूमने का शौक, (२) विदेशों की गणिका से रमण करने का शौक, जाहरी मज़ा ।
- विशेष—उ १८१६ (१) वैशेषिक दर्शन में द्रव्यों के नित्य अवयव या परमाणुओं में एक दूसरे से नित्य भेद, (२) वेश्या के शरीर रूपादि का औरो से वैराग्य ।
- विहारशीलता—य २३११५ (१) विहार के शीलों की पालनवृत्ति, (२) सुख की वृत्ति या लपक ।
- विहारित्व—पा ६४१२ (१) भिक्षु का विहार में मन लगाना, (२) बौद्ध धर्म के मैत्री कृष्ण आदि चार अप्रमाण या अनन्त धर्मों में अनुराग, (३) वेश में विहार या रमण का शौक ।

वीतराग—पा ६५।३ (१) वैराग्य युक्त, (२) जिसका राग या कामेच्छा समाप्त हुई हो। न वयं वीतरागाः = हमारे भीतर काम की लपक बाकी है, तन्वित की रगिनी श्रमो गई नहीं है।

धृप—पा ५५।३ (१) छुटा साड़ जा गायों पर चढ़ता है, (२) वेश का झिगडैल छौना जो जहाँ-तहाँ दूटता हो।

वेशवीथीयुक्त—पा ७८।१६ (१) वेश की वीथी में पूजा के लिये चित्रलिखित यद् जो वहाँ आनेवालों को अपनी कृपा बाँटता है, (२) वेश में धरा रहनेवाला पर पुस्त्य शक्ति से छूछा रईस, वेशरुनी बाज़ार का मालदार अतामी जो अपना धन छुटाता है, पर खुद उस माल का मज़ा नहीं पाता।

शब्दकामः—पा ७८।६ (१) बातचीत का इच्छुक, (२) कामशक्ति से रिक्त, अतएव तत्सम्बन्धी चर्चा से ही काम चलाने वाला।

शास्त्र—पा ६५।३ (१) धर्मोपदेश के ग्रन्थ, (२) कामशास्त्र या वैशिक शास्त्र।

अन्यद्विशास्त्रमन्यथा पुरुषप्रकृतिः—(१) वेश्या का प्रतिपेक्ष मिलने पर वेश में न जाना चाहिए, यह वैशिक शास्त्र की दृष्टि से ठीक हो सकता है, पर पुरुष का स्वभाव नहीं मानता, अर्थात् उसको लपक उसे चैन नहीं लेने देती। (२) दर्शन तो अद्रव्य तत्त्वका सिद्धान्त पताता है, पर पुरुष के साथ प्रकृति लगी ही है, अर्थात् पुरुष को स्त्री अवश्य चाहिए, और हम भी वीतराग नहीं हैं, इसलिए वेश में चकर लगा आते हैं।

श्रम—पा ६५।अ (१) परिश्रम, थकान, (२) कठोर तप, (३) रति व्यायाम।

श्रम निस्तृत जिह्व—पा ६५।अ (१) भाग दौड़ की थकान से जिह्वा बाहर होना, (२) श्रम या रति व्यायाम के लिये जिसकी जीभ लपकती या राल टपकती हो, (३) वेश का मुल भोग न पाकर केवल उसकी भाग दौड़ के श्रम से थका हुआ व्यक्ति।

संसार धर्म—पा ६४।५ (१) संसार का स्वभाव अनित्यता, जीवन की क्षणिकता, (२) सासारिक उपासकों के लिये मैत्री करुणा आदि धर्मोंका पाठन, (३) वेश में आने जाने या चक्कर मारने (संसार) की आदत, जब भोगने की सामर्थ्य न रह जाय और केवल गिरदमभा बन कर वेश का मज़ा लिया जाय।

सन्धिच्छेद—पा २२।३ (१) संध लगाना, (२) नयनद गणिकादारिका या नौची के साथ प्रथम मुरत।

सन्निपात—पा ५३।३ (१) सम्मिलन, संयोग, (२) मैथुन।

समवाय—उ १८।६ (१) वैशेषिक दर्शन में द्रव्य और गुण, क्रिया और क्रियानान्, एव अवयव और अवयवीका नित्य सम्बन्ध, (२) वेश्या का सन्निध्य।

सर्पिःपिवेति—उ २३।३ (१) वायुतोग के उपचार में घृतपान, (२) (गुडई मापा में) रतिकर्म।

सांख्य—उ १८।३ (१) सांख्य शास्त्र, (२) जान-बूझकर किया हुआ रतिकार्य।

साधु मुच्येयम्—पा ६५।५ (१) अच्छा हो यदि मुक्त हो जाऊँ, (२) तुमसे पिएड छूटे तो अच्छा।

सामान्य—उ १८॥३ (१) अनेक द्रव्यों में रहनेवाला नित्य जाति नामक पदार्थ (२) वेश्या का सर्व सामान्य यौवन ।

सायंप्रातः होम—प २५॥३५ (१) दो समय का अग्निहोत्र, (२) दो बार मुरत ।

सुभिक्षम्—प २०॥११ (१) मुकाल मित्रा, (२) रति मित्राकी सहज प्राप्ति ।

मुरतोद्भववृत्ति—प २१॥२१ (१) उन्मत्त या सिल्ला बँनकर सात्त्विक आहारसे रहनेवाला, (२) जिस-विसके क्षेत्र (छो शरीर) से मुरतरूपी सिल्ला भोगनेवाला ।

सौकरसिद्धि—पा ६२॥६ (१) महावराह रूपधारी भगवान् विष्णु जैसा पराक्रम, (२) वेशरूपी विद्या चलने की शकरी लपक ।

स्वामिनी—पा ६५॥३ (१) पारंगती, (२) मुख्य वेश्या ।

हैमकूर्म—धू ७०॥३ (१) सोने का बछुआ (२) छोटे हाथ पैर और मोटे शरीर का कोतल गर्दन रईस

परिशिष्ट ४

शब्द-सूची

अशकुब्ज—पा ५८-ई, टेढ़े कन्धे वाला कुबड़ा
 अश देश—पा ११४-ई, एकन्धप्रदेश
 अंशपरावृत्तशोभिन्—पा १००-ई, तिरछे
 कन्धे से सुशोभित
 अक्षयता—पा ६८-आ, अस्वास्थ्य
 अक्षयरूपा—पा ८८-२०, अस्वस्थ
 अकामयमान—धू ५३-१२, इच्छा न करती
 हुई
 अकालभोजन—प २४-८ असमय का भोजन
 अक्षुशलता—उ २८-२७ मूर्खता
 अकृतप्रतिकर्मता—धू ४८-३, गृञ्जार न
 करना
 अकृतविराम—पा ८६-ई, कभी विराम था
 विभ्राम न लेने वाला
 अकृशविभव—पा ६५-ई, जिसका विभव
 क्षीय न हुआ हो, जिसकी टेंट में अभी
 मालमता है
 अक्षतोष्ठजक—प ८-अ, अक्षरपी भारता
 हुआ अक्षत अक्षर
 अक्षरकोष्ठागार—प १६-२०, शब्दों का
 कोठार, वैयाकरण के लिये व्यव
 अक्षिविचारणा—उ २२-अ, अक्षि चलाना
 अगणयन्ती—उ ३-१३, कुल न मानती हुई,
 कुल भी भरोसा न करती हुई
 अग्निमार्ग—प २१-२७, अग्नि की खोज
 अग्रशाला—पा २०-अ, आगे की शाला,
 अँगुली
 अग्रस्य—प १६-ई, पहली फसल, सुरत
 मिलन से पूर्व चुम्बनादि द्वारा छेड़छाड़
 अग्रहस्त—प ९-४, १६-१७, २५-ई; धू २६-
 आ, अँगुली

अग्रहस्ता—धू ११-१२, अँगुलियो वाली
 अङ्गाधिरुद्धा—प ३१-१७, गोद में पड़ी हुई
 अङ्गुलित्रय—पा ११४-५ तीन अँगुलियाँ
 अङ्गुलिवेष्टन—प २८-ई, अँगूठी
 अङ्गुलीप्रग्रभा—पा १४६-आ, अँगूठीकी शोभा
 अङ्घो—प १०-७, १८-१६, १८-१८; पा-
 ८-४, ८५-६, एक संवोधन
 अचक्षुर्ग्राह्य—प ३७-१८, अँल से न दिखाई
 देने वाला
 अविरिक्कृदबालस्तनी—प ६-ई, नये उभरे
 छोटे स्तनों वाली
 अचौच—प १८-६, (१) अपविन, अशुद्ध।
 (२) भागवतोंके चौच नामक सम्प्रदाय
 से अलग जो बुद्धादित् बरतता था।
 अवल—प ११-४, सुहावना।
 अजहम—धू २०-५, न चलने फिरने वाला
 अजुका—प ८-५; उ २६-१८, ३१-१,
 स्वामिनी
 अज्ञातगाथ—धू ४८-१, अनजान गहराई
 वाली
 अज्ञितभूलता—पा १४६-अ, टेढ़ी अँलें
 वाली
 अज्ञलिप्रग्रह—प २४-३, हाथ जोड़ना, हाथ
 की अँजलि के रूप में पीने का पान
 अज्ञोचन्द्रोदय—धू ५५-५, यन में चन्द्रोदय
 या चौदनी
 अट्टालक—पा ३३-६, अटारी, छत के ऊपर
 का कमरा
 अतःप्रपात—पा ६७-८, शिर के बल गिरना
 अतिकथा—पा १०६-ई, असम्बद्ध बातें,
 गप्पाटक।

अतिकामिता—पा ५४-१, अतिकामुक्ता
 अतिद्विगिदन्—पा ११७-५, सब डिण्डियों को
 मात करने वाला
 अतिथिलोप—प २४-२५, अतिथि को
 भुलाना ।
 अतिथिसन्निवेश—प २२-७, मेहमानों की
 प्रतीति
 अतिद्विवाविहार—पा ४२-२, बहुत दिनों तक
 विहार, दिन में ही अधिक विहार
 अतिदुष्करकारिणी—पा ८६-१, कठिन काम
 करनेवाली
 अतिनिम्नोदरी—धू २६-अ, जिसका उदर
 अतिक्षीण हो
 अतिप्रशान्तजवनाप्यायनकर—उ २७-१,
 अत्यन्त धने अवन को हलसाने वाला
 अतिपाति—धू ६६-७, अधिक
 अतिपिच्छोला—पा ५०-६, पिच्छोला का
 लगातार शौक
 अतिप्रभातचन्द्रनिष्प्रभ—पा ६-२, प्रातः
 कालीन चन्द्रमा ने समान प्रतीतिहीन
 अतिमनस्विनी—प ३३-२, अतिमान
 करनेवाली
 अतिमुग्धता—धू ४१-२, अति भोलापन या
 ना समझी
 अतिमूढ—प ३३-ई, निरा मूर्ख
 अतिरमस—धू ४६-६, अति शीघ्र, अतिवेग
 अति रतिरमस विमृदिता—उ २७-६, अति
 रतिवेग से मीठी हुई
 अतिलङ्घयते—प ६-४, अतिलङ्घन कर
 रहा है, भूखा लटप रहा है ।
 अतिलङ्घितम्—धू ११-२२, भूखा रक्खा
 हुआ, विषया का उपवास करने बिताया
 हुआ
 अतिलाभ काचा—उ २३-१५, अति लाभ
 की इच्छा
 अतिवर्तित्ये—धू ७१-अ, छोड़कर जाऊँगा

अतिवाहयति—धू ६६-५, व्यनीत करता है
 अतिवाह्यते—पा ३५-अ, मिला दिया जाता है
 अतिविट—पा १३२-७, १३५-२, गढाविट
 अतिविटस्व—धू ६३-४, बड़ी या अधिक
 गुडई
 अतिव्यय—प १६-४, पिचल खचा
 अविध्यायाम—प ८-२, अधिक व्यायाम या
 छुपगना
 अतिसन्ध्यसे—पा ३६-८, छिगता है
 अतिसन्ध्रम—पा ३६, स्वागत, आवभगत
 अतिसेवन—पा ५४-३, अतिशय रति
 अनुस्पर्श—धू ९-आ, गुदगुदा, मुलायम
 स्पर्श वाला, गद्देदार
 अनुष्टि—धू ५६-आ, असन्तोष
 अनुसहृदया—उ २२-ई व्यासे हृदय वाली,
 जिसकी तृप्ति न हुई हो
 अन्धाकोणजनता—धू १३-७, अति भीड़ से
 भरा
 अत्यायत—प १५-ई, बहुत खींचना
 अत्यायत—धू ४-आ अधिक समय तक
 अयार्जव—पा ५०-१०, भालेपन को भी
 मात कर जाने वाला
 अयुष्पचार—प २५-१८, अतिरिक्ति आय
 भगत, विशेष सत्कार
 अयुषालम्भ—पा ६७-५, अधिक उलाहना
 अदाक्षिण्यसर्वस्व—धू ६९-८ ऐसा मालमता
 जिसमें दाक्षिण्य या उदारता पूर्वक किसी
 को कुछ देने की आदत नहीं बरती गई
 अदाक्षणीय—प ३७-ई, मधुर उपचार
 अदृष्टजघना—धू १३-ई, सकोच से स्वयं
 अपनी जाँघ भी न देखने वाली
 अदेशौपधिक—प ५४-४, देश की अप्रथा
 अद्यतनकालवैश्रवग—उ १३-४, वर्तमान
 समय का कुबेर
 अधनुर्धर—प ४१-ई, अनुप न धारण करने
 वाला

अधरोपदंश—धू १६-१५, अधर रूपी गजक
अधरोष्ठरक्षणी—धू ६५-८, अधरोष्ठ की रक्षा
करने वाली

अधिकगुण—उ ३५-ई, अधिक गुणवती
अधिकरण—पा १८-१०, न्यायालय
अधिकरणगत—पा २५-इ, न्यायालय में कार्य-
रत

अधिकशक्त—पा १४८-आ, सैकड़ों
अधिकारकाम—पा १२२-अ, अधिकार प्राप्त
करने का इच्छुक

अधिकृत—पा ८०-अ, सरकारी अधिकारी
अधिदेवता—पा १११-अ, देवी
अधिराज—पा ५४-१, सम्राट् के अधीन राज
पद पर अधिष्ठित

अधीरदन्तकिरण—पा १२५-आ, दाँतों को
किरणें छिटकाते या बिखेरते हुए
अधीरदृष्टिपात—पा १२३-इ, चंचल दृष्टि या
चितवन

अनङ्गदत्ता—उ ६-२,
अनंगसेना—पा २५-६
अनङ्गावह—धू ८-ई, काम अगाने वाला
अननुभूतयौवन—धू ११-२०, जिसने जवानी
का अनुभव नहीं किया या मजा नहीं
लिया है

अनपहासक्षम—प २६-२, हँसी न उठाने
योग्य

अनपेक्षितपरिजनानुसरणा—उ ११-४, परि-
जनो के अनुसरण पर ध्यान न देती हुई
अनभिज्ञातेश्वर—धू ८-६, जो खानदानी
रईस नहीं है

अनभिष्ट—पा १४६-ई, न सँवारा हुआ,
रूखा

अनभिगम्या—धू २७-८, जिसे कोई न चाहता
हो अनचाही

अनवगतपूर्वा—पा २३-इ, जो पहले न जानी
गई हो

अनवरतसुरतवृष्णा—धू ११-५, सदा सुरत
की प्यासी

अनवसितबाष्पा—प ३३-६, जिसके आँसु
नहीं रुके हैं

अनवसितार्धमापिणी—धू १८-११ अवशिष्ट
आधी बात न समाप्त करने वाली

अनवस्थितलघुप्रावरणा—धू १६०५, इधर
उधर लहराली हुई छोटी चादर वाली
अनवस्थितोष्ठ—धू ६५-१, फड़कते अधर
अनवेक्षा—पा ६३-६, उपेक्षा या उदासीनता,
देख-भाल न करना

अनागतसुख—प २१-२६, भविष्य में प्राप्त
सुख

अनात्मज्ञा—पा ८-११, अनाड़ी, अपने आप
को न जानने वाली

अनाथ—प १६-३७, विना नाथ वाला (बैल)

अनिष्टृत—धू १६-९, प्रकट, निःसंकोच

अनिष्टृतभूलता—धू १६-५, चंचल भौंह

अनिष्टृतमधुकररव—उ २६-१७, स्पष्ट भौरों
का गुञ्जार

अनिष्टृतस्वभावमधुर—प ८-ई, उन्मत्त मधुर-
स्वभाव

अनिष्टृता—प ४१-१, चपला

अनियोगस्थान—धू ३२-४, भिन्नक से
परिपूर्ण

अनिलप्रतिहत—धू ११-ई, हवा से डगमगाता
हुआ

अनिलाष्मात—पा ७८ ई, हवा से फूला हुआ

अनिष्टजनसम्मोग—उ १२-१, अनचाहे के
साथ मिलन

अनिष्टजनसम्मोगपरिविलिष्टा—उ ११-६,
अनचाहे के साथ मिलने से दुःखी

अनुगतसुखप्राप्तिनकथा—पा ४०-इ, सुख
प्रश्न पूछने वाले यारों से बातचीत करती
हुई

अनुनयनिपुण—प १०-ई, सुशामद में चतुर

अनुनयविधुर—प ३२-इ, सुशामद से रहित
अनुनेतव्या—धू ६६-३, मनाने योग्य प्रिया
अनुपातयितव्य—पा ४१-१४, विताने योग्य
(काल)

अनुबन्ध—प ३८-१७, मूल बात का पुछल्ला
अनुभ्रमति—प ३०-१५, पीछे पीछे धूमनी है
अनुयातकिशोरी—धू २५-१०, वह नई बछेड़ी
जिसे निकालने के लिए व्यायाम कराने
के बाद धीरे-धीरे दहलाते हैं

अनुबिद्ध—४६-अ, अक्षित
अनुविधेया—धू ५३-१२, आलापालन करने-
वाली, इच्छानुयतिनी

अनुविषक्त—धू १२-इ, अनुबद्ध, जुड़ा हुआ
अनुवृत्ति—धू ५५-११, इच्छानुकूल प्रवृत्ति
अनुशिष्टि—पा १-आ, आशा
अनुस्तता—पा १०५-आ, अनुसरण की गई
अनुस्मृति—प १६-१२, प्रतिध्वनित
होता है

अनूराग्रहिन्—पा १००-१३, टोंग पर न चप-
कने वाला

अनृतक्रोधप्रयास—धू ६९-आ, झूठे क्रोध
से भागता हुआ

अनृतशंस—धू ५३-११, वह व्यक्ति जो दाँत
निपोर कर सुशामद में पड़ा रहे

अनैकान्तिक—धू ५७-६, किसी एक सिद्धान्त
या उद्देश्य पर मन मिलाव न करने वाला

अन्तर—धू १४-आ, रास्ता, जगह

अन्तर—पा ३२-इ, भीतरी भाव

अन्तरगार—पा ४६-ई, घर के अन्दर

अन्तरविस्मय—प ४२-५, हार्दिक विस्वास

अन्तरा—उ २३-१५, मध्य में, बीच में

अन्तरापण—उ ५-४, दुकानोंके अगले भाग

अन्तराकृत्य—उ २१-८, छिपाकर, ओट देकर

अन्तराकृत्य—पा ६७-११ बीच में करके

अन्तरू—पा १००-१४, उरुका भीतरी माग

अन्तर्गृह—प २७-२, भीतरी घर

अन्तर्मुखाभाषिणी—धू १३-अ, मुँह के भीतर
ही बात रखने वाली

अन्धकारवृत्त—धू ५५-४, अँधेरेका नाच
अन्धसंरक्षनार्थ—उ २१-इ, दूसरों के साथ
मजे के लिये

अन्योन्यानभिज्ञत्व—धू ६७-७, एक का
दूसरे के साथ परिचय न होना

अन्योन्यानुचरितानुगामी—धू ६७-१, एक
दूसरे के पीछे चलने वाला

अन्धव्यस्तता—पा ५२-आ, बार बार का
अभ्यास

अन्वाख्यान—पा ६१-२, सच्ची व्याख्या

अन्वारूढ—पा ११०-अ पीछे बैठा हुआ

अपचितोत्तराष्टपलित—प २१-आ, मुँह के
परे वालों का कुपटा जाना

अपचिन्तोपि—प १८-३२, कुतरते या कुपटते
हो

अपण्डिता—प ३१-३३, नादान,

अपथ्य—उ २३-१६, बुराई

अपदेश—पा ३६, बहाना

अपनय—पा १२४-१, बुरी नीति, भूल-चूक

अपयान—धू ६-५, इतस्तनः परिभ्रमण

अपराधसम्भर्त्त—धू २३-५, अपराधों का
रगड़ा

अपरान्त—पा ६०-अ, कोंकण प्रदेश

अपरान्तकान्ता—पा ६१-आ, कोंकण प्रदेश
की रमणी

अपरान्ताधिपतिरिन्द्रवर्मा—पा १७-२

अपरान्तपिशाच—पा ५२-५, अपरान्त का
गुच्छा

अपरिभूत—पा ६७-२०, न जीता गया, अ-
विजित

अपवर्तिका—पा ३०-२, नीचे सरक जाना

अपवासस्—५०-आ, उधरी हुई

अपविद्धकर्णोत्पल—प २६-आ, परित्यक्त या
गिरा हुआ कर्णोत्पल

अपवर्ण्य—पा १०-४, द्विजडा, नपुंसक
 अपसर्पण—प ३०-११, पीछे हटना
 अपसव्यमुपावर्तमान—पा ३०-१, दाहिने
 छोडते हुए
 अपाङ्गतिरक्षित—पा २६-२, तिरछे देखा
 जाता हुआ
 अपाङ्गपातिन्—पा ६७-२३, तिरछा चलाया
 हुआ
 अपाङ्गविप्रेक्षित्—पा ४२-आ, कनखी से या
 तिरछे देखने वाला
 अपाङ्गविलम्बित्—पा १४१-आ, तिरछी
 चितवन
 अपारयन्—पा १०४-३, न सँभाल पाता
 हुआ
 अपार्थक—पा ३०-३, व्यर्थ, असफल
 अपावृत्तद्वार—धू २८-१, खुला द्वार
 अपावृत्तद्वारा—प २६-६, खुले द्वार वाली
 अपावृत्तधन—पा १६-३, धन ख़ुजने वाला
 अपावृत्तपक्षद्वार—पा ६७-२५, खुला हुआ
 बगल का दरवाजा
 अपाश्रयव्यस्तद्वेषन्—पा २-३, सहारे से
 बाहु रखने वाला
 अपिशाचप्रेक्ष्य—पा ५६-१, बिना देख का
 प्रेक्ष्य
 अपुष्ट्—पा ७८-६, मुँह से शक्ति से हीन
 अपूर्वप्रतीहारोपस्थान—पा ४१-२५, नए
 प्रतिहार की उपस्थिति
 अपैतृक (लोक)—धू ११-२१, पितृविहीन
 संसार
 अपोढमागलङ्कारभारा—पा ४५-३, सामने के
 गहने उतार देने वाली
 अपोढ—पा १००-१५, हटाकर
 अप्रतिगृहीतानुनय—धू ७०-५, अनुनय को
 न मानने वाला
 अप्रतिपालयन्ती—उ ३१-१, प्रतीक्षा न
 करती हुई

अप्रतिपद्य—पा ३६-६, बिना मिले
 अप्रतिपद्यमान—उ ३१-३, न देते हुए,
 व्याख्या न करते हुए, काम न बनाते
 हुए
 अप्रतिहतशासन—उ ३-२, २८-७, जिसकी
 आज्ञा का कोई विरोध न करे
 अप्रतीकार—धू ४३-१, उपाय का न होना
 अप्रत्यभिज्ञान—पा ८८-१४, बिना ज्ञान
 पहचान
 अप्रत्यभिज्ञेया—प २८-३, कठिनाई से पह-
 चानी जाने वाली
 अप्रत्यभिज्ञेयव्यञ्जन—पा ११६-२, वह
 भाषा जिसमें अनजाने या अज्ञानी
 व्यंजन वर्ण हों (यूनानी भाषा)
 अप्रावरणा—धू १६-५, बिना चादर वाली,
 ठण्डी हुई
 अप्रागित्—प १०-३, भागी न बनने वाला,
 शिकार न बनने वाला
 अभिकाम—प ३०-१५, काटुकता पूर्ण
 अभिगम्य—पा २५-२, समीप आने योग्य
 अभिज्ञ—प ८-१४, जाननेवाला
 अभिज्ञातवाधा—धू ३८-२, जानी हुई गहराई
 अभिज्ञातता—उ ३-१३, ज्ञान पहचान,
 जानकारी
 अभिनन्दयितव्य—धू १०-५, अभिनन्दन
 करने योग्य
 अभिनयसिद्धि—उ २८-२०, अभिनय में
 सफलता
 अभिनोद्यते—पा ३५-आ, इशारे से कह
 दिया जाता है
 अभिमायित—पा ३१-२, बातचीत करना
 अभिलिखति—पा ६२-२, चित्रित करता है
 अभिवाहयतः—धू ६०-१, निकट होकर स्पर्श
 के लिये घुमा हुआ ।
 अभिव्याहरन्ति—उ ५-५, बातचीत कर
 रहे हैं

अभिसारयितव्य—धू २३-१०, अभिसार करना चाहिए

अभिसारित—धू ६४-१३, अभिसार किया हुआ ।

अभ्युक्त—धू ५२-१, सीपा

अभ्यस्यन्ते—प ६-६, स्वीकृता या विगड पडना

अभ्यस्तनामन्—पा ११७-३, जिसका नाम पहले लिया जाता हो, प्रसिद्ध सुपरिचित

अभ्युधापयति—पा ६६-१, उठाती है

अभ्युत्समयन्ती—पा ६६-६, मुस्कराती हुई

अमर्मभेदि—पा ११६-आ, मर्म पर चोट न करनेवाला

अमात्य विष्णुदास—पा १७-२,

अमीमासित पण—धू ११-१२, बिना बिचारे खुलकर लगाया हुआ दौंव

अमृतायमानरूपा—उ ६-३, अमृत के समान मधुर रूप वाली

अमृद्वक्ष्—प २२-२, पा ४२ ई, बिना मृदङ्ग के, बिना सूचना के, असमय में

अमृदितागराग रचना—पा ६८-ई, अगराग रचना मिटाए बिना

अम्बापु (मा०)—पा ६७-६, अम्बा या वेश की माता से

अम्भ छुति—धू १६-अ, पानी की धारा

अन्यत्रित—प १८-४०, अन्यनहीन, खुलकर

अयशस्—पा ६६-१० बदनामी

अयोविकार—पा ६२-६, लोहे की टोंकी

अरअर—पा ७७-अ, मडा घडा

अरणि—धू १९-आ, माता, जननी, पैदा

करनेवाली, गुहारणि=गुह की माता

पार्वती (मत्स्य पु० १८३।६६), विश्वा

रणि=विश्व की जननी (मत्स्य १८३।

४८०), वातारणि=वायु की माता

(वायु पु० २।४), स्वाहा मारणि=

देवों को अ म देने वाली स्वाहा (लिंग

पुराण ५।२२), स्वाति ता भार्गवा रणिम्=भार्गव की माता स्वाति (लिंग पु० ५।२४), अमृतस्यारणि=अमृत की माता (ब्रह्म पु० ६०।४५) ।

अरण्यवासिनी—पा ९३-१, जंगल में रहनेवाली

अरालघनासिताम्र—पा ६४-अ, टेढ़ी सघन काली (बरीनी का) अग्रभाग

अरूपा—पा ८६-ई, उदयूरत

अर्गलक्षता—पा ४६-ई, ब्याडा लगाया हुआ

अर्घवण—पा ६७-६, धन से

अर्थनिर्वतक—धू ५६-९, कार्य साधक, काम बनाने वाला

अर्थोक्त्य—उ ८-आ, घनी

अर्थनिर्मालिताधि—धू १७-अ, ६१-१, अध-मुँदे नेत्र

अर्थनिर्वाचित—धू ९-अ, १६-आ, अधमुँदी आँख, अधमुँदी आँखों का देलना

अर्थासन—धू ९-आ, १०-११, आसन का आधा भाग

अर्द्धाह—उ २८-६, औषिपा, घुम्ने तकफा वस्त्र

अर्धोदक—पा ४५-आ, स्त्री का घुम्ने तक वस्त्र जिसे लोक में चनिया कहते हैं, आधा लौहगा

अर्धोदकपरिहित—धू ११-१५, औषिया पहले हुए

अपितार्गल—पा ८६-आ, षोडा लगाया हुआ

अलक्षकवि-यासविन्यस्तचक्षुष्—पा १००-१२, आलता रँगने की क्रिया में नेत्र

लगाकर अर्थात् नीची दृष्टि करके

अलक्षकवह्नी—पा ११५-आ, लम्बे बाल

अलक्षकाशका—पा ११५-ई, आलता की आशका

अलङ्काराख्या—प २०-६, आभूषणों से सुशी भित

अलङ्कृतासनाद्ध—पा ११६-अ, भावे आसन
पर सुशोभित

अलङ्कारार्थार्थ—प ४१-६, गह्वर्यै या थाद
लिए बिना

अलङ्कारविग्रह—धू ४८-१, विश्वास प्राप्त न
की हुई

अलङ्कारपद—धू २३-आ, आश्रय न पाए
हुए

अलङ्कारकपायदृष्टि—पा ११२-इ, अलङ्कार
नशीली चितवन

अलङ्कारमानेनका—प २६-इ, अलङ्कारही
छाँवें

अलङ्कार—प २१-६, द्वारकोष्ठ से

अलङ्कार—प १६-२५, बिना पर नुचे

अलङ्कार—उ १८-३, लेपहीन, निर्लेप

अलङ्कार—प १०-९, १७-१९, नादान,
लोकव्यवहार से अनभिज्ञ

अलङ्कार—धू ५६-इ, आलाच रहित

अलङ्कार—धू ६५-४, घँघट

अलङ्कार—धू ६५-२, उलट्टे सिर देंगा
हुआ

अलङ्कार—पा १००-१६, हटाने के लिये

अलङ्कार—पा ४१-२, विश्वासकी बात
साँपगा

अलङ्कार—धू ६५-६, पा १०३-इ, हवा
हुआ, भरा हुआ

अलङ्कार—प ८-१०, बाह लेकर

अलङ्कार—प २९-३, वधू भाव में
अलङ्कार प्राप्त करने वाली

अलङ्कार—प २३-२ टका वदन

अलङ्कार—प ३१-१७, भनकरती हुई

अलङ्कार—धू २५-३, बन्द करना

अलङ्कार—पा २३-२६, बजते
अलङ्कारों से युक्त

अलङ्कारितपञ्चाग्रैवधकक्षा—उ २७-२, घटा,
नीक और करवनी उतारे हुई

अवर्तितापु—पा ३३-१, उतरने या घुस पैठ
का इच्छुक

अवर्णित—प ११-११, अपमानित

अवर्णय—प १५-२, झटक कर

अवर्णत—पा ८०-१, विचार किया गया या
सोचा गया

अवर्णतमुखारजा—पा ६१-ई, भीचे किए हुए
मुखकमल वाली

अवर्णितमुखार—प ८-२१,

अवर्णितमानवर्ण—धू ६५-११, चक्षुस्थल
को पीड़ित करता हुआ

अवर्णितदर—धू ५४-अ, पतली कमरवाली

अवर्णितकृतकता—पा २४-२, परदा गिराना

अवर्णितनीचोपध—प ४४-आ, (अभिसार के
मार्ग में हो नायिका का) नीचीवंध झूट
जाना

अवर्णितकृत्कारा—उ २७-२, अलङ्कारों को
उतारे हुए स्त्री

अवर्णितसुम्बन—धू ३६-३, गाढ़ा सुम्बन

अवर्णित—पा ८८-२०, रोका हुआ, बन्द

अवर्णितचक्रवलय—पा ३४-अ, पहियों के
पुंछे लगेचते हुए

अवर्णित—पा ३३-९, गोल, प्रासाद के
सभसे ऊपरी भाग में ऐसा छोटा मंडप
या स्थान जहाँ से बाहर की ओर देखा
जा सके

अवर्णित—प १०-इ, वेबस

अवर्णितपाय—पा ९७-३, पायः दृढ़ हुआ,
समाप्तपाय

अवर्णित—धू ११-३, नोचना, टूट पड़ना

अवर्णित—प १६-२३, अवर्णित, सहसा
आनान्त किया गया ।

अवर्णितमूल—धू ५२-२, सिकड़ा हुआ है
मूलभाग जिसका

अवर्णित—पा ४८-२, निरभिमानी, नीच

अविकारगौर—पा ९०-अ, जिसके गौरवर्ण
में कोई विकार न आया हो ।

अविज्ञातपुरुषान्तरा—पा १२५-१, पुरुष के
मेद ज्ञान से अपरिचित

अविज्ञातप्रणया—प १२९-३, प्रणय न
जानने वाली

अविट—पा २१-१ जो विट न हो

अवितथप्रतर्क—उ १३-६ सही अन्दाजा

अविनयग्रन्थ—प ३६-६, अविनय का पोथा

अविनयप्रचारपुस्त—प १८-१५ आचारगद्दी
(आचार होन्ता) का पोथा

अविनयप्रपञ्च—प २१-६१, वेहूदगी का
पचडा, दुष्कार्यों का विवरण

अविनीतचक्षुष—पा १००-१७, उदगड दृष्टि-
वाला, असयमित नेत्र वाला

अविभावनार्थार्था—धू ४-६, दिखाई न देने
वाली सोदी, जिसके घाट दिखाई न पड़े

अविरक्तिका—प २५-२८, कमी निरक्तन होने
वाली, सदा प्रिय रस में पगी रहनेवाली

अविशेषमाहिणा—धू ९-८, सामान्यतया परि-
वायिका

अविस्मयविस्मिताली—धू १६-७, विना
विस्मय के विस्मित आँखों वाली

अवीणम्—पा ४२-३ विना वीणा के

अवेशितव्य—धू ४२-१०, देखना आदिष्ट

अव्यक्तकाकली—उ २९-१९, अस्पष्ट काकली
स्वर

अव्यक्तशोभितपदावाक्—धू ५८-२, सुन्दर
शब्दों से भरी गुपचुप बात

अव्यक्तोपितरोमरेखा—प ८-२, कुछ कुछ
भीननी हुई रेखा वाली

अव्याधिलान—प ३८-अ, विना रोग के
रोगी

अव्याहत—धू ६८-१, विना रोक रोक

अव्यसन्न—प ३५-२, मत के अनुसूल आच-
रण

अशोकवनिका—उ २६-१६, अशोक वाटिका
अशोकवनिकादीर्घिका—उ २४-६, अशोक
वनकी बावड़ी

अशोकवनिकाम्याश—उ २६-१६, अशोक
वनिका के समीप

अशोकवनिकारक्षी—उ २४-७, अशोक-
वाटिका का रक्षक पुरुष

अशोकवालवृक्ष—उ २६-१६, अशोक का
छोटा पौधा

अशोकसमदोहल—पा १००-१६, स्त्री के
चरण ताड़न से फूटने वाले अशोक की
तरह कामेच्छा प्रकट करने वाला

अरक्षण—उ २४-३, सुरक्षा

अरिलष्ट—धू ३७-२, मेल न पाना, संन्यत
न होना

अरवन्ध—पा २१-६, साईस

अपेय—पा ६७-८, (प्रा) निःशेष, सग और

अप्ये—पा ६७-१०, बात करती है

अप्येण—(प्रा) पा ६७-१०, आँख या
इन्द्रिय से

असकलशशाङ्करेखा—पा १११-३ अश्वनी के
चन्द्रमा की रेखा या किरण

असकृतसज्ज—पा ४१-१७, कितनी ही बार
जो सजित हो चुके हैं

असक्तधोनज्जव—तुली हुई भरी जग

असङ्गोर्णवर्ण—प ३३-२६, अरने स्वरूप में
शुद्ध जिसमें किसी दूसरी गान विधि का
समिश्रण न हुआ हो

असम्भ—पा ४१-१७, अमराध रहित

असद्वाद—धू ६७-१, झूठा शब्द या झूठा
कथन

असनकुमुद—धू ६५-४, अमनवृक्ष का फूल

असमस्तविह्वलित—धू १७-आ, विह्वल हैंती,
खुन्नर हैंतना

असम्बाधकस्याविभाग—पा ३२-१०, ऐसे

भवन जिनमें लम्बे-चौड़े चौक एक भाग
 को दूसरे भाग से अलग करते हैं
 असमासराग—पा १००-१६, आल्ता या
 प्रेम बिना समाप्त किए
 असयुक्तत्व—पा १००-१३, न पहचाना जाना
 असिमालिनी—पा २६-ई छुरियों की पैँक्ति
 वाली
 असूयापिशुन—पा ६७-२४, ईर्ष्या की जलन
 का सूचक
 अस्वस्थरूपा—पा ८-६, कुछ बीमार
 अहस्या—धू ६४-५
 अहीनकाल—पा ४१-४, ठीक समय
 अहूण—पा ४१-२५, जो हूण जाति का
 नहीं है
 आडण्णि—(प्रा) पा ६७-८, पूर्ण, भरपूर
 आडहे—(प्रा) पा ६२, अलख राख में
 आकर्णपूर्ण—धू ३-ई, कान तक खींचना,
 कान तक तानना
 आकारसवरण—प २५-३८, धू ४२-७,
 आकार का छिपाना
 आकाशरोमन्धन—प ८-११, बिना चारे के
 जुगाली करना
 आकुलदश—पा ३०-२, फटकता हुआ (वस्त्र)
 आकुलयति—पा ४२-आ, पटकारता है,
 आकुलापसम्पपरिधान—पा ४२-४, दाहिने
 कंधे पर लहराता हुआ उत्तरीय
 आकुलितालकान्ता—पा ६१-अ, बिधुरे
 केशों वाली
 आकृजमाना—प ३३-२७, गुनगुनाती हुई
 आकृतिमात्रभद्रक—प १८-२६ देखने भर
 का भला मानस
 आकृष्टक—धू ११-१५, खिंची हुई तलवार
 आकृष्टकमात्रसहाय—धू ११-१५, बाहर
 खींची गई नगी तलवार के साथ
 आवृष्टपाद—पा २५-आ, सिकोड़ा हुआ पैर
 आवन्द—धू २७-१०, शोर, जोरकी आवाज

आक्रोशयति—उ १६-५, कोसता है
 आक्षिप्तसाम—पा १०१-ई जिसका राग या
 लाली छिप गई हो
 आक्षिप्त्य—पा १००-१५, खींचकर, फेंककर
 आगन्तुमनः—धू २६-११, आने की इच्छा-
 वाला
 आगमप्रधानता—पा ६७-२०, शास्त्र को
 मुख्य मानना
 आगलित—पा ३१-७, छिटका हुआ
 आघाटित—पा १४-अ धक्का दिया गया
 आघाययन्ती—धू ६७-१८, गन्ध देती हुई
 तृप्त करती हुई
 आचार्यगौरव—प ३५-२०, आचार्य का रोष,
 प्रभाव
 आचार्यदक्षिणा—प १६-२, उस्ताद की भेंट
 आश्वारत—धू ११-ई, मनचाही रति
 आशेष—प २४-२०, भय स्वरूप
 आदक—पा ६३-अ, सुगन्धित मिट्टी, गोपी
 खन्दन
 आणा (प्रा)—पा ६७-७, आशा
 आतुरीभवति—धू ३४-आ, अस्थिरता का
 होना, गडबडा जाना
 आश्लेष—प ३-अ, २-६, एक प्रकार का
 बाजा
 आत्मगुप्ता—पा ११६-अ, कँवाच
 आत्मदर्श—प ३, दर्पण
 आत्मदर्शन—धू २९-७, अपना मत, अपना
 सिद्धान्त
 आत्मप्रच्छादन—प २१-१६, अपने को
 छिपाना
 आत्मलिखि—पा ६३-अ, अपनी लिखावट
 आत्मशक्ता—प २१-१२, अपने बारे में सदेह
 आत्मद्वेषप्रदान—उ २७-१, अपने शरीर
 में मरवाना
 आत्मार्थप्रधाना—धू ५६-१०, अपना काम
 बनाने या साधने वाली

आदृष्टफुरिताघर—धू ६७-अ, दन्तद्वत द्वारा
पडकने अघर

आदेहपातलीला—उ १९-१, गिरी अवस्था
या दलती उमर का नखरा

आधिराज्य—पा ४९-३, सर्वश्रेष्ठ स्वामित्व

अधूत धू—२६-आ, चञ्चल

आधोदण—पा ३४-इ, महावत

आनन्दपुर—वडनगर, गुजरात का एक
नगर

आपणाभिधान—पा ६७-१३, दुकान का नाम
पता

आपस्तम्ब—पा० १२-७, एक स्मृतिकार

आपानमण्डप—पा ३०-३, वह स्थान जहाँ
मुरापात्र (चपक) का दौर रहता है

आपुंलनिपात—पुंलपर्यन्त घुसा हुआ, अन्त
तक प्रविष्ट

आपुस्वयति—पा १३५-आ, लिलाता है

आस्रघश—ध १४-६ पीढ़ी दर पीढ़ी से प्राप्त
प्रसिद्धि

आप्यापन—उ २७-१, टुलसाने वाला

आप्यापितममम्—धू ६-५, परिपूर्ण मनवाला,
रसाप्लावित मनवाला

आप्यापितममम्—धू ४०-ई, काम से घृप्त

आषड्मण्डल—पा ३१-अ, मण्डल शीघे हुए

आषड्मण्डलकाष्टकिकाप्रहसितकपोलदेश—
पा ४१-१७, सफेद सफ़ेदी के कुडलो से
धवलित कपोलवाला

आभीरक—पा १७-२, आभीर जाति का

आभीरक—पा ११३-३, दुर्दशाग्रस्त

आमयावसन्न—पा ३९-१३, रोग से पछाड़ा
हुआ

आमिपभूत—१ २१-२४, माम की तरह

आमृतागुण—प २१-इ, लिपाई पुताई का
गुण

आयतभूलतं—धू ६१-१, विस्तृत या लम्बी
मोह

आयति—धू ३५-४, सम्मान, प्रेम

आयतिक—प ३१-२५, पा १२०-आ, भवि-

प्य में आनेवाला (तदात्व का उलटा)

आयत्त—धू ६२-१६, मग्न

आयासकर्ता—प ३८-इ, कठिनाई पैदा करने
वाला

आयासयति—पा ३८, कष्ट दे रही है

आयसितवान्—पा ७९-१, यकाया

आरम्भ—प ३०-२०, व्यायाम, श्रम

आरम्भ—पा ११७-१३, टाट बाट, शान

शौकत

आर्जव—पा ५३-ई, भलमनसाहत, सिघाई

आर्जवयुता—धू ३८-इ, भोली-भाली

आर्तव—उ २१-आ ऋतु में होनेवाला मासिक
धर्म

आर्तानुपात—पा १३१-१, आर्त के अनुसार

आर्यक—पा १३६-२, दक्षिण के एक कवि
का नाम

आर्यघोटक—पा ४१-१५, सजीला बछेड़ा,
कोतल घोड़ा जो सजाकर बल्लूस में ले
जाया जाता है

आर्यनागदत्त—प २०-५,

आर्यमूलदेव—प ३५-१५,

आर्यश्यामिलक—पा २-३,

आलमरक—सा ५२-१४, आलमन कर डालो,
कूट डालो

आलापयति—पा ३७, बोली सिला रही है

आलुसाजनाच—धू ६५-१ जिसरी आँखों
का अजन पैल गया हो

आलेखपट—पा ८९-आ चित्रपट

आलेख्ययच—पा ७६-ई, चित्रलिखित यत्

आलेख्यवर्णकपात्र—पा १००-११, चित्र कर्म
में प्रयुक्त रंगों की प्यालियाँ

भावन्तिक—पा ३४-अ, अगन्ति जनपद के पुरुष

भावन्तिक स्कन्दस्वामिन्—पा १७-२,

भावर्त—प ३१-इ, चक्कर

भावर्तन—प ३०-११, घूमना

भावर्तगत्—धू २०-इ, उल्लङ्घता हुआ, बक्के मारता हुआ,

भावर्गमान—प ३१-इ, थलथलाता हुआ ।

भावर्गगतस्तनसद—धू ५८-अ, थलथता हुआ स्तन

भावाद्यन्तरी—पा ५२-इ, प्रजाती हुई

भाविन—पा ७८-८, घबड़ाया हुआ

भाविद्ध—धू ४८-४, घुमाया हुआ

भाविद्धमेखलाकलाप—धू ६०-१, बँधी हुई मेललासे युक्त

भाविष्करोति—पा ४१-१५, खोल रही हैं

भाविष्कृत—पा ५२-१३, सर्वविदित

भाविष्कृता—पा ६०-ई, प्रकट कर दी गई

भासकमण्डल—धू ११-१२, अनुसृत समूह

भासक—पा १००-११, सुगन्धित मिट्टी

भासकवत्—पा ११७-१५, लटकई जाती है

भासिता—उ २२-९, बैठ गया

भास्वाद्वाग्ध्याम्—प १७-६, मज्जा लेंगा

भास्वाद्यत्तर—प ६-६, विशेष स्वादिष्ट

आहतमापक—पा ३०-इ, मापक (एक छोटा सिक्का) हरण करने या बीतनेवाला

आह्वानप्रयोजन—उ २८-४, पुकारने का कारण

इत्थु (प्रा०)—पा ६७-७, इतः प्रभृति

इत्तकथ पार्वतीय—पा १७-२, इत्तकथनाम का पर्वतनिवासी

इन्द्रदत्त—पा ५४-आ,

इन्द्रस्वामिन्—पा ५२-१, ३,

इन्द्रियण्य—पा ७४-आ, इन्द्रियशक्तिका नारा

इन्द्रियवाज्यर्धाश—पा १२२-आ, इन्द्रिय रूपी घोड़ों का शासक

इन्द्रियार्थ—पा १-ई, इन्द्रियमा विषय

इन्द्रियपुर—पा १५७-२, रईसजादा

इन्द्रविधवालीला—पा २४-४२, रईस घरकी विधवा स्त्रीके समान हाव भाव या ठाठ-बाट

इन्द्रान्त.पुरसुन्दरीकररुक्षेप—पाठ १३८-ई, रईस घर की अन्तःपुर सुन्दरी का नख-चूत

इरिम—प २७-४, एक पुरुष

इरिमकालिनी—२५-८, इरिम की रखेली

इष्टविषयप्रादुर्भाव—धू ६४-७, इच्छित विषय की प्राप्ति, मन की इच्छा का पूरा होना
इष्टणान्तगलित—पा २२५-अ, आँखों पर गिरा हुआ

इति—उ २१-१, दैवी आपत्ति

ईश्वरभिभूतहृदया—उ २२-८, २६-१६, ईश्वरसे अभिभूत हृदय वाली

ईश्वरकुक्षितनयनकपोल—उ २६-१४, आँखों और कपोल कुछ सिकोचे हुए

ईपत्ताग्रान्तनेत्रा—उ २८ आ, ललछाई आँखों वाली

ईकपयसिचन्द्रमण्डल—उ २९-१७, पूर्ण चन्द्रमासे कुछ ही कम

उक्षित—पा ६-इ, सिंचित

उत्सवावधुसुमोपहार—उ ५-३, नीचे ऊपर फूलों के सजे ढेर

उच्छ्रायवत्—धू ९-२, बहुत ऊँचे

उच्छ्रितसौभाग्यवैजयन्तापताक—पा ३३-१८ सौभाग्यकी सूचक वैजयन्ती नामक पताका-युक्त

उच्छ्रयवृत्ति—प २१-२१ दाने बीनकर जीवन थापन करना

उच्छ्रितहस्त—पा ७०-७, अन्न के सिल्ले से भरा हुआ हाथ ।

उत्कवचित—पा ११३-इ, टका हुआ
 उत्कोट (च) ना—पा २६-४, मुककर दडवत्
 करना
 उत्कोन्ति—पा ३३-११, नोकदार बखली से
 ठोककर खुरदरा किया हुआ
 उत्तिसरजतकलशपाद्य—पा ११७-१२, चाँदी
 के घड़ों में पैर घोने का जल ऊपर
 उठाए
 उत्तिसामालकोत्तरीयान्ता—पा ११७-आ
 उडते हुए बाल और उत्तरीय वाली
 उत्तिसालक—पा ११५-अ, ऊपर फेंके हुए
 बाल
 उत्तमाह—पा १-आ, १७-आ, १२२-ई,
 मस्तक
 उत्तरकुम्भ—पा ३४-इ, ऊपरी कालीन या
 पलान
 उत्तरीयावगुण्ठन—पा ८८-३ उत्तरीय से
 ढँकना या वेष्टित करना
 उत्तानरव—पा ६९-इ, ऊपर उठाना
 उत्प्रासयितव्य—पा १७-२०, डराने योग्य
 उत्पत्तन—पा ३०-११, उछलना
 उत्पलखण्डक—धू ११-९, कमल की पलुडो
 से युक्त
 उत्पललोचना—पा २०-अ, नील कमल रूपी
 आँख वाली
 उत्सङ्गामन—पा ६९-६, मोद का आसन
 उत्सार्यमागातय—पा १०१-आ, धूप को
 हटाने हुए
 उदकतैलविन्दुवृत्ति—पा ६०-८ पानी में तेल
 की बूँद की तरह
 उदग्र—पा १०३-इ, ऊँचा, ऊपर तक
 उद्यम—पा ११७-ई, वत्म देश का राजा
 उद्वमित—पा २०-५, धू २६-४, उ ३१-
 २, ५२-१, पा ५२-१, ७०-२, घर
 उदात्तराग—पा ४४-इ, अत्यन्त विषयाम्नाय

उदात्तरागायुध—पा ४४-इ, प्रवृद्ध विषय-
 मिलाप का हथियार
 उदाहरेत्—पा १२९-ई, बोले, कहे
 उदितमद—धू ६२-इ, मादकता का प्रकट
 होना
 उद्गीर्ण—पा ३१-आ, गिरा हुआ, टपका
 हुआ, ३९-२, प्रकट, हुआ (स्वभाव)
 उद्ग्रीववदनपुण्डरीक—७६-५, मुखकमल
 युक्त ग्रीवा ऊपर उठाए
 उद्घाटितगबाह—उ ५-६, खुली हुई
 लिङ्की
 उद्गुण्डरीकवनपण्डरीकभानुकारिन्—पा
 ७६-५ सनाल कमलों के मुरमुट के
 समान शोभा वाली
 उद्घोषयन्ति—धू ४४-इ, उमाडते हैं
 उद्देश्यवृक्षहरितफलमालापण्डगण्डित—पा
 ३३-१४, रहोद्यान के योग्य वृक्ष, साग-
 सन्तो, फूल और माला के लिये उपयोगी
 फूलों की अलग अलग खड्डियों या पालकों
 से गण्डित
 उद्घृताशुक—धू ६०-१, उघड़ा हुआ अशुक
 उद्भ्रियमानचन्द्र—पा १०५-१, उदित होता
 हुआ चन्द्रमा
 उद्भूतकोपा—धू ५१-इ, क्रुपित होकर
 उद्यतैकभ्रूलता—धू १७-४, एक भाँह ताने
 हुए
 उद्भूतन—पा ३०-१४, ऊपर बूँदना,
 उद्भेल्युत्तविकार्यमाणवीचिराशि—पा १०८-२
 कुल के बाहर उमड़कर फैली हुई लहरें
 उद्भेदन—पा ४१-१, गूथना
 उद्घाटयति—पा ५७-३, नकल करता है
 उन्मुच्य—पा ६६-इ, खालकर
 उन्मुच्यमान बालभाव—पा ६-३, बालभाव
 छाडती हुई
 उपगुप्तसंज्ञ—पा ७०-ई, उपगुप्त नाम वाग
 उपगम्य—पा ७१-ई, निग्न कर

उपगृह्यन्ताम्—पा १०७-४, प्रसन्न करो
 उपवयकथा—पा ७०-६, पुष्ट उमानेकी बात
 उपचरण—धू ५६-३, विशेष आव भगत
 करना
 उपचरति—पा २५-७, सत्कार करता है
 उपचार—य ६-८, पा ६९, आवभगत
 उपचार—धू ५६-३, शिष्टाचार
 उपचार—प १७-१८, धार्मिक स्मृत छात
 उपचारयन्त्रणा—पा २५-६, आवभगत या
 स्वागत सम्मानका कष्ट
 उपचोदित—पा ७१-आ, उक्तसाया गाया
 उपदेशमुष्टि—पा ३१-आ, गजरुकी मूठी
 उपदेशदोष—उ १५-६ उपदेश की त्रुटि,
 सिताने की कमी
 उपहार—धू १६-२, पार्श्वद्वार, सदर दर-
 वाजे से सदा छोटा द्वार
 उपाधि—धू ४७-६, छल, व्याज
 उपनिमन्त्रित—पा ५१-८, प्रार्थित, खुशाम-
 मदी की हुई
 उपपश्यन्ती—पा ३१-७, सम्भालती हुई
 उपप्लव—धू ४०-१, उत्पात, दगा-पसाद
 उपभोगरमणीय—धू ६६-४, (वह काल)
 जन्म उपभोग मुहायना लगे
 उपयाचित—पा ३१-६, मनौती
 उपवीणा—धू ७-१, घोषा का निचला भाग
 उपवीणित—पा १३१-अ, वीणापर गाना
 सुनाना
 उपसंहार—पा १००-१३, बल की अवस्था
 जिसमें वह सह करके रखा जाय
 उपसर्पिभि—पा २५-३, समीप चले चलाते हैं
 उपस्कारित—प १६-१, डेर लगा दिया,
 बड़ा दिया
 उपस्पृशं—प २०, आवमन
 उपहतचित्त—धू ११-१७, विवेक शून्य, पागल
 उपहितदर्पणा—पा ३७, पासमें दर्पण रखने
 हुई

उपहितप्रणय—पा १८-अ, प्रेम किया हुआ
 उपेक्षाविहारिन्—पा ६५-२, कामी का वैश्य
 में उपेक्षा भावसे बरतना, उपेक्षा नामक
 अप्रमाण्य बल प्राप्त भिक्षु की ब्राह्मी स्थिति
 या सर्वोच्च अवस्था
 उपाप्नोशत्—पा १२-९, चित्लाया
 उपासकत्व—पा ६४-४ उपासकधर्म
 उपेक्षाविहारिन्—पा २४-६ उपेक्षा विहार
 करने वाला भिक्षु, काम कान में एकदम
 निश्चिन्ना स्थिति
 उपोद्वा—पा ९७-६, मन पर (देवता मंगल)
 प्रस्तुत करने
 उपोद्यते—प ५-६, निकट लाई जा रही है
 उपोद्यमानहृद्गोद्वेग—धू ४८-२, मन की
 व्याकुलता प्रकट करना
 उभयतटभ्रष्ट—पा ९७-२५, दोनों किनारों से
 दूय या बूका हुआ
 उहमुक्त—प १८-६, बलती लकड़ी या लुआठी
 उद्यमस्—धू ६४-२, शुक्राचार्य
 उद्योगव्यजन—धू ६६-४, लत का फटा
 उद्यमस्थलीकर्मलला—प १८-१६, धूप तेंकते
 हुये कछुए की तरह गर्दन बाहर भीतर
 निकालना
 उहि—(प्रा) प ६२, दोनों
 ऊर्जितम्—उ० १४-८, ठाठबाट था, शान-
 शीत से
 ऊर्ध्वहस्तेन—धू १२-७, हाथ उठा कर
 प्रकट रूप में
 ऊर्ध्वमुखिप्रवृत्ति—पा १४-६, उठी अगु
 लियों को नचा कर
 ऋतुकालप्राधान्य—उ ३-३, ऋतु का अपने
 पूरे चैत्र पर होना
 ऋतुपरिणाम—प ३८-१८, ऋतुपरिवर्तन
 एकजाति—प ४२ आ, एक होकर, एक साथ
 मिलकर

एकतानता—प ३५-२०, पूर्णरूप से लीन हो जाना; ३७-४, एक में आसक्ति, कामुक का एक से साथ फँसाव

एकनटनाटक—पा ४२-ई, भाण नामक रूपक जिसमें केवल एक ही पात्र अभिनय करता है

एकमूल—प ४२-ई, जिसका मूल एक हो, एक जड़ से निकलने वाला

एकस्तम्भावगलित—पा १००-८, एक स्तम्भ पर तुलकता हुआ (शर)

एकाक्षपातमात्र—उ २३-१७, पलक भर में-पेशानचन्द्रि—पा ३६-३, ईशान चन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र नामक वैद्य

ओवारिद—(प्रा०) पा ६७-७, छिप कर ओपधिप्रक्षेपाप्यायितवीर्य—धू ४८-४, ओपधि का रस मित्र जाने से बढ़ी शक्ति वाला

ओष्ठलवक—प ८-अ, अक्षरही भरता हुआ अक्षर, निष्क या गोल पदक की भाँति नीचे झूँटता हुआ ओष्ठ

ओष्ठोपदंशा—धू ६१-६ अक्षर रूपी गणक वाली

अकुम्भकदलीपण्ड—धू १-३, कुटब और कदली की वन खण्ड

रुक्मा—उ २७-७, हथिनी की दोनों बगलों में बाँधी जाने वाली बद्धी या आभूषित रस्ती

कल्याविभाग—पा ३-१०, महलों में कई चौकों का बटवारा

कचग्रह—पा १२-अ, बालों का पकड़ना

कटाक्षप्रहरण—धू १६-४, तिरछी चितवन रूपी शर

कटाक्षाहत—धू ७०-उ, चितवनो से घायल

कटिप्रदेशत्रिन्धस्तवामहस्ता—धू ५२-३, कमर पर वाम हाथ रखे हुये

कठिनकृणितवृद्धकर्कटाकृति—धू ३६-८, कठोर सिकुड़े हुए पुराने कैंकड़े की आकृति वाला

कण्ठा (घण्टा) ख—पा ६-६, बगल या घण्टे का शब्द

कतिषयविटपाग्रशेषतनुशास्त्र—पा ८८-आ, कुनगी पर बची हुई कुछ डालों वाला

कथाव्यतिकर—धू ३३-आ, बातचीत का सम्बन्ध, बातचीत का सिलसिला

कदर्ययित्वा—प १३-६, तिरस्कार करके कदलीगर्भ—पा १००-१४, केले का भीतरी गाभा

कनकतरु—धू ६७-१३, स्वर्ण वृक्ष, स्वर्ग में तथाकथित वृक्ष जिनके सब अययव सोने के हों

कनकलता—उ २६-५, ३२-३ व्यक्तिनाम कन्दर्पपुष्प—प ३६-अ, कामदेव का फूल, ऐसा पुष्प जिसमें कामरति रूपी पल्लव देने की क्षमता हो

कन्दर्पांता—उ १-ई, कामपीडित कन्दुककीटा—प २६-१५, ३०-६, पा ३-८, गेंद का खेल

कन्दुकोत्पात—प ३०-८, गेंद का उछलना कन्दुकोन्मादिता—प ३१-अ, गेंद के खेल में नितान्त तल्लीनता

कसिपिद्वयज—पा ६७-६, चन्द्र की तरह कजी आँखों वाला

कपोतक—पा २९-अ, ६६-२, छाती पर सामने की ओर दोनों जुड़े हुए हाथ, वनुत्तर

कपोतपाली—पा ३३-६ कयवाली या केवाल नामक अलंकरण

कपोलतलस्खलितविम्ब—पा ११४-६, गाल पर पड़ा प्रतिविम्ब

कपोलप्रलेपा—प ८-२०, कपोल पर घनी पत्रलेखा

कम्बलवाहक—पा १०४-आ, १०६-आ,
गोशक, नैलागडी, (मूलशब्दरूप
कम्बलवाहक)

कर्मसिद्धि—(प्रा०)—पा ६२, कार्य की
सफलता

करकिसलयपर्यस्तकपोला—पा ११-७ कोमल
हाथ पर कपोल रखे हुए

कज—पा ७१-आ, नल

करजपद—प-३६ इ, नलजत

करभण्डावसता—प १६-१६, ऊँट के गले
पड़ी

करभल्लित—पा ८२-अ, ऊँट की चाल

करभोग—पा ७८-अ, सरकारी लगान का
भोग या हजम करना

करभोदूगारदुर्भंगा—प १६-३४, ऊँट की थल
बलाहट जैसी अशोभन

करबलयरशनास्वन—प ६-अ, हाथ ने कडे
और करघनी की झनझनाहट

कररुहदशनपदजर्जर—धू ४६-इ ई, नल
क्षत और दन्तक्षत से जर्जर

करव्यतिकर—धू ६-इ, हाथों की मटकभरी
मुद्राएँ

कराम—पा ५९-ई, उँगली।

कर्कटाकृति—धू ३६-८, कंकडे जैसी आकृति
वाला

कर्णोद्वज—प ६-३, ६-५, ७-४, ८-४, ८-
८, १२-८, १३-३, १५-१, ४०-५
४१-८ ४१-१३, ४१-२५, ४२-२०
४३-३,

कर्णारथ—पा ३४-आ, १५९-आ, पदों से ढका
हुआ हाथ से खींचा जानेवाला छोटा रथ

कर्णोत्पल—पा १२-आ, कान का फूल

कर्दम—पा १०-२, उदर का शब्द

कर्पूरतुरिष्ठा—पा ११४-४, एक यवनो वेश्या
का नाम

कर्मसिद्धि—धू ८-२४, काम का पूरा होना

कर्मान्तभूमि—त ३६-५, कार्यालय या कार-
खाना

कर्मारविपणि—पा २८-अ, लुहारी का बाजार

कलभक—पा ५४-अ, हाथी का बच्चा

कलयन्तो—धू १७-४, बनाती हुई

कलहकण्डूबन्धुरा—प १६-१२, कलहकी
रुजलाहट से मरी

कलहाभिनिवेश—उ ३-६, टगटे कलह या
अनजन का डौल

कलहास्पद—पा ६८-अ, कलह का स्थान या
अवसर

कलि—उ २१-५, भगवा

कलिंग—पा २१-आ

कलुपसलिलवाहिनी—धू ४-६, मटमैला वर-
साती पानी बहाने वाली नदी

कल्पयति—प १८-१, करती है

कवाटगोस्तनकतट—धू ५२-७, किवाड की
ऊपरी त्रिलैया का किनारा

कष्टशब्दनिष्ठुरा—प १७-२०, कठिन शब्दों
से निष्ठुर बनी

कष्टशब्दाक्षर—प १७-इ, कठिन शब्द और
अक्षर

काकायन—पा ३६-३, कक जाति सम्बन्धित,
काकायन गात्र का

कास्य—पा ११४-५, पानपान, चपक,
प्याला

कास्यपत्रवेणुमिश्र—पा ३०-१, भाँक और
बौसुी के साथ

काकलीमन्दमधुर—प ३१-१८, मन्द मधुर
काकली स्वर

काकिणामात्रपण्या—पा ६४-अ, केवल एक
काकिणी मूल्य वाली

काकोच्छ्रास—पा ७८-१७, उथली दूटी सोंस
या हॉपना

काकोच्छ्वासअग्रमविपमिताक्षर—हॉपने के
कारण लडखडाते शब्द

काकोलुक्म—प १६-२४, कौवों और उल्लुओं की लड़ाई या नोचानोच
काञ्चनतालपत्र—पा ११३-अ, सोनेका ताल-पत्र नामक कान का आभूषण
काञ्चीसूर्य—धू १२-अ, करघनी की भँकार
काञ्चीपथ—धू २०-ई, सम्भवतः मूल पाठ काञ्चीरुथ था, करघनी का शिथिल हो जाना
काञ्चोप्रभोद्योतित—धू ६७-आ, काञ्ची की आभा से प्रकाशित
काञ्चीशब्द—पा ८७-अ, मेलका की आवाज, भनभनाहट
कातन्त्रिक—प १६-२३, १६-२६, कातन्त्र व्याकरण का विद्वान्
कातरौष्टी—धू ६५-८, जिसके होंठ तड़के हैं।
कात्यायनगोत्र—प ६-४,
काननान्त.पुरखी—प ३-आ, वन के अन्तः-पुर की खी
कान्ततरङ्गपुष्प—प १-ई, अधिक सुन्दर शरीर वाला
कान्तद्वितीया—पा १०:-अ, कान्त के साथ दुनेली
कान्तनिवेशन—उ १०-६, प्रेमी का घर
कान्तारशुष्कनदी—धू २७-८, वन की सूखी नदी
कान्तालापविमोदन—प १६-आ, सुहलभरी बातचीत से मन बहलाना
कामकर्मन्त—धू १६-३, कामदेव का कार्यालय
कामकार—पा १३६-ई, काम की हरकत या क्रिया
कामतन्त्र—धू २६-६, कामशास्त्र
कामतन्त्रप्रकरण—प ४०-१, कामशास्त्र का एक अध्याय, कामलीला का प्रसंग
कामतन्त्र सूत्रधार—प ६-१०, कामरूपी ताना बुननेवाला

कामदत्ता—प ११-८
कामदेवायतन—प २४-२०, पा ३१-६, ८८-३, कामदेव का मंदिर
कामपिशाच—पा १४-इ, घोर कामासक्त
कामलिङ्ग—धू ३१-१, ४६-अ, कामचिह्न, वे चिह्न जिनसे कामातुर व्यक्ति पहचाना जाय
कामविजयपताका—धू १६-६, काम की विजय पताका
कामशरासन—धू १६-इ, कामदेव का धनुष
कामवेश—प २३-अ, काम का आवेश
कामिकरागुल्लिमियसखी—धू १६-अ, कामी-जनों की उँगलियों की प्यारी सखी
कामित्त—धू ५३-२, कामभाव
कामिनीकामुक—पा ६-अ, कामिनी और कामुक
कामिनीसपरिमहः—प १७-१७, खीका अप-नाना या स्वीकार करना
कामिनीतान्त्रिष्य—धू ११-१२, स्त्रियों का साथ या सामीप्य
कामिप्रत्यवर—पा १२-२, कामियों में नीच
कामिजनमृदुभूता—उ १६-१, कामीजनों के लिये मृदु स्वरूप
कामियुगल—उ ३२-७, ३४-५, कामियों की जोड़ी
कामुकजयमहाशनि—उ १९-२, कामीजनों के लिए महावज्र
कामुष्पूति—(प्रा०)—पा ६७-१०, काम से लबालम भरी हुई
कामैकतानता—प ३५-२४, काम में पूरी तरह लीन होना
कामोद्रेक—पा ९४-ई, काम का प्रायत्न
कामोज—पा ३४-ई कामोज में उत्पन्न अरुण नावस्थ—पा ८०-आ, ८१-अ, देशकार या टफार का मुख्य लेखनाधिकारी
कायस्थवागुर—पा ८१-१, कायस्थ का बाल

कारा—धू १३-ई, सेवा, पूजा

कारा—पा ८८-२०, कारागृह, बन्दीगृह

कारानिरोध—पा ९०-अ कारागार में उन्द करना

कारुण्यमिश्रा—धू ५३-२१, करुणा से भरी हुई

कारुश—पा ५६-६, एक देश का नाम

कार्कश्य—धू १८-१६, १९-अ, शरीर का कसाव

कार्कश्ययोग्यारणि—धू १६-आ, (मेरुला) उस व्यायाम की जगहों जिससे शरीर में कसाव या कार्कश्य उत्पन्न हो

कार्यक—पा २५-इ, मुकदमा लड़नेवाले वारी प्रतिवादी

कार्यनिष्पत्तिस्वरूप—प ६-२, काम पूरा होने की सूचना देनेवाला

कार्यसिद्धिनिमित्त—उ ७-१, कार्य सिद्धि का कारण

कार्याववाशका—धू १४-इ, काम में विघ्न होने की आशका

कार्यारम्भ—प १७-आ, मुकदमे का अजादावा कालभोजन—प २४-१०, विहित समय का भोजन

कालवर्तितप्रणयिनी—धू ५०-२, पुरानी प्रेयिका

कालागुहधुनदुर्दिन—धू ६५-१०, काले अग्रवृत्त चलने से धूर्ण हो जायदास छाजाना

कालास्तिधनिर्मुग्न—पा ६०-ई, टेढ़ी पुरानी हड्डी की तरह का

कालेयक—प २५-३२, एक प्रकार का सुमन्वित काष्ठ या काला चन्दन

कालेरिका—पा ६७-२४,

काव्यविशाच—प ६-१२, काव्य में विशाच का भाँति चिमडा हुआ

काव्यव्यसनिन्—प ६-४, काव्य में अनुरक्त रहने वाला

काशि—पा ५०-ई, १३४-इ, एक प्रसिद्ध जनपद

काषायान्त—प २३-३, भिक्षु के गेरुए वेश या चावर का पल्ला

काष्ठकमहस्तर—पा ८०-इ, कचहरी का लठैत प्यादा

काष्ठकलह—पा १२१-इ, नकली लड़ाई, जिसमें लकड़ी की तलवार या पटा परी लेकर युद्ध किया जाता है

काष्ठपादुकाशब्द—धू २७-१३, पंजाजों का शब्द

काष्ठग्रहार—प १६-३२, दण्डों की मार

काष्ठविपुलसितकलश—पा ५७-आ, काष्ठ निर्मित बड़ा सफेद कलशाकृति कान का आभूषण

काञ्चक—प ४३-आ, केसर

किन्नरयकठोरललाटजानु—पा १८-ई, तीन घट्टों से बँडोर हुए ललाट और घुटने

कितव—प १८-२२, पा ३०-३, धूर्त, बदमाश, जुआड़ी

किमनुग्रह—उ २७-१, कौन कृपावान

किशोरी—धू २५-१०, नई बछेड़ी, किशोरा वस्थापत्र शालिका

किसलयक्षीया—पा ११-५, थोड़ी शरान के पीने से किमलय की लालिमा का मालत हुई

किसलयसुकुमार—पा १४६-इ, पल्लव के समान कोमल

कीर—पा ८४-आ, व्यक्ति का नाम

कार्णवेश—पा १२-४, निचले ताल वाला

कुञ्जरक—धू २३-१, एक व्यक्ति का नाम

कुञ्जगारनिवेतना—पा ८८-५, छत्र पर के घर में रहने वाली

कुञ्जदत्तो—पा ५०-१३, इन्द्रसामी को चामरदाहिणी, सम्मन्त्र निम्न कान्ति की वेश्या

कुटजनिवसन—धू २-इ, कुटज के फूल जैसी
वृद्धि से सुशोभित जामदानी मलमल का
यस्त्र पहनने वाला

कुटुम्बतन्त्रार्थ—पा ७८-४, कुटुम्ब पालन के
लिये

कुटुम्बसर्वस्व—उ २३-१५, २४-४, कुटुम्ब
का सारा धन

कुटुम्बायवर्भाह—धू १०-३, कुटुम्ब के नाश
से डरने वाला

कुण्डलकोटिभिन्नकिरणचन्द्र—पा १०६-इ
कुण्डलों की कोटि में प्रतिबिम्ब डालने
वाला चन्द्रमा

कुण्डलमौलि—पा ५७-अ, बालों का जूड़ा

कुवेरवृत्त—उ ३-६,

कुमारमयूरवृत्त—पा १७-२,

कुमारमायाधिकरण—पा ७८-१९ कुमार-
माय का न्यायालय

कुसुदयार्पा—पा १०५-३, कुसुदों की चायड़ी

कुसुद्वती—प २८-१, २८-८, ३५-१८

कुसुद्वतीप्रकरण—प ३८-३४, कुसुद्वती नामक
प्रकरण या नाटक

कुसुद्वतीप्रबोध—प ३९-६, कुसुदिनी का
खिलना

कुसुद्वतीभूमिकाप्रकरण—प ३५-१८, कुसु
द्वती नामक नाटक में अभिनय योग्य
भूमिका का विषय

कुम्भदासीकृतकदित—धू ६-३ खवासिन
का बनावटी रोना

कुररप्रिस्त—पा २८-आ, कुररपत्नी की बोली

कुरवृत्त—प २-अ, २५-अ, एक पुष्पविशेष

कुलनारी—धू ६३-आ,

कुलधियेव (पा०)—पा ६७-१०, कुलकन्या
की भौति

कुलधू—प २८-९,

कुलधूकुसुमार्ग—धू १२-७, कुलधू के जीवन
का सररा रास्ता

कुलवधूकारा—धू १३-ई, कुलवधू की पूजा
कुलोत्सादन—उ १६-३, घर का उजाड़ना
कुलोत्सादनकर—धू २३-६, यह निष्कासन
करने वाला

कुलोद्गत—पा १३-अ, कुलीन

कुलवधूपलाश—पा ४०-आ, उत्पलपत्र व

कुटुब्ध—धू ११-२२, व्यर्थ हो जो बूढ़े हुए

कुसुमपुर—धू ६-८, पाटलिपुत्र

कुसुमपुरगगनपूर्णचन्द्र—उ २३-१४, कुसुम-
पुरके आभाश का पूर्ण चन्द्रमा

कुसुमपुरपुरन्दर—उ २८-७, यह नाम
कुमारगुप्त को दिया गया था जिसे महेन्द्र
या महेन्द्रादित्य भी कहते हैं

कुसुमपुरप्रकाश—उ ३४-१, कुसुमपुरका
प्रकाश, कुसुमपुर में सुविदित

कुसुमपुरराजमार्ग—धू १३-७, २६-४, उ
५-२, पाटलिपुत्र का राजमार्ग

कुसुममुकुल—प २०-अ, फूल की पत्ती

कुसुमवसना—प २०-६, फूलों के फलने पर-
नने वाली (फूलगली या वसन्त की स्त्री)

कुसुमविपणि—प २०-ई, फूलों का बाजार,
फूलगली

कुसुमशयनशायिनी—धू ६६-५, फूलों के
सेज पर लेटने वाली

कुसुमसमवाय—प २०-१, पुष्पसमूह

कुसुमसमाजसंविद्धित—प १६-११, फूलों के
दरों से देके हुए

कुसुमसमाज—प २४-१६, भौति भौति के
पुष्पोंकी गोष्ठी या एकत्र सम्मिलन

कुसुमाग्रयण—प २४-२५, पुष्पों का पहला
उपहार

कुसुमावतिका—पा ६६-१५, ६६-१७,

कुसुलद्वय—पा ७७-आ, कुठले का जोड़ा

कुण्ठि—धू ३६-८, टेढ़े-मेढ़े हाथ वाला

कुचैकमयीमल—पा ६३-आ, कुँची से म्याहो
लगाना

कृपांसक—पा ११३-३, चोली

कृपांसकोत्कवचित्तनयाहुमूल—पा ११३-इ

चोली से दके स्तन और नाहुमूल वाली

कूलस्थधारय—प ३३-इ, तटस्थ व्यक्ति की बात

कृच्छ्रमाभ्या—पा ३६-१६, मुश्किल से वश में होने वाली

कृतकपुत्र—पा ७६-७, गुड्डा

कृतकपोतरु—पा ५६-अ, हाथ जोड़े हुए

कृतकरलि—उ १४-इ, बनावटी रति

कृतकर्तव्य—पा—१२-३,

कृतकोपचारित्व—धू ५६-१, बनावटी शिष्टाचार

कृतविवाद—पा ७८-११, जिसने विवाद या मुकदमा कर दिया है

कृतव्यय—पा ३५-इ, जो अपनी पूँजी वेश में पून लुका है

कृतव्यायामा—प २५-२६, जिसने व्यायाम (मुतधम) कर लिया है

कृपावलवधः—धू ३६-इ, हलवाहे की लट्ट-मार बात या गाली

कृष्णिलरु—धू १०-२, १०-८,

केकरा—धू ५२-अ, पेंची हुई (दण्ड)

केरल—पा २४-ई, देशत्रियोप

केशप्रह—पा ४१-इ, गालों का पकटना

केशपाशावने—प ६-आ, केशविन्यास सी लगती है

केशहरत—प २५-अ, धू ६२-अ, पा-३१-७, केशपाश, जूहा

केशहरता—उ २६-५, पा १४४-आ, जूहे वाली

केशान्त—पू ११-आ, केशों का अन्त भाग

कैतव—प १८-२७, २३-अ, भूर्तता, वदमाशी

कैशिकाभय—प ३१-१८, ३१-२०, काम गम से भग हुआ, मनोभय का आभय

कैशोरक—२ ५-६, नखौरन

कोकिकुल—पा १४५-अ, कोक नामक कुल

कोकिलावावदूक—प १०-अ, कूकती कोयल

कोङ्क—पा ७६-आ

कोङ्कचेटी—पा ८४-इ,

कोङ्कण—पा ५३-इ,

कोपना—धू ४५-आ कोप करनेवाली

कोपप्रत्यावर्तक—धू ३६-५, कोप का दूर हटाना

कोपप्रसादनोपाय—धू ३६-३, क्रोध को हटाने या शान्त करने का उपाय

कोपफल—धू ३८-४, लठने का मग

कोपसर्वस्वसम्भृत—धू २२-आ, क्रोध की राशि से संचित (आय)

कोपाश्रित—धू १२-इ, क्रोध से युक्त

कोपाश्रितान्तर्धू—पा १२५-अ, मध्य से भीहों का कोना छींचने वाली

कोलर—पा १३८-इ, बीणा के नीचे का तूँबी वाला भाग

कोशोपद्रवा—२७-७, कोशविहीन, जिसका मालमता घट गया

कोसल—पा १३४-इ, एक जनपद का नाम

कोपीनप्रच्छादन—प २०-६, लँगोट से छिपाना

कीमारका—धू ३६-३, छोकरे, लोंहे

कीरुची—पा ५-ई, मुँह टेढ़ा करने या मुँह बनाने की भावना

कीशिक—पा १०-३, नल्लू

कीशिक—पा ५४-१, गोमनाम

कणिक—धू २९-१३, सावसाश

कतजमररा—पा ४०-अ, लट्ट के सदृश

कतदजा—धू २६-आ, दन्तद्वय में पीठित

कणिक—उ २३-१७, बरसाद किया गया, पँका गया

कान्ति—धू ४४-आ मदनशीलता, तन्मयता

कान्तिन्द्रिय—पा २१-आ, जिम्मे आनी धीर्य शक्ति गरीं ठा हो

धुदमुक्ताफलवक्राणामिव—पा ४४-४, बिखरे हुए छोटे मोतियाँ जै समान
 धुदमुक्तावक्राणं—पा १३१-५, फैले हुए छोटे मोती
 क्षेत्रज्ञ—उ १८-३, पत्नी के शरीर को जानने वाला, स्त्री का रसास्वादन करने वाला, ज्ञेय या शरीर में ज्ञेयनात्मा
 चौमचलाहक—धू १९-आ, नील रेशमी वस्त्र-रूपी नादल
 क्रयविक्रयव्यापृतजन—उ ५-४, खरीद बिना करने वाले ग्राहक
 क्रियानिष्पत्ति—धू ५६-६, काम का बनाना या साधना
 क्रीडाशक्तस्त्वन—पा २२-अ, पालतू पक्षियों की चहचहाट
 क्रीडासीर्यपरायण—उ ६-६, खेल कूट की मौज में मगन
 क्रोधपरिव्यक्तनयनराग—उ-६, क्रोध से लाल नेत्र वाला
 क्रोधचरागत—धू २१-६, क्रोध के यशीभूत
 क्रोधागाधपरीक्षा—प १३-४, क्रोध की गहराई जानने के लिये
 क्रीडारसायनोपयोग—पा ३२-२, क्रीडा रसायन नामक यात्रीकरण का सेवन
 क्लिष्टनाल—प ४३-ई, मसली हुई नाल
 खगदत—पा १०२-अ, चिड़ियों का शब्द जो वे प्रात उठने के बाद और सायंकाल नसेरा लेने से पूर्व करी है
 खचितशबल—पा १४१-आ शबलित, चित्र निचित्र बना हुआ
 खड्गद्वितीय—पा १६-आ, तल्वार के साथ
 खलजनोपाध्याय—उ २६-१, दुष्टजनों का गुण
 खलतिश्यामिलक—५-६, खल्वाट या गजा श्यामिलक
 खाट्—पा ३३-ई, खट—इस प्रकार का शब्द

खुरपुर्निपात—धू २७-१३, खुर का रखना
 खेदालसा—उ १६-२, रति खेद से अलसाई
 गजनर्तक—पा ५४-अ, नाचता हुआ हाथी
 गजवधू—पा १०४-अ, हथिनी
 गङ्गायमुना—पा ७८-१, इस नाम की नदी देवता
 गजकलभदन्तदशनचक्षुर्दाम्तर—पा १००-१४, जवान हाथी के दाँतों और आँठ के बीच का भाग
 गङ्गु—पा ९१-अ, कुबड़
 गङ्गुला—पा ९३-आ, कुबड़ी
 गणिकाजनकल्पवृक्ष—पा १२१-अ, गणिकाओं के बिगे कल्पवृक्ष जै समान
 गणिकाजनमाता—उ २१-३, खालाएँ
 गणिकादारिका—प १६-९, उ ५-९ गणिकाओं की पुत्रियों जिन्हें पेशा शुरू करने से पहले बनारसी बोली में नौची कहा जाता है
 गणिकापरिचारिका—धू १६-६, उ २२-४, वेश्या की सेवा करने वाली दासी
 गणिकामाता—उ २१-१, खाला, वेश्या की माँ
 गण्डपार्ष्व—प ३८-अ, कनपटी
 गण्डविच्छिन्नहास्य—पा ८३-६, पिचरे गालों से दनी हँसी वाला
 गण्डास्तसेवी—धू ५३-अ, करोल पर रखता हुआ
 गण्टाभोगे—पा १२५-अ, भरे हुए गाल में
 गण्डकस्वनशक्ति—पा ५२-ई, मेढक के शब्द की शका करते हुए
 गण्डूय—पा १३५-ई, कुल्ला
 गतप्रभ—उ २-आ, कुम्हलाया हुआ, कान्तिहीन
 गतयौवना—धू ५०-अ यौवन दली हुई स्त्री
 गतिद्वय—उ २८-२०, नृत्य में दो प्रकार की चाल

गतिसललिता—धू ५३-आ, सुन्दर चाल
गद्गदभाषिन्—धू १६-३, गद्गद स्वर में
बोलनेवाला

गन्धतैल—धू १६-१९, उ २७-१; सुगन्धित
तैल

गन्धसलिलावासिक्तभूमिभाग—धू ६६-६,
सुगन्धित जल से सींचा हुआ भूमि भाग

गन्धाधिवासित—उ २७-१, गन्ध से सुवा-
सित

गन्धाविद्धमारुत—धू ६५-७, गन्ध से भरी
हवा

गर्दभग्रत—धू २७-१६, गदहे की तरह
रेंकना

गर्भगृह—धू २४-४, ६५-१०, सहन या
आपाय का वह भाग जहाँ छिपौरहती हैं

गर्भगृहभोग—पा ११०-१, गर्भगृह के समान
भोग या सम्मिश्रण

गवाक्ष—प २९-अ; धू १६-१, १५-३; पा
३३-१२, १००-११, १०२ अ,
भरोला, लिटिका

गवाक्षमारुत—धू २४-६, लिटिका की हवा

गाढावर्णा—धू ८-आ, कड़ी गाँठ वाली

गाढोपगृह—उ २३-अ, गाढालिङ्गन

गाढोपगृहन—धू ६५-११, गाढा आलिङ्गन

गान्धर्व—प ७-६, संगीत

गान्धर्वसेवन—पा १३७-२

गान्धारक—पा १४०-१, गान्धार देश से
आया हुआ, गान्धार देश का

गार्गीपुत्र—प २७-७

गांगक—उ ३१-१; पा ६७-६, गीत

गांतेवादिमादित्य—उ २८-२०, गाने और
वजाने की रूप

गुग्गुलुगन्धवामम्—पा १८-६, गुग्गुलु के
गन्ध से वामित वस्तु

गुणवती—प १५-१, मेलनोक्ते गुणवाली

गुणाभिमुख—पा ८८-१३, गुण की ओर
आना या उन्मुख होना

गुणोद्भवैरकृतकैः—उ ३४-३, स्वाभाविक
गुणों के जन्म से

गुप्तकुल—पा ६७-३, ६७-१३,

गुप्तकुलेन—(पा०) पा ६७-७

गुप्तगल—पा ७८-अ, कोतल गर्दन, जिसका
गला छिपा हुआ है अर्थात् जो पता
जाता है पर प्रकट नहीं होता

गुप्तरोगश—पा १४२-३, मुकुन्दा, जिस
पुरुष के मूत्र आदि के बाल नहीं होते

गुरुजनयन्त्रणा—प ३८-१४, बड़ों की कड़ी
शिक्षा

गूढभावा—प ४०-अ, मन के भाव को छिपा
रखने वाली

गूढवेदन—प ३७-१८, छिपी कसक (कष्ट)
वाला

गूढदेहकी विलम्ब—धू ५२-५, घर की देहली
पर रक्खा हुआ

गूढद्वारकोष्ठ—प ६-४, धू १८-१४, बरीठा,
अलिन्द, घर के बाहरी द्वार पर बना
हुआ कमरा

गूढमणालिसलिलोद्गार—धू २४-आ, महल
की पनाली से पानी का निकलना

गूढभित्ति—पा १०५-६, घर की दीवार

गूढमन्य—धू ६६-६, घर का मझना भाग

गूढशिरिन्—पा ५२-३, घर का मोर

गूढमारसपतित—पा २२-३, पालतू सारस
की गूँबनी आवाज

गृहीतपरशुजामदग्न्य राम—धू ३१-२१,
परशु धारण करने वाले परशुराम

गृहीतवाचक—प १६-३, वातजोत में लगना

गृहीपदार—धू १६-२, घर का छेग द्वार,
सदर दरवाजे में सटा हुआ द्वार

गृहीपवन—धू ६७-१२, गृहीपान
मेहशिरिन्—धू ७-६, घर का मोर

गोधुर—प २१-३, गोधुर
 गोत्रप्रहण—धू ४०-१, नाम लेना
 गोत्रवाक्यक्षत—धू ४ ई, नाम ले लेनेका घात
 गोपानसी—पा ३३-६, पिडकी की चौटी
 गोपालरू—प ६-१४, ग्वाला, अहीर
 गोपालकुल—१८-२१, ग्वालों के घर
 गोमहिष—पा ७८-२, नरभैंसा
 गोमदनपुत्र—पा १३१-३, गादर या कायर
 गैल का नाती
 गोपान—धू ६३-ई, गैलगाडी
 गोष्टक—धू २६-६, गोष्ठी स्थान
 गोष्ठीक—धू २६-६, गोष्ठी के सदस्य
 गोष्ठीशाला—धू २६-२०, गोष्ठी समा
 गोस्तन—धू ५२-७, द्वार की ऊपरी मिलैया
 ग्रहपति—धू ६५-४, चन्द्रमा
 ग्रहोपसृष्ट चन्द्रमण्डल—धू ४८-९, ग्रह से
 प्रमित चन्द्रमा
 ग्रामोपान्त—धू २७-७ गाँव का सिमान
 ग्रैवेयक—उ २७-२, गले की हँसली
 घटदासी—पा ११०-३, कुम्भदासी
 घट्टमन्ती—पा ३६, झनकारती हुई
 घनसमय—धू २-ई, वर्षाकाल
 घनालका—प २८-आ, घने बालों वाली
 घण्टिक—पा ७५-ई, घड़ियाली
 घुणनिया—पा ६३-ई, कीरी काँटा
 चकोरचित्रोच्चगा—पा ११५-आ चकोरके
 जैसे बाल और ओंली वाली (यन्त्री)
 चक्रपीडकनीडा—प १० ६-५ चक्रडोरी या चक्र-
 भौरीका खेल
 चक्रवलय—पा ३४-अ पहियेका पुछा
 चक्रवाकोपदिष्टानुरागा—धू ६५-५ चक्र
 याक से प्रेमका रहस्य सीखा हुई
 चक्रद्वयादुदया—प २१-आ जिनकी दोनों
 भुजाएँ चमकभा रही हैं
 चञ्चलतरङ्गा—धू २६-आ, चञ्चल गति-
 वाली

चञ्चलाक्ष—धू १७-३, चञ्चलनेत्र
 चटु—पा ७२-अ गुशामद । चाटुकारिता
 चण्डालिका—प ७ ६-७, ८-ई, सोलह वर्ष-
 की आयुकी कुमारी, षोडशी बाला
 चतुरकथाः—पा १५८-अ बात करनेमें
 चतुर
 चतुरपदविन्यासा—उ १० ६-३, नपे तुने नजा-
 क्त मरे पैर रखनेवाली
 चतुरमधुरहस्तिरति—उ ११-५ चतुर और
 मधुर हैंसीसे युक्त काम
 चतुरिका—धू १४-१४
 चतुरदधिममुदयकल—प १० ६-आ चारों
 समुद्रोंसे प्राप्त माल (रत्नादि)
 चतुर्थवर्ण—पा १२-१० शूद्र
 चतुष्पथश्रृङ्गाटक—पा १० ३-६, चौराहा
 और तिमुहानी
 चतुष्पदा—प ३३-२७ लास्य के साथ गाई
 जानेवाली गीति-विशेष
 चत्वरशिवपीडिका—प १८-११ चौगहे पर-
 की शिव पियडी
 चन्द्रक—धू ११-६ मोर पलमें बने चन्द्रक,
 उनके जैसी चित्तियाँ या तिलमिले
 चन्द्रधर—प ३१-२६, ३३-६ व्यक्ति-
 विशेष
 चन्द्ररकामिनी—प ३१-९ चन्द्रधरकी
 रखेली
 चन्द्रशालाग्र—पा ११३-३ चन्द्रशालाके
 समान
 चन्द्रातप—प २१-२६, पा ११०-१
 चाँदनी
 चरणनादनमञ्जक—पा ८-७ चरणनादन
 नामका
 चरणदासी—उ ६-७, १६-८
 चरणनलिनराग—पा १००-११ चरणनमल
 का रँगना
 चरणपतन—उ ३-१० पैरोंमें पडना

चरणपद्मविन्यास—पा० ४१-३१ कदमोंका
रचना
चरणभरणशब्दसूचिता—पा० ६८-५ पैरके
गहनोंकी भनकारसे जानी गई
चरितचपक—पा० २६-आ शराबका प्याला
चलता है
चरितासुगामी—धू० ४६-७ नरिवका अनु-
गमन करने वाला
चलकपोतसूचितहास—पा० १२-६ गाल
पिचकाकर हँसीकी सूचना देना
चलतारका—धू० ५२-६ चञ्चल पुतली
चलकुण्डला—पा० १०४-६ चञ्चल या हिलते
हुए कुण्डलों वाली
चलमणिरशना—पा० ६९-आ ऐसी रशना
जिसके मनके धागेमें एक स्थानपर गठि-
याए न होकर खिसकने वाले हों
चलासी—धू० ५४-६ चञ्चल नेत्रवाली
चपक—धू० २७-६ मुराणनका पान
चामरग्राहिणी—पा० ५२-१३ ७८-१ चैवर
डुलाने वाली
चार—पा० १८-२४ जासूसी
चारकूय—पा० १८-२६ जासूसी की कस्तूत
चारणदासी—उ० १८-११
चारका—उ० २२-आ सुन्दर
चारकील यौवन—उ० ५-आ भठखेलियाँ
करता यौवन
चारकीला—धू० ५२-६; उ० ५-८, २६-६
सुन्दर शवभाय या नरदे
चारविस्तीर्णशोभा—उ० ३५-अ छिटकती
शोभा से सुन्दर
चारशोभ—उ० २७-१ सुन्दर शोभा युक्त
चिकरिस्तु—धू० ४३-१ इलाज करनेके लिये,
उपाय करने के लिये
चितज्ञान—धू० ६४-आ मनरी बात भाँप
लेना
चितविभु—पा० १२२-आ चित का स्वामी ।

चित्तेश्वर—पा० १२१-१ कामदेव
चित्रनारी—धू० ५५-१३ चित्रलिखित नारी
चित्रप्रचार—पा० ३०-११ विचित्र ढंग से
अङ्ग संचालन
चित्रशाल—पा० ३३-१६
चित्राचार्य—पा० ६६-१५
चित्रिद्वन्द्व—पा० २४-१२ सिर पर पड़ी हुई
दाद की चिन्ती
चित्रितोपस्थित—पा० ६-५ सोची हुई बात
का याद आना
चिरप्रार्थित—पा० ४७-१ चिर अभिलषित
चिरमनोरथप्रार्थित—६८-१ चिर अभिलाषा
से प्रार्थित
चिरासिक्रान्त—पा० ३१-१० बहुत समय
के बीते
चिराध्यास—धू० २६-१८ अधिक देर तक
बैठना
चिरोत्सग्न—पा० ४१-२५ बहुत पहले व्यतीत
हुआ
चाँस्कारभूयिष्ठ—पा० ११६-२ न्नीकार से
भरा हुआ
सुग्धनपरिध्वज—पा० ७२-१ सुग्धन और
आलिप्तन
सुग्धनरक्त—पा० ३३-अ सुग्धन में आसक्त
सुग्धनविवादिनी—धू० ६५-८ सुग्धन के
लिये ललकारने वाली
सुग्धनोदपात—धू० १८-६ सुग्धनकी चोट
सुग्धनातिप्रसङ्ग—पा० ३२-६ अप्रिय सुग्धन
लेना
सुग्धितचान्द्रायण—पा० ३५-६ सुग्धनमें
चान्द्रायणमत की तरह हास और वृद्धि ।
चूतादुरनिबोधित—उ० ४-आ ग्राम के
बौरों से बागी हुई, बीराई हुई
चूर्णामोदितकर्मशस्तनयुगला—उ० २६-५
कठिन स्तन को चूर्ण से मुगन्धित किए
हुए

चेरपुत्र—पा० १३७-२ दास की संतान
चेटिका—उ० २६-५ चेरी, नौकरानी ।

चोदितसंप्रयोगा—धू० ५५-आ सम्मिलन
के लिये प्रेरित करनेवाली

चोरिकासुरत—ग० ४४-ई रात्रि अभिसार
द्वारा गुप्त सुरत

चोलक—पा २४-ई चोल देश का निवासी
चौबपिशाच—ग० १८-३० चौक्षपन या

छूभाछूत का भूत

चौबबादिसः—पवित्राराम वैष्णव कहलाने
वाला

चौबामाय—पा, २४-५ चौबों का साथी
चौकोपचार—ग० १८-३२ छूभाछूत का दोग

चौकोपापन—ग० २६-३, चौबों द्वारा देने
योग्य उपहार

च्युतमूल—पा० ३३-आ, जड़ छोड़कर
छन्दकरी—धू० ५६-६, आशाकारिणी

छन्दतः—ग० १६-२, स्तम्भता पूर्वक
छन्न—ग० २१-अ, छान, छप्पर

छलमाही—ग० ३६-४, छल, छद्म को जानने
वाला

छलित—पा० ४४-६, ४४-७ छला गवा
छिद्र—ग० ४३-ई, सुसोवत, कष्ट

छिद्रद्वार—उ०, २४-७ चोर दरवाजा
छिद्रप्रहरिण—धू० ४६-४, छिद्र देखकर

प्रहार करना । छिद्र = (लिपिक पक्षमें)
मामले की कमजोरी; (वेश्या शब्दमें)

आचार दोष
अगदघोषणा—धू० ४-ई, ससार भर में सुनादी

अघनपात्र—प० १८-१६, अघनस्थल रूपी
पात्र

अघननिवर्तित—ग० ३६-ई, अघन प्रदेश पर
लगे हुए (चिह्न)

अघनविमोशुकान्तर—धू० २५-८ भीने
शशुक के भीतर का अघन

अघनोत्सेक—प० २६-१४ यौवनोद्गम से
अघन भाग का भर जाना

अघनरथनितम्बवैजयन्ती—पा० १३६-अ,
अघनरूपी रथ के पार्श्वभाग में पहराने-

वाली पताका

अघन्यकामुक—पा० ४४-६ अघन भाग का
कामी

अङ्गम उद्यान—पा० ३१-५, चलता फिरता
बगोचा

अङ्गमतार्थ—प० ५६-६, चलता फिरता तीर्थ
जननी—उ० २५-१, वेश्यामाता

जनबाहुक्षय—धू० ६-१०, लोगों की भीड़
भाड़

जनोकसुम्भ—पा० २५-६, अपना बनाना,
स्वजन बना लेना

जन्मजीवित—धू० ५३-१४, ६४-१२ जन्म
और जीवन

जम्बूद्वीपतिलकभूत—पा० २१०९, जम्बूद्वीप
में तिलक स्वरूप, जम्बूद्वीप में सर्वभ्रेष्ठ

जम्बूद्वीपनन्दनकपोलपद्मरेखा—प० ८-२०,
जम्बूद्वीप रूपी मुख के कपोल की पना-

वली रचना के समान सुशोभित (उज्ज-
यिनी

जय—पा० ७८-२२, मुकदमे का अपने
पक्ष में निर्णय

जयन्तक—पा० ११०-३,
जरदसुजड़—प० २०-१२, पुगना सॉप या

बुढ़ा चिट
जरद्विट—पा० ८५-४ बूढ़ा चिट

जराकौपीयप्रच्छादन—ग० २०-६ बुढ़ापेको
(सिञ्चारूपी) लँगोटेसे छिपाना ।

जरावच—प० २०-१२ पुरानीगाल, कँचुल ।
जलदममयदोषमादापणा—धू० ८-आ चरमात

के कारण कड़ी गई वाली ।
जलदावकुण्ठन—धू० ६५-४, बादलोंका
घूँघट ।

जलधरधारा—धू० ६५-१ मेघकी जलधारा ।
जलधरनिर्वापितचन्द्रदीपा—धू० ६४-१२
बादलोंके कारण चन्द्रमारूपी दीपकका
मन्द होना ।

जलधरमलिन—धू० ६-ई मेघसे आच्छादित
होनेके कारण अँधियारा ।

जलनिधिरशना—उ० ३५-इ समुद्रकी मेखला
वाली ।

जातिकडिन—धू० ६७-१३ जन्मसे कठोर
भाव रखनेवाला ।

जायन्धा—धू० १३-अ जन्मसे ही अन्धी
(अति लज्जाके कारण मुरतमें आँख मन्द
रखनेवाली)

जानुद्भन—पा० ११७-अ घुटने तक आया
हुआ

जाह्नवीतीर्थ—प० १८-११ गङ्गाका घाट ।

जिघृक्षती—प० १७-१३ अँकवारती हुई ।

जिह्वामूलवृष्ट—पा० ३२-इ जिह्वाके अप्रमाण
से छू जाने पर ।

जीर्णकापाववखा—पा० १३६-अ पुराने गेरुए
वस्त्र पहनने वाली ।

जीर्णोद्यान—पा० ३१-५ पुराना बगीचा,
उज्जयिनीमें इस नामका एक उद्यान

जृम्भणः—प० ३८-आ जभाई ।

शातोपचार—धू० ६-ई शिष्टाचार जानने-
वाला ।

उपोत्सवादर्शन—प० ३३-१० चौदिनीका दिखाई
पड़ना

उज्जिततरङ्गधुप्—पा० ६९-इ दम्कती हुई
शरीर वाली ।

हंभ—पा० ७५-६ दम्भ, अभिमान ।

डिपिडक—पा० ४-इ गुडा, डाड्या ।

डिण्डिमण—पा० ५६-४ गुण्डे ।

डिण्डिल—पा० ४९-१, ४९-२, ६३-३,
डाड्यापन, गुण्डापन ।

डिण्डिन्—पा० ६२-४, ६२-६, ११७-३
गुण्डा ।

डोला—उ० ३-आ झूला

डोक्रितुम्—पा० १०-२ पास आनेके लिये

गवि—(प्रा०) पा० ६२ नहीं

णिबुद्धिष्णु—(प्रा०) ६७-६, अपने स्वार्थ
या कार्यपूर्तिके उद्देश्यसे

तक्रविक्रय—प० १८-२१ मट्टा बेचना

तद्विस्मालमनविह्वलद्गात्र—धू० २-आ
बिजलीके आलिंगनसे काँपते शरीर
वाला

तथागत—पा० ६४-५, ६४-७, ५५-इ,
६५-ई (१) बुद्ध भगवान्, (२) उस
दशाको प्राप्त, विपन्न

तथागतशासन—पा० ६५-२ बुद्धका उपदिष्ट
धर्म

तथास्व—प० २१-२५ उसी समयका, नगद,
प्रत्यक्ष

तदास्वापति—धू० ६४-१० यह जन्म और
आनेवाला जन्म

तदुक्तदत्तप्रतिबचन—प० ८-८ उसके कहे
हुएका उत्तर देकर ।

तन्त्रीवेद—धू० २०-ई बीणा के तारों का
दूट जाना

तनुतरा—प० ४०-आ दुबली ।

तपश्चरणदुरवाप—धू० ६४-११ तपस्या करने
के बाद कठिनाई से प्राप्त होने वाला

तपस्विन्—धू० अ० ११-२६, प० १८-१२
तृप्त, दुखिया, पा० ३२-६ (व्यंग्यार्थ)
मुखादि को अप्राप्त होने वाला

तपस्विनी—उ० १५-७ प० २८-३ शिव
वियोगमें कष्ट भेलने वाली

तपस्नोलोक—धू० ६७-१ भोला भाला,
बेनारा लोक जो मुख भोग के अनुभव
से कोरा रहने से 'तपस्वी' बना हुआ है ।

तमालहरितालपङ्कजवपन्नलेखा—पा० १०५-ई
तमाल और हरिताल के पक से बनाई
गई पनावली ।

तरुणजनसुरतविघ्न—उ० १८-६ जवानों के मौज-मजे का विघ्न ।

तरुणवृण—धू० ८-६ कोमल नई घास

तरुणसहकार—पा० १३५-३ नवीन सहकार वृक्ष, तरुणों का समागम

तरुसमुद्रिता—प० ३-अ वृक्षों के रस से मतवाली

तप्प (प्रा०)—पा० ६७-८ उसे

तहम्मि (प्रा०)—पा० ६७-८ तो मैं ही

तादाविष्क—पा० १२१-आ जो वर्तमान जीवन में ही भोग भोगनेमें विश्वास करता है

तान्त—प० ७-अ शिथिल झलसाई हुई

ताम्बूलसेना—प० २५-८, २५-१६, २५-२६, २५-२९

ताम्रतलाहलि—धू० ५३-अ लाल हवेली ग्रीर अंगुली

ताम्रनयन—प० ७-अ लाल आँखें

ताम्राभोरहपत्र—पा० १३८-आ लाल कमल की पटुडिया

ताम्बूलावसिक्त—पा० ४२-२ पान की पीक में सना हुआ

तादण्यवदकामतन्त्र—धू० ६७-१४ जगनी से भरे हुए काम के वशीभूत

तालान्वित—धू० १७-६ ताल युक्त

तालवृन्त—प० ८-३, १३-६, २५-२८ ताड़ का पत्ता

* तालवृन्तमादत—धू० ६६-५ ताड़ के पत्ते की हवा

तिरस्करीणा—प० ३३-२४ पटाँ

तिर्यक्कटाक्ष—धू० ५२-१ तिरछी चितवन

तिलकमार्ग—धू० ६६-८ तिलक का स्थान, तिलक का चिह्न ।

तिलकशिरस्—प० ६-आ तिलक वृक्ष का अग्रभाग

तिलकावभेद—धू० २५-७ तिलक का विंगड या पैल जाना

तुरगभासपिशुन—पा० २८-६ घोड़े के श्वास की तरह

तुर्यम्—पा० ६७-६ चौगुना ।

तुषारपरुष, —प० ३४-७ वर्ष के कारण भेदने वाला

तुषारमुक्तावर्षिणी—धू० ६५-१० पाले की बूँदें बरसाने वाली

तृणपिशाच—पा० ८४-३ तिनकों से बना पिशाच जैसा

तृत्वायामकृत्ति—उ० २१-५ नपुंसक, हिजड़ा

तेजस्विपुरुषनिकपोषल—धू० ११-८ तेजस्वी पुरुषों को परलनेवाला निकप प्रस्तर

तोषान्तर—पा० ३३-१६, जलवापी के समीप

सौण्डिकोकि—८८-२, पा० १२१-२, १४७-२

सौण्डिकोकिविष्णुनाग—पा० १००-२१

त्रिक—पा० ६१-आ कमर का वह भाग जहाँ दोनों कूल्हों के बीच में रीढ़ की हड्डी मिलती है

त्रिकपरिवर्तनसार्वाकृतदर्शनीयतरा—पा० १००-६ त्रिक भागके घुमाने से सार्वाकृत मुद्रा से अधिक सुन्दर लगनेवाली

त्रिफल—प० २१-३ त्रिफला (हर्षा, बहुला, भाँवला)

त्रैविद्यवृद्ध—पा० १२-५, ७८-१, १४१-१

तीन विद्याओं के जाननेवालों की भाँति सम्मानित, एक व्यय्य उपाधि

त्वरानुप्रेय—उ० २०-४, २३-३, २५-६ शीघ्र करने योग्य

त्वरिततरपदविन्यासा—प० २५-१६, ११-५, जल्दी जल्दी पैर बढ़ानेवाली

दक्षिणत्व—धू० ४५-६, अनुसूता

दक्षिणा—धू० ४५-६, ५५-२ अनुसूत रहने वाली

दण्डनीत्यान्वीक्षिकी—पा० १४-२ दण्डनीति
और तर्क शास्त्र

दण्डसाहाय्य—पा० ७८-२१ आर्थिक दण्ड
के अदा करने में सहायता

दत्तकलशि—पा० १६-७, १६-२१, १८-३,
एक पात्र

दत्तकसूत्र—पा० २४-ई

दत्तप्रतिवचन—पा० ३०-७ उत्तर देना

दद्रुणमाश्रय—पा० ८-३, ८-४ ददोड़ा माश्रय

दन्तनिपतन—पा० ३३-२ दाँत का गिरना

दन्तपदजर्जरोष्ठो—पा० ३५ अ दन्तक्षत से
जर्जर होठ वाली

दन्ताक्रान्त—उ० १२-आ दन्तक्षत

दम्बद्वकपुत्र—पा० १६-७

दमितमाश्रय—पा० ५६-आ प्रेमी की माला

दमितविष्णु—पा० १७-४

दर्दरक—पा० १०-६, १०-७, ३५-१०

दर्शनपरिहार—पा० २१-११ दर्शन से बचना,
छिपना

दर्शनमाश्रय—पा० ७६-ई देखने भर के
लिये सुन्दर

दर्शमोदहत—पा० २४-१५ देखने से मिला
हुआ (नेत्र)

दशनपद्म—पा० ४१-ई, १००-१५ अघर

दशनपद्म—धू० २५-१४ दन्त से किया हुआ
चिह्न

दशनमण्डलपित्रककुन्दरा—पा० ५६-अ
दन्तक्षतो से चित्रित पुट्टी वाली

दशनवसन—धू० २५-१४, उ० १-आ
ओष्ठ

दशार्धवर्ण—पा० ११७-१४ पाँच रंग

दष्टार्धोष्ठ—पा० १२५-आ अर्धोष्ठ काटे हुए

दाक्षिणात्य—पा० ५३-आ, १३६-२ दक्षिणी
या दक्षिण देश से आया हुआ

दाक्षिण्य—पा० २६-१५, धू० ३५-४ अनु-
कूलता

दाक्षिण्यधना—धू० ६०-इ दाक्षिण्य से परि-
पूर्ण

दाक्षिण्यपल्लव—पा० ७४-२७, शिष्टाचारका
एक सुकुमार कर्म या हल्का नमूना ।

दाक्षिण्यमोग्या—धू० १०-अ, अनुकूल भाव
से मिलने योग्य, अनुकूल भावसे उपभोग
करने योग्य ।

दाक्षिण्ययुक्ता—धू० ६५-ई, अनुकूल रहने
वाली ।

दाक्षिण्यविषय—धू० ६२-अ अनुकूल ।

दाक्षिण्यवातिष्यय—पा० २५-२६ आवभगतकी
फिजूलखर्ची ।

दाणि—(प्रा०) पा० ६७-१७ इस समय ।

दात्तकीयाः—पा० ७८-६ दत्तक विरचित
कामतन्त्रके विद्वान्

दागकामा—पा० रकम प्राप्त करनेवाली

दातकर्म—धू० १२-३ विवाहकर्म ।

दारिका—पा० ७-३ यौवनप्राप्त कुमारी ।

दारिकानुद्गरो—पा० ६-अ पेशमें वह कुमारी
जो अभी नववन्द हो ।

दारिद्र्यतमोपह—उ० २३-१४ दरिद्रतारूपी
अन्धकारको हटानेवाला ।

दाहपर्वतक—पा० ३३-१६ भवनोद्यानके एक
भागमें मीठा पर्वत ।

दाशेरक रुद्रवर्मन्—पा० १७-२, ६७-ई,
६७-३ दासेर या दशपुरका रुद्रवर्मा ।

दाहप्रतीकार—पा० ३-३ उखलना निवारण ।

दिष्टु (प्रा०)—पा० ६७-७ देनेकी इच्छा
वाला ।

दिवसविगम—पा० १५-आ दिनका समाप्त
होना या पीतना ।

दिवसममयदूत—पा० ६-आ दिन उगनेका
सूचक ।

दिवाचन्द्रलीला—पा० ११-१४ दिनके चन्द्रमा
की तरह ।

दिवासुरत—२५-२२ पा० २६-ई दिवारति ।

देवसेना—प० ६-४, ७-१, ८-१०, ८-१२,
३५-१६, ३७-६, ४१-२६

देवार्चनाजातकिण—पा० ९०-आ देवार्चन
से पडा हुआ पडा

देवानांप्रिय—प० ८-१२; पा० १००-२०
आदर सूचक शब्द, भाग्यशाली ।

देविलकभाब—धू० २९-६ धूर्तविट सवाद में
विट का नाम

देशशालौपयिक—पा० ९७-१७ देश काल
के अनुसार

दशान्तरविहार—पा० ५६-२ विदेश का
आनन्द

देशौपयिक—पा० ५४-३, ५४-४ प्रथा या
देश का रिवाज

दोकुलेय—पा० ८५-६ लुरे कुल में पैदा
हुआ व्यक्ति

दुतिहर—धू० २३-अ शोभा को हराने
वाला

दूतसभा—प० २१-२६ धू ८-२ जूआलाना
द्रमिलीसुरसामिलाप—पा० ९७-ई द्रमिल
देशकी नायिकाके साथ सुरतकी अभि-
लाषा ।

द्रव्य—उ० १८-अ वैशेषिकके अनुसार,
पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाशादि
नित्य पदार्थ ।

द्रव्यलुब्धा—धू० ४५-अ धनकी लोभी ।

द्रव्यरतिप्रणय—प० २१-१९ दोहरा रति
प्रेम ।

द्रास्थ—पा० १०४-आ द्वार पर स्थित ।

द्वारकोष्ठस्थ—प० १३-४ छोटीमें स्थित ।

द्वारपारवावरुद्धरीरा—धू० ५२-५ द्वारके
पार्श्व भागमें शरीरको छिपाए हुई ।

द्वारकोष्ठ—प० ३१-१३ बहिर्द्वारकी देहली ।

द्विगुणीकृतोत्तरकुशा—पा० ३४-६ ऊपरी
बालीन मोड़कर दोहरे कर दिए
गए हैं ।

द्विज—पा० १११-आ दत्त ।

द्विजकुमारक—प० २१-१६ ब्राह्मणका बेटा ।

द्वितीयनामधेय—प० २०-५ दूसरा नाम ।

द्विरदेन्द्रमस्तक—धू० २०-आ हाथीका
मस्तक ।

धनकुप्यार्थ—धू० ११-२० धनके वचानेके
लिये ।

धनदत्तसार्यवाहपुत्र समुद्रदत्त—उभ० १३-२
धनदत्त सार्यवाहका पुत्र समुद्रदत्त ।

धनमित्र—उ० २३-१३

धनुगुणनि.स्वन—प० ६-अ धनु प्रत्यङ्गाकी
टङ्कार ।

धनुस्स्वन—पा० २२-अ धनुषकी टङ्कार ।

धरते—धू० २७-११ जमकर रहता है ।

धर्मवचन—पा० १४-६ धर्मशास्त्रका वचन ।

धर्माण्यनिवासी—प० २३-४ धर्माराममें
रहनेवाला, बिहारमें रहनेवाला ।

धर्मासक्ति—प० १८-८ धर्मासनका अभ्यङ्ग,
न्यायाभ्यङ्ग ।

धवलप्रतिमा—पा० ११२-अ गोरा स्वरूप ।

धवलशिबिका—पा० २४-२ सफेद पालकी ।

धातुशतानी—प० १६-३६ धातुओंकी गङ्गा-
गङ्गाहटसे भरी हुई वाक्यशैली ।

धान्य—प० ११-११, १६-१३, २०-७,
२३-११६, २५-६, २५-२३, पा०

३०-६, ६२-६, १३२-७ भलमानस ।

धारा—धू० ३-अ शब्द या नादकी झड़ी जो
बाधा नब्बाते हुए उत्पन्न की जाती है ।

धाराशिशिर—धू० ५-६ मेघकी जलधारासे
शीतल ।

धार्या—पा० ३४-आ चरदी ।

धार्यारुद्ध (किरात)—पा० ३६-आ चरदी
कसे हुए (किरात) ।

धिग्वादिन्—पा० १०६-आ धिकारने
वाला ।

धीरमुख बद्धा—पा० १२६-आ गम्भीर
मुद्रा बनाकर ।

धीरहस्त—पृ० ३३-३, ४०-३, अकडा हुआ,
बढ़ भाव बिठमें हाथ चञ्चल न होकर
कड़े कर लिए जायें ।

धुन्वन्तो—पा० ४१-अ धुनती हुई ।

धुर्यप्रतोद—पृ० ३६-आ त्रैलोक्यो हॉकनेका
अकुश ।

धूर्तगोष्ठी—पा० ४-ई धूर्तों की गोष्ठी ।

धूर्तचार्मिक—पा० ५-६ घटना नञाकर घोषणा
करनेवाला धूर्त

धूर्तपरिपद—पा० ७७-१ धूर्त मण्डली

धूर्ताचार्य—पृ० ८-१३, २७-४

धूर्तापित—पृ० ६-ई धूर्तता करता हुआ
छेड़पानी करता हुआ, धूर्त की तरह
आचरण करता हुआ

धोरित—पा० १०४-ई दुलकी चाल

ध्यानग्लान्तनु—पृ० ७-आ चिन्ता से क्षीण-
काय

ध्यानाभिभूत—उ० २४-आ चिन्ताप्रस्थ

ध्यानलयासपरवत्ता—पा० २४-६ ध्यान और
अभ्यास के वशीभूत होना

ध्यानैकताना—पृ० ३८-आ ध्यान लगने से
एकटक

ध्वस्त—पृ० २४-१४, पृ० २०-७ नष्ट, चला
गया

नखदशननिपात—पृ० ४१-१ नखक्षत और
दन्तक्षत

नखपद—पा० ४६-अ नालूनों के विह्व या
खरोब

नखरपत्रचिता—उ० २८-अ नखा की खरोबों
से भरी

नखराजि—पा० ३२-अ नखों की पक्ति, नख
क्षत की पक्ति

नखविलिखित—पा० १३१-अ हाथी के नख
को उत्कीर्ण करके मनाया हुआ

नखवचात—पा० ५५-अ नखक्षत

नखवट्टक—पृ० ९-३ नगर के अधिकारी

विशेष, सम्भवतः शुल्कपाला के निरी-
क्षक

नगररथ्या—पा० २१-८ शहर की सड़क

नगरविहग—पा० २९-ई शहर के पत्नी

नतोन्नता—पृ० ३०-ई नीचे ऊपर होती हुई
नयनपावन—पृ० २४-१७ आँखों को पवित्र

करनेवाला

नयनविप्रेक्षित—पृ० २४-४ आँखों का
धुमाना या चलाना

नयनसङ्गतक—पृ० ८-१४ आँख लड़ाना

नयनसञ्चार—पृ० २५-७ दृष्टि विक्षेप

नयनहुतवद्—पा० १-अ नेत्राग्नि

नयनामुतायमानरूपा—उ० १५-१० नेत्रों
के लिये अमृत के सदृश रूपवाली

नयनाम्बुपात—पा० ११-आ अम्बुपात, आँख
का बहना

नयनोत्सव—पृ० २९-१२ आँखों का उत्सव,
जलसा

नरपतिमार्ग—पृ० ११-१५ राजमार्ग

नरवागुरा—पृ० ५३-ई आदमी पैसाले का
बाल

नरेन्द्रसदृश—पा० ४२-३ राजमहल

नर्म—पा० ११६-आ प्रेमालाप, हँसी-मजाक

नवमारिकोन्मीलितकेशहस्त—पृ० ६६-५
नवमालिका से सजा जूहा

नवसुधावशातान्तरा—पा० १०५-३ टटकी
सफेदी से घबलित

नवप्रणयिनी—पृ० ५०-२ नवीन प्रेमिका

नागदक्ष—उ० ६-१

नागरिका—पृ० ३१-६, ३३-१६

नागवत्विष्णुनामन्—पा० १२४-अ नाग
विष्णु

नागवधू—पृ० २५-६ हथिनी ।

नष्टकभूमिका—पृ० ३८-२१

नष्टेरक—पृ० ३५-१० नदी का पुत्र ।

नातिप्रगल्भाक्षर—पा० ७२-३ दवे शब्द

नातिबहुमान्या—धू० ३५-१ अधिक सम्मान
 प्रात न करनेवाली, जिसकी परवाह न
 की जाय, उपेक्षिता
 नातिविप्रकृष्ट—पा-६२-४ बहुत दूर नहीं
 अविदूर, निकट
 नातिमुक्ष्य—धू० १०-१६ बहुत बारीक नहीं
 नानागोत्रप्रद—धू० ४१-३ अनेक नामों का
 लेना ।
 नाभिहृदाम्भ स्तुति—धू० १६-अ नाभिरूपी
 सरोवरसे उहनेवाली धारा ।
 नामधेयाभिष्यक्ति—उ० २६-४ नाम का
 लेना, नाम लेकर पुकारना ।
 नारायणवृक्षा—उ० ३-६, ३-१०, २६-५
 नारायण भवन—उ० ३-८ विष्णु का मन्दिर
 नालीनलिका—पा० ६३-आ गेहूँ की बाली
 की तरह पोली नलकी
 नि शोका—प० २६-ई शोक रहित ।
 नि श्रीका—प० २८-८ श्रीहीन हुई ।
 नि श्वासउव्रिताधर—प० १५-आ गरम
 साँस से भुक्तसा अधर
 नि साधारण—धू० ६-१२ असाधारण,
 विशेष ।
 निकषोपल—धू० ११-८ स्वर्णादि परलने
 वाला पत्थर, कसौरी
 निश्चित—पा० ६२०-ई भरा हुआ ।
 निथ्यप्रवासी—प० २६-आ सदा प्रवास में
 रहने वाला ।
 नित्यप्रसन्न—प० २४-२ नित्य प्रसन्न रहने
 वाला, सदा चित्तसे प्रसाद गुण से युक्त,
 सदा प्रसन्ना नामक शराब पीकर धुत,
 बना हुआ
 नित्यस्मित—धू० १६-७ सर्वदा मुस्कराहट
 युक्त
 निथ्यो सबंधावृत्त—उ० ६-अ नित्य उत्सव
 में लगे हुए

निद्रालसलोललोचन—उ० ७-आ निद्रा से
 अलसथा चंचल नेत्र ।
 निद्रालसाधोरण—निद्रा में ऊँघता हुआ
 महावत
 निधान—धू० ५८-४ कोश, गाढर रखना,
 दपनी
 निधि—धू० ५६-अ गाढकर रक्खा हुआ
 धन
 निनद—प० ६-अ निनाद = शब्द
 निनदमुखर—धू० २८-आ भक्तार से मुत्तारित
 निबद्धमध्यदेहा—पा० ५६-३ कसी या बँधी
 हुई कमर
 निभुक्पिण्डितोष्ठ—धू० १७-३ खूब भोगे
 हुए फूले ओष्ठ ।
 निभृत्—प० ३८-१४ एकान्त, स्थिर
 निभृत्सवदना—प० २८-अ निश्चल मुँहवाली,
 म्लानमुत्पी ।
 निभृता—धू० ५६-अ सयत रहने वाली ।
 निमित्त—पा० ३२-१० नाप जोखके अनु
 सार बने हुए
 नियम्या—पा० ६३-आ नियमन करने
 योग्य
 नियुक्त—पा० ११६-१ प्रधान अधिकारी
 निरक्षर—धू० १८-ई चुपचाप
 निरञ्जनलोचना—प० २८-अ बिना आँखों
 ओंजे हुए
 निरपेक्ष—पा० ६३-३, ६४-२ सासारिक
 वस्तुओं से उपेक्षावृत्ति धारण करने वाला,
 पा० ८५ आ उपेक्षाविहारी नौद्ध उपासक
 निरुपस्कृत—प० ६-८ सीधा सादा, बिना
 बनावट का
 निरपस्कृतभद्रक—प० २१-२४ शृंगारनिहीन
 सुरत
 निर्गुण—उ० १८-३ १ गुणातीत २ गुणरहित
 निर्दयोपभुक्ता—उ० ६-४ निर्दयता पूर्वक
 भाग की गई ।

निर्दोषमदनत्व—धू० ५३-१० काम भाव
का निर्दोष होना

निर्द्रव्य—प० २३-इ निर्धन, गरीब

निर्धूतहस्त—पा० १२६-अ हाथ भटकते हुए

निर्भस्यन्ते—पा० ३५-इं घुडके जाते हैं

निर्भूषणावयवचारुतराङ्गयष्टि—पा० १४४-अ

आभूषण हटा देने से अधिक सुन्दर

निर्मचिकं—पा० ४-ई वे राक टोक, बेतटके,

निर्विघ्न

निर्मविभूत—प० ४३-ई शरीर का मैल

निर्मुण्डगण्ड—प० २१-आ दाढीके वालोंका

सपाचट होना

निर्मुक्तभूषण—प० ३१-१४ आभूषण विहीन

निर्यूहक—पा० ३३-१२ निकलतो हुईं घेदिका

थाले छुज्जे

निर्ष्पाजमनोहररूपा—उ० २७-२ स्वामा-

निक सुन्दर स्वरूपवाली

निवर्तन—प० ३०-१४ पीछे हटना

निवृत्तकामतन्त्रा—पा० ७८-४ कामतन्त्रसे

रहित

निवेशन—पा० ६७-२४ घर

निवेशमानान्तर्गतमहर्ष—उ० २८-१ भीतरी

उल्लास प्रकट करता हुआ

निशाविहार—प० २५-३२ रातमें विहार

करना, रमण करना

निश्चकार—पा० ८७-इ सिसकारी, सीत्कार

निपादनगर—पा० १२४-ई

निष्कैतव—प० ०९-१ निश्चल

निष्ठावन्ती—धू० ७-२ उगलती हुई

निष्ठोचितत्व—३१-२ अद्वयमवित, शुद्ध प्रेम

निष्पङ्कता—धू० २६-४ सफाई

निष्पन्नशिष्य—प० १९-६ सच्चा चेला मूँडने

वाला

निर्वातसारपरिव्यागसामर्थ्ययुक्ता—उ० १६-

११ सार पीकर सीटोकी तरह पेंकनेमें

समर्थ

निस्सङ्गनिश्चातसायक—पा० ६५-ग्रा निर्म-

मतासे मारा गया चाण

नीचैर्भाव—धू० ५७-अ नम्रता

नीपलता—प० ३०-ई कदम लता

नीलाखेप—धू० २-अ बालाका खिजात्र

नीलाकर्म—प० २०-६ खिजात्र

नीलोत्पलपत्रचक्रविवर—पा० १०५-अ नीलो

रत्नके गोल पत्तोंके बीचका छिद्र

नीर्वाक्रिया—धू० ५३-इ नीवीनम्बन

नूपुरनिनाद—धू० ६५-ई नूपुरकी झंझार

नूपुरमुखर—पा० ८-ई नूपुरसे झंकृत

नूपुररव—पा० ८७-आ नूपुरोंकी झनकार

नूपुरसञ्चोम—धू० २८-आ नूपुरोंका टकपना

नूपुरसेना—प० १६-१४

नूपुरस्वन—धू० १६-३ नूपुरकी झंझार

नृत्तवार—प० ४२-४, ४०-१२ नृत्यकी बारी

नृत्तांग—उ० २८-२१ नृत्यके अङ्ग

नेत्रार्धपाता—धू० ३१-अ अग्रशुक्ली ओंछे

नेनेकि—पा० ४३-अ पछारता है, धोता है

नेमि—पा० ३३-६ नीव

नेराश्यनिरुत्तुक—प० १६-इ बुझे अरमानों

वाला

नैर्लज्ज्य—पा० १०१-१ निर्लज्जता

न्यास—प० २५-३ धरोहर

पञ्चद्वार—प० ३५-६, पा ६७-२५ बगलका

दरवाजा

पक्षिबुध—प० ९-ई पक्षियोंके कलरव से

बुध

पक्षियुद्ध—धू० प० ११-१२

पक्षिसव—प० ३-अ पक्षियों का समूह

पद्मपुट—११-अ बरौनी

पद्मगुह्य—धू० ७०-७ पगु कर दिशा गया

पञ्चरात्र—पा० १३२-अ पाँच रात, पञ्चरात्र

भागवत

पञ्चशिखापद—प० २४-१० पञ्चशील, पाँच

नियम

पटवासगन्धोन्मत्ता—उ० १५-११ पटवास
की गन्ध से पागल

पटोलवल्ली—पा० ११६-आ परवल की
लता

पणराग—धू० ११-७ जुए का प्रेम या
मजा

पणार्थ—पा० ७८-१० पण के लिये, धन
के लिए

पणित—उ० २८-७ बगाना

पणितप्रोत्ति—प० ३०-१० बाजी लगाने से
उत्साह में वृद्धि

पणितम्—प० ३०-६ बाजी लगाना

पणितधिलय—प० ३१-२ बाजी जीतना

पण्यसमुदाय—धू० ६-१०, उ० ५-४ वित्री
के सामान

पताकावेष्टया—पा० ८८-५, ६३-१ टकहिया
वेष्टया

पत्रक—प० ३५-१६ पत्र

पत्रलेखा—प० ६-२० चिन मे शोभा के
लिये पूल पत्तियों का अंकन

पत्रलेखानुबद्ध—प० ४३-अ पत्रलेखा की
छाप से अंकित

पद—प० ३४-७ चिह्न

पदप्रचारय—धू० ६-४ चलना पिरना

पद्मनगर—पा० २०-आ पीनार

पद्मावदात—प० ४३-६ कमल के समान
शुभ्र

पद्मिनी—प०-६ कमलिनी

पद्मोत्पलधामद्वय—प० २०-अ फूले
कमल रूरी मुन्दर मुखवाली

पयोदपवन—धू० २४-६ बरसाती वायु

पयोदानिल—धू० ३-६ बरसाती हवा ।

परभृतरपरव—उ० ३५-आ कोपन की
प्यारी बली

परभृतप्रलाप—प० ११-६ कोपन की नूक

परभृत्पद—प० ५-अ कोपल का नूक

परमन्न—प० ६-६ तरमाल

पररहस्यकुतूहलता—पा० ६९-२१ दूसरे के
रहस्य जानने का कुतूहल

परस्परगुणग्राहिन्—धू० १०-६ परस्पर गुण
ग्रहण करने वाला

परस्परदर्शनोन्मुख—धू० ६७-१४ एक दूसरे
के दर्शन के लिये उत्कण्ठित ।

परस्परविवावरम्य—धू० २६-६ आपस की
मजेदार रहस्य

परस्परव्यलीक—उ० ३-१ एक दूसरे का
अपराध, त्रुटि

परस्परामर्पविषयित पणराग—धू० ११-७
परस्पर क्रोध या लाग डट से मठा हुआ

जुए का रंग

वराकमिका—पा० ५०-६

परापरज—धू० २६-२७ ऊँच नीच जानने
वाला

पराप्य—पा० ३३-१७ बहुमुख्य

पराप्यमुक्ताप्रवालकिङ्किणीमालाविष्कृतपरि

पुष्कर—पा० ३३-१७ बहुमुख्य मोती,

प्रवाल और किङ्किणी के जालों से निरा

हुआ कमल का फुल्ला

परिनिष्ठता—उ० १२-७ ट.प, फ्लेश

परिपतद्दय—धू०-६ विलट हृदय, तुली

हृदय, टूटा हुआ हृदय

परिभूत—प० १८-३० फीलदार डण्डे के
समान

परिचारक—पा० ३०-६ सेवा करने वाला

परिचारिका—पा० ६०-३ सेविका

परिपटल—प० ३३-२१ लाल रंग का

परिपाणुनिष्प्रभा—प० ३०-अ पीली एवं
मातिहीन

परिपाणुर—उ० २४-आ पाण

परिपुष्कर—पा० ३३-१७ कमल की आकृति
का पुल्ला

परिभाष—धू० १६-८ हरा देना, मात देना

परिलम्बते—धू० ६६—आ खींचती है
 परिवर्तक—पा० १३६-१ घूमना
 परिवर्तन—पा० ३०-१४ लौट पड़ना, घूमना
 परिवर्धितसन्तापा—उ० २९-१७ ऋते सन्ताप
 वाली
 परिशद—धू० ४१—अ सफेद झूठ या बेई-
 मानीके साथ
 परिस्पन्द—पा० २०-६ तडक भडक
 परिहासकथा—पा० ५—आ हँसी मजाक
 परिहासपचन—पा० २०-३ हँसी की मण्डी
 या नाजार
 परिहामप्रकृति—पा० १४-३ हँसोड़, स्वभा-
 वत. हँसने वाला
 परिहासप्लव—पा० २१-१८, ३५-६ हँसी
 का गोता
 परिहासवस्तु—पा० १७-६, पा० ७८-११
 हँसी की बात
 परिहासावस्कन्द—पा० ८८-१५ हँसी का
 आक्रमण, मजाक का झगड़ा
 परपपवन—धू० ६५-१० तीली वायु
 पर्यङ्कतक—उ० २२-९ पलंग या चारपाई
 का ऊपरी भाग
 पर्यवस्थापयितुम्—पा० २३-१९ सान्त्वना
 देने के लिये
 पर्याभातवसनान्तर—पा० ३०-१४ फूले हुए
 वस्तु के भीतर
 पर्याप्ति—पा० ३०-३ सन्तुष्टि
 पर्यायशब्द—पा० ३१-२० एक ही वस्तु के
 लिये दूसरा नाम
 पल्लवाम्र—पा० ३०-६ पल्लव की टांक
 पल्लवाम्रागुली—पा० ३-६ पल्लवरूपी अगुली
 का अग्रभाग या पोरवा
 पवित्रक—पा० १८-८, १८-१६
 पाञ्चालदासा—पा० २९-१३
 पाटलिपुत्र—पा० ८१-१३, उ० ६-ई,
 ३४-८

पाटलिपुत्रका—पा० ४१-१५ पाटलिपुत्र की
 रहने वाली
 पाटित—पा० ४३-ई पटा हुआ
 पाणिप्राह्य—पा० ३०-१६ मुठ्ठी में आ जाने
 योग्य
 पाण्ड्य—पा० २४-ई
 पात्री—पा० २२-इ पतुरी
 पादचार—उ० ३१-१ पैदल चलना
 पादसाहितक—पा० २-२
 पादपान्तरचारिणी—पा० १७-७ अमराई में
 विचरने वाली
 पादप्रचालन—पा० १४३-अ, १४३-इ पैर
 का धोवन
 पादप्रचारलीला—उ० ५-६ चहल कदमी
 पादप्रचारभ्रम—पा० ६०-२८ पैदल चलने
 की यकावट
 पादचारखेद—पा० ७८-१७ पैदल चलने की
 थकान
 पादस्पन्दनरमस्—धू० ६५-इ पैरोंके उठाने
 का वेग
 पादावभूतशिरस्क—पा० १२-५ पैरोंसे शिर
 पर टुकड़ा गया
 पादुकाकिण—धू० ३६-८ खड़ाऊँ का घड़ा
 पानागार—पा० २६ आ, ३१-१ शराब की
 दुकान
 पानोपार्जन—पा० ३१-१ पीने के लिये पैदा
 करना
 पायसोपवास—पा० १८-३८ खीर भोजन
 करते जाना खीर उपवासना दांग करना
 पारशव—पा० ५४-१, ८८-२० कुजाल,
 हथौड़ी, शूद्रा में उत्तम ब्राह्मण पुत्र
 पारसाक—पा० २४-अ पारस देश का निवासी
 पार्थिवकुमारसन्निकर्ष—पा० ८८-१० राज
 कुमार का सान्निध्य
 पिम्बोला—पा० ५२-६, ७६-७ मुँह से
 उबलने का एक रात्रा, पिपिहरी

पिञ्जरीकृत—धू० २५-७ पीला किया गया
 पिण्डपात—प० २३-१७ भिक्षाचरण
 पिपीलिकाधर्म—धू० ६७-१ चीटियों की
 भौति एक दूसरे के पीछे चलते जाना
 पिशाचिका—पा० ८४-३ डारन
 पीठमर्द—प० १०-६ नायक नायिका के बीच
 प्रेम-साधन में सहायक
 पिण्डरीकवनपण्ड—पा० ७६-५ कमला का
 झुमट
 पुरन्दरविजय—उ० २८-७ इस नाम का एक
 संगीतक
 पुराणघृताभ्यङ्ग—धू० ३६-८ पुराने घृत की
 मालिश
 पुराणजर्जरगृह—प० २१-३ पुराना जर्जर घर
 पुराणनाटक—प० २०-४ पुराना नाटक
 पुराणपुश्चली—प० ३१-६ पुरानी छिनाल
 पुराणमधु—प० २०-१ पुरानी शराब
 पुरुषकान्तार—पा० ८५-१० आदमिया का
 जमावडा
 पुरुषजन्म—पा० ७५-६ पुरुषज
 पुरुषद्वेषिणी—प० ३६-७ पुरुष से भड़कने
 वाली
 पुरुषप्रकृति—पा० ६५-३ पुरुष का स्वभाव
 पुरुषविशेषज्ञा—धू० ३६-११ पुरुषविशेष की
 पहचाननेवाली
 पुरोभागिन्—पा० ३०-१० भद्रमाश
 पुष्पदासी—पा० ४१-१५, ४२-५
 पुष्पमण्डनाष्टोप—प० २४ २१ पुरुषों के
 आभूषणों से सुशोभित भव्य स्वरूपवाली
 पुष्पवती—पा० ४२-५ ऋतुमती
 पुष्पवध—पा० ४४-अ फूल को नष्ट करना,
 स्त्री ने श्रावण को व्यर्थ कर देना
 पुष्पबोधिका—पा० ३१-१ फूल गली
 पुष्पवीथी—प० १६-१४ फूल बाजार
 पुष्पव्यम—प० २५-३ फूलों से परिपूर्ण

पुष्पस्पष्टादृष्टास—प० १०-अ० पुष्पा का
 खिलखिलाकर हँसना
 पुष्पाजलिक—प० ८०-४, ८१-८ देवदत्ता का
 सेवक
 पुष्पापीड—प० १७-३, २०-३ फूल का
 सेहरा या मुकुट
 पुष्पिता—४५-३ रजस्वला
 पुष्पोत्कट—धू० ७० आ फूलों से मजा हुआ
 पुष्पोक्षेप—प० २८-३ फूल का फेंकना
 पुस्तकवाचक—पा० ७८-१
 पुस्तकवाचिका—पा ७८-१
 पुस्तपाल—पा० ८०-आ सरकारी कार्यालय
 में कागज पत्र रखनेवाला विशेष अधिकारी
 पूर्णभद्रशृङ्गाटक—पा० ३०-२ उल्लसिनी में
 इस नाम की एक तिमहानी
 पूर्वमणयिनी—प० ३९-७, ६७-२४, ८८-
 २० पुरानी प्रेमिनी
 पूर्वसन्तुत—धू० ५३-११ पहले जिसके साथ
 अच्छा सम्बन्ध रहा हो
 पूर्वान्विति—पा० २०-अ अन्विति जनपद का
 पूर्वा भाग
 पुयज्जन—प० ४०-२, पा० १३-३ सामान्य
 व्यक्ति, साधारण मनुष्य
 दृष्टुमुत्रहल—धू० ३६-३ पालवाला हल
 पेलवाशुक्—उ० ३-४ हलका रेशमी वस्त्र
 पैशुन्यप्राप्त—प० ४२-१० सुगुलतूरी का
 उपहार
 पीरीभाग्य—धू० १५-१६ दोषदर्शन
 प्रकृतिजन—२३-८ नपुंसक
 प्रचार—पा० २७-आ गोचरभूमि, चरागाह
 प्रचेतस्—पा० १२-७ एक स्मृतिकार
 प्रच्छिदपट—धू० ८-५ शरीर टँकनेवाला वस्त्र
 प्रच्छिन्नकामित—धू० ५३-१० छिपा हुआ
 कामभाव
 प्रच्छिन्नपुश्चलाक—प० १८-८ छिपकर पुश्चली
 रखनेवाला

प्रद्युम्नमदनाधिनी—धू० ५३-१८ प्रच्छन्न
कामराली
प्रक्षाय—पा० १०१-आ अन्धकार
प्रक्षयाग्रह—पा० ११४-इ परछाई का
अगला भाग
प्रजातार—धू० ५३-१६ रात्रि जागृत
प्रज्वलितोरका—धू० ११-१६ जलती प्रमाल
प्रणयकलहदुपिता—उ० १-३; पा० ८८-
अ ८-८ प्रेम में कलह या झगड़ हो
जाना
प्रणयप्रकोप—धू० ६८-आ, प० १२-८ प्रेम
में कठना
प्रणयदुःख—प० ११-११ मान से फूला हुआ
प्रणयफल—धू० ६५-६ स्नेह का आग्रह
प्रणयभाजनीभूत—धू० १००-२ प्रियमान नना
हुआ
प्रणयसमुच्चय—प० ३३-६ प्रेम का प्यार या
उभार
प्रणयभिमुखी—पा० २५-६ प्रेम से सामने
आई हुई
प्रणयपगवा—प० १७-१६ प्यार करती हुई
प्रणादिकाग्रोत्थ—धू० १६-३ अकारती
हुई मेघसारूपी राजा
प्रणालीमुख—धू० ७-२ पनालियों का मुँह
प्रतनुनिवसन—धू० ३९-अ महीन वस्त्र
प्रतरति—प० २२-अ टगते हैं
प्रतर्क—उ० १८-२ अनुमान, अंदाज़ा
प्रतिकण्ठ निमित्त—धू० ६२-१३ हर एक
व्यक्ति का कहना, जन जन की बात
प्रतिकर्मता—धू० ४८-३ शृंगार रचना
प्रतिग्रह—धू० २४-१ स्वीकृति
प्रतिचन्द्राभिमुख—पा० ११४-५ चन्द्रमा के
सामने
प्रतिपक्षयम्—धू० ३४-२ व्यग्रहार करना
चाहिए, काम में लाना चाहिए
प्रतिपक्षिभूट—पा० १४-६ किर्तव्य विमूढ़

प्रतिपस्थाप्य—प० ८-८ वापस भेज कर
प्रतिपुद्ग—पा० ८१-२ चतुर, उस्ताद
प्रतिपुद्गपङ्कज—धू० ६५-६ रिला कमल
प्रतिभवनच्छाया—पा० ७६-८ मनाना की
परछाई
प्रतिभासोतोविधातिन्—प० ६-६ काव्य
प्रतिभा के छाव की तोड़ने वाला
प्रतिमुग्धपवन—पा० ११७-अ वायु के विकृष्ट
प्रतिवचस्—प० १४-अ उत्तर
प्रतिष्ठानभूत—प० ११-८ आधार या नीव
जना हुआ
प्रतिसमाधान—पा० ३१-८ डीक जगह
रगती हुई
प्रतिसमाध्य—पा० १३१-४ रोककर
प्रतिहारद्वीलिलक—पा० ६७-०
प्रतिहारित—प० १६-१२ स्वागत किया गया
प्रतीत—पा० १०३-६ हृष्ट
प्रतीतमनस्—पा० ५-६ निर्बन्ध प्रसन्न मन
प्रतीहारवधपाक—पा० ७०-२
प्रतीला—पा० ३३-६ गदिद्वार या गौर
प्रत्यक्षफलत्व—धू० ६४-१० परिणाम का
सामने होना
प्रत्यक्षवलीक—उ० २२-७ सरासर झूठ
प्रत्यग्रसुरतचिह्न—प० २५-२१ ताजा सुरत
चिह्न
प्रत्यनीकभूत—पा० २५-१ विष्णुरूप
प्रत्यावातप्रणय—पा ६८-२ ६६-१० प्रेम
में दुःखार्थ हुई
प्रत्यागतचित्ता—प० ३४-२ जिसके मन में
फिर उत्साह भर गया हो
प्रत्यातप—पा० ४६-आ परछाई
प्रत्यादिश्वते—प० ३० ६ पराजित किया
जाना है
प्रत्यादेश—प० २८-९ मात करना, हराना
प्रत्युत्थानयन्त्रण—प० ३७-१४ उठने में
होने वाला कष्ट

प्रातृपचन्द्रावन—प० ७-अ प्रातःकालीन
 चन्द्रमा ने समान मुख
 प्रथमतरधित—पा० १३१-८ परले दर्जे का
 या विटो में अग्रणी
 प्रथमयस्तु—पा० ६७-६ (नृत्यका) पदला
 प्रदर्शन
 प्रथमसमागमनिभृत—धू० ६५-अ प्रथम
 समागम में सफकथा हुआ
 प्रदीपकरवत्तरीजदिलचारुवातायना — पा०
 १०५-अ दीपक को किरणों के जाल से
 भरे सुन्दर गवाक्ष
 प्रतीयमानप्रतिवचना—धू० १८-१४ बात-
 चीत करती हुई
 प्रदेवक—प० १८-४०, २५-१ इनाम,
 पुरस्कार
 प्रदेशिनालालनमात्रसूचित—पा० ११६-२
 प्रदेशिनी अँगुली के हिलाने मात्र से
 सूचित
 प्रद्युम्नदासी—धू० २५-७
 प्रद्युम्नदेवायतन—पा० ६२-२ कामदेव का
 मन्दिर
 प्रद्वार—प० २५-१७ बाह्यद्वार
 प्रद्वाराजिह—पा० १०३-१ बहिर्द्वार के बाहर
 खुला मैदान
 प्रध्याति—पा० ७८-अ ध्यान लगाता है
 प्रवृत्तवर्हिणाकार—धू० ११-१० नाचते हुए
 मोरों की आकृति वाले
 प्रबद्धशिक्षणक—पा० १-अ गँधी या बँधी
 चौड़ी
 प्रभादण्डराजि—पा० १०८-आ ज्योत्स्ना की
 स्तम्भपंक्ति
 प्रमदाविद्युत —उ० ५-६ प्रमदारूपी दिबली
 प्रयत्करा—पा० ६-अ सवे हाथवाली
 प्रयोगदोष—पा० ६७-६ अभिनय में त्रुटि
 या खलल
 प्रलापशृङ्खला—प० ३५-५ बातचीत की कड़ी

प्रवरगृह—धू० ८-अ बड़ा घर
 प्रवातर्दीप—धू० २५-१० आँधी का दीपक
 प्रवाललोलांगुलि—प० ३०-अ मूँग की तरह
 लाल चंचल अँगुली
 प्रविकच—प० ३०-आ तिले हुए
 प्रविचलितपृत्ति—उ० २८-ई धैर्य का छूट
 जाना
 प्रवित्तपनितालोचनापात्रशार्ङ्ग—पा० १-६
 पैले हुए स्त्रियों के नेत्रभ्रूभग (चितवन)
 रूपी धनुष
 प्रविरलहसित—धू० ५२-२ थोड़ा थोड़ा
 हँसता हुआ
 प्रविग्नीकृतरोमराजि—पा० १००-७ टेढ़ी-
 मेढ़ी रोमावली
 प्रविष्टेन—प० ३१-१२, धू० २१-३, ८७-
 १ प्रवेश करके
 प्रवृत्तमदनवृत्तीसम्पात—धू० ६६-१ कोयलों
 के आगमन का प्रारम्भ होना
 प्रशिक्षितवलय—प० ४०-६ हाथ के कगन
 का ढीला पडना
 प्रशिक्षण—उ० २०-अ चिमटेनेव ला
 प्रसादनोपाय—धू० ६७-१६ मान मनावन
 का उपाय
 प्राकृतकाव्य—प० ११-८ प्राकृत भाषा का
 काव्य, या साधारण काव्य
 प्रसादा—उ० ५-ई प्रसन्न करने के उपयुक्त
 प्रसिद्धतर्काः—प० ३५-२३ तर्क के लिये
 प्रसिद्ध
 प्रसुभगपवन—प० १०-आ मीठी हवा
 प्रस्ताव—पा० ४७-२ पहली मुलाकात
 प्रस्पन्दिताधर—धू० ६१-१ फडकता हुआ
 अधर
 प्रस्पन्दितोष्ठस्मित—धू० ६३-आ फडकने
 ओठोगाली मुस्कान
 प्रस्फुरितश्रुकुटीवक्त्र—पा० ८-१० फडकनी
 मीठी से टेढ़ी

प्रमयते—धू० ४३-अ खुलकर हँसती है।
ठठाकर हँसती है

प्रमत्तशरासन—धू० २५-१२ धनुष को
उतारना

प्रहसितवदना—उ० २८-आ हँसनेवाली,
हँसोइ

माकाराप्र—पा० १००-अ चारदीवारी की
चोटी

प्रागहः—प० ८-४ दिन का पूर्व भाग

प्रार्चनगण्ड—प० ८-अ गाल सामने किए
हुए

प्राशा—धू० ४५-आ चतुर, बुद्धिमती

प्राञ्जलिपुरस्तर—धू० ५३-१५ अञ्जलि आग
किए हुए, हाथ जोड़े हुए

प्राङ्गविषाकर्म—पा० २४-६ न्यायापीठ का
काम

प्राणावायवेतु—धू० ६७-१ प्राण के नाश का
कारण

प्राक्षोपिकोपचार—पा० १०३-२ सायकालीन
सेवा के कृत्य

प्राप्तामृषीयै—धू० ५३-इं प्रथमकोटि की
वीरता प्राप्त करनेवाला, प्रथमकोटि का
शूर

प्रभातनाम्दीस्वन—पा० १२-२ प्रातःकालीन
नान्दी के शब्द, प्रभाती

प्रायश्चित्तप्रलम्भविह्वल—पा० १८-१ प्राय
श्चित के परिहार के लिए व्याकुल

प्रानार—प० ३१-१५ चादर

मातृदकुलुषा—प० १३-आ नपाकाल से गदली

मारिनक—धू० ११-१२ खेती में हार जीत
का निष्पाद्यक मध्यस्थ

प्रारिनकानुमत—पा० ६७-२० प्रारिनक की
सम्मति

प्रासादपङ्क्ति—उ० ८-५ महलों की श्रेणी

प्रासादभूमि—पा० ६३-इं महल का खण्ड

प्रासादमाला—धू० १६-१०, पा० १२-इं
प्रासादों की पंक्ति

प्रासादमेघ—उ० ५-६ मेघरूपी प्रासाद

प्रासादसवाध—प० १६-१३ मकानों की

मीढ माड या जमघट

प्रियकलह—पा० १२१-४ कलह में रुचि लेने
वाला

प्रियगणिक—प० १६-१३ गणिका को वाहने

वाला

प्रियगणिकस्व—धू० २७-७ गणिकाप्रिय होना

प्रियकुम्भरीकलृप्तदेशहस्त—धू० ६५ - ७

प्रियगु की मञ्जरी नूँहें में लगाए नूँहें

प्रियगुणष्टिका—प० २८-१३, ३०-६, २१-
२, पा० ३९-७, ३६-१२

प्रियगुसेना—उ० २६-६

प्रियजनपरिप्लवङ्ग—प० २५-३२ प्रियजन का

आलिङ्गन

प्रियजनविमानित—धू० ३५-इ प्रियजन से
अपमानित

प्रियजनाधरोपदशप्रणयी—धू० १६-१५ प्रिय
जन के अधरपान की गजक चलने का

अभिलाषी

प्रियवादिनिका—प० ३७-८, ३८-२०,
४०-१, ४२-८, ४२-१४

प्रियविटसङ्गम—पा० १४८-इ विर्ता की सुल-
कर गोष्ठी

प्रियवीथिका—पा० ६७-३०

प्रियादशनाङ्कित—उ० १-आ प्रिया के डँत
से अङ्कित

प्रियोपयुक्तशोभिन्—धू० १०-४ प्रिया के
उपभोग से शोभित

प्रातिफलेशु—धू० ६७-१६ मोतिदा फल
पाने के लिये उत्तुङ्ग

प्रेषा—पा० ६७-४ नाटक

प्रेङ्खोलकुण्डल—प० ३१-अ कुण्डल का
दिलना

प्रेल्लोलित—पा० ११४-६ छिटकती हुई,
हिलती हुई
प्रोपितयौवना—धू० २७-८ जिमकी जगानी
समाप्त हो गई है
फुल्लवल्लीपिनद्ध—पा० ६-अ फूली लताओं
से लग हुआ
यकविलालसमप्रचार—पा० ८-अ बगले और
विलार के समान चलना
यद्धक—पा० ८१-१७ एकद्वर मँगवाए हुए
यद्धमदनानुराग—पा० ९१-७ काम के अनु
राग में पँसा हुआ
यद्धमेघयूथ—धू० २३-७ पिग हुआ गटल
समूह
यन्धकी—पा० १८-१३ नीची धोणी की
वेश्या जिसे बनारसी गेली में टकहिया
फहते हैं।
यन्धसन्धि—पा० ३३-१२ दीवारों की जुड़ाई
यन्धुमत्तिका—धू० १८-१४
यन्धूकडसुमोञ्जलविशेषका—धू० ६५-५
यन्धूक के फूल की तरह दमकते विशेषकों
वाली
यवरिका—पा० ११०-३
यलदशक—पा० ८८-७ सेना का विशेष
अधिकारी
यलिभुक्—पा० १६-२३ बलि खाने वाला
कौवा
यलिनृत्—पा० ३१-९ बलि खाकर पेट
पालने वाला कौवा
यलिविक्षेपोपनिपतित—पा० ३१-६ टी हुई
बलिपर भपटना या टूटना।
यस्तानन—पा० ६७-आ बकरे के समान
मुख वाला।
यहि शिविक—पा० ८८-५ उज्जयिनी का एक
मुहल्ला
यहुभाषिव—उ० १६-६ अधिक बातचीत

यहुतृत्तान्तता—धू० ८-१ बहुत भाँति की
विशेषताएँ
यालक्रीदनरु—पा० ३७-२१ छोटे बच्चों के
खिलौने
यालपत्र—पा० ३६-ई गालगाल्या में ही
परिपक्व
याण्य—पा० ३०-६
याहुविक्षेपण—उ० २२-अ बाहुओं का पट
फारना
याह्यकरण—पा० २-ई शरीर
याह्यद्वारकवाट—पा० ३३-२३ गहरी दरवाजे
की किवाड़
याह्यद्वारकोष्ठक—पा० २७-६ गहरी दरवाजे
की देहली
याह्यव्यतिकर—पा० ७०-आ सम्बन्धित
विषय से बाहर की व्यर्थ बात
याह्यिक—पा० ३९-३ गह्यिक देश का
बाह्यिकपुत्र—पा०-३०-६
यिदम्बयत्—पा० २४-२ नकल करता हुआ
वीजपुरक—पा० २६-३ विजौरा नीबू
वृहस्पिन्धुधिताननद्ध—पा० ६०-इ लम्बी
झालरदार टाढी से टका हुआ
वृहस्पति—धू० ६४-२ एक स्मृतिकार
ब्रह्मोद्वाहरण—उ० ५-५ वेदाध्ययन
ब्राह्मणपीठिका—पा० १२-३, १२-४
ब्राह्मणों की बैठक
ब्राह्मणोपगमन—पा० १२७-३ ब्राह्मण के
समीप कुछ पूछने जाना
ब्रौडाजितसाध्वसस्वेदवेपथु—पा० ७७-३
लजा और घबराहट के कारण पसीनेसे
भीगे एवं कँपते हुए
भक्तिमान्—धू० ५३ ११ भक्ति रखने वाला,
यहाँ आपसमें उस व्यक्ति से है जो बार-
बार भगवाने पर भी वेश्या के घर का
चक्कर लगाया करता है
भगदत्त—पा० ५४-आ

भगवते—पा० ५०-२ (१) बुद्ध के लिये
(२) भग में आसक्त कामुक के लिये

भगिनिका—पा० ८-६ छोटी गहन

भद्रावहेण (प्रा०)—पा० ६२ भद्रायुधेन

भट्टिर्नामृत—पा० ११-६, ४१-३, ११७-
११, १२६-१, पा० १४७-१ विटा का
चोपरी •यक्ति विशेष

भट्टिमघयमां—४१-१७, ३१-२६, पा०
४२-२

भट्टिविदल—पा० ८५-६, ८५-६

भट्टी—पा० १६७-३

भदन्त—पा० २३-१५

भद्रमुत्त—पा० ६४-११ भलेमानस

भद्रमुत्ती—उ० २७-२

भद्रायुध—पा० ५६-६

भयदुत—पा० ४४-अ भय के कारण खोप
चाल

भरद्वाज—पा० १२-७

भर्ग—पा० १३८-ई एक जनपद

भर्तृदारक—उ० ३१-१, ३१-२ मालिक

भर्तृस्थान—पा० १३३-ई राजाभा सूर्य का
मूलस्थान, मुलस्थान

भवकीर्ति—पा० १३५-१

भजनकथया—पा० ४१-३१ मंदल का चौक

भवनकमलिर्नावेदिका—पा० १०२ ई भवन
पुष्करिणी के पास का चतुर्तरा

भवनद्वार—धू० २७-१ पा० ८१-१५ पर
मुख्य द्वार

भवनवरावतसक—पा० ३३-१८ आलीशान
महल

भवनवर्गभीषुट—पा० २८-१० घर की ऊपरी
अंगरी का पुट या गवाछ

भवस्वामिन्—पा० १४-३

भागवत—पा० ६४-२ भगवान् बुद्ध म अर्द्धा
रूपने वाला, पंचरात्र

भागवतनिरपेक्ष—पा० ६४-२ वैष्णव भागवती
से उचकर रहनेवाला, या भगवान् बुद्ध
का अनुयायी निरपेक्ष (उपेक्षा विहारी)
भित्तु

भाजनाभविष्याम—पा० ८१-४ विश्वासपात्र
हऊँ

भाण—पा० २-२ एकनट नाटक

भाण्डसमुदा—पा० ८-७० व्यापारी माल
ग्रथवा सजावट के आभूषण अलंकारों
से परिपूर्ण

भाण्डारसेना—पा० २८-१

भावजरदुग्ध—पा० २०-६, २०-११ बुद्धा
विट

भावबहिष्कृत—उ० २३-४ भाव समझने में
अयोग्य

भावविनिविष्टायां—धू० ६७-१८ भाव से भरे
अर्द्धा वाली

भाववैशिकाचल—उ० ३-१२ पर्वत की तरह
वेश म रहने वाला विट

भायसंगृह—धू० ८७-इ मन की बातों का
छिपना

भावविधानपटु—धू० ५८-आ मन का मेद
थलने में निपुण

भित्तिगत—पा० ६-१८ भित्ति पर लिखा
हुआ

भित्ति श्वासवज्र—पा० ४०-इ टूटी सास से
गुल के रंग म परिवर्तन

भीमदर्शना—धू० ६४-१८ देखने म भया
नक

भुक्तमुक्त—धू० ६२-आ पहन कर छोड़ा
हुआ

भुम्भा—पा० ९१-आ टेढ़ी

भूतपूर्वविभव—उ० ६-२ पूर्वजालीन वैभव

भूमिकाकरण—पा० ३५-१८ पात्र के अभि
नय (भूमिका) का विपन

भूमिदेव—पा० १२-१० ब्राह्मण

भूषणप्रणाद—पृ० २६-६ आभूषणों की
भक्तार

अमारूढ काश्य—पा० २८-आ खराद पर
चढ़ा हुआ कासा

अश्मनानोपचारा—पा० १०-अ ऐसी नायिका
जिसकी साज सज्जा का सामान तितर-
बितर हो गया हो

अन्तपवन—धू० ६-अ चौवाड़े हवा
मकरघट्टि—पा० ३१-६ कामदेव की मकरा-
कित ध्वजा

मकरस्थ्या—पा० ३०-२ एक गली

मगध—पा० २४-आ

मगधराजकुल—पा० ६०-ई मगधेश्वर का
राजकुल

मगधसुन्दरी—पृ० ३३-११

मणिशाना—पा० १३६-ई मणियों की कर-
धनी

मण्ड्यते—पा० ३७ सजाई जाती है

मत्तकाशिनी—पृ० १८-१३, पा० ११-५
अति रूपवती स्त्री

मनकर्म—पृ० ४२-१६ कामदेव का कार्य
मदनकर्मान्तभूमि—पृ० ३६-५ कामदेव का
कारखाना या कार्यालय (बृहदादिका,
भवनोद्यान आदि)

मदकला—पा० ८-ई मदविह्वल कामिनी

मदनतन्त्रसार—उ० ३४-१ कामशास्त्र का
तत्व या निबोध

मदनतुला—पृ० ३२-आ काम की तराजू

मदनदूत—पा० ६७-१३

मदनदूती—धू० ६६-२ कोयल

मदनसमर—पृ० ६-४ कामरूपी भाग

मदनमञ्जरिका—पृ० ६-४ काम की मञ्जरी

मदनविक्रम—पा० ६६-१८ काम से विकल

मदनव्याधि—पृ० ८-६ काम की बीमारी

मदनशरशब्द—पृ० ८-१२ कामवाण्य रूपी
कौट

मदनसेना—धू० १७-४, उ० ३-८

मदनसेनिका—पा० ८-५, ७-४, १२५-२

मदनाक्रान्त—उ० २२-१० कामाभिभूत

मदनाग्निहोत्र—पृ० ३३-८ कामाग्नि का
हवन

मदनाग्रहार—धू० २६-६ मदन की माफी
या पुरस्कार

मदनानुरागशङ्का—उ० ३-६ प्रेम की आशंका,
प्रेम में सन्देह

मदनान्तकारी—धू० ३८-ई काम का अन्त
करने वाला

मदनामय—पृ० ८-२ काम व्याधि

मदनाराधन—उ० ३-८ कामदेव की पूजा

मदनीय—पृ० २१-१ नशा करने वाली

मदभ्रम—पृ० २३-२० शराब का धोखा

मदमृदुकथित—उ० ३५-अ मद भरी मीठी
बातें

मदयन्त्री—पा० ७८-१

मदरभस—धू० ११-१४ मद भरने के वेग से
भरा हुआ (हाथी)

मदराग—पा० ११५-ई मद की लाली

मदललितचेष्ट—पा० ११०-अ नशे में ललित
चेष्टाएँ करने वाला

मदविलासस्त्रलितपदविन्यासा—उ० २६-
५ मद के विलास से ढग या पैर रखती
हुई

मदस्त्रलिताक्षर—पा० ६८-१ नशे में दूटे हुए
शब्द

मदालसविधूषितलोचना—पा० १४७-अ
मद से धूमते हुए नेत्रों वाली।

मदिरालसा—पा० ८२-आ मदिरा से अल-
साई हुई

मद्यचपक—पा० १३४-आ १३३-आ शराब
का प्याला

मद्यभाजन—पा० ३०-३ शराब का पात्र

मद्यु—पा० ४-ई शराब

मधुगुण—उ० ३-इ वसन्त की विशेषताएँ
 मधुमाजन—पा० १०६-इ मन्त्र का चपक,
 ध्याला
 मधुरचेष्टिता—पू० १६-ए मधुर हाव भाव
 दिखाने वाली, नखरे दिखाने वाली
 मधूककुसुमावदात सुकृमारगण्ड—पा० ११५
 -इ मधुप के फूल की तरह सफेद और
 कोमल गाल
 मध्य—प० ३१-ई, पा० ५८-आ मध्यभाग,
 कटि
 मध्यगङ्गुल—पा ३२-आ बीच में गठीला
 मध्यदेश—पा० ५६-इ कमर
 मध्यविस्वादन—प० ३०-१७ नीच से उतर
 जाना, कटि भाग का उल्टा जाना
 मनसिजकदन—प० ३६-ई काम सग्राम, रति
 युद्ध
 मनसिजेषुद्धा—पा० ७२-आ कामेच्छा
 मनु—पा० १२-७ प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार
 मनुष्यकान्तार—प० १८-७ मनुष्यों का
 जगल, लोगों का जमावड़ा
 मनोरमक्षेत्र—प० ७-३ इच्छा का विषय
 मनोरममूकदूतक—प० ८-१६ परस्पर
 इच्छाओं के करने का मूक साधन (इगित
 भाव)
 मन्त्राधिकारसचिव—पा० १८५-आ मन्त्रि
 मण्डल के अधिकरण या कार्यालय में
 सचिव पद पर नियुक्त
 मन्दनिमेष—पू० ५२-आ पलकों टिमटिमाना
 मन्दरागा—पू० ४८-२ बिस्का प्रेम कोध
 पड़ा हा ऐसी स्त्री
 मयूरकुमार—पा० ११३-इ, ११४-आ
 मयूरगलमेखक—पा० १०५-आ मयूर के घंटे
 के समान सजिला
 मयूरसेवा—पा० ६७-१, ६७-४, ६७-२३
 मरप्रपाताग्निप्रवेशन—पू० ६७-२ हवा

पीना, पहाड़ से गिरना और अग्नि में
 प्रवेश करना
 मरुषियाच—पा० ८८-ई रेगिस्तानी भूत
 मर्मर—पा० १००-१३ मर्मर शब्द काने
 वाला कलहदार वस्त्र
 मलकीर्ण—उ० २६-इ गन्दा, मलयुक्त
 मलय—पा० ५६-६ एक जलपट
 मलाचिताङ्ग—उ० १४-अ मल से भरे
 शरीर वाला
 मलिनप्रावार—प० २३-२ गन्दी चादर
 मल्लकथा—पा० ७०-अ पहलवाना की कुश्ती
 के बारे में बात चीत
 मल्लस्वामिन्—पा० १३१-६
 महाजन—पा० ४३-अ बहुत से लोगों का
 समूह, भीड़
 महाजनसम्मर्द्धुर्गम—पा० ३०-१ जन समूह
 की भीड़ से जाने में कठिन
 महाध्वनि—पा० २७-ई बहुत अधिक शोर-
 गुल
 महाप्रतीहार—पा० ५६-६
 महाप्रभावा—पू० ६७-२२ बड़ा रोंग गाड़ने
 वाली
 महाभारत—पा० ४८-५
 महामात्रपुत्र—उ० ६-१; पा० १०-५ महा-
 मान का पुत्र
 महामात्रमुख्य—उ० ५-७ महामाना का
 प्रधान
 महिषक—पा० ७६-ई महिष जनपद का
 निवासी
 महिषाविषाणविषमा—पा० ६६-इ भंस के
 सींग की तरह विषम (वेष्म)
 महेंद्र—प० ३३-३० इन्द्र
 महरवरदत्त—पा० १६२-अ एक कवि का
 नाम
 मासत्राय—पा० २६-इ मास बेचने वाला

माणुसोत्ति (प्रा०)—पा० ६२ मनुष्यत्व में
मातृ—पा० ३५-इ खाला

मातृदोष—उ० २५-४ खाला की मूल
मातृध्यापत्ति—प० २३-१८ वृद्धा गणिका की
मृत्यु

मायवसेना—धू० १०-१६, उ० ११-४
मायकोदेश—पा० ३३-१३ धवलशृङ्ग के
भीतर का आँगन या खुला स्थान

मानःशिल—प० ३०-आ मैन्सिल से रगा
हुआ (कन्दुक)

मानसमा—प० ३२-अ मान करने में समर्थ
मानपरिमृदा—उ० ३१-१ मान की हुई
मानमध्यस्थता—प० ८-५ सम्मान में शिथि-
लता या उपेक्षा

मानवित्तव्य—धू० ३६-१ मनाने योग्य
मानैकप्राह्वान्य—प० ३२-इ केवल मान
धारण करने के लिये उकसाने वाली बात
मायाकोश—प० २३-आ धन का खजाना
मारुतप्राही उद्वसित—धू० ६६-५ हवा-
महल, झंझरी झरोखा से युक्त घर का
विशेष भाग

मार्गानुग्रह—उ० २६-१० मार्ग के ऊपर
चहलकदमी की कृपा

मार्दगिक स्थानु—पा० १७-२

मार्दङ्गिक—पा० ३०-१, ३२-२ मृदङ्ग ध्वजने
वाला, मृदङ्गिया

मालतिका—प० २१-१२, २१-२३

मालतीलताविहसित—पा० १००-५ मालती
लता का हँसना या तिलना

मालव—पा० ६०-अ, ११५-१, ११६-ई
एक जनपद

मालाकारदारिका—प० २१-२३ माली की
छोड़ी

माव्यपण्ड—पा० ३३-१८ फूलों के वृक्षों के
पात्र

माव्यापण—प० १६-१३ मालाश्री की दुकान

माव्याभियोग—धू० १६-१३ फूल मालश्री
का उपयोग

मापकार्थ—पा० ३०-७ एक मापक का
आधा, अघेला

मिथ्याचारकञ्चुक—प० १८-३७ झूठे
आचारका चोगा या लिवांस

मिथ्याचारविनास—प० १५-२६ टांगीरने से
नष्ट

मिथ्याप्रजागर—पा० ७५-४ व्यर्थ का जाग-
रण

मिथ्याव्यय—धू० ५०-ई व्यर्थ का लर्च,
फिजूल खर्चा

मुक्तमाना—धू० ६६-३ मान को छाँड़नेवाली

मुकाशम—धू० ७-२ मोतियों की माना

मुकालङ्कारशोभा—उ० २८-अ मोती के
गहनों से सजी

मुकाहार—धू० ६६-४ मोतियों का हार

मुखरमर्णया—पा० ९३-ई मुखसे मुन्दर
नायिका, मुख में रति के योग्य

मुखविच्युता—धू० ६१-आ मुँह से फेंकी हुई,
कुल्ला करके फेंकी हुई

मुदितावोषिण—पा० ६४-२ (१) विवाद
सम्बन्ध से बँधी हुई, (२) मुहरबन्द
होने के कारण काम भागमें असूक्ष्म,
(३) काम या रति मुद्रासे युक्त

मुष्टवाधात—पा० ८७-आ मुष्टिका प्रहार

मूलदेव—प० १२-२, ३७-२२, ४२-१३

मूलदेवसत्त—प० ८-२४ मूलदेव का मिन
शय

मूलदेवोद्य—प० १२-५ मूलदेव की

मूलहर—पा० १२१-आ सारी पूँजी छोड़ने
या भाँक देनेवाला

मृगपोतिका—प० ३८-१ मृगशाविका, मृग-
छोनी

मृगयते—पा० १६-इ खोजती है

मृगयन्ते—पा० ८०-अ मारते हैं

मृगयमाण—पा० ८०-६ माँगते हुए
मृदङ्गनिधन—धू० १६-१० मृदङ्ग की ध्वनि
मृदङ्गवासुलभ—पा० २०-८ एक निरुक्त नाम
मृदितमण्डना—धू० १५-८ जिसके शृङ्गार
मिष्ट गए हा

मेघरतह—धू० ४-६ मेघरूपी नगाटा
मेघावगूह—पा० ६६-६ मेघाच्छन्न
मद जय—पा० ७४-अ चचा का ध्वना
महविष्णुस्तनाख्या—उ० ३-१-६ मेघ और
निधनरूपी स्तना से मुँह पर धिक्की

मौद्गल्य—पा० ८८-२० एक गौन
मौद्गल्य दक्षितविष्णु—पा० १७-२
मौर्यकुमार—पा० २८-६
यथातथा—पा० १६-२७ एसी तैसी (व्यय
गाला), जैसा हा तैसा

यथारसाभिनात—उ० २८-७ रस क अनुसार
अभिनय
यथार्थनामता—पा० ४२-१८ नाम की सार्थ
कता

यदुपतिचरणाङ्कितललाट—पा० १००-२३
कृष्ण क चरणों से अङ्कित मस्तक वाला
य त्रेयु—पा० २०-६ धन सचलित शाय,
नायक का तीर

यमुनाहवनिलय—पा० १००-२३ यमुना की
दहमें रहने वाला

यवना—पा० ११८-४, ११८-आ, ११५-१,
११६-६

यशोमता—पा० ३६-७

यवन—पा० २८-अ

युगपदागम—धू० ८-८ एक साथ आना

युगल—पा० ५-६ पत्नी या कायक-रत

युगतिक्कशदस्तसक्ता तत्कसुमसमुदाय—धू०
६७-१२ युगतिथीक गूँडे में तबाने क
लिये फूल प्रदान

युवतिचनप्रणयप्रतिप्रादा—धू० ६५-३ युवती
क साथ मन मिलाने वाला

युवताञ्जनलाला—उ० १८-१७ युगतिथी क
हाव भाव नाज नखरे

युगतिविपरात—पा० ८७-६ विपरीन रति
युवतादोहल—पा० ३९-आ युगता स्त्रियों क
समान पतिसे मिलने की कामना

शोचुञ्जेद—पा० २७-२ बोत का कामना
योगतारा—पा० ४२-अ तारक समूह की
मुख्य तारिका ।

योग्या—धू० १६-आ व्यायाम
योगशास्त्र—पा० २६-आ
योतक—३६-१८ दहेज
यौधेयकवर्ण—पा० ३०-१ यौधेय प्रदेश या
हरियाने क गीत

यौवनकर्म—पा० २०-१५ जनाव चुनाव से
जवान बनना

यौवनपवरायक—पा० २६-१८ यौवन का
नया रस्य

यौवनपीठ—पा० ३०-१६ यौवन का भार
बहन करने के लिए पीठ या आसन

यौवनविभ्रम—पा० ३१-१०, १२३-६
जवानी का हाव भाव या जुलजुलाहट

यौवनस्थापते—पा० ६-अ यौवन पर आ
रहा है

यौवनार्थ—धू० ३६-६ जवानी का अर्थ
यौवनापतारकोमल—पा० ६-३ यौवन क
आगमन स कामल

यौवना सब—पा० ६-२ जवानी का जलूसा

यौवनोप्य—उ० २८-आ जवानी की गमा

रक्षा—पा० १८-६ स्त्री पक्ष में अनुरक्त,
वेलवकी पक्षमें रागवती

रक्षाशकप्रस्पन्दोष्ठा—पा० २०-आ रक्षाशक
क मुग्धा जैसी पटकन ओंठ गाली

रक्षा—उ० २८-७ रक्त

रचनामुच्छ्रंता—उ० २९-७ रचना या गीत
क अनुसार स्वरा का अराहाराह

रजतकलह—पा० ११७-१२ चाँदी का घरा

रजनोव्यपयानसूचक—पा० ३५ - अ रात
नीतने की सूचना देनेवाला

रजनीसहस्र—उ० ३-११ हजार रातें

रजसा ध्वस्त—प० ४४-आ रज से सना
हुआ

रजोपरोध—पा० ७८-४ रजस्ताव का बन्द
हो जाना

रज्यमान—धू० ५५-८ रम जानेवाला,
अनुरक्त हो जाने वाला

रक्षयति—पा० २१-ई रिझाती है, प्रसन्न
करती है

रतिकलहकल—धू० ३६-ई रति में होनेवाले
कलह का फल

रतिकार्कश्य—धू० ५१-१ रति की कठिनता

रतिपर—उ० ८-ई रतिपरायण

रतिपूर्वरक्षा—धू० ५२-८ रति के पूर्व रग
वाली या चिह्न वाली

रतिरण—धू० ५३-ई रतियुद्ध

रतिरसास्तर—प० ६-८ रत्यन्तर का रस,
रत्यन्तर का मजा

रतिकृति—उ० २२-४ एक गणिका परि-
चारिका

रतिविकृति—धू० ४४-अ रति का विगड
जाना, किसी कारणवश सम्भव न हो
सकना

रविश्याक्षेप—उ० ३८-५ रति में बिघ्न

रतिशीणोद्योग—धू० ५२-२ रति का प्राक्ल्य

रतिसकथा—पा० २१-आ रति की बात

रतिमुखावासाधमाला—धू० १६-ई बार-
बार प्राप्त रतिमुग्न क परिणाम की
अवमाना

रतिमेगा—धू० ७८-४, २५-१, उ० २८-
१, २५-१

रत्यन्तर—धू० ७८-ई रति के बीच में

रत्यर्थवैरोधिक—उ० १६-ई रतिर्म की नित्य
पदार्थ मानने का निश्चय

रत्यर्थिनी—प० १८-अ काम से भरी हुई

रत्युत्सव—उ० २३-ई गति का उत्सव

रथ्यावलोकनकुतूहल—उ० ५-६ गली देखने
का कुतूहल

रदमाना—धू०-२० स्वयं धक्का मारकर
दौत और नलों से खरोंचती हुई

रभसवर्तितवद्विगतस्तनी—पा० ४७ - आ
जल्दी में थहराते स्तनोंवाली

रश्यावतिका—प० १६ - १४, १६-१६,
१७-६, १८-१

रसायनप्रयोगातिवर्तक—धू० ५३-२० रसा-
यन के प्रयोग को भी तिरस्कृत करने
वाला या मात करने वाला

रहस्यसचिव—पा० ५२-१ नर्म सचिव

रहस्यानाश्वान—पा० ७० - ४ रहस्य का
छिपाना

रहोनेपुण—धू० ५१-२, ५२-ई काम-भाव में
निपुणता

रागधन—उ० २३-आ रागनाशक

रागरतिप्रबन्धशिथिला—उ० १२-ई राग-
पूर्वक रति करने से शिथिल हुई

रागवृषप्रवाल—प० ३६-अ प्रेमरूपी वृद्ध का
नवीन पत्र

रागधनान्ता—प० ३६-ई प्रेमासक्त

रागोच्छ्रय—उ० ३४-ई प्रेम का ऊँचा होना

रागोत्पत्ति—धू० ४३-२ प्रेम का उदय

रागोत्पादितयौवन—प० २१ - अ पित्राद्य
आदि से पैदा की गई अगामी

राजकुल—पा० १६-अ

राजदरिका—प० ३८-९६ राजपुत्री

राजभाव—पा० ८१-२५

राजवीरक—प० २६-२ राजा के योग्य धन

राजवल्लभ—धू० राजा का प्रिय

राजयोध—पा० ६७-१७ राजमार्ग की गनी

राजसचिव—पा० ८-आ राजमन्त्री

राजोपस्थान—उ० ७७-८ राजदरबार

राजोपवाद्यकरेणु—उ० २०-२ राजा की
सवारी की निजी हथिनी
राधिका—पा० ६५-८
रामदासी—धू० २०-९, २१-१
रामसेना—उ० १८-११, १६-३, २८-१
रामिल—धू० २६-६
रामिलक—धू० २६-४, २६-६
रिदिवशा (प्रा०)—पा० ६७-१२ रईस
रिरसा—प० १७-१३ रमण की इच्छा
रुचक—प० ८-अ निष्क, स्वर्णमुद्रा, अग्ररफी
रुचिरलातपूरित—पा० ३३-११ सुन्दर
परिखाओं से युक्त
रुचिरपौवरासोरस—पा० ४२-अ सुन्दर और
उमरे हुए कन्धे और छाती वाला
रुदितस्वर—धू० २१-अ रोने की आवाज
रुद्रवर्मन्—पा० १४४-१
रुद्रमेह—धू० ५१-अ अधिक प्रेम, दृढ़ प्रेम
रूपदासी—पा० ६०-७
रूपावर—उ० १४-२ रूप से हीन, बदसूरत
रोगग्र्यपदेश—धू० ५३-१६ रोग की शिका-
यत
रोचनानिन्दुक—प० २६-अ रोली का टीका
रोमोद्भेद—पा० ३-ई पुलकित शरीर
रोपञ्चल—धू० २३-इ रुठने का बहाना
रोपोंपरक—प० १५-अ क्रोध से लाल
रोहितकीय—पा० ३०-१ रोहितक प्रदेश का
रुच्यधि—पा० ३६-१८ ललकटिका रोग
लङ्घनसमर्थ—उ० २८-२२ हराने में समर्थ
लज्जापट—धू० १३-आ घँघट
लज्जाविलच—पा० ७०-३ लज्जा से शर्माया
हुआ
लतागृह—पा० ३३-१६ लता मंडप
लब्धाःशरविस्तभा—प० ४२-५ अन्तःकरण
में निश्वास प्राप्त कर लेने वाली
ललाटोद्देश—धू० २५-७ ललाट का उमरा
हुआ भाग

ललितजनमनोमोहिणी—धू० ४-१ शौकीन
व्यक्ति के मन को पकड़ने वाली
लाट—पा० ४२-६, ४३-६, ५७-६,
५७-१ एक देश
लाटडिडिन्—पा० ४१-१७, ४२-७ लाट
देश का डाक्या या गुण्डा
लाटभक्ति—पा० ८३-अ गुजराती टङ्ग की
खौर या शरीर पर रचना
लाटी—पा० ११३-ई लाट देश की खी
लावणिकापण—पा० ६७-१७ नमक की दुकान
लासक—पा० ६७-१२ कोमल नृत्य करने
वाला
लास्यवार—पा० ६७-५ नाच की गारी
लिखित—पा० १२-७ एक स्मृतिकार
लिखित—पा० ३३-११ चित्रों से अलंकृत
लिखच—(प्रा०) पा० ६२ लालसा
करता है
लिविकार—धू० ४६-४ लेखक
लिप्त—पा० ३३-११ लेप चढाया हुआ
लीलोद्यत—धू० २८-अ लीला से उठे हुए
लुडित—पा० ७७-अ लुडकता आता है
लुलित—धू० १६-११ हिलाया हुआ, फँका
हुआ
लेप—प० २१-ई लिखाव आदिका लगाना,
पलस्तर
लोकज्ञ—धू० १४-ई सासारिक व्यवहारा
में चतुर
लोकलोचनकान्त—उ० ११-इ लोगोंकी आँखों
को लुमावेवाला
लोकवाद—प० १७-आ कहावत
लोचनतोयशौण्ड—पा० ६६-ई आँख पीने
की अग्यस्त
लोचनापात्राज्ञ—पा० १-इ भूमज्ञ रूपी
धनुष
लोदचूर्णसमृद्धि—प० २१-३ लोह के चूर्ण से
बढ़ती

वग—पा० २४—आ एक जनपद
वक्षत्रापरपत्र—उ० २६—१६ वक्षत्र और
अपरवक्षत्र नाम छन्द, गाल को सामने
और पीछे की ओर करना

वचनलीला—उ० ३४—४ बातचीत का मन्त्रा
वचनविन्यास—धू० १६—५ बातों की सजावट
वचनोपन्यास—प० १३—७, २४—२३ बात-
चीत करना

वज्रबासन्निवेश—प० २३—आ ठगों का श्रद्धा
वञ्चितक—प० १२—१, पा० ६४—३ व्यर्थ
वदनरुचिकर—धू० ३१—अ मुग्ध की शोभा
बढ़ाने वाला

वनगजदम्भ—पा० ५५—आ जगली हाथी का
झौना

वनमेघ—पा० ७८—आ वनैला मेढा

वनरात्रिका—प० २४—१८, २४—२५

वन्धवकुसुमा—धू० ४३—ई जिसमे पूर मान
ही आते हैं, फल नहीं।

वम—पा० ३३—६ दुर्खा का ऊँचा चेन्ना
(मनान की दुर्खा को रोकने वाला) हाथी

वयोऽवस्थापन—धू० ८८—४ बल को स्थिर
रखने वाला

वसन्तु—प० १०—६, उ० १७—६ छुरदरी,
लकलका

वसन्तवह्नि—पा० ११—८ बड़िया सनारी, रथ
या गादुमयार

वसरुधिकाभ्यानुसार—पा० १८०—ई वसरुधि
का अन्त अन्त

वसवाग्री—उ० ३—आ बड़े स शर

वसवदाम—पा० ११८—६

वसन्त—प० १६—७ उवन्त, पा० ११७—३६
विजय

वसन्त—पा० १०८—६ ईशता दुआ

वसन्तार—पा० ६—१ दूध

वलभी—प० २९—अ; पा० ३३—९, १०३—अ
भवन के ऊपरी भाग में बनी हुई मढ़िका

वलभीगवाक्षतिलक—प० २६—अ

वलभीपुट—प० २८—१० वलभी का पुट या
गवाक्ष

वलघिन्—पा० ४१—अ प्रलय से सुशोभित

वलयोद्धात—पा० ८७—आ कड़ों की लड़-
खड़ाहट

वल्लु—पा० १०७—अ मधुर

वल्लुगीतापदेश—पा० ३६ प्रिय गीत के बहाने

वल्लुकि—प० १८—ई वीणा

वल्लुकी—पा० १६—१६, ३१—१७; पा० ११—
५, ११८—३ वीणा

वल्लुकीवाद्य—धू० १६—१४ वीणावाद्य

वल्लभा—प० ३३—२७ वल्लभा नाम का पद
विशेष

वलिष्ठ—पा० १२—७

वसन्तक—वसन्तोत्थ

वसन्तकुटुम्बिनी—प० १०—ई वसन्त की
गृहिणी

वसन्तकुसुमगन्धामोदक—उ० २६—१७ वसन्त
के फूलों की गन्ध की महमहाहट

वसन्तकेशोरक—प० ५—६ वसन्ती जवानी

वसन्तभूत—उ० ३—१२ वसन्त ऋतु का होना

वसन्तवर्षा—प० २४—१८

वसन्तवर्षा—प० १६—१६

वसन्तवायु—प० ३६—७ पाल्गुन महीने में
बहने वाला हवा, पशुनक्षत्र

वसन्तवर्षा—उ० २—६ वसन्त का विरास
त शोभा

वसन्तवर्षा—उ० २—६ वसन्त का विरास

वसन्त व आगमन से अलग

वसु—पा० २१—अ वन

वसुधुर—पा० ११—६ वन का दुरी

वसुधुरोभाष—प० १०—३ वायु या वायु में
उप निम्न

वाङ्मयक—प० ६-७ वचनरूपी फूल ।
 वाङ्मयलेश—धू० ३१-आ, ४७-आ सक्षिप्त
 वातां
 वातशरगोचर—प० २३-१० वागूवाणी से
 झू जना
 वागर्चिप्—प० १८-इ वाणीरूपी लपट
 वागशक्ति—प० १६-३२ वागवज्र
 वागीश्वर—प० १०-म बृहस्पति
 वागीश्वर—प० ११-ई बड़े कवि
 वाग्वापुरा—प० १६-म वचनरूपी फटा
 वालाचार्योपदेश—प० १-आ वायुरूपी आचार्य
 का उपदेश
 वालाचनाभोग—धू० ११-१३ खिडकी के
 नीच का भाग
 बादविधहित—प० १६-१० बाद में रिटा
 हुआ या हारा हुआ
 वानरीनिष्कृमि—पा० ११६-२ वानरी की
 खोंख खोंख आवाज
 वामशीला—धू० ४७-ई प्रतिकूल रहने वाली
 पापसोपिच्छ—प० २३-७ कौये का जूटा
 पापुष्यपन्यनिरीक्षिताश्वर—पा० १३२-६ हाँफने
 से दूटे हुए शब्द
 वारमुह्यजन—धू० ८-ह, पा० १२३-१
 वेश्याएँ
 वारविलासिनी—पा० ५४-ई वेश्या
 वारविलासप्रणयमहीतव—पा० १४८-ई वेश्याओं
 का प्रेम भरा उत्सव या बल्ला
 वारविलास—प० १८-१३, धू० १७-८,
 १८-३
 वारणीचपक—धू० ११-१० शराब का प्याला
 वारणीमदलक्ष—पा० ६६-२६ मदिरा का
 नशा चढ़ना
 वारणीमदविलुलिताश्वर—धू० ६७-१६ मदिरा
 के नशे से दूटे-पूटे शब्द
 वारनूकवादिगुणविघटन—प० १६-३३
 भटवडिये सातिका का पैरमिडन

वासन्तिक—प० ६-ई वसन्त कालीन
 वासन्ती—प० २५-अ वसन्त की एक लता
 या उसके पुष्प
 वासवदत्ता—पा० ११७-ई
 विकचनचोपलतिलका—धू० २९-अ खिले
 हुए कमल की आकृति के तिलक वाली
 विकसित—पा० ६०-म प्रकट
 विकृति—धू० ६४-५ कागविकार
 विकृतसुकुलजाल—पा० १००-५ गिल्ली
 फलियाँ का समूह
 विमोक्षति—पा० ३६ रोती है
 विखण्डितविशेषक—प० २६-अ मिटा हुआ
 विशेषक
 विगतमादता—धू० ६५-४ श्रावियाँ का
 समाप्त होना
 विद्यु—(प्रा०) पा० ६२ खाने वाला,
 खाना चाहे
 विद्योद्य—धू० ५३-२० उभाड़ कर
 रिजबाध—प० ३१-३ विजय का अर्थ
 विजुम्भमाण—उ० ३-५ जँभाई लेते हुए,
 विकसित होते हुए, गिलते हुए,
 विज्ञापनग्रन्थ—उ० १-२ कहने के लिये
 उत्सुक
 विटङ्क—पा० ३३-६ पक्षियों के लिये छतरी
 विटजनकथा—प० ९-इ विटों की गप्पें
 विटजनप्रथनीकनूत—पा० २५-१ विटों के
 लिये विटन रूप
 विटङ्क—पा० १७-ह विटों को जानने वाला
 विटपारशव—प० १८-३० एक गाली, विट
 का हथमी पिछा
 विटपुङ्क—पा० २१-इ विग में अंगु
 विटप्रवाल—पा० ११७-३ विग्य का नइता
 हुआ अङ्ग, विशार वि
 विटवक—पा० ८८-इ विग्य का नइता
 विटमण्डप—पा० १-८ विग्य का गोठो स्थान
 विटमति—धू० १८-७ विट का उडि

विटमहत्तर—पा० ११-६, पा० ११७-११,
१२६-१, १४३-३ विटों का प्रधान या
चौधरी
विटमुख्य—पा० १४-७ विटों में मुख्य
वितलक्षण—पा० १५-३, १७-१ विटों के
लक्षण
वितसन्निपात—पा० ३०-५ विटों का जमावड़ा
वितसन्निपातकर्म—पा० १४-२१ विटों की
सभा बुलाना
वितसमाज—पा० १००-२५, ११७-१७
वितसम्मत—पा० १४-१२, १७-४ विटों में
सम्मानित
विद्वन्मयन्ती—उ० १८-१२ नकल करती हुई
वितर्कडोला—पा० ६७-२६ सशय का भूला
वितर्हि—पा० ३३-१२ वेदिका
वित्तवत्—पा० २१-६ धनवान
विस्तृतमृगपोतिका—उ० ११-५ डरी हुई
मृगछौनी
वित्तितपरमार्थ—उ० २४-७ सखा हाल जान
कर
विदितार्थ—पा० ११-२ पण्डित, अर्थवेत्ता
विदेशराग—पा० ५२-६ बाहरी मजा, विदेश
से आई हुई वेश्यास्त्रियों के उपभोग की चसक
विद्वद्वाङ्—पा० ६-आ विद्वानों का शास्त्रार्थ
विधेय—उ० ६-अ अनुचर, सेवक
विद्वत्—पा० ८०-६ पकड़ा पक्ष
विनम्रकलाविन्ध—पा० ४-६ दिल्लीगीशान,
हँसी ठट्ठा करने वाला
विनिगृह्णास—पा० १२६-आ हँसी छिपाए
हुए या हँसी छिपाकर
विनोदनायतन—पा० ३१-८ मनबहलाय का
स्थान
विपत्री—पा० १००-आ चौपाया
विपणि—पा० २६-८ बाजार
विपणिप्रिया—पा० ९-आ नय विनय का
व्यवहार

विषणिमार्ग—पा० ३०-१ बाजार का चौड़ा
रास्ता
विषणिवायु—पा० १६-१३ बाजार की हवा
विषणिवृष—पा० २५-६ हाट का सौँड
विपुलतरललाटा—पा० ४५-अ चौड़े ललाट
वाली
विपुला—पा० ११-१०, १३-३
विपुलामात्र्य—पा० ११-८ विपुला का
अमात्र्य, विपुला की प्रेमसाधना में
परामर्श देनेवाला
विकलीकृत—धू० ५६-आ असफल किया
हुआ
विषोषनकर—उ० २३-१४ रिलाने वाला
विभ्रम—पा० १८-३३ लिप्सा, लपकपना
विभ्रमचेष्टित—पा० १४०-आ विलास या
नखरे की चेष्टा
विभ्रान्ताद्य—पा० ८३-इ चञ्चल ओंखों वाला
विभ्रान्तेक्षण—पा० ८-अ चञ्चल कटाक्ष
विमर्शदोला—पा० ४२-७ सोच विचार का
भूला
विमानयन्त्रि—धू० ३६-आ तिरस्कृत करते हैं
विमुखयितुम्—पा० २५-६ विमुख या परोक्ष
करने के लिये
विरचितकुचभारा—पा० ५१-अ दुर्वा को
कसकर
विरचितकुन्तलमौलि—पा० ५०-अ भालों का
जूट बाँधे
विरचितकुसुम—धू० ६२-अ पुष्पों से सजकर
विरज्यमानसन्ध्यारागा—पा० ६-१ सन्ध्या
वालीन पीकी लगलगा जैसी होती हुई
विरहतन्त्री—धू० ७-१ जिससे तार बिलग
हो गए हैं
विरहमृदुकथ—उ० १८-अ मधुर बालाप
का कम हो जाना
विरागयितुम्—पा० १७-१६ दुलारना, रगाना
विरामयदुल—धू० २१-६ बार बार की स्फूर्ति

विलास—पा० १०२-अ विद्वाल
 विलासकौण्डिनो—उ० १५-६
 विलासचतुर्भू—पा० ४२-आ नखरे से भीहें
 मटकाने वाला
 विलासनिधि—धू० १६-६ आनन्द मुखभाग
 की निधि
 विलासमूर्ति—प० १-६ विलास की मूर्ति
 विलासयौतक—प० ४१-६ विलास का दहेज
 विलासविप्रेक्षितगतिहसित—उ० १८-१२
 विलास भरी चितवन, चाल और हैंसी
 विलासशेष—पा० ३१-१० बचा-सुचाविलास
 विलासहसित—उ० २२-आ नखरे को हैंसो
 विलुलितलक—धू० २५-७ बिगुरी हुई अलक
 (लट)
 विलेपन—पा० ११७-३५ अंगराम
 त्रिलोभुजगामिन्—पा० ४२-अ बाहें झुला
 कर चलने वाला
 विवरण—धू० ३१-६ आवरण हटाना,
 उघाड़ना
 विविक्तकाम—प० ३७-५ एकान्त पसन्द
 करने वाला
 विविक्तचरित्र—पा० ४८-आ अधिक स्पष्ट
 हुआ गोल भाग
 विविक्तविग्रह—प० ८-१० शुद्ध निश्वास
 वाली, सब प्रकार से निश्कृत विश्वासवाली
 विविक्तशरीरलावण्या—प० ३१-१४ जिसका
 शरीर सौन्दर्य अनलकृत रूप में भी भला
 लग रहा है
 विशालेक्षणा—उ० २२-ई बड़ी आँखों वाली
 विशीर्णवस्त्र—उ० २४-इ फटा वस्त्र
 विशेष—उ० १८-इ द्रव्यों के नित्य अवयव
 या परमाणुओं को एक दूसरे से प्रयुक्त
 करने वाला गुण
 विशेष—प० २६-अ चन्दन कस्तूरी अयुक्त
 आदि से लताट कगोल आदि पर शोभा

के लिये बनाई हुई विशेष अलकरण-
 युक्त रचना

विभ्रम—प० २५-३४ विभ्राम
 विभ्राम्यते—पा० ११७-३३ बौटा जाता है
 विभ्रामभूमि—पा० १६-आ अरामगाह
 विरवलक—धू० २७-५, २७-८, २७-१४,
 ७०-६
 विधावसुदत्त—उ० ३१-२
 विषहृष्टे (प्रा०)—पा० ६७-११ विपरीत कहुँ
 विषयप्रधाना—धू० ६४-८ विषय की ही
 प्रधान मानने वाली
 विषु (प्रा०)—पा० ६७-१२ सब
 विष्णुदत्ता—उ० ११-४
 विष्णुदास—धू० २६-६; पा० २४-५
 विष्णुनाग—पा० ८-५, ८-७, १२-४,
 १४-५, ४१-५, १२१-२, १४७-२
 विसंवादित—धू० ५७-१ एक दूसरे की मर्जी
 के खिलाफ होना, या करना
 विसर्जयितुम्—धू० ६६-१० विदा देने के
 लिये
 विसृजित—उ० २६-२ विदा किया हुआ
 विसृत—प० ३१-आ त्रिपुरे हुए
 विसम्भण—धू० ३३-आ विश्वासप्राप्त करना
 विहस्ता—प० १६-अ पकड़ाई हुई
 विहारचम—धू० ४-४ विहार करने जायक,
 घूमने लायक
 विहारवेताल—प० २३-१३ विहार का भूत
 विहारशीलता—प० २३-१५ विहार के शील
 का पालन करने का नियम
 विह्वलदृगात्र—धू० २-आ ऊँचे हुए शरीर
 वाला
 वीणाचार्य—उ० ३१-२
 वीतराग—उ० १४-आ राग या प्रेम का
 अभाव
 वीथा—पा० ३३-१२ खम्भों पर बने लम्बे
 दालान

वीररात्रि—धू० ११-१६ वह रात्रि जिसमें गुडे
अपनी जान पर खेलकर कुछ कर गुजरते
हैं

वृत्तान्तता—धू० ४-३ बात या घटनाएँ
वृथामुण्ड—पा० २३-६ व्यर्थ का सिर मुँडाना
वृथामुण्डन—पा० २४-१२ व्यर्थ का मुण्डन
वृद्धगार्ग्य—पा० १२-७ एक स्मृतिम्हार
वृद्धपुरस्कर्ता—पा० ७८-१६ बुढ़ी छिनाल
वृद्धविट—पा० १४३-१ बूढ़ा विट
वृद्धभोजनिय—धू० ३६-८ बूढ़ा घेदपाठी
वृषपतिककुद्—पा० २-६ सोंड का क-वा
वृषलचौचामात्य—पा० २४-५ हरामी चोच
भागवतों का साथी
वृषली—पा० १२-५ शूद्र जाति की स्त्री,
वेश्या

वेनदण्डकुण्डिनाभाण्डसूचित—पा० २४-५
जैत के डंडे और कूयडी से गात
वेलानिल—पा० ६१-अ समुद्र की वायु
वेशकन्यकावृन्दक—पा० ७६-८ वेशकन्याओं
का समूह

वेशकलह—पा० २०-अ वेश का झगडा
वेशकुट्ट—पा० ३०-६ वेश में ही चुगकर
पेट भरने वाला

वेशकोष्ठक—पा० १७-१३ वेश का बाहरी
अलिन्द या नरीठा

वेशगामिनी—धू० १४-२ वेश को आनेवाली
वेशतापसोम्रत—पा० ६३-६ वेश में तपस्विनी
का मत

वेशदेवता—पा० ८-६ वेश की देवी
वेशदेवायतन—पा० ५२-७ वेशरूपी देवालय
वेशनलिनी—पा० ८८-६ वेश रूपी कमल
पुष्करिणी

वेशनवावतार—पा० ८८-१८ वेश में नया
आगमन

वेशप्रवेश—पा० ३०-३, ८५-३, ९०-३ वेश
में जाना

वेशप्रसङ्ग—धू० १०-२ वेश का ससर्ग
वेशवर्षरी—पा० ११०-४

वेशविसवनेकचक्रवाक—पा० ३६-११ वेशरूपी
कमलगन का अनेका चक्रवा

वेशमहापथ—पा० १०३-६, ११७-११ वेश
का नडा मार्ग

वेशमेघविद्युल्लता—पा० ३३-३३ वेश के बादल
की बिजली, अतिसुन्दरी नवल गणिका

वेशपवनी—पा० ११६-२ वेश की पवनी

वेशयुवति—पा० १८-३७ युवतिवेश्या

वेशरथा—पा० ७६-८, ११०-१ वेश की गली

वेशलक्ष्मी—उ० ६-६

वेशवर्ल्ता—पा० ५१-६

वेशवाट—धू० ८-२ वेश्यालय

वेशवाडी—पा० ३६-३

वेशवास—पा० २८-४ वेश का रिवाज

वेशवीथी—पा० ११३-३ वेश की गली

वेशवाधीर्दीधिका—पा० २३-१६ वेशवीथी
की रावडी

वेशवीथीपथ—पा० ७८-१६ वेशवीथी का
पथ, वेश की गली में सदा जमने वाला
रूस्त

वेशससर्ग—पा० ८८-८ वेश में आना

वेशसुन्दरी—पा० ११७-४

वेशस्वावडवामुखानल—उ० २५-६ वेशरूपी
मडवानल

वेशस्वर्ग—पा० ८३-६ वेशरूपी स्वर्ग

वेशाङ्गण—पा० २३-२, २४-अ, पा० ५४-
आ वेश्या के भयना के सामने का अजिर
या गुल म्यान

वेशाजघनरथस्थ—धू० ६३-अ वेश्या के
जघनरूपी रथपर नडा दूया

वेशाजघननीलेवरु—धू० ५३-११ वृद्धवेश्या
का सेवा करने वाला, गालाओं का

गुयामरी
वेश्याप्यथ—पा० ६७-६

वेश्यापत्तन—पा० ११०-४ वेश्याग्रा वा
नाजार
वेश्याप्रसङ्ग—प० १८-३०
वेश्यामहापथ—धू० १२-६ वेश्यारूपी चौडा
रास्ता
वेश्यामुखरस—धू० ११-२४ वेश्या का मुख-
रस
वेश्यावज्रित—धू०-४९-२ वेश्या से ठगा
हुआ
वेश्याप्याजप्रवास—धू० ४४-३ वेश्या के
बहाने से प्रवास
वेश्यामुरतविमर्श—पा० ८६-६ वेश्यारति
सेरपोपचारविरुद्ध—उ० १०-४ वेश्याग्रा के
स्वभाव के विरुद्ध
वैजयन्ती—पा० ६२-२ ध्वजा
वैदिश—पा० २०-६ विदिशा में होने वाला
वैकुण्ठेश—पा० १०३-आ त्रिलोरी धूलि
वैयाकरणखट्वचिन्—पा० ११-४ आकाश में
देखने वाला वैयाकरण; मूर्ख वैयाकरण
जिसे व्याकरण का ज्ञान न हो
वैयाकरणपारशव—प० १६-२६ दोगले
वैयाकरण
वैयाकरणवाग्व्यसन—प० १६-३४ वैयाकरणों
की प्रकृति या किटकिटाहट
वैरसर्पयोनि—उ० १६-६ दुरमनी और
सर्प का कारण
वैशिककृत्ति—प० ११-६ वेश के मामले
वैशिकशासन—उ० १०-आ वेश का नियम
वैशिकाचल—उ० ३-१२, १५-१४, १५-
१५, ३१-४ वेश में पर्वत के समान
अटल, वेश का धुरन्धर
वैशेषिकाचल—उ० १५-१५ वैशेषिक दर्शन
का महारथी
व्यन्गुणोपभोग—धू० ६७-७ प्रकट सुख का
आनन्द
व्यक्ति—धू० २५-अ होश, चेतना

व्यतिस्तरसुखभेद—पा० ६-अ मिलन सुख
तोड़ने वाला
व्यतिकरामृत—पा० ७३-३ सम्मिलन रूपी
अमृत
व्यपगतमदरागा—पा० १०-अ यह छाी
जिसके प्रेम का नशा समाप्त हो गया हो
व्यपदिशति—पा० ३२-२, ८५-आ उतलाता
है, कहता है ।
व्यलीक—प० २१-अ झोलती या झोरी, छप्पर
का सिरा
व्यलीक—धू० ३४-२, ३४-५, भगवा, भुभट
व्यवहार—पा० २७-६ लेन देन
व्यवहार—पा० ८८-६ मुरुदमा
व्यवहारिन्—पा० १५-अ गीहरा, जो लेन-
देन का काम करता है
व्यसनोपराग—उ० २३-१४ संकटापन्न,
दुःख से अभिभूत
व्याकरणविष्कुलिङ्ग—प० १७-२० व्याकरण
की विनमरी
व्याकोचामोज—उ० ३५-अ खिला हुआ
कमल
व्याघ्र—उ० २३-अ व्यन्धान, कषाय
व्याघ्रानुसारवित्रस्तमृगपोतिका—उ० ११-५
बाघ के पीछा करने से डरी हुई मृगछौती
व्याधिव्यपदेश—प० ३८-१५ रोगों से इन्कार
व्यापत्ति—प० २३-१८ मृत्यु
व्यावर्तित—उ० १३-८ धुमा लिया
व्यावहारिका—प० १६-३३ बोलचालकी
सीधी सादी (भाषा)
व्यमृत्तमूल—पा० ३२-अ जिसका मूल भाग
लूट गया हो (स्तन)
व्यावृत्तमौलिमणिरश्मि—पा० १२२-८ मणि-
जटित मौलि को सुँका कर
व्याहरण—प० ३१-२१ बचन, किस्सा
व्याहार—प० ४०-५ गूछना, घूँसना

व्युत्पद्युवति—प० ६-१० वय. प्राप्त युक्ती
व्यूहापति—पा० १२८-२ व्याही स्त्री की रति
से सन्तुष्ट रहने वाला

शिवस्वामिन्—पा० ६९-१५, ७५-६
ग्रणितपाटलोष्ठ—प० २६-३ विज्ञत लाल
ओष्ठ

ग्रतशालिनी—प० १२-आ ग्रत धारण करने
वाली

शक—पा० २४-अ, ६०-अ एक विदेशी
जाति

शककुमार—पा० ११०-३

शकपवनतुषारपारसीक—पा० २४-अ

शकार—पा० ५८-३ श-श करने वाला

शङ्कावगाह—धू० ४८-१ सन्देह पूर्वक थाह
लगाना

शठधूर्तभावा—उ० २६-३ शठ और धूर्त
स्वभाव वाली

शठप्रचारकनुक—प० १८-२८ नदमाशी का
नामा

शतचन्द्र—पा० १२०-अ सैकड़ों चन्द्रमाओं
की आकृति से युक्त शतचन्द्र नामक
अलंकार

शब्द—पा० १३-आ व्याकरण

शब्दकाम—पा० ७८-४ पातचीत से सुल्ल
बाजी

शब्दकामा—पा० १०-६ बात की चटोरी

शब्दप्रधानार्जन—पा० १०-८ जाता से ही
रोजी कमाना

शब्दशरीर—प० १७-१ सुन्दर मुकुमार वचन

शमदासी—पा० ५६-४

शमभला—धू० ६६-अ दुष्टिनी

शय्यायुद्धाभिषात—प० ३६-आ शय्या पर
रति मुद में लगा हुआ पाव

शरीरोदन्त—प० ३८-१० शरीर की हालत

शर्करपाल—पा० ८४-अ, ८५-अ

शय्याद्वयता—पा० ६९-ई गति की अभिव्यक्ति

शश—प० ८-९, ८-१५ २५-१५, ३७-२२
मूलदेव का भिन्न

शाण्डिल्य—पा० १४-३ गोत्रनाम

शान्त्यम्भस्—पा० ६-३ शान्ति का जल

शापहत्त—उ० २४-ई शाप का मारा हुआ

शापाग्नि—धू० २७-२१ शापरूपी अग्नि

शापोत्सर्ग—धू० २८-४ शाप का परिहार

शारद्वतीपुत्र—पा० ९-४

शार्दूलवर्मन्—वा० ११४-४

शासनकर—पा० १३-३ शासन या राजा
का आदेश लिखने वाला राजपाधिकारी

शासनाधिकृत—पा० १०-५ शासन या राजा
देश का अधिकारी

शास्त्रव्योपदेश—उ० २०-ई शास्त्र के मर्म
का उपदेश

शास्त्रप्रयोक्ता—धू० ६४-२ स्मृतिकार

शास्त्रविनिश्चय—उ० १५-ई शास्त्र का निश्चय

शास्त्रोपदेशाग्रहण—उ० १६-११ शास्त्रोपदेश
का ग्रहण न करना

शिवापद—प० २४-१० उपदिष्ट पञ्चशील
के नियम

शिररदती—प० ३३-२२ नुकीले दाँत वाली

शिञ्जन्नपुरा—पा० १२५-ई नुपुर भनकारती
हूँ

शिथिलाकल्प—धू० २५-६ शृङ्गार का अस्त-
व्यस्त होना

शिथिलीकृतभूषण—धू० ५३-१० जिमके
आभूषण उतार दिए गए हैं

शिथिलीकृतमानपरिग्रहा—उ० ३१-१ ऐसी
नायिका जिमका मान शिथिल कर दिया
गया हो

शिथिलोपगृह—प० ८४-आ आलिङ्गन का
शिथिल होना

शिविकुल—पा० १३३-३

शिरस्यकार—पा० ११-११ मिर का मतार

शिरमिच्छ—प० ३३-२० शल

शिलातलापं—पा० ६९-७ आधी पटिया
 शिलास्तम्भ—प० २१-६ पत्थर का खम्भा
 शिल्पिजन—धू० १६-११ कारीगर
 शिवपीठिका—प० १८-११ शिव पिण्डी की
 मटिया या चौतरा
 शिष्टकथ—नू० १०-६ पातचीत में शिष्ट
 शिष्टि—पा० १२२-३ आज्ञा, आदेश, शासन
 शीतापरादा—प० ३२-अ शीत व्यवहार या
 उपेक्षावृत्ति धारण करने वाली
 शीघ्र—धू० १६-१५, १३५-६ शराव
 शीकर—धू० २१-अ सुन्दर
 शुचिनल—धू० ५३-अ साफ चमकीले नारंग
 शुष्कवस्त्र—उ० २४-आ सूखे भुँद वाला
 शुनाधरोष्ठ—उ० १६-आ फूला हुआ भयर
 शूरसेनसुन्दरा—पा० ६७-२४
 शूर्पकसक्ता—प० ३८-२४ शूर्पक नामक मल्लुए
 पर आसक्त (कुमुदती)
 शृङ्गारप्रकरण—प० ३३-१८ शृङ्गार का विषय
 शैव्य आभरदित—प० १७-२
 शैविलक—प० ११-१२, ११-२२
 शीणशाली—प० ३१-६ ३१-१३, ३१-२५
 शीणशीर्ष—प० ३३-१ वीरता, बहादुरी
 शौचारिका—पा० ५६-४ शूर्पारक या
 सोपारा की
 भ्रमनिवृत्तजिह्वा—पा० ६५-अ थकावट से
 जिसकी जीभ बाहर निकल रही है ।
 आद्योपहारातिथि—प० २६-अ आद्य में दी
 हुई बलि को राने वाला अतिथि (कौआ)
 श्रावणिक—पा० ८८-६ न्यायालय में वादी
 प्रतिवादी को पुकारने वाला
 श्राव्य—प० ६-आ काव्य
 श्रामद्वन्द्वविमूषण—उ० ६-आ कीमती रत्न
 और आभूषण
 श्रामद्वन्द्वमृदङ्ग—धू० ३-अ रईसों के महल
 में बजने वाला मृदङ्ग
 श्रुतिविरसा—पा० ७०-अ सुनने में अद्विकार

श्रोणीच्छ—धू० १६-८ श्रोणिभिन्म
 श्रोत्ररसायन—प० १८-३ कान में लुआया
 अमृत
 श्रोत्रविपनिषेकभूता—प० १६-३४ कान में
 विष के समान चू पड़ने वाली
 श्रोत्रामृत—पा० ७०-७ कान का अमृत
 श्रोत्रावधान—धू० १६-१४ कानों को आक
 र्षित करना
 श्रोत्रियकथन—धू० ३८-अ आ आत्रिय का
 उपदेश
 श्रोत्रियभवन—पा० ११३-आ वेदाभ्यासी
 आत्रिय का घर
 श्लाघाशोष—धू० ११-१७ आत्म प्रशंसा
 रूपी दो
 श्लोकसङ्ग—पा० ६६-१० श्लोकसङ्ग, श्लोकों
 में सजा या सूचना है जिसकी
 श्वक्वधक—पा० ८८-६ श्वक्व, चाण्डाल
 श्वासविपमितावर—पा० ४२-४ हाँपते हुए
 श्वर
 श्वासायास—धू० ३१-६ कठिनता से श्वास
 लेना
 श्वेतवर्ण—प० ६-४ खडिया या श्वेत रंग
 पदपदार्थबहिष्कृत—उ० १७-१ प्राचीन
 कात्यायन दर्शन के पदपदार्थों को न मानने
 वाला
 पङ्कजग्रामाश्रया—प० ३३-२७ पङ्कज ग्राम
 पर आधारीत
 पण्डमण्डिता—धू० १-३ घनखड़ी से सुरी-
 भित
 पापितम् (प्रा०)—पा० ६७-६ कहा गया
 सज्जापरिहृत्तक—पा० ७६-५ हशारे से
 लौटाना
 सयताघालकव—पा० ४५-अ घुँघराले वाला
 के अग्रभाग का सयत् होना
 सयत्—पा० २०-आ युद्ध

समोजयति—धू० १८-१५ विरोधी है
 सरथ—प० १६-६ व्याकुल, धराया हुआ
 सलोलितमूर्धन—धू० १६-अ जिसने सजे
 हुए बालों को बखेर दिया है
 संवियताम्—धू० ६-२ बन्द कर लो
 ससारधर्म—पा० ६४-५ ससार में रहने वाले
 उपासकों का धर्म
 सस्कृतभाषिणी—६७-२२ सस्कृत बोलने वाली
 सस्तव—उ० १६-१२ प्रशंसा, स्तुति
 सकचप्रह—पा० १००-१८ बाल पकड़े हुए
 सकेरा—धू० ५२-अ वह दृष्टि जिसमें आँख
 का कोना एक ओर को खींच लिया जाय,
 ऐँची हुई आँख
 सङ्कुचितसर्वाङ्ग—प० १८-१० सब अङ्ग को
 सिकोड़ता हुआ, प० २३-२ पूरे शरीर को
 सिकाड़े हुए
 सक्षिप्तपाद—धू० ७०-६ किरणोंको समेटे हुए
 (सूर्य), पैरों को सिकोड़े हुए कलुषा
 सगीतक—उ० ३-८, १६-९, २०-१, २८-
 ७-सगीत के साथ नृत्य का एक प्रकार का
 आयोजन
 सघदासिका—प० २३-१८
 सघातबलि—प० १६-२३ मरा हुआ मंसि
 पाने वाला डोम कीवा
 सपिलक—प० २३-४
 सज्जनसप्रसन्नारिन्—प० १८-३० सज्जन का
 सहपाठी, अतएव स्वयं भी सज्जन
 समनाराधन—धू० १-आ सज्जनों को अनु-
 कूल करना
 सम्येतिष्ठा—पा० ६९-६ नव्य सदित
 समायते—धू० ८-६, पा० ११७-१६ मुमाई
 जाती है
 सञ्चिधापु—प० १६-२६ जाने की इच्छा
 वाला
 मञ्चन—पा० २०-६ मिश्रित कर नाचचीत

सजवन—पा० ३३-१२ चतुःशाल
 सतलघात—पा० ७०-८ ताली पोखती हुई
 सखदीप्ति—धू० ६४-अ स्वभाव की तेजस्विता
 सख्युक—धू० ३५-आ सात्विक
 सत्वाज्ज्व—प० १२-७ सत्वा सीधा
 सद्गन्तनखपद—धू० ५२-२ दत और नख-
 क्षत से चिह्नित
 सदानमिव—पा० १४५-२ सदा मुक्ता हुआ
 सदशसयोगिन्—धू० १०-१२ एक जैसे दो
 व्यक्तियों को एक समान मिलाने वाला
 सदशयोग—पा० ११५-२ समान जोड़
 सधोधीतगिवसना—पा० ३१-८-आ सुरत
 के धुले हुए कपड़े पहने हुई
 सन्तजित—पा० ३७ डपटा हुआ
 सन्तापककंठ—प० ६-१ सन्ताप देने में
 कठोर
 सन्दृष्ट—धू० ७-१ तूँही की घुडच में तारों के
 लिये बनाये हुए पाँचे
 सन्देहलोतस्—पा० ९७-२५ सन्देह की धारा
 सन्धिच्छेद—प० २२-३ संधि लगाना
 सन्धुचित—प० ३८-२ धपक उठना
 सक्षिप्तविव—पा० १००-२१ इफटा हुए
 सक्षिप्तविवन्—पा० ४१-३ जमावडा होने
 वाला है
 सक्षिपात—धू० २३-६, पा० २७-६, ५३-६
 जमघट, जमावडा, सम्मिलन
 सक्षिपाय—पा० १४-७, १७-२ पखापत
 इफटी करके
 सपरिध—पा० १२०-६ अगला के साथ
 सप्ततन्त्री—पा० ३६ सप्ततन्त्री धीणा
 सप्रणय—पा० ११७-२६ प्यारपूर्वक
 सप्रभृत्—धू० ५-६ उपहार सहित
 सफलकृतवीचन—धू० १०-२, १०-८
 बरानी का मजा लिया
 सभात्रविष्यामि—प० १६-१६ सत्कारकरूँगा
 समदना—पा० ८-५ कामानुर

समधुसपिण्ड—प० ६-६ धी और शक्कर से
युक्त
समयपूर्वक—पा० १२७-४ समझौते के अनु-
सार, शपथपूर्वक
समधुगल—पा० ५९-३ बराबर की लम्बाई
के दो रगवाले वस्त्रों को एक साथ लपेट
कर बनाया हुआ पट्टा या कायचन्वन
समवनतशिरस्—पा० २५-आ सिर झुकाए
हुए
समवाय—उ० १८-३ नित्य सम्बन्ध
समावृत्ता—धू० ५०-आ खालाओं के साथ
रहनेवाली
समाकलन—धू० २-आ आलिङ्गन
समुत्पत्ति—पा० ७७-३ रंगता आ रहा है
समुवाचार—प० ३७-१३ शिष्टाचार
समुद्रतलज्वर—धू० ५६-३ जिस रथ के
ऊपर ध्वजा फड़फड़ा रही हो
समुद्राभ्युत्थन—प० १०-म समुद्र पर जल
छिड़कना
समुपलोकित—पा० १३१-आ श्लोकों द्वारा
प्रशंसित करना
सम्प्रिग्रह—पा० २५-१० अच्छी तरह
स्वागत स्कार
सम्प्रधार्यताम्—प० ४२-१ शुक्ति सोविष्ट,
योजना बनाइए
सम्प्रसादा—धू० ५१-३ प्रसन्न करने योग्य,
प्रसादन के योग्य
सम्प्रहार—पा० १२०-३ सवर्ण या रगड़
सम्मुखीन—पा० ८८-१५ सामने आया हुआ
समृष्ट—उ० ५-३ भगडा पोछा हुआ
समृष्टसिक्तावर्कणितुसमप्रद्वाराजिर — पा०
१०३-१ भगडा नुदारा, जल से सिंचित
और फूलों से सजाया हुआ बहिर्दर
सरणिगुप्ता—पा० ३१-६
सर्वकालसन्तभूत—उ० ३-१२ हर समय
या छहों ऋतुओं में एक समान जिसमें
मस्ती छाई रहे

सर्वगुलधारिणी—प० ३७-१ सत्र गुप्त रहस्य
जानने वाली
सर्वपापीयसी—धू० ६२-३ सभी पापों वाली
सर्वप्रतिहतविधाना—पा० ७२-३ जिसकी सब
गुणित व्यर्थ हो गई
सर्वकण—पा० ३०-१० सबसे कुछ न कुछ
खोस लेने वाला
सर्वसल—प० २०-७ सबका मित्र
सर्वसामाग्य वशीकरण—धू० २६-२५ सभी
को वश में करने वाला
सर्वपहार—धू० ४१-अ एकदम सारी बात
से इन्कार कर जाना
सकलितमृदुवदन्यासा—उ० १५-१० नखरे
से धीरे धीरे पैर रखने वाली
सकलितसम्प्रिग्रह—पा० २६-२ नाज नखरे
के साथ खातिर
सलिलमणि—धू० ६६-४ जलपात्र
सविभ्रम—पा० ११७-३१ लीला या नखरे
के साथ
सविभ्रान्तयात—पा० ६२-अ ठमक कर
चलना
ससम्प्रभोद्भूतविपूजिता—धू० ६१-अ जलदी
में ढालने के कारण उफनती हुई
सशिरपाद—पा० १२-१ सिर से पैर तक
सत्परिपुष्पा—उ० ३५-३ धान्य से भरी
सहकारतैलौदगतचन्द्रका—धू० ११-६ आम
के तेल से उठी हुई चन्द्राकार चित्तियों
वाली
सहकारवृक्ष—प० ४२-३ आमवृक्ष
सहतलनिन्द—धू० ३१-आ ताली नवा कर
बोझना
सहस्रचक्षुष—प० १८-२७ हजार आँखोंवाला
सहाय—पा० ३८ पास या जुए के साथ
सहाय्या—धू० ४४-आ साथ बैठक
सहोद—प० २७-१ बह चोर जा चोरी के
माल के साथ पकड़ा जाय

सागरदत्त—उ० ३-६

सादक—पा० १-३ शिथिल या निःशक्त करने वाला

साधयन्ति—प० ३-३ फुसलाते हैं

साधयामः—पा० २१-६ जाते हैं

साधुदृष्टि—पा० ५७-१ कृपादृष्टि, मिहिरबानी

साधुवादानुयात्र—पा० १४-६, १४७-१

साधुवादका समर्थन करते हुए

सापङ्गवा—पा० ८६-३ छिपाने वाली

सामन्तप्रशमन—प० २८-७ सामन्तों को

दवाना, अधिकार में लाना

सामान्य—उ० १८-आ अनेक द्रव्यों में

रहने वाला नित्य पदार्थ जाति

सामोपपन्ना वाक्—उ० ५-आ शान्तिशुक्त

वाणी

साम्प्रतकालिक—धू० ३६-६ आधुनिक

सायंप्रातर्होम—प० २५-३५ सायं एवं प्रातः

कालीन इवन (दोनों समय की रति क्रीड़ा)

सायाम—धू० ६७-१७ लम्बा

सारफलपुष्प—पा० २६-८ बड़िया घटिया

माल

सारस्वतभद्र—प० ६-४

सारिष्टा—प० २३-५ स्थावर, वृद्धि

सार्धशशाङ्कछाया—धू० २७-३ अर्धचन्द्रकी

आकृति वाले (दन्तद्वय)

सार्वजनीनवात्—पा० ३०-१० सबकी दृष्टि

में सीधा होने से

सार्वभौम—पा० २६-८ एक विद्वद् जो गुप्त-

युग में बड़े सम्राटों के लिये प्रयुक्त होता

था। मगधेश्वर सम्राट् सार्वभौम कहे जाते

थे, जिसके कारण उज्जयिनी सार्वभौम नगर

कहलाता था।

सार्वभौमनगर—पा० २१-९ सार्वभौम नरेश

का प्रधान नगर उज्जयिनी

सार्वभौमनरेन्द्राधिष्ठित—पा० २१-६ सार्व-

भौम सम्राट् का वास स्थान

साल—पा० ३३-९ परकोय, चार दीवारी

सालकः—पा० १४०-३ अलकफ युक्त,

अलकफ रचित

सावशेषसन्धारण—धू० २४-११ सन्ध्या

कालीन किंचित् लालिमा

साम्नाखिलाच्च—धू० ४८-२ अभ्रपूरित नेत्र

साहसोपक्रम—धू० ४४-३ साहस का काम

सिंहकर्ण—पा० ३३-६ गवाक्ष या खिड़की

का कोना

सिंहलिका—पा० ६७-आ सिंहलदेश की

सिंहवर्मन्—पा० ५४-१

सिन्धुचारोपहार—प० २५-आ सिन्धुवार या

निर्गुंडी के पुष्पों का उपहार

सीकारसहित—धू० ६६-३ सितकारी से भरा

सुकुमारगायक—प० २०-५ सुरोला गायक

सुकुमारिका—उ० २१-५

सुखप्रश्न—प० ८-६, ३५-१५, ४२-५

कुशलप्रश्न

सुखप्रश्नाभिगमन—प० ४२-१३ कुशल ज्ञेय

जानने के लिये आना

सुखप्रारिणक—पा० ४०-३, कुशल ज्ञेय पूछने

वाला हित् व्यक्ति

सुनम्बा—धू० २७-५, २७-७

सुप्रकाणा—पा० १०७-आ अच्छी तरह भून

कायती हुई

सुप्रतिविहित—प० ६-२ अच्छी प्रकार किया

हुआ

सुप्रवेश—प० २३-३ सुलभ प्रवेश

सुभौमदर्शन—धू० १३-७ देखने में आत्यन्त

उपवना

सुरततृपित—उ० ३४-५ सुरत का व्यास

सुरतपिण्डपात—प० २३-१७ सुरत की भूत

मिटाने के लिये भिन्ना वृत्ति

सुरतप्रवा—धू० १६-६ सुरत रुपी जल से

व्यास घुमाने की व्यास

सुरतभुक्तमुक्ता—प० २५-२१ सुरत से छुट-

काग पाई हुई

सुरतमधुपानोपदंशभूत—प० ६-७ सुरत रुपी

मधुगान में गज्जर के समान

सुरतरथधुर्य—पा० २७-५ सुरतरथ में लड़े हुए पैल

सुरतरथाक्षमङ्ग—पा० ८७-२ सुरत के रथ की धुरी का टूट जाना

सुरतलोलुप—पा० २५-२३ सुरत का लालची

सुरतसयङ्कार—पा० ४३-२ सुरत का बयाना

सुरतसन्धिच्छेद—पा० २२-३ सुरत के नियम को ताड़ना, सुरत के लिये सेन्ध फोड़ना

सुरतसमुन्नय—पा० १६-६ सुरत सम्मिलन

सुरतोन्मत्त—पा० २१-२१ सुरत का सिल्ला बिनकर काम चलाने वाला, सुरत का डुकड़लोर

सुराविभ्रम—पा० ६७-११ मदिय के नशे का सरूर

सुराङ्ग—पा० ८-५

सुलभहसित—धू० १७-४ स्वभाविक हँसी हँसने वाली

सुवर्ण—पा० ५२-७ सुवर्ण मुद्रा

सुवृथातिवाहित—पा० ११७-११ मिलकुल वर्य का चकर फटना

सुरलवणाङ्गोत्खलना—उ० २८-६ नारीक जाँघिया पहने हुई

सुविरकूकृत—पा० ३३-११ नलकी की फूँक से साफ किए हुए

सुसिक—उ० ५-३ अच्छी तरह सिंचित

सुहृदधाव्यग्र—पा० १००-२६ मित्र के सत्ताप में लीन

सुहृदकर्णधार—पा० २१-१८ मित्रों की नाव पार लगाने वाला, मित्रों का टेढ़ा काम साधने वाला

सुहृदकर्णधारता—पा० २१-१६ मित्र के कठिन कार्य के साधने का गुण

सुहृदपचन—पा० ३६-२ मित्रों का जलीरा, जमावड़ा

सुहृदप्रश्नसङ्ख्या—पा० ८-१७ मित्रों के साथ बातचीत

सुहृदवक्षेप—पा० ८८-१८ मित्र को झुत्ता देना

सुहृदव्यापार—पा० ८८-२२ मित्र का काम सुहृन्निदेशवेष्टन—पा० १२१-१ मित्र की आज्ञा रूपी पगड़ी

सूक्ष्मस्थूलविविक्तरूपशतनिबद्ध—पा० ३३-११ सूक्ष्म और स्थूल उभरी हुई भाँति भाँति की नकाशियों से सजाए हुए

सूनासिख—पा० २२-आ कसाई खाने में छुरे की आयाज (खतपसाइट)

सूरसेनसुन्दरी—पा० ६८-५

सूर्यनाग—पा० ८८-२, ८८-१८

सृष्टिणी—पा० ३२-आ होठों के दोनों ओर के कोने

सेनक—पा० ४१-१७

सेवावाद—उ० २८-२ चाकरी की जैसी बातें, खुशामद

सोकरसिद्धि (प्रा०)—पा० ६२ शूकर की सिद्धि, महाबराह का समुद्र तल से पृथिवी का उद्धार करना

सोष्णगरि (प्रा०)—पा० ६२ सुन कर, सुनने वाला

सोपग्रह—पा० ८-८, १३-४ प्रीतिपूर्वक

सोपचार—पा० ६४-आ तकल्लुफ के साथ

सोपबन्ध—पा० ६-६ अचार चटनी के साथ

सोपसर्वा—पा० ११६-३ उड़ान पर भाई हुई, गर्माई हुई

सोपस्नेहा—धू० ४-२ आर्द्रता युक्त

सोपर—पा० ८८-२ सोपारा का रहने वाला

सौराष्ट्रिक—पा० ११०-३ सुराष्ट्र देश का

सौराष्ट्रिक जयनन्दक—पा० १७-२

सौराष्ट्रिका—पा० १२५-२ सौराष्ट्र की स्त्री,

सोरठी नारी

सौवर्णगृह—धू० ६७-८ सोने (स्वर्ण) का घर

सौवर्णतद—धू० ६७-८ स्वर्ण के तृद्ध

सौवीरक—पा० १४३-१ सौवीर देश का

स्कन्धकीर्ति—पा० ८८-७

स्खलितगत—पा० १२३-इ डगमगाती चाल
 स्खलितवलयावद—पा० १४६-अ सरकते
 कड़ों की झंकार —
 स्खलीकरण—धू० १८-५ लापरवाही
 स्खलीकृत—धू० ५६-८ भ्रष्ट हुआ, कूड़ा हुआ
 स्खलीकृत—धू० १८-४ व्यर्थ करके, बेर-
 वाही से उपेक्षा करके —
 स्तनतटविसर्पिन्—धू० १६-१२ स्तनतट
 पर लगाया जाने वाला
 स्तनमावरण—धू० १७-२ स्तनपट्ट, स्तन
 ढकने का धातु
 स्तनाङ्कुर—पा० ८-आ स्तन का अग्रभाग
 स्तम्भता—धू० ५५-१० अकलङ्कित मान
 स्ताथा—धू० ४५-६, अभिमानिनी, अकड़
 से भरी हुई
 स्तुतिमङ्गल—पा० ७५-६
 स्त्रीकटाक्षपते—पा० ६-आ स्त्री के कटाक्ष की
 तरह काम करना
 स्त्रीप्ररुदित—धू० २०-६ स्त्री का रोना
 स्त्रीमयपाश—धू० ५२-५ स्त्रीरूपी फन्दा
 स्त्रीलता—पा० ४५-६ स्त्रीरूपी लता
 स्थण्डिल—पा० १०२-६ चबूतरा
 स्थाणुमित्र—पा० ३२-९, ३२-६
 स्थानशीर्य—धू० ६४-अ वेश में ही खुरमों
 कहलाने का गौरव
 स्नातानुलिङ्ग—पा० १०३-६ स्नान के बाद
 अङ्गनाम लगाए हुए
 स्नानरूप—धू० ६२-अ स्नान के बाद स्नाना
 स्नानभ्यपदेश—उ० २४-५ स्नान का बहाना
 स्नाननुलेपनपरिस्पन्द—पा० २०-६ स्नान
 और अनुलेपन की तड़क भड़क
 स्नानोपशान्तिका—उ० २४-५ नहाने की
 साड़ी
 स्नानोदकीर्ण—पा० १०३-६ नहाने के बाद
 जल की बहिया

स्नेहमाध्यस्थ—पा० ४१-१६ स्नेह की शिथि-
 लता
 स्नेहव्यक्तिकर—धू० ९-इ स्नेह व्यक्त करने
 वाला
 स्नेहातिसृष्टसखीभावा—पा० ३७-१ स्नेह से
 सखी रूप में स्वीकृत
 स्पर्शकतान—धू० ४२-६ स्पर्श से पकरस
 स्फुटितकाशवल्लरीरवेत—पा० ३१-७ फूली
 कासवल्लरी की तरह सफेद
 स्फुरस्फुरङ्ग—धू० ५६-६ फड़कता हुआ घोड़ा
 रिमसाभिभाषी—पा० ४१-आ हँसकर बोलने-
 वाला
 रिमतोदमा—पा० १४-४ हँसीभरी
 स्वालीपति—पा० ८८-७ साहू
 जगुम्बलमेखला—पा० २०-६ सफेद माला
 रूपी मेखला धारण करनेवाली
 लल्ल भङ्ग—पा० ८३-अ शिथिल शरीर,
 झुरियाँ पड़ी देह
 स्वच्छन्दस्मितोदमा वाक्—पा० १४३-१
 स्वाभाविक मुस्कराहट युक्त वाणी
 स्वदेशीपथिक—पा० ४३-१ अपने देश का
 रिवाज
 स्वपुक्काम—सोने की इच्छा करने वाला,
 ऊँचता हुआ
 स्वभवनवलोकन—पा० ५०-५ अपने घर
 की टिड्की
 स्वभावचर—पा० १७-८ स्वभाव से कैदीला
 स्वभावद्विज—पा० १७-१० स्वभाव से मिठ-
 बोला
 स्वयंमह—पा० २१-१२ बबरदस्ती पकड़ लेना
 स्वयंदूती—धू० ५३-१५, स्वयं दूती का कर्म
 करने वाली
 स्वयमभिपत्तिता—धू० ५१-आ स्वयं आई हुई
 स्वर्गापत्ति—पा० ५-आ भविष्य में स्वर्ग मिलने
 की सम्भावना

स्वर्गायते—उ० ६-ई स्वर्ग के समान हो रही है

स्वल्पावगता—धू० ४२-८ ना समझ, थोड़ी समझ पाली

स्वागतव्याहार—प० २८-११ स्वागत वचन

स्वाधीनप्राप्ता—धू० ६२-१४ अपनेआप वश में आ जाने वाली

स्विन्नकपोल—धू० ६१-१ पसीने से भीगा हुआ कपोल

स्विन्नसर्वाङ्गवृद्धि—पा० १०-आ जिसका सारा शरीर पसीने से तर बतर हो गया है

स्वेदावतार—प० १०-आ पसीने का आना

स्वैरालाप—प०-१७-अ मौज मजे की बात-चीत, गपराप

हण्डे—पा० ४४-६, ५२-५, ७८-१६ ८८-१८, १३१-६, १४२-३ जनानिष्ठ, नर्म सखी का सम्बोधन

हरिकृष्ण—पा० ८८-आ

हरितक—पा० ३३-१४ सागसञ्जी

हरिदत्त—पा० ८८-२०

हरिभूति—७८-इ

हरिश्चन्द्र भिषक्—पा० १७-२, वैद्य हरिश्चन्द्र

हर्म्यतल—धू० २६-४ महल की छत

हर्म्यशिखर—धू० २४-अ महल का ऊपरी भाग

हर्म्यस्थल—धू० ७-२ महल की छत

हर्म्याग्र—पा० १०७-ई महल का कोठा

हस्तगतकल्प—धू० ४६-५, हाथ में प्राप्त माल या नगदी

हस्तप्रचार—उ० २८-२० अभिनय या नृत्य में हस्त मुद्रायें

हस्तप्रत्यस्तगण्ड—प० ४०-इ हाथों पर स्थित कपोल

हस्तव्यवसाय—प० १६-आ हाथ पर हाथ चढ़ाना

हस्ताप्रशाला—पा० २०-अ हाथ की अँगुली

हस्ताङ्गुलिसंदंश—धू० १७-४ हाथ की अँगुलियों की कैची

हस्तालम्बितमेखला—धू० ५४-अ हाथ में मेखला पकड़े हुई

हस्तिमूर्ख—पा १४०-१

हारगौर—प० ३-ई हार जैसा सफेद, वीर्यलूय (हार=वीर्यलूय) से पीला पड़ा हुआ

हारीत—पा० १२-७ एक स्मृतिकार

हासलाला—उ० १४-अ हँसी मजाक

हामान्तरितधैर्य—धू० ३८-२ हास से छिपा हुआ धैर्य

हासोपदंश—धू० ९-अ चलती हुई बातचीत के बीच-बीच में हँसीरूपी चाट

हास्यपञ्चक्रिया—धू० ४१-आ हँसी की श्रौर प्रवृत्त कराना

हास्यप्रयोग—धू० ३६-१ हँसी मजाक करना

हिमरसायनोपयोग—प० ५-६ हिमरूपी रसायन औषध का सेवन

हिमावराध—धू० ६५-८ पाले की ठंड

हिरण्यगर्भक—पा० ५२-१, ५२-३, ५२-५

हृणमण्डनमण्डित—पा० ४१-१५ हूथ जाति के योग्य वेश और अलंकार पहने हुए

हृदयनिलया—उ० १-इ हृदय ही जिसका घर हो (यह कामिनी का विशेषण है)

हृदयप्रीतिजनन—धू० १-४ हृदय में प्रीति उपजाने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला

हेतुवचन—धू० ३४-३ कारण पर बहस या विवाद

हेतुसमय—पा० १३-आ न्याय-शास्त्र का नियम

हेमवैकल्यक—पा० ५१-अ सोने का वैकल्यक

हेम कूर्म—धू० ७०-ई सुनहला कछुआ, रईस (व्ययर्थ)

होड—प० २७-१ चोरी का माल

परिशिष्ट-५

चतुर्भाषी की हस्तलिखित प्रतियाँ

[इस सूची के लिये हम अपने मित्र श्री वी० राघवन् के कृतज्ञ हैं ।]

१. शूद्रकृत पद्मप्राभृतक

गवर्नमेण्ट ओरियन्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास; आर० २७२५ (सी)

(देवनागरी, कागज, पूर्ण)

" " " आर० २७२६ (सी) (देवनागरी, कागज, पूर्ण)

पैलेस लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, १४६१-बी (मलयालम, ताड़पत्र, पूर्ण)

२. ईश्वरदत्त कृत धूर्तचिटसंचाद

त्रिवेन्द्रम यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, ५६६८-बी० (मलयालम, ताड़पत्र, पूर्ण)

वही, क्यूरेटर आफिस कलेक्शन, सं० १२८५-ए (मलयालम, ताड़पत्र, पूर्ण)

पैलेस लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, १४६१-सी (मलयालम, ताड़पत्र, अपूर्ण, सूचीपत्र में
भाषाविरोध' शीर्षक के अन्तर्गत)

३. वरसचिह्न उभयामिसारिका

गवर्नमेण्ट ओरियन्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास, सं० आर २७१५ (बी)

(देवनागरी, कागज, पूर्ण)

" " " आर २७२६ (ए) (देवनागरी, कागज, पूर्ण)

प्रावण्कोर यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, सं० ५९६८-ए

(मलयालम, ताड़पत्र, पूर्ण)

श्रीमन्त महाराज पैलेस लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, सं० १४६१-ए (मलयालम,

ताड़पत्र, पूर्ण, प्राक्कम का अंग छोटका)

४. श्यामिलक कृत पादताडितक

गवर्नमेण्ट ओरियन्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास, आर २७२५ (बी)

(देवनागरी, कागज, पूर्ण)

" " " आर २७२६ (बी) (देवनागरी, कागज, पूर्ण)

प्रावण्कोर यूनिवर्सिटी मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, सं० ५६६८-सी,

(मलयालम, ताड़पत्र, पूर्ण)

परिशिष्ट ४ में शब्दसूची का शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७६	१०	२७	१७	२९८	१२	६८-३	पा ६८-३
२७६	१५	६५	३५	२९८	१९	५२-१३७८	५२-१३, ७८
२७७	२५	६७	६९	२९९	१	चेरपुत्र	चेटपुन
२७७	२६	६९	७९	२९९	१०	...	प १८-९
२७८	७	१६०५	१६-५	२९९	१६	२१०९	२१-९
२७९	३४	५०-आ	पा ५०-आ	३००	१०	५५	६५
२८३	१२	६१	३१	३००	१४	११७	११८
२८३	१६	२१-९	३१-३	३००	१६	११	१९
२८४	१३	२५	१५	३००	२६	धू०अ०	धू०
२८४	१८	६३	८३	३००	३४	६३	६२
२८४	२१	८	९	३०१	१७	८८-२, पा.	पा. ८८-२,
२८४	२३	२-६	पा २-६	३०१	२१	४२-२	४४-२
२८५	१८	६	३	३०१	३२	२५-१६,	२५-१६,
२८६	४	१ थ ७	१३७			११-५,	उ ११-५
२८६	५	४२	२	३०२	१३	६७-१७	६७-१०
२८६	२१	पा	पा	३०२	१६	पा.	पा. १०-५,
२८६	३०	१७	७	३०२	३६	२५-२२प.	प. २५-२२;
२८७	८	७६-५	पा ७६-५			२६-३	२६-३,
२८७	११	११५	१२५	३०३	१०	पा. ५६७	पा. ६७
२८८	२	६५	६४	३०३	३१	९६-६	९७-६
२८८	६	व	प	३०४	११	५६-२	५९-२
२८८	१८	५१	५२	३०४	२५	२३-११६	२३-१६
२८८	३३	प २०,	प २३-२०,	३०५	१	प ५३३	प ३३
२८९	२५	२७-७	२७-२	३०५	१९	११-१५	११-१६
२८९	३२	उ	इ	३०५	३३	१३१	१४१
२९०	३०	१५९	१०९	३०५	३५	नप्तावपात	नप्तावपात
२९०	३५	—	पा ७८-१७,	३०६	३	...	पा. ३४-अ.
(यह अंश 'काकोच्छ्रासभ्रमणिप- मिताक्षर' के बाद जोड़ना है)				(यह भूकेत निद्रालसाधोरणके बाद है)			
२९५	१८	८-९	पा ८-९	३०६	१९	३२-१०	३३-१०
२९६	१८	१५	२५	३०६	२१	९३	९४
२९६	२८	३	६	३०६	२५	१२०	१२०
२९६	३०	८-२१	११-२१	३०७	७	१०५	१०६
२९७	३	४-३	४१-३	३०७	२३	१०१-१	११०-१
२९७	११	१४-१४	१८-१४	३०७	२८	०९ १	२९-१
२९८	११	४३-१	७४-१	३०७	३१	११-अ	पा. ११-अ
				३०८	२	६९-२१	६९-२२

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०८	१९	९-२०	८-२०	३१६	२५	ई	इ
३०८	२४	धू०-ई	धू० ३५-ई	३१६	३४	द-९	द-९
३०८	३३	३५-आ	३१-आ	३१८	२	इ	ई
३०९	९	प-आ	५-आ	३१८	६	१०-१९	१०-९
३०९	१४	३५-६	७५-६	३१८	७	१५	१८
३०९	१५	६०-२८	६७-२८	३१८	२८	२४	१५
३०९	२४	३१-१	३०-१	३१९	७	६९	३९
३१०	१	अ०	अ	३१९	३०	५०-८	५०-२
३१०	३	८०४	८-४	३२१	२४	२३-इ	२३-३
३१०	१७	२०-१	२१-१	३२२	१८	उ० इ०-ई
३१०	२८	२४२१	२४-२१	(यह सकेत 'वसन्तक' के बाद लगेगा)			
३१०	३३	३१-१	३०-१	३२४	१०	११७-१७	११७-१०
३११	१५	९७-०	९७-४	३२८	१	८-१५२५	८-१५, २५
३११	२७	६८-२६९-१०	६८-२, ६९-१०	३२८	९	वा.	पा.
३११	३२	३०६	३०-६	३२८	२३	ई	इ
३१२	२५	७८	७९	३२९	६	बू	धू
३१३	३	२५-१२	२४-१२	३२९	३१	७६-५	७६-६
३१३	७	१००	१०२	३३०	९	१९	२९
३१३	१३	२१	३१	३३१	१६	५९	६९
३१३	२३	३७-८	३७-२	३३४	२३	—	पा. १०२-इ
३१४	१०	९१	९०	(यह सकेत 'स्वप्नकाम' के बाद लगेगा)			
३१५	२८	१८	१२	३३४	३४	प.	पा.
३१६	२	७-४	१०-४	३३५	१८	८८	७८
३१६	१५	११	१९	३३५	२१	७८-इ	पा. ७८-इ

